# हिन्दी कहानी में यथार्थवाद

# हिन्दी कहानी में यथार्थवाद

★

डा० (कु०) नूरजहां एम. ए., पी-एच.डी.
प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग
करामत हुसेन मुस्लिम गर्ल्स डिग्री कालेज, लखनऊ

अभिनव भारती
४२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-२११००३

अवध शोध भारती-ग्रन्थमाला

(डॉ० प्रतापनारायण टंडन के निर्देशन में लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

संस्करण : प्रथम १९७९
मूल्य : ३५·००

"रामस्वरप्रसाद मेहरोत्रा द्वारा अभिनव भारती, ४२-सम्मेलनमार्ग, इलाहाबाद-२११००३ से प्रकाशित एवं श्री हरिहरनाथ सिंह द्वारा अरविन्द मुद्रणालय, १३७, तिलकरोड, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद में मुद्रित"

# प्राक्कथन

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में यथार्थवाद का समावेश व्यापक रूप में हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से आंशिक रूप में भारतेन्दुयुगीन हिन्दी कहानी से इस विचार-धारा का समावेश दृष्टिगत होने लगा था परन्तु इसे प्रेमचन्द युग से विशेष प्रश्रय मिला। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से यथार्थवाद साहित्य में जीवन के यथार्थ चित्रण पर बल देता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में यथार्थवाद की परिभाषा, स्वरूप, यथार्थवाद और विभिन्न विचारधाराओं, यथार्थवाद के प्रमुख रूपों तथा हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद का विकास दिखाते हुए अध्ययन के दृष्टिकोण और मौलिकता का प्रतिपादन किया गया है। इसके द्वितीय अध्याय में पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि और प्रमुख कहानीकारों के कृतित्व का परिचय देने के साथ-साथ समकालीन कहानी क्षेत्रीय प्रवृत्तियों से यथार्थवाद के समावेश का निरूपण किया है। आलोच्ययुगीन हिन्दी कहानी में यथार्थवाद के ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और आदर्शोन्मुख रूपों की सोदाहरण व्याख्या करने के साथ ही साथ उसमें यथार्थवाद के उपकरणगत अध्ययन भी किया गया है। निष्कर्ष रूप में इस अध्याय के अन्त में यह प्रतिपादित किया गया है कि पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में यद्यपि यथार्थवाद का सूक्ष्म अंकन नहीं है परन्तु फिर भी हिन्दी कहानी में यथार्थवाद के आरम्भिक स्वरूप के परिचय की दृष्टि से उसका विशेष महत्व है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के तीसरे अध्याय में प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में यथार्थवाद का विवेचन किया गया है। हिन्दी कहानी के इतिहास का यह युग द्वितीय विकास काल है। इसमें विभिन्न कहानीकारों ने विगत युग की कहानी क्षेत्रीय प्रवृत्तियों के विकास में योग दिया। यह युग राजनीतिक और सामाजिक नवजागरण का युग था। इस युग की कहानी की विविध प्रवृत्तियों के अन्तर्गत यथार्थवाद के विभिन्न रूपों और उपकरणों का सोदाहरण विवेचन करते हुए यह मन्तव्य प्रतिपादित किया गया है कि प्रेमचन्द युग की हिन्दी कहानी में पिछले युग की तुलना में यथार्थ के प्रति लेखकों का बढ़ता हुआ आग्रह स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है जो इस युग की हिन्दी कहानियों को यथार्थवाद की परम्परा में एक आधारभूत कड़ी सिद्ध करता है। इस क्रम में इसके चौथे अध्याय में प्रेमचन्दोत्तर युग में हिन्दी कहानी में यथार्थवाद का अध्ययन किया गया है। हिन्दी कहानी के इतिहास में यह युग तीसरा विकास काल है। इसकी अवधि प्रेमचन्द युग की समाप्ति से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक है। द्वितीय विश्व युद्ध और बंगाल के दुर्भिक्ष आदि ने इस युग के जीवन

को विशेष रूप से प्रभावित किया। युगीन पृष्ठभूमि, प्रतिनिधि कहानीकारों, समकालीन कहानी क्षेत्रीय प्रवृत्तियों तथा यथार्थवाद के विभिन्न रूपों और उपकरणों के अध्ययन के सन्दर्भ में इस अध्याय में यह निष्कर्ष व्यक्त किया गया है कि इस युग के कहानीकारों ने रूढ़िवादी मान्यताओं का खंडन करते हुए नये समाज की रूपरेखा प्रस्तुत की। उन्होंने आडम्बरपूर्ण धर्म के भ्रष्ट और घृणित रूपों का खंडन करते हुए सेवा को ही सच्चा धर्म बताया। छुआछूत, साम्प्रदायिकता, शोषण, अशिक्षा, अज्ञान, कुंठाओं और रूढ़ियों का भी उन्होंने विरोध किया। इस रूप में हिन्दी कहानी में यथार्थवाद का समावेश एक फैशन के रूप में न होकर एक गम्भीर विचारधारा और जीवन-दर्शन के रूप में हुआ है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी युगीन कहानी में यथार्थवाद का अध्ययन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पाँचवें अध्याय में किया गया है। इस युग में देश की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए। पारिवारिक व्यवस्था, सामाजिक संगठन और नैतिकता की नई धारणाएँ विकसित हुईं। स्वतंत्र भारत की सरकार ने समाजवाद की दिशा में कदम उठाया। हिन्दी कहानीकारों ने इस कठिन समय में जागरूकता का परिचय देते हुए युग चेतना को अभिव्यक्ति दी। इसी प्रकार से इस कृति के छठे अध्याय में कहानी क्षेत्रीय आन्दोलनों के सन्दर्भ में यथार्थवाद का अध्ययन किया गया है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में सातवें दशक में नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी अनेक आन्दोलन हुए और व्यावसायिकता से हटकर रूढ़ियों को तोड़ने वाली कहानियाँ सामने आयीं। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में लेखक ने हिन्दी कहानी के विविध युगीन इतिहास के आधार पर विविध विकासकालीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में यह संकेत किया है कि हिन्दी कहानी निरन्तर कल्पनामूलकता से लेकर यथार्थपरकता की ओर बढ़ती रही है। आधुनिक युग की एक प्रतिनिधि विचारधारा के रूप में यथार्थवाद का अध्ययन करने की दृष्टि से कहानी एक महत्वपूर्ण साहित्यिक माध्यम है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक गुरुवर डा० प्रतापनारायण टंडन के निर्देशन में लिखा गया था। मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना परम कर्त्तव्य समझती हूँ।

हिन्दी विभाग,
करामत हुसेन मुस्लिम गर्ल्स डिग्री कालेज,
लखनऊ।

—नूरजहां

# अनुक्रम

□


१. विषय-प्रवेश : १-३६
२. पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद : ३७-६८
३. प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद : ६६-१५४
४. प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद : १५५-२२३
५. स्वातन्त्र्योत्तर कहानी में यथार्थवाद : २२४-२७६
६. कहानी-क्षेत्रीय नवीन आन्दोलन और यथार्थवाद : २७७-३२६
७. उपसंहार : ३२७-३४४
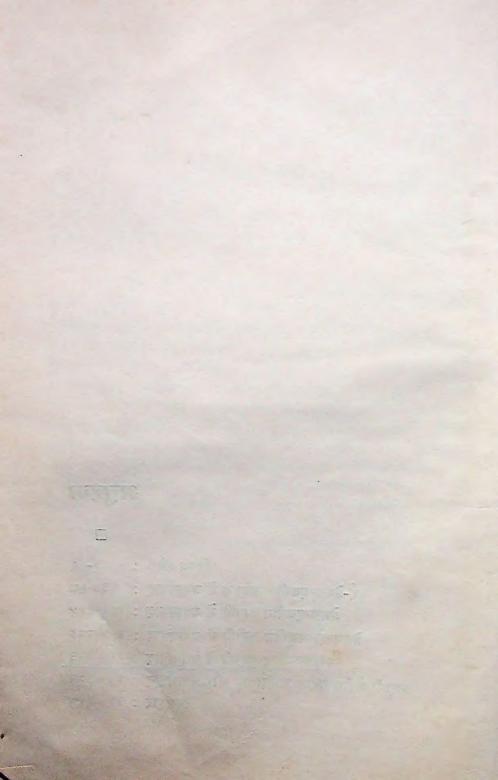
अध्याय १

# विषय-प्रवेश

## (क) साहित्य और यथार्थवाद

यथार्थवाद एक व्यापक क्षेत्रीय विचारधारा है। इसका सम्बन्ध वाङ्मय की अनेक विधाओं से है। साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद मानव-जीवन के उस रूप के चित्रण पर बल देता है जो वास्तविक सत्ता से युक्त हो। व्यावहारिक दृष्टिकोण से साहित्य में मानव-जीवन और मानव-समाज का समग्र रूपात्मक चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। एक यथार्थवादी साहित्यकार मानव-जीवन और मानव-समाज के आदर्श-परक और कल्पित स्वरूप की उपेक्षा करके अपनी रचनाओं में केवल यथार्थ चित्रण पर ही बल देता है, भले ही वह यथार्थ कुरूप और हीन हो तथा पाठक के हृदय पर उसको पढ़कर कोई सद्भावना न जाग्रत हो। इस दृष्टि से यथार्थवादी साहित्य किसी सीमा तक भौतिकवादी साहित्य कहा जा सकता है, क्योंकि वह मानव-जीवन और मानव-समाज की भावनात्मक और कल्पनात्मक सत्ता से पृथक् उसकी वास्तविक सत्ता का बोध कराता है। एक साहित्यकार के अतिरिक्त एक चित्रकार अथवा विचारक भी यथार्थवादी दृष्टिकोण का अनुगामी हो सकता है परन्तु उसके यथार्थ चित्रण का क्षेत्र भिन्न हो जाता है। साहित्य में जिस यथार्थवाद का चित्रण किया जाता है वह मुख्य रूप से वस्तु जगत् और भाव जगत् का पूरी ईमानदारी के साथ यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिकोण से साहित्य के क्षेत्र में जो प्रमुख विचार-धाराएँ प्रमुख हैं उनमें यथार्थवाद भी एक है। यथार्थवादी साहित्य आदर्शवादी साहित्य की भाँति केवल कल्पना और आदर्श पर ही आधारित नहीं होता वरन् वास्तविक जगत् को उसकी सम्पूर्णता के साथ चित्रित करता है।

हिन्दी साहित्य की विभिन्न गद्यात्मक और पद्यात्मक विधाओं के क्षेत्र में यथार्थवाद का आंशिक रूप में समावेश पूर्व भारतेन्दु युग से ही दृष्टिगत होता है, परन्तु एक विशिष्ट विचारधारा के रूप में इसे प्रेमचन्दयुगीन साहित्य में ही प्रश्रय दिया गया। जैसा कि आगे संकेत किया जायगा, हिन्दी कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी तथा कविता आदि के क्षेत्रों में यथार्थवाद का समावेश और विकास इन साहित्यिक माध्यमों के विकास के समानांतर ही हुआ है। जहाँ तक हिन्दी कहानी का सम्बन्ध है, उसमें यह विचारधारा बहुत सुनियोजित रूप में उपलब्ध होती है।

पूर्व भारतेन्दु युग तथा भारतेन्दु युग की कहानी में जहाँ यथार्थ का पुट यत्र-तत्र अंशतः ही उपलब्ध होता था, वहाँ प्रेमचन्द युग की कहानी में उसका स्पष्ट स्वरूप समाविष्ट हुआ। प्रेमचन्दोत्तर तथा स्वातन्त्र्योत्तर कहानी में उसकी प्रसर चेतना दृष्टिगत होती है। नई कहानी में भी यथार्थवाद के विभिन्न रूपों का समावेश कहानी के विविध उपकरणों के क्षेत्र में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। यहाँ पर विविध युगीन हिन्दी कहानी में यथार्थवाद के विश्लेषण के साथ ही संक्षेप में यथार्थवाद का सैद्धान्तिक स्वरूप निर्दाशित करते हुए उसके विभिन्न रूपों का परिचयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

यथार्थवाद का स्वरूप—यथार्थवाद साहित्य की एक महत्वपूर्ण विचारधारा है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है, वह वास्तव में पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से यथार्थ के समुचित चित्रण के लिए कहानी बहुत उपयुक्त साधन माना जा सकता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो यथार्थवाद पाश्चात्य साहित्य में उद्‌भूत और विकसित विचारधारा है, परन्तु यदि व्यापक दृष्टिकोण से इस पर विचार किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर आयेंगे कि यथार्थवाद साहित्य की एक नैसर्गिक प्रवृत्ति है। जहाँ तक आधुनिक हिन्दी कहानी में यथार्थवाद के समावेश का प्रश्न है, इसके विषय में यहाँ पर यह संकेत करना असंगत न होगा कि आधुनिक कहानी का विकास ही यथार्थवाद के समानान्तर हुआ है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि यथार्थवाद का उद्‌भव एक साहित्यिक विचारधारा के रूप में पाश्चात्य देशों में हुआ वहाँ पर इस विचारधारा के मूल में साहित्य में अभिव्यंजित विषय के यथातथ्य की प्रवृत्ति विद्यमान है। यहाँ पर यथार्थवाद के स्वरूप और परिभाषा के सन्दर्भ में प्रमुख पाश्चात्य धारणाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

यथार्थवाद की परिभाषा : पाश्चात्य धारणाएँ—साहित्य की एक विशिष्ट विचारधारा के रूप में यथार्थवाद जीवन के यथार्थ अंकन पर बल देता है। यथार्थवाद की परिभाषा करते हुए विभिन्न आलोचकों ने इसके विभिन्न पक्षों की व्याख्या की है। प्रसिद्ध योरोपीय साहित्यिक इतिहासकार कजामियाँ ने यथार्थवाद के विषय में अपने इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया है कि यथार्थवाद साहित्य में कोई विशिष्ट शैली नहीं है, वरन् एक विचारधारा अथवा प्रवृत्ति है। यहाँ पर कजामियाँ के इस मन्तव्य के सन्दर्भ में इस तथ्य का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि योरोप में जोला तथा मोपासां जैसे कथाकारों ने भी यथार्थवादी आन्दोलन के विकास में जो योग दिया है वह उसकी इसी प्रवृत्तिगत विशिष्टता के कारण है। राबर्ट लुई स्टीवेन्सन जैसे विचारकों का यह मत है कि यथार्थवाद साहित्य में

अभिव्यंजित यथार्थ से विशेष सम्बन्ध नहीं रखता, वरन् केवल उसकी शैली से सम्बद्ध होता है। जार्ज ल्यूकस जैसे विद्वानों ने योरोपीय साहित्य में यथार्थवाद का अध्ययन करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि वास्तविक अर्थ में यथार्थवादी साहित्य वही होगा, जिसमें का वर्ण्य विषय यथातथ्य चित्रण है। यथार्थवाद के अन्य पाश्चात्य व्याख्याताओं में हार्वर्ड फास्ट का उल्लेख करना भी आवश्यक है। उसने यथार्थ चित्रण की समस्या पर विचार करते हुए यह कहा है कि साहित्य की आभ्यांतरिक प्रक्रिया किसी पूर्व निर्धारित क्रम पर निर्भर नहीं करती और न ही वह उससे निर्दिष्ट होती है। इसके विपरीत वह केवल संयोग पर आधारित होती है और इस दृष्टि से एक साहित्यकार का उद्देश्य यथार्थ का यथातथ्य चित्रण करना नहीं होता वरन् यथार्थ के उपयुक्त रूप का चयन करना होता है। यही नहीं, वह इस बात पर भी बल देता है कि यथार्थ का स्वरूप एकात्मक होता है द्वयात्मक नहीं। इसीलिए यथार्थपरक साहित्यकार के समक्ष कोई धर्मसंकट नहीं होता और वह सरलतापूर्वक उसके चित्रण में प्रवृत्त हो सकता है। प्रसिद्ध अंग्रेजी कथाकार और आलोचक हेनरी जेम्स ने कथात्मक विधाओं में यथार्थ चित्रण पर विशेष बल दिया है। उसका निश्चित मत यह है कि कोई भी लेखक तब तक किसी उत्कृष्ट कथाकृति की रचना नहीं कर सकता जब तक उसमें सत्य का विवेक न हो। परन्तु इसके साथ ही वह यह भी कहता है कि यह एक कठिन कार्य है। वह यह निर्देश करता है कि कथाकार को यथार्थ की खोज अपने विशद क्षेत्रीय जीवन में करनी चाहिए। वह यथार्थ को एकात्मक अथवा एकपक्षीय नहीं मानता। इसके विपरीत वह यथार्थ को बहुरूपी स्वीकार करता है। कथा साहित्य के समग्र स्वरूप पर विचार करते हुए वह यह भी कहता है कि यथार्थता का वातावरण किसी कथाकृति का एक ऐसा केन्द्रीय गुण है जिस पर अन्य सभी गुण निर्भर करते हैं।

यथार्थवाद की परिभाषा : भारतीय धारणाएँ—यथार्थवाद की परिभाषा करते हुए हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने अपने विभिन्न मत प्रकट किये हैं। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार मुंशी प्रेमचन्द ने बताया है कि यथार्थ का साहित्य में अत्यधिक महत्व होता है। उन्होंने यथार्थ को साहित्य की एक कसौटी मानते हुए अनुभूति की यथार्थता पर बल दिया है। उनके विचार से "साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गयी हों।" इसी सन्दर्भ में यथार्थवाद की परिभाषा और स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने यह भी लिखा है कि "यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विशेषताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्रण होता है और

इस तरह यथार्थवादी हमको निराशावादी बना देता है, मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है। हमको अपने चारों तरफ बुराई-ही-बुराई नजर आने लगती है।"[1] प्रेमचन्द युग के दूसरे उल्लेखनीय कथाकार जयशंकर 'प्रसाद' ने भी यथार्थवाद की परिभाषा और स्वरूप स्पष्ट करते हुए अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने यथार्थवाद को एक विशिष्ट साहित्यिक दृष्टिकोण माना है। उनका मत है कि "यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है, साहित्य के माने हुए सिद्धान्त के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावों का वास्तविक उल्लेख।" जयशंकर 'प्रसाद' ने आगे चलकर यथार्थवाद के बहुपक्षीय स्वरूप का प्रतिपादन किया है कि यथार्थ कभी भी एकपक्षीय अथवा एकांगी नहीं होता। इसके विपरीत वह सदैव अनेक रूपों वाला होता है। लेखक की दृष्टि और वर्ण्य विषय के वैशिष्ट्य के अनुसार यथार्थ का स्वरूप साहित्य में सदैव परिवर्तित होता रहता है। उन्होंने इस विवेचन के सन्दर्भ में लिखा है कि "यथार्थवाद क्षुद्रों का ही नहीं अपितु महानों का भी है। वस्तुतः यथार्थवाद का मूल भाव है वेदना। जब सामूहिक चेतना छिन्न-भिन्न होकर पीड़ित होने लगती है तब वेदना की विवृति आवश्यक हो जाती है।"[2]

हिन्दी के प्रसिद्ध शास्त्रीय समीक्षक डा० श्यामसुन्दरदास ने गद्य काव्य के विवेचन के सन्दर्भ में कथा साहित्य में सत्यता की व्याख्या की है। उनका मत है कि इस प्रकार के साहित्य में सर्वप्रथम तत्व यथार्थता ही है जिसका परीक्षण किया जाना चाहिए। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि कथा साहित्य का सत्य वैज्ञानिक सत्य से सर्वथा भिन्न होता है। परन्तु इतना होने पर भी उसमें गूढ़ और व्यापक सत्यता अन्तर्निहित रहती है जो अधिक प्रभावशालिनी और शिक्षाप्रद होती है। यथार्थवाद का साहित्य और कला में स्वरूप निर्धारित करते समय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बताया है कि "कला के क्षेत्र में यथार्थवाद एक ऐसी मानसिक प्रवृत्ति है जो निरन्तर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित और रूपायित होती रहती है।" द्विवेदी जी ने यथार्थवाद के स्वरूप से सम्बन्धित भ्रमों का उल्लेख करते हुए इसी प्रसंग में एक अन्य स्थल पर लिखा है कि यथार्थवाद शब्द बहुत गलतफहमी का शिकार बन गया है। साहित्य में यथार्थवाद शब्द का प्रयोग नए सिरे से होने लगा है। यह अंग्रेजी साहित्य के 'रियलिज्म' के तौल पर गढ़ लिया गया है। यथार्थवाद का मूल सिद्धान्त है वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना। न तो उसको कल्पना के द्वारा विचित्र रंगों से अनुरंजित करना और न किसी

१. 'कुछ विचार', मुंशी प्रेमचन्द, सन् १९६१, पृ० ४९।
२. 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' श्री जयशंकर 'प्रसाद', पृ० १२१।

धार्मिक या नैतिक आदर्श के लिए उसे काट-छांट कर उपस्थित करना ।[1] इसोलिए द्विवेदी जी ने यह संकेत किया है कि यथार्थवाद साहित्य में एक ऐसी विचारधारा के रूप में ग्राह्य होना चाहिए जिसमें लोगों की आस्था हो क्योंकि उसके अभाव में यथार्थवाद का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता । उन्होंने इस सम्बन्ध में अपनो यह धारणा भी व्यक्त की है "यथार्थवाद को जैसे हमारे लेखकों ने विश्वास के रूप में नहीं, बल्कि आजकल के आवश्यक साधन के रूप में ग्रहण कर लिया है, यानी हर व्यक्ति में कुछ ढुलमुलपन और कुछ पतन स्खलन दिखा देने का नाम ही यथार्थवाद हो और आधुनिक बनने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो, छोड़ा ही न जा सकता हो ।"

हिन्दी के प्रगतिशील समीक्षक श्री शिवदानसिंह चौहान ने साहित्य में यथार्थवाद का अन्यतम महत्व प्रतिपादित किया है । उनकी यह धारणा है कि उत्कृष्ट साहित्य का सृजन सत्य के अभाव में नहीं हो सकता । इस दृष्टिकोण से उन्होंने यथार्थवाद को ही साहित्य का प्रधान मानदंड माना है । उनके विचार से "महान् साहित्य और कला सदा निर्विकल्प रूप से जीवन की वास्तविकता को ही प्रतिबिम्बित करती है, अतः उसकी एकमात्र कसौटी भी उसका यथार्थवाद है ।" यथार्थवाद की परिभाषा करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक् सत्ता का समर्थक है, वह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है । यथार्थवाद का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तु जगत् से है।"[2] वाजपेयी जी ने यथार्थ के नाम पर कुरुचिपूर्ण साहित्य के प्रस्तुतीकरण का विरोध किया है । एक अन्य समीक्षक डा० श्रीकृष्ण लाल ने यथार्थवाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "यथार्थवाद आधुनिक विज्ञान युग की देन है । यों तो जीवन सर्वदा से ही प्रायः एक ही प्रकार का चला आ रहा है, परन्तु उसको निकट से देखने की दृष्टि विज्ञान ने ही पहले पहल दी । पानी हम सदा से पीते रहे हैं और उसका प्रयास यही रहा करता है कि स्वच्छ और निर्मल जलपान करें । प्रसिद्ध भी यही है 'पानी पीजे छान कर ।' परन्तु आज कपड़े से छानने से भी जल स्वच्छ नहीं हो जाता, हाँ, स्थूल चर्म चक्षुओं से चाहे वह जितना भी स्वच्छ जान पड़े । कारण यह है कि विज्ञान ने हमें लघुवीक्षण यंत्र द्वारा दिखा दिया है कि स्वच्छ-से-स्वच्छ जल में भी कीटाणुओं की संख्या गणनातीत हुआ करती है । यही लघुवीक्षण यथार्थ दृष्टि है ।"[3]

**यथार्थवादी विचारधारा का उद्भव**—ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यथार्थवादी विचारधारा का उद्भव सर्वप्रथम यूनान में हुआ था । दर्शनशास्त्र के इतिहास

१. 'हिन्दी साहित्य', डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २७ ।
२. 'आधुनिक साहित्य', आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ।
३. 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद', डा० त्रिभुवन सिंह, सं० २०१२, डा० श्रीकृष्ण लाल लिखित भूमिका, पृ० ४ ।

के अन्तर्गत इस तथ्य के संकेत मिलते हैं कि पाँचवीं शताब्दी ईसवी पूर्व के लगभग यथार्थवादी दर्शन का प्रणयन वहाँ हुआ था। उस समय से लेकर आज तक दर्शन-शास्त्र तथा साहित्य के क्षेत्रों में यथार्थवादी विचारधारा किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रही है। कई सहस्त्र वर्षों के सुदीर्घ काल में इस विचारधारा को अन्य अनेक मतवादों का समर्थन और सहयोग प्राप्त हुआ। दार्शनिक क्षेत्र में यथार्थवाद का मूल तत्व मानव की सहज ज्ञान की शक्तियों की वातावरण को समझने तथा अध्ययन करने की क्रिया है। संसार में मनुष्य ऐसी बहुत-सी वस्तुएँ देखता है जो उसके द्वारा निर्मित नहीं हैं। वह उनके बारे में तभी कुछ समझ सकता है, जब उसका उससे सम्बन्धित ज्ञान संयत और सुनियोजित रूप में हो। यह ज्ञान वह इसलिए भी प्राप्त करना चाहता है क्योंकि इसके मूल में रक्षा की प्रवृत्ति कार्यशील रहती है। इस प्रकार से दर्शन के क्षेत्र में यथार्थवाद के सन्दर्भ में कतिपय मान्यताएँ प्रचलित हैं। उनके अनुसार "मानव मूल रूप से यह विश्वास करता है कि (१) मानव के चारों ओर यथार्थ स्थिति रखने वाला संसार या वातावरण है, जिसके बनाने, बिगाड़ने तथा परिवर्तित करने में उसका कोई हाथ नहीं है, (२) इस यथार्थ वस्तुस्थिति को केवल समझा ही जा सकता है। यह समझना तभी सम्भव है जब कि उस वातावरण का वैज्ञानिक तथा निरपेक्ष अध्ययन किया जाए, यह मानव बुद्धि द्वारा ही सम्भव है। तथा (३) बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान ही मनुष्य की वातावरण के प्रति की गई समस्त प्रतिक्रियाओं में, चाहे वे व्यक्तिगत रूप से की गई हों या सामूहिक रूप से, सहायक है। मानव के ये मूलभूत विश्वास ही यथार्थवाद के आधार-स्तम्भ हैं।"[1]

**यथार्थवादी विचारधारा का विकास**—साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवादी विचारधारा को व्यापक रूप में मान्यता मिली है। इसे विशिष्ट चिन्तकों का समर्थन भी प्राप्त हुआ है। सिद्धान्ततः यथार्थवादी विचारधारा साहित्य और कला में जीवन के उस रूप के अंकन पर बल देती है जिसका आधार यथार्थपरक हो। यथार्थवाद को अनेक मनीषियों ने विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं व परिस्थितियों में रख कर कसा, समझा व परखा है। इसीलिए यह विश्व-साहित्य में विभिन्न कालों में विद्यमान रहा है। वस्तुतः यथार्थवाद सुधारक साहित्य का प्रथम चरण है। कोई भी साहित्यकार जब सामाजिक स्थिति का चित्र उपस्थित करता है तब उसका दृष्टिकोण यथार्थपरक ही रहता है। उसका उद्देश्य जन-मानस में उस आक्रोश को जन्म देना रहता है जिसके बिना किसी भी सुधार, परिवर्तन अथवा क्रान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मध्यकालीन साहित्य में ही यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ अंशतः दिखाई पड़ती हैं।

---

१. 'पाश्चात्य समीक्षा की रूपरेखा', डा० प्रताप नारायण टण्डन, सन् १९६९, पृ० २२२-२२३।

आधुनिक पाश्चात्य साहित्य में यथार्थवादी विचारधारा के विकास में कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों ने भी योग दिया। इस सम्बन्ध में काडवेल जैसे समीक्षकों ने विस्तार से विवेचन किया है। उसने मार्क्स के आधारभूत सिद्धान्तों की साहित्यिक परिणति भी निर्दिष्ट की है। रचनात्मक साहित्य के क्षेत्र में फ्लोबेयर, जोला तथा मोपासां आदि विचारकों ने भी इसके विकास में योग दिया है। उन्होंने यथार्थवाद को एक प्रवृत्ति के रूप में स्वीकृति दी जिसके मूल में वस्तुओं के यथास्वरूप वर्णन की प्रवृत्ति है। इस रूप में इस विचारधारा का जो विकास हुआ उसे अन्य नवीन नाम भी दिए गए, जिनमें यथार्थवाद, अतियथार्थवाद तथा प्रकृतवाद आदि हैं। आधुनिक युग में यूरोपीय साहित्य के अन्तर्गत यथार्थवाद का महत्व इसलिए है क्योंकि अनेक प्रबुद्ध विचारकों की यह धारणा है कि यथार्थवाद ने साहित्य को एक नई दृष्टि दी है। एक विशिष्ट वाद के रूप में साहित्य के क्षेत्र में इसकी चर्चा प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से अधिक होने लगी। द्वितीय महायुद्ध तक पाश्चात्य साहित्य के क्षेत्र में इसका प्रचलन बहुत अधिक हुआ। वास्तव में प्रथम विश्वयुद्ध में जो भयानक नर-संहार हुआ था, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूपहीनता, निराशा और आश्रयहीनता की अनुभूति ने यथार्थवाद के भावी विकास की वह भूमिका प्रस्तुत की जो आक्रोश और विद्रोह से युक्त थी।

## (ख) यथार्थ और यथार्थवाद

सामान्य दृष्टिकोण से यथार्थ और यथार्थवाद में कोई सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक स्पष्ट भेद नहीं है। यथार्थ वह है जो साहित्य में समाज के वास्तविक चित्रण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसी प्रकार से यथार्थवाद वह है जो साहित्य की किसी भी विधा के क्षेत्र में उस यथार्थ चित्रण पर बल देता है और उसके प्रति निरन्तर आग्रहशील रहता है। इसीलिए यथार्थवादी साहित्यकार अपनी रचनाओं में मानव-समाज और मानव-जीवन का जो चित्रण प्रस्तुत करता है उसका आधार भावना अथवा कल्पना का जगत् न होकर वह भौतिकवादी जगत् होता है जिसकी यथार्थ सत्ता विद्यमान रहती है। एक यथार्थवादी कहानीकार मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों का यथातथ्य चित्रण अपनी रचनाओं में करता है जो अपनी यथार्थता के कारण ही सजीव और विश्वसनीय होता है। वह साहित्य को केवल मानसिक परितृप्ति और भावात्मक अनुभूति का विषय न मानकर जीवन और समाज के विकास के लिए एक सशक्त माध्यम मानता है। इस दृष्टि से यथार्थ वह है जो साहित्य में वास्तविकता के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है और यथार्थवाद उसे कहते हैं जो उस यथार्थपरक साहित्य को एक विशिष्ट वैचारिक अर्थ प्रदान करता है। इस प्रकार से यथार्थ और यथार्थवाद एक दूसरे के पर्यायवाची होते हुए भी पृथक् अस्तित्व से युक्त रहते हैं। यथार्थवाद साहित्य का बाह्य आवरण है तो यथार्थ उसका प्राण। यथार्थ और यथार्थवाद के

विषय में विभिन्न विद्वानों ने जो मत व्यक्त किए हैं वे इस तथ्य के परिचायक हैं कि यथार्थवाद यथार्थपरक साहित्य की एक शैलीगत विशेषता न होकर उसमें निहित एक विशिष्ट विचारधारा है। इस विचारधारा का अनुगमनकर्ता साहित्यकार केवल एक चित्रकार की भाँति साहित्य में वास्तविक जीवन का चित्रण न करके उसे एक सुसम्बद्ध वैचारिक शृंखला में बद्ध करके प्रस्तुत करता है। सामाजिक जीवन में परिवर्तन और विकास के समानान्तर ही यथार्थ के स्वरूप में भी परिवर्तन और विकास होता रहता है। यथार्थवाद भी समय के अनुरूप विभिन्न परिस्थितियों और जीवन के वास्तविक रूपों से प्रभावित होता रहता है।

यथार्थ और कल्पना-- प्रायः प्रत्येक युग के साहित्य में यथार्थ और कल्पना का समन्वय दृष्टिगत होता है। युग-जीवन की पृष्ठभूमि में साहित्य में स्वीकृत जीवन मूल्यों के समानांतर इन दोनों की मात्रा का अनुपात अवश्य घटता-बढ़ता रहता है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में आधुनिक युग के पूर्व लिखा गया अधिकांश साहित्य कल्पना प्रधान है, यद्यपि उसमें समकालीन जीवन के यथार्थपरक संकेत भी यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। आधुनिक युग में लिखा गया गद्य व पद्य साहित्य भी यथार्थ और कल्पना दोनों से ही युक्त है, परन्तु ज्यों-ज्यों साहित्य जीवन के निकटतर आता जा रहा है, उसमें यथार्थ का अनुपात बढ़ रहा है। यथार्थपरक साहित्य का सृजन कल्पना प्रधान साहित्य रचना की तुलना में अधिक साधना की अपेक्षा रखता है। परंतु सामान्यतः श्रेष्ठ साहित्य अतिरंजित रूप से यथार्थपरक अथवा कल्पना-परक नहीं हो सकता। इसीलिए अनेक विद्वानों ने उनके संतुलन और सामंजस्य पर गौरव दिया है। उदाहरण के लिए साहित्य में यथार्थ और कल्पना के संतुलन और सामंजस्य पर विचार करते हुए डा० रांगेयराघव ने लिखा है कि "साहित्य का सत्य कल्पना को बिल्कुल नहीं छोड़ देता, वह यथार्थ के अधार पर जितना ही दृढ़ होता है उतना ही गहराइयों तक पहुँचता है।" इसी प्रसंग में डा० विजयशंकर मल्ल ने यथार्थवाद की प्रतिष्ठा एक अभिनव विचारधारा के रूप में करते हुये लिखा है कि "यथार्थवादी साहित्य किसी पिटी-पिटायी सड़क पर चलकर अपनी नियामक शक्ति का जलवा नहीं दिखाना चाहता। वह बहुत ही स्थूल, एकदम एकांगी और असवेद्य होगा। उसके लिए बन्धन इतना ही लगाया जा सकता है कि वह सामाजिक हो और सामान्य अनुभूतियों के मेल मे यथार्थ का अंकन करे। यथार्थवाद के स्वरूप पर विचार करते हुए डा० त्रिभुवन सिंह ने बताया है कि यथार्थवाद का लक्ष्य वस्तु जगत् की स्थिति का प्रस्तुतीकरण करते हुए उसका परिष्कार करना है। उनकी धारणा है कि प्रायः प्रत्येक युग में महान् लेखकों ने अपने साहित्य में यथार्थवाद का समावेश इसी उद्देश्य से किया है।

यथार्थवाद की परवर्ती विचारधाराएँ—यथार्थवाद के उद्भव के सन्दर्भ में यह संकेत किया जा चुका है कि यह विचारधारा वाङ्मय की विभिन्न विधाओं में समान

रूप से निहित दृष्टिगत होती है। साहित्य के क्षेत्र में परवर्ती काल में इससे प्रभावित अन्य अनेक विचारधारायें मिलती हैं। इनमें से अनेक यथार्थवाद से प्रभावित हैं तथा अनेक ने यथार्थवाद को प्रभावित किया है। इनमें से अतियथार्थवाद के विषय में यह मान्यता है कि यह यथार्थवाद का ही अतिवादी रूप है और यथार्थवाद ने यदि साहित्य को एक नई दृष्टि दी है तो अतियथार्थवाद ने व्यावहारिक क्षेत्र में उसके आरोपण की सम्भावनायें उपस्थित की हैं। दादावाद भी यथार्थवाद का एक परवर्ती रूप है। इसका आरम्भ प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त एक प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। प्रकृतवाद भी यथार्थवाद से मौलिक समानता रखता है। साहित्य के क्षेत्र में इसकी परम्परा का आरम्भ योरोप में बीसवीं शताब्दी से माना जाता है। मार्क्सवाद मूल रूप से एक साहित्यिक विचारधारा नहीं है परन्तु यथार्थवाद के विकास तथा वर्तमान रूप-निर्धारण में उसका विशेष योगदान है। आदर्शवाद सामान्यतः यथार्थवाद की एक विरोधी विचार-धारा माना जाता है परन्तु उसका उद्भव और विकास यथार्थवाद के समानान्तर ही हुआ है। प्रगतिवाद यथार्थवाद की एक समानधर्मा विचारधारा है क्योंकि यह भी साहित्य में यथार्थता और प्रगतिशीलता पर बल देती है। इस प्रसंग में यहाँ अतियथार्थवाद, दादावाद, प्रकृतवाद, मार्क्सवाद, आदर्शवाद तथा प्रगतिवाद का संक्षिप्त परिचयात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

यथार्थवाद और अतियथार्थवाद—अतियथार्थवाद को यथार्थवाद की परवर्ती विचारधारा के रूप में मान्यता दी गई है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, साहित्य के क्षेत्र में यह मान्यता है कि यथार्थवाद ने यदि साहित्य को एक नई दृष्टि दी है तो अतियथार्थवाद ने व्यावहारिक क्षेत्र में उसके आरोपण की सम्भावनाएँ उपस्थित की हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अतियथार्थवाद का प्रादुर्भाव बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में फ्रांस में हुआ। इसकी पृष्ठभूमि में विगत शताब्दी की साहित्यिक परम्परा थी। उन्नीसवीं शताब्दी में कतिपय साहित्यकार ऐसे हो चुके थे जिन्होंने इसका प्रारम्भिक स्वरूप निदर्शन किया था। इस दृष्टिकोण से जिन साहित्यकारों ने इसके भावी विकास की सुपुष्ट आधारभूमि निर्धारित की उनमें चार्ल्स, बोदेलयर, हाव्रीमान, आर्थर रिम्बो तथा मेलार्मे आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अतियथार्थवाद का एक साहित्यिक आन्दोलन के रूप में आरम्भ प्रतिक्रियात्मक रूप में हुआ। इसके प्रारम्भिक संकेत प्रथम महायुद्ध के परवर्ती फ्रान्सीसी साहित्य में दृष्टिगत होते हैं। इसकी प्रतिक्रिया वस्तुतः मानसिक और सांकेतिक थी जिसने विद्रोहात्मक रूप धारण करके एक आन्दोलन की संज्ञा प्राप्त की थी। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् लगभग सन् १९२० से यथार्थवाद की चर्चा एक विशिष्ट

वाद के रूप में आरम्भ हुई। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अतियथार्थवाद का अर्थ उस सत्ता से समझा गया जो यथार्थ होते हुये भी दृष्टिगत न हो। इस अर्थ विशेष का परिवर्तन आन्द्रे ब्रेतन ने किया और उसे अनेक समकालीन विचारकों का सहयोग भी प्राप्त हुआ। उसने दो घोषणा-पत्र क्रमशः सन् १९२४ तथा १९३० में प्रकाशित किये, जिनमें इस विशिष्ट विचारधारा के उद्देश्यों और साहित्यिक विशेषताओं का स्पष्टीकरण किया गया था। सन् १९३० के पश्चात् से अतियथार्थवादी विचारान्दोलन फ्रान्सीसी साहित्य और कला में अभिव्यक्ति की दृष्टि से व्यापक होता गया और आगे चलकर इसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दी गई।

अतियथार्थवादी विचारधारा के अनुसार साहित्य अथवा कला को पूर्ण रूपेण बौद्धिक नहीं होना चाहिये क्योंकि यदि साहित्य अथवा कला पूर्णतः बौद्धिक हो जायगी तो उसमें मनुष्य की वैयक्तिक अनुभूतियों के अन्तर्विरोध का चित्रण न हो सकेगा। इसके साथ ही अतियथार्थवादी विचारकों ने नीति विषयक कतिपय मान्यताएँ भी प्रस्तुत की हैं। इस विचारधारा के पोषकों का यह मत है कि आधुनिक सभ्य, शिक्षित और संस्कृत समाज में जो नैतिक दृष्टिकोण आदर्श समझा जाता है वह वस्तुतः अर्थहीन है। अपनी इसी मान्यता के कारण अतियथार्थवादी विचारक आधुनिक नीति विषयक मान्यताओं का विरोध करते हैं। यहाँ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना अप्रासंगिक न होगा कि अतियथार्थवादियों द्वारा आधुनिक नैतिक मान्यताओं के विरोध के कारण ही इसके विरोधी चिन्तक अतियथार्थवादियों के प्रति यह आक्षेप करते हैं कि वे चूंकि कोई नैतिक बन्धन नहीं स्वीकार करना चाहते इसलिये वे स्वच्छंदतावाद के समर्थक हैं। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि इस मत का समर्थन उन समीक्षकों ने भी किया है जो अतियथार्थवाद को किसी नवीन विचारधारा के रूप में मान्यता नहीं देते वरन् उसे उन्नीसवीं शताब्दी के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का ही बीसवीं शताब्दी में परिवर्तित और विकसित रूप मानते हैं। अतियथार्थवादी आन्दोलन के आरम्भ और विकास का अध्ययन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि यद्यपि फ्रान्स में आरम्भ होने के पश्चात् इस आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हुई, परन्तु इसका केन्द्र फिर भी फ्रांस ही बना रहा। फ्रांस के अतिरिक्त इंग्लैण्ड, जर्मनी, स्पेन और अमेरिका में इसे विशेष समर्थन प्राप्त हुआ। एक प्रमुख साहित्यिक आन्दोलन के रूप में अतियथार्थवाद का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया जाता है। इसका आशय वास्तव में उस सत्ता से समझा जाता है जो दृष्टि यथार्थता से परे हो।

अतियथार्थवाद के पोषकों और व्याख्याताओं में हर्बर्ट रीड का उल्लेखनीय स्थान है। उसने इस आन्दोलन को संगठनात्मक दृष्टि से प्रभावशाली बनाया और वैचारिक समग्रता प्रदान की। उसने इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया कि अतियथार्थवादी आन्दोलन के प्रचार व प्रसार की पृष्ठभूमि में एक विशेष उद्देश्य है

और एक ऐसे विचारक का इस आन्दोलन से कोई विरोध नहीं हो सकता जो इस उद्देश्य को समझता है। इसके विपरीत जो इस उद्देश्य को नहीं समझते वे सामान्य और हल्की पत्रकारिता के प्रचारात्मक स्तर पर ही इसका विरोध करते हैं, यद्यपि उनके पास इस आन्दोलन का विरोध करने का कोई सैद्धान्तिक कारण नहीं है। यथार्थवाद, अतियथार्थवाद और स्वच्छंदतावाद की विस्तृत व्याख्या करते हुए हरबर्ट रीड ने इनका पारस्परिक अन्तर भी स्पष्ट किया है। उसने बताया है कि स्वच्छंदतावाद स्वभावतः अतियथार्थवाद की ओर अग्रसर होता है। यहाँ पर इस तथ्य की ओर भी संकेत किया जा सकता है कि अन्य अनेक विचारकों ने अतियथार्थवाद को स्वच्छंदतावाद का विकसित रूप बताया है, यद्यपि इन दोनों की विशेषताएँ समान हैं। संक्षेप में अतियथार्थवाद और स्वच्छंदतावाद दोनों ही समता के स्थान पर विषमता को प्रश्रय देते हैं। इसके साथ ही यह दोनों विचारधाराएँ बौद्धिकता के प्रति अविश्वास रखती हैं और इन दोनों में ही मध्यवर्ग में चौंका देने की प्रवृत्ति विद्यमान है परन्तु इसके साथ ही यहाँ पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अतियथार्थवाद किसी अर्थ में स्वच्छन्दतावाद का प्रतिनिधित्व करता है तो यह उस स्वच्छन्दतावादी आत्मा का प्रतिनिधि है जिसका जन्म प्रथम महायुद्ध के उपरान्त मूल्यों के विघटन पर हुआ था। और यह वह समय था जबकि विश्व युद्ध के पश्चात् आपेक्षित विज्ञानों द्वारा घोषित बुद्धिवाद के प्रति अनास्था और अविश्वासयुक्त विद्रोह ने जन्म लिया था।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, अतियथार्थवाद तार्किकता और बौद्धिकता के विरुद्ध है। परन्तु इस कथन का यह आशय नहीं है कि वह भावुकता का समर्थन करता है। वास्तव में वह मूल रूप से मनोविज्ञान से सम्बन्धित है। इस दृष्टि से अतियथार्थवाद के आधार रूप में लगभग वे ही भावनाएँ और सिद्धान्त कार्यशील हैं जो फ्रायड, एडलर, युन्ग, गेस्टाल्ट तथा वाटसन आदि ने अपने मनोविश्लेषण शास्त्र में विवेचित किए हैं और जिनका सम्बन्ध चेतन-अवचेतन, असंगति और असंतुलन आदि से है। इस दृष्टि से अतियथार्थवाद थोथे आदर्शों का विरोध करता है और रूढ़िवादी परम्पराओं का खंडन। डा० सुरेश सिन्हा ने अतियथार्थवाद को अवचेतन से सम्बन्धित बताया है। उनके विचार से "अतियथार्थवाद ने असंतुलन एवं असंगति के ऐसे वीभत्स एवं घृणास्पद चित्र उपस्थित किए कि मानव मात्र विकृतियों का पुतला बन गया। फलस्वरूप अतियथार्थवादी स्कूल पर अनेक दोषारोपण किये जाने लगे और उनके उत्तर भी दिये गए। पर सब से भीषण आरोप यह किया गया कि अतियथार्थवाद हिंसा और न्युरोमांटिक प्रवृत्तियों को प्रश्रय देता है। वह वर्तमान नैतिकता को तिरस्कृत करता है, क्योंकि उसके विचार से वह रूढ़ और आडम्बरयुक्त है। वह प्रेम और स्वतंत्रता पर आधारित नैतिकता को प्रमुखता प्रदान करता है।" इसी प्रसंग में आगे चलकर डा० सुरेश सिन्हा ने अतियथार्थवाद की मनोवैज्ञानिकता का विश्लेषण करते हुये लिखा है कि "अतियथार्थवाद किसी भावुक

मानवतावाद से सम्बन्धित नहीं है। वह अत्यन्त कठोर ढंग से नियन्त्रित मनोवैज्ञानिक है। और यदि वह 'प्रेम' और 'सहानुभूति' जैसे शब्दों का प्रयोग करता है, तो इसीलिए कि व्यक्ति के आर्थिक एवं वासनात्मक जीवन को उसके विश्लेषण ने उसे इन शब्दों के शालीनतापूर्वक प्रयोग करने का अधिकार दिया है और इस प्रयोग में किंचित् मात्र भी भावुकता का स्थान नहीं होता। अतियथार्थवाद जो ज्ञान की एक प्रणाली है, फलस्वरूप विजय और सुरक्षा की भी प्रणाली है, मनुष्य की चेतनशीलता का रहस्योद्घाटन करता है। अतियथार्थवाद यह स्वीकार करता है कि सभी व्यक्तियों में विचारों की समानता होती है और वह मनुष्य मनुष्य के मध्य व्यवधान को समाप्त करने का प्रयत्न करता है। भेदभाव या कायरता की किसी सीमा को वह नहीं मानता कि उसका विचार है मनुष्य अपने आप का अन्वेषण करे, अपने स्वत्व को पहचाने और तभी वह उन सभी निधियों को प्राप्त कर सकने की क्षमता प्राप्त कर सकेगा, जिससे उसे वंचित कर दिया गया है और जिसका संचय वह प्रत्येक काल में करता है। अतियथार्थवाद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पूर्ण बल देता है और उसे और भी व्यापक बनाने का प्रयत्न करता है। वह मानता है कि मानव और उसकी कार्य-प्रक्रिया अलग नहीं किये जा सकते। वह मनुष्य की स्वतंत्रता में विश्वास रखता है और अपने पूर्ण सामर्थ्य से इस उद्देश्य प्राप्ति का प्रयत्न करता है। वह इस प्रक्रिया में पराजयवाद, गुमराह करने वाली प्रवृत्ति और शोषण का विरोध करता है।"[1]

अतियथार्थवादी साहित्य में विशेष रूप से मानव मन की अचेतन सत्ता की अभिव्यक्ति की जाती है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, फ्रायड तथा अन्य मनोविश्लेषणशास्त्रियों ने मानव मन की जो व्याख्या की है वह अतियथार्थवादियों के लिए साहित्य में आरोपण का विषय बनी। अन्तर केवल इतना ही है कि आदर्श-वादी लेखकों के विपरीत अतियथार्थवादी लेखक अवचेतन मन की सत्ता की निरूपक विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण अवांछनीय नहीं समझता, भले ही उस पर अनैतिकता आदि से सम्बन्धित आरोप किये जायँ। डॉ० त्रिभुवन सिंह के विचार से "अतियथार्थ-वादी साहित्यकार गोपनीय एवं मन के गहन प्रदेशों का यथातथ्य चित्रण अनावृत रूप में पाठकों के सामने उपस्थित करने का प्रयत्न करता है, जिससे उसकी जिज्ञासायें शान्त हो जायँ और वह नारी को केवल विलास एवं आकर्षण की ही वस्तु न समझे।....मनुष्यों के अतिरिक्त आज भी अनेक जीवधारी हैं जिनके अन्दर परस्पर कोई दुराव-छिपाव नहीं है, उन्हें जब भूख लगी भोजन कर लिया और भोग की इच्छा हुई तो अपनी वासना की तृप्ति कर ली। इसके लिए उन्हें उलझने तथा मानसिक संसार में एक संघर्ष उपस्थित कर लेने की कोई भी आवश्यकता नहीं होती है। अतियथार्थवादी मनुष्य की ऐसी ही स्थिति का समर्थक है। अतियथार्थवादी और

१. 'नई कहानी की मूल संवेदना', डा० सुरेश सिन्हा, सन् १९६६, पृ० १८२।

मनोविश्लेषणात्मक यथार्थ के सिद्धान्तों का किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर भेद करना कठिन हो जाता है। मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद के अन्दर मनुष्य के स्वाभाविक अवगुणों को चित्रित करके उनसे घृणा उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है, परन्तु अतियथार्थवाद के अन्दर गोपनीय एवं रहस्यपूर्ण स्थलों को चित्र द्वारा सामने लाकर मानव की जिज्ञासाओं को निर्मूल रहने का प्रयत्न किया जाता है।"[1] इस प्रकार के मंतव्यों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि यथार्थवाद की मूल भावना ही अतियथार्थवादी विचारधारा की पृष्ठभूमि में विद्यमान रही है।

यथार्थवाद तथा दादावाद—यथार्थवाद के पाश्चात्य साहित्य में उद्भव और विकास के सन्दर्भ में जिन परवर्ती आन्दोलनों ने जन्म लिया उनमें दादावाद का नाम भी उल्लेखनीय है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है कि यथार्थवाद का जन्म एक सहज तार्किक प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। आगे चलकर अतियथार्थवाद तथा दादावाद के रूप में उसकी नवीन परिणति दृष्टिगत हुई। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् दादावाद अथवा दादाइज्म का भी उद्भव हुआ। कहा जाता है कि प्रथम विश्वयुद्ध के प्रताड़ित लोगों ने अपनी एक सभा में युद्धशील शक्तियों के प्रति घृणा व्यक्त करने की भावना से शब्दकोश में से अनायास ही 'दादा' शब्द ढूँढ़ा और तब नाटकीय रूप में इस आन्दोलन का नाम 'दादावाद' रख दिया गया। इस आन्दोलन के पोषकों ने जिस उद्देश्य को सामने रखा, वह समकालीन समस्त मूल्यों, मानों और बुद्धिशीलता का विनाश करना था। और इसके उपरान्त इसके स्थान पर एक ऐसी प्रणाली की स्थापना करना था जो तर्क से परे थी। इनकी इस भावना की पृष्ठभूमि में यह धारणा थी कि तर्कपूर्ण विचारशीलता के आडम्बर ने साहित्य को केवल कुछ घिसे-पिटे वाक्यों के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिया है। डा० प्रतापनारायण टंडन के शब्दों में "उनका विचार था कि भावनाओं की तर्क युक्त स्वच्छंद अभिव्यक्ति भाषा का संस्कार करेगी तथा कविता का पुनरुत्थान करेगी। इनके कार्यों व विचारों में किसी प्रकार की रुचि या अन्य वर्जनाओं का अभाव था। इनकी सभाओं में वक्ता लोहे के टोप लगाकर सम्मिलित होते थे तथा जो कुछ भी कहना चाहते थे किसी भी सीमा को न मानते हुए कहते थे। लेकिन उनके लिए वे सभी प्रकार के कार्य श्लाघ्य थे, जिनमें किसी भी सुरुचि का अभाव हो। इसका कारण यह था कि समस्त प्रकार की सुरुचि तथा बुद्धिशीलता पर से उनका विश्वास हट गया था। उन्होंने यह देखा था कि सारी सभ्यता अपनी संपूर्ण सुरुचिपूर्ण बौद्धिकता के होते हुए भी महायुद्ध के भीषण हत्याकांड को न रोक सकी। इस कारण उन्होंने उस आडम्बर को उखाड़ फेंका, जिस पर उनकी आस्था समाप्त हो चुकी थी। इस प्रकार के वातावरण में बहुत-से

---

[1] 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' डा० त्रिभुवन सिंह, सं० २०१२ वि०, पृ० १६२-१६३।

अतियथार्थवादी अग्रदूतों ने कला, सुरुचि तथा मूल्यों के प्रति घृणा का प्रथम पाठ पढ़ा तथा उत्कट व सर्वव्यापी घृणा से नवीन मूल्यों की स्थापना के लिए अपने अन्तर में असंतोष उत्पन्न किया। कुछ समय पश्चात् ट्रिस्टन टजरा नामक एक रूमानियन के नेतृत्व में 'दादाइज्म' का केन्द्र पेरिस हो गया, परन्तु उनके असंयत उद्गार अधिक आदर न प्राप्त कर सके तथा यह तीव्रतम आन्दोलन अतियथार्थवाद के सौम्यतर आन्दोलन में परिवर्तित हो गया।[1] इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि 'दादावाद' यथार्थवाद की परवर्ती विचारधाराओं में व्यापक मान्यता न प्राप्त कर सका, क्योंकि इसमें तात्कालिक प्रतिक्रियात्मकता की भावना और सामयिक आक्रोश अधिक था और साहित्यिक आन्दोलन की प्रवृत्ति का अभाव था।

**यथार्थवाद और प्रकृतवाद**—यथार्थवाद की परवर्ती विचारधाराओं में प्रकृतवाद का नाम भी उल्लेखनीय है। यथार्थवाद और प्रकृतवाद में मौलिक रूप में कोई अन्तर नहीं है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, पाश्चात्य साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद का एक रूप अतियथार्थवादी विचारधारा के नाम से विकसित हुआ। इसी के साथ ही प्रकृतवाद का भी विकास सम्बद्ध है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रकृतवाद का पोषक विश्व प्रसिद्ध फ्रांसीसी उपन्यासकार एमाइल जोला माना जाता है, जिसने उन्नीसवीं शताब्दी में ही इस शब्द का प्रयोग किया था। उसके परवर्ती काल में भी यह विचारधारा किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रही है और इसे विश्व के अनेक प्रमुख लेखकों का सहयोग प्राप्त हुआ है। बीसवीं शताब्दी में प्रकृतवाद की परम्परा वर्तमान समय तक प्रशस्त मिलती है और ज्यांपाल सार्त्र जैसे लेखकों की कृतियों में भी इसके तत्व दृष्टिगत होते हैं। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से प्रकृतवाद का शाब्दिक अर्थ प्रकृति सम्बन्धी काव्य अथवा साहित्य है। इस विचारान्दोलन का विकास मूल रूप से फ्रांस में साहित्य और कला के क्षेत्र में हुआ था। यह विचारधारा भौतिकवाद पर अधिक बल देती है और इसमें आध्यात्मिकता के लिये जरा भी स्थान नहीं है। बहुत-से विद्वानों का यह भी अनुमान है कि प्रकृतवाद फ्रांसीसी यथार्थवाद का ही विकसित रूप है।[2] इस विचारधारा पर मुख्य आक्षेप यह लगाया जाता है कि इसमें यौन चित्रणों की अधिकता है और इसी कारण किसी सीमा तक अश्लीलता का समावेश हो जाता है। इस दृष्टिकोण से यह विचारधारा आदर्शवाद जैसी विचार-धाराओं से भिन्न है।

---

१. 'पाश्चात्य समीक्षा की रूपरेखा', डा० प्रतापनारायण टण्डन, सन् १९६९, पृ० २२८-२९।

२. द्रष्टव्य : 'हिन्दी साहित्य कोष', भाग १, प्रधान संपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, सं० २०१५, पृ० ४६६।

साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद और प्रकृतवाद दोनों को पर्याप्त सीमा तक एक दूसरे का पर्यायवाची स्वीकार किया जाता है। यथार्थवाद साहित्य में यथार्थ चित्रण पर बल देता है जबकि प्रकृतवाद विशुद्ध भौतिकता का समर्थक है। इसीलिए कभी-कभी यह कहा जाता है कि यथार्थवाद का विकृत रूप ही प्रकृतवाद है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की धारणा है कि प्रकृतवाद मूलभूत रूप से इस मान्यता का समर्थन करता है कि "मनुष्य प्रकृति का उसी प्रकार विकसित जन्तु है, जिस प्रकार संसार के अन्य प्राणी। उसमें पशु-सुलभ सभी आकर्षण-विकर्षण ज्यों-के-त्यों वर्तमान हैं। प्रकृतिवादी लेखक मनुष्यों को काम-क्रोध आदि मनोरोगों का गट्ठर मात्र समझता है और उसके अर्थहीन आचरणों, कामासक्त चेष्टाओं, अहंकार से उत्पन्न धार्मिक वृत्तियों का विशेष भाव से उल्लेख करता है।[1] जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, प्रकृतवाद आदर्शवाद की विरोधी और यथार्थवाद की परवर्ती विकसित विचारधारा है। कुछ विचारक इसे यथार्थवाद का विकृत रूप भी कहते हैं। डा० त्रिभुवन सिंह ने यह बताया है कि प्रकृतवाद साहित्य में जीवन को उसके वास्तविक रूप में चित्रित करता है और साहित्य के लिए किसी भी विषय को गोपनीय नहीं समझता। उन्होंने उसके स्वरूप की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "जब आदर्शवाद कल्पना के नाम पर काव्य को इस लोक से बहुत दूर खींच ले गया तो यही प्रवृत्ति भौतिक विज्ञान का बल लेकर योरोपीय साहित्य में 'प्रकृतवाद' के नाम से प्रकट हुई। यह वाद कार्यतः किसी प्रकार के साहित्यिक अलंकारों का अथवा वस्तुओं या भावों में किसी प्रकार के आदर्शीकरण का विरोधी है और इस बात का समर्थक है कि मनुष्य सभी बातों में पशु के समान है, विशेषकर रति के सम्बन्ध में यह अत्यन्त निम्न और पतित श्रेणी के लोगों के जीवन को अपना सर्वोत्तम विषय समझता है। इसे हम यथार्थवाद की पराकाष्ठा कह सकते हैं।[2]

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में यद्यपि पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', इलाचन्द्र जोशी, नागार्जुन, यशपाल, चतुरसेन शास्त्री तथा 'अज्ञेय' आदि की कृतियों में प्रकृतिवादी तत्वों के समावेश की चर्चा की जाती है परन्तु प्रकृतवाद के नाम पर कुत्सित प्रवृत्तियों के चित्रण का विरोध प्रायः सभी आलोचकों ने किया है। जयशंकर 'प्रसाद' ने प्रकृतवाद में अतिशय यथार्थ का समर्थन नहीं किया है। उन्होंने बताया है कि "प्रकृतवाद के भीतर स्त्रियों के सम्बन्ध में नारीत्व की दृष्टि ही प्रमुख होकर मातृत्व से उत्पन्न हुए सब सम्बन्धों को तुच्छ कर देती है। वर्तमान युग की ऐसी प्रवृत्ति है। जब मानसिक विश्लेषण के इस नग्न रूप में मनुष्यता पहुँच जाती है तो उन्हीं

---

१. 'हिन्दी साहित्य' डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २६।

२. 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद', डा० त्रिभुवन सिंह, सं० २०१२, पृ० १८२।

सामाजिक बन्धनों की बाधा घातक समझ पड़ती है और इन बन्धनों को कृत्रिम और अवास्तविक माना जाने लगता है।"[1] यथार्थवाद के नाम पर विकसित हुई एक नवीन शैली के रूप में प्रकृतवाद को मान्यता देते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है कि उसमें "क्रमशः जीवन के स्वस्थ उपकरणों का अभाव दिखलाई पड़ने लगा। सत्य और यथार्थ के नाम पर जो रचनाएँ प्रस्तुत की गयीं उनमें प्रायः विकृत और असंतुलित चरित्रों की जीवनगाथा रहा करती थी।"[2] डॉ० श्रीकृष्ण लाल भी प्रकृतिवादियों की साहित्यिक उपलब्धियों को संदिग्ध माना है। उन्होंने लिखा है कि "चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इन प्रकृतिवादियों ने न तो प्रकार विशेष 'टाइप्स' ही दिये और न आदर्श चरित्रों की अवतारणा की, वरन् इसके विपरीत ऐसे चरित्रों की सृष्टि की जो पुकार-पुकार कर कहते हैं कि मनुष्य और पशु में कोई विशेष अन्तर नहीं, विशेषकर विषय भोग की दृष्टि से ये पशुओं से भी निकृष्ट और नीच हैं।"[3]

साहित्य में प्रकृतिवादी तत्वों के समावेश का सुधारवादी दृष्टिकोण से अनेक विचारकों ने समर्थन किया है। डॉ० रत्नाकर पांडेय ने यह बताया है कि आधुनिक महानगरियों में जो सभ्यता विकसित हो रही है वह इतनी कृत्रिम, मिथ्याचारी और दम्भी है कि उसमें जब तक कटु यथार्थ का नग्न स्वरूप साहित्य में नहीं प्रस्तुत किया जायगा तब तक उनसे समाज को मुक्ति नहीं मिलेगी। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रकृतवाद को सामान्य रूप से यथार्थवाद का ही विकृत रूप माना जाता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, यह वाद भी अन्य आधुनिक वादों की भाँति पाश्चात्य प्रभावस्वरूप हिन्दी में आया। योरोप में प्रकृतवादी साहित्य के अन्तर्गत मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों को अनावृत रूप में ही प्रस्तुत करने पर बल देता है और उसके इसी दृष्टिकोण के कारण प्रकृतवाद के विरोधी लज्जाहीनता, नग्नता और अनैतिकता का आक्षेप इस पर लगाते हैं। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से प्रकृतवाद आदर्श, नीति और संस्कृति आदि के रूढ़ सिद्धान्तों को निरर्थक बताता है। वह किसी धर्म की परम्परा पर विश्वास नहीं रखता क्योंकि वह मानव-स्वभाव को उसके आदिम रूप में मान्यता देता है। डॉ० सुरेश सिन्हा ने प्रकृतवाद के आविर्भाव और विकास पर विचार करते हुए इसके पोषकों के मत स्पष्ट किये हैं। उनकी धारणा है कि "ऐतिहासिक रूप से प्रकृतवाद यथार्थवाद की ही एक विकसित शैली है और उसके उचित एवं क्रमागत रूप में ही स्वीकार किया जाता है। इसकी व्याख्या जोला ने १८८० और १८८१ के मध्य प्रकाशित अपने अनेक लेखों में की। जोला का विचार था कि "मानव सत्य से बढ़ कर कुछ और नहीं है।" इसी प्रसंग में आगे

---

१. 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध', श्री जयशंकर 'प्रसाद', पृ० १२२।
२. 'आधुनिक साहित्य', आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पृ० १८४।
३. 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास', डा० श्रीकृष्ण लाल, पृ० ३१५-१६।

चलकर डॉ० सुरेश सिन्हा ने यह संकेत किया है कि प्रकृतवाद में मानवीय व्यवहार सामाजिक वातावरण के कार्य रूप में समझे जाते हैं। इस दृष्टि से समाज में मनुष्य का अस्तित्व लगभग उसी प्रकार है जैसा प्रकृति में पशुओं का होता है। उनके विचार से "प्रकृतवाद, इस प्रकार, यथार्थवाद का अत्यन्त विकृत रूप है। वह दार्शनिक प्रकृतवाद के समान स्तर पर है। यद्यपि प्रकृतिवाद का समाज के उच्च-से-उच्च स्तर पर भी किसी भी समस्या के सन्दर्भ में उपयोग किया जा सकता है, पर वह प्रमुख रूप से कुंठित वासना, नग्नता, निर्धनता, निराशा, बीमारियों और गन्दगियों से सम्बन्धित है और उन्हीं का चित्रण करता है।"[1] इस प्रकार की धारणाओं का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृतवाद यथार्थवाद का परवर्ती रूप है और उसमें अतिवादिता की प्रवृत्ति विद्यमान है।

**यथार्थवाद और मार्क्सवाद**—यथार्थवाद और मार्क्सवाद के विषय में पीछे यह संकेत किया जा चुका है कि इनमें दृष्टिकोणगत साम्य विद्यमान है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से मार्क्सवाद एक दार्शनिक विचारधारा है जिसका सम्बन्ध सामाजिक जीवन से है। इसी कारण इसे व्यावहारिक और कर्ममूलक दर्शन की संज्ञा दी जाती है। इस दृष्टि से मार्क्सवाद का उद्देश्य केवल तात्विक विश्लेषण करना ही नहीं है वरन् समाज को परिवर्तित करके उसे आदर्श स्वरूप प्रदान करने की दिशा में प्रयत्नशील होना भी है। मार्क्सवाद साहित्य को इस दिशा में एक महत्वपूर्ण माध्यम मानता है। वह साहित्य के यथार्थपरक होने पर बल देता है। स्वयं कार्ल मार्क्स ने भी अपनी विचारधारा में इस मंतव्य का प्रतिपादन किया है कि वास्तव में किसी विचार अथवा भावधारा की कोई परम्परा या इतिहास नहीं होता है, केवल समाजों का ही इतिहास होता है। इसीलिए कार्ल मार्क्स अपने विचार-दर्शन में मनुष्य के सामाजिक विकास और सामाजिक क्रान्ति की व्याख्या प्रस्तुत करता है। समाज के विकास की प्रक्रिया के विश्लेषण के सन्दर्भ में कार्ल मार्क्स ने ऐतिहासिक वस्तुवाद की पद्धति का प्रवर्तन किया है। उसके इस सिद्धान्त का स्पष्टी-करण करते हुए फ्रेडरिख ऐंगेल्स ने बताया है कि इसके पद्धति के माध्यम से कार्ल मार्क्स समाज के आर्थिक विकास का विवेचन करते हुए उत्पादन विनिमय पद्धति वर्ग विभाजन और वर्ग संघर्ष के कार्यों और परिणामों का निदर्शन करता है। कार्ल मार्क्स के विचार से सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में कुछ निश्चित और अनिवार्य सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं, जिनका अस्तित्व उत्पादकों की इच्छा पर निर्भर नहीं होता, परन्तु वे उत्पादन शक्ति के अनुरूप होते हैं। अतएव समाज का अर्थशास्त्रीय ढाँचा इन उत्पादन सम्बन्धों की सामूहिक समग्रता पर निर्भर होता है। यह उसकी यथार्थ नींव होती है और सामाजिक चेतना के विशिष्ट रूप भी इसी के अनुगत

१. 'नई कहानी की मूल संवेदना', डा० सुरेश सिन्हा, सन् १९६६, पृ० १८५।

होते हैं। व्यापक अर्थों में मनुष्य के भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति के द्वारा ही उसकी सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक क्रियाएँ निर्धारित होती हैं। इसी प्रसंग में कार्ल मार्क्स यह भी बताता है कि मानवीय सत्ता का निर्धारण मानवीय चेतना से नहीं होता वरन् उसकी सामाजिक सत्ता ही उसकी चेतना का निर्देश करती है। और समाज में क्रान्ति का युग तब आरम्भ होता है जब उत्पादन शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों में विपर्यय हो जाता है। वह सामाजिक संगठन को मानव समाज के प्रागैतिहासिक स्तर का अन्तिम अध्याय मानता है।

मार्क्सवादी विचारधारा में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अन्तर्गत उत्पादन और विनिमय की व्यवस्था को समाज का आधार माना गया है। उत्पादन शक्ति के विकास के समानान्तर समाज में वर्ग विभेद का आविर्भाव हुआ है। इसके अतिरिक्त समाज में श्रम विभाजन के कारण सामाजिक वर्ग भेद आवश्यक हो जाता है जिसे कार्ल मार्क्स अर्थव्यवस्था का परिणाम मानता है। ऐतिहासिक युगों में दासों और मालिकों अथवा शोषितों और शोषकों के रूप में जो वर्ग दृष्टिगत होते थे वे इसी कारण होते थे। कार्ल मार्क्स के अनुसार वर्ग -विभाजन में श्रम विभाजन का नियम कार्यशील रहता है। श्रम शक्ति के विविधात्मक विकास का दीर्घकालिक परिणाम यह हुआ कि विकसित समाज में दास और स्वतन्त्र वाली प्रथा समाप्त हो गयी वरन् शोषित व शोषक वर्गों का उद्भव हुआ। इसीलिए मार्क्सवाद पूँजीवादी अभिशापों से मुक्ति के लिये इस बात पर बल देता है कि उत्पादन पद्धति के उपायों पर व्यक्तिगत अधिकार न होकर उन्हें सामाजिक सम्पत्ति के रूप में परिणित कर दिया जाय और इसी प्रकार से विनिमय को भी व्यक्तिगत पूँजीवृद्धि का स्रोत न बना कर सामाजिक हितों में लगाना चाहिए।

मार्क्सवाद के अन्तर्गत वर्ग संघर्ष का मूल कारण उत्पादन और विनिमय सम्बन्धी वैषम्य को ही माना गया है। आज समाज में शोषक वर्ग शक्तिशाली और शोषित वर्ग दुर्बल है। इसीलिए शोषित वर्ग शोषकों के विरुद्ध आन्दोलन न करके अभावों में रहने को बाध्य है। यदि शोषक वर्ग शोषण के कारणों के विषय में सचेत हो जाय तब वह संघर्ष के लिये कटिबद्ध हो सकता है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण से यह संघर्ष मूलतः शोषण के विरुद्ध है और जब तक किसी भी रूप में शोषण विद्यमान है तब तक जारी रहता है। श्री महेन्द्रचन्द्र राय के विचार से "यह वैप्लविक आदर्श ही मार्क्सवाद का मौलिक आदर्श है। किन्तु मार्क्सवाद केवल चरम आदर्श के प्रचार से ही सन्तुष्ट नहीं रहता, सामाजिक विकास की अन्तर्निहित प्रेरणा के अन्दर ही इस आदर्श की वास्तविक सम्भावना विद्यमान है, मार्क्सीय विचार विश्लेषण इसी बात का विचार करता है। इसीलिए मार्क्सवाद एक विशिष्ट कर्म पद्धति भी है। प्राकृतिक शक्ति जिस प्रकार स्वतः सुसंगठित विज्ञान में परिणत नहीं हुई, उसी

प्रकार सामाजिक अर्थनीतिक शक्तियाँ भी स्वतः विकसित होकर मानव-समाज को श्रेणीहीन समाज की ओर नहीं ले जातीं। 'मनुष्य ही इतिहास का निर्माता है' इसे कभी भूला नहीं जा सकता।"[1] मार्क्सवादी विचार-दर्शन में पूँजीवाद को समाज के लिये एक अभिशाप माना गया है। इसीलिए वह शोषित वर्गों की ओर से शोषकों के विरुद्ध संघर्ष की जो भूमिका प्रस्तुत करता है उसका उद्देश्य पूँजीवाद का विनाश है। यहाँ पर यह संकेत करना अनावश्यक न होगा कि यह संघर्ष अन्ततः श्रेणीहीन समाज के संगठन की दिशा में एक प्रयास है। आज संसार विभिन्न वर्गों, जातियों और राष्ट्रों के पारस्परिक संघर्ष के जिस दौर से गुजर रहा है उसको दृष्टि में रखते हुए वर्गहीन समाज एक वास्तविक सम्भावना प्रतीत होने लगा है। इसी प्रसंग में कार्ल मार्क्स यह संकेत करता है कि मानव-समाज में शोषित वर्गों के उचित नेतृत्व के लिए एक ऐसा दल आवश्यक रूप में होना चाहिए जो सक्रिय क्रान्ति की रूपरेखा का निर्देशन करने में सफल हो।

मार्क्सवाद के अनुसार किसी लेखक का मानसिक जगत् उसके सामाजिक जीवन का ही फल होता है और वही साहित्य में भाव अनुभूतियों के रूप में वर्ण, छन्द और भाषा के माध्यम से अभिव्यंजित होता है। इस दृष्टिकोण से एक साहित्यकार अपने मानसिक जगत् को ही भाषाबद्ध करता है जो उस मानव-समाज का प्रतिबिम्ब होता है और जो मूलतः उसके मस्तिष्क में पूर्व रूप में विद्यमान रहता है। ऐसी स्थिति में एक साहित्यकार के सामने जो समस्या आती है वह विषय-वस्तु की न होकर अभिव्यक्ति की समस्या होती है। विभिन्न भाषाओं के साहित्यशास्त्रियों ने साहित्य की इसी समस्या को ध्यान में रखकर विभिन्न सिद्धान्तों का नियमन किया है। उन्होंने रसानुभूति के रूप में साहित्य रचना और उसकी प्रक्रिया का निदर्शन किया है। इस दृष्टि-कोण से काव्यशास्त्र के अन्तर्गत साहित्य का सामाजिक उद्देश्य भी महत्व रखता है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण से सर्वहारा साहित्य किसी विशिष्ट उच्च वर्ग की आभिजात्य भाषा में न होकर जन भाषा में लिखा जाना चाहिए क्योंकि जन भाषा में लिखा जाने पर ही वह वर्ण्य-विषय सम्बन्धित संकीर्णताओं से मुक्ति पा सकेगा और जन स्तर पर ही समाज का विशद रूप में चित्रण कर सकेगा। इस सम्बन्ध में यह तथ्य भी ध्यान में रखने योग्य है कि सामान्य रूप से आधुनिक शिक्षा व्ययसाध्य होने के कारण केवल उच्च और मध्य वर्गों को ही सुलभ है। इसलिए देश का निम्न वर्ग इन शिक्षित साहित्यकारों द्वारा रचित साहित्य से अपने जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं स्थापित कर पाता और साहित्य बराबर जन-जीवन से अपनी दूरी बनाए रखता है। मार्क्सवाद साहित्य सम्बन्धी इस धारणा का विरोध करता है कि साहित्य जन साहित्य न होकर वर्ग विशेष का साहित्य होना चाहिए। इसीलिए

---

१. 'मार्क्सवाद और साहित्य', श्री महेन्द्रचन्द्र राय, सन् १९५७, पृ० ४८।

साहित्य को समकालीन सरल भाषा में लिखा जाना चाहिए और शिक्षा को सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाना चाहिए क्योंकि साहित्य जन साहित्य होकर ही व्यापक क्षेत्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार से यथार्थवाद और मार्क्सवाद में दृष्टिकोणगत पर्याप्त साम्य लक्षित होता है।

**यथार्थवाद और आदर्शवाद**—यथार्थवाद और आदर्शवाद सामान्य रूप से दो परस्पर विरोधी विचारधाराएँ मानी जाती हैं। साहित्य में भी यथार्थवाद को आदर्श-वाद का विरोधी कहा जाता है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। यथार्थवाद की भाँति ही आदर्शवाद भी एक बहुत प्राचीन विचारधारा है। इसे 'विचारवाद' नाम भी दिया जाता है क्योंकि इसका सम्बन्ध 'आइडिया' या 'विचार' से है। यथार्थवाद की भाँति ही आदर्शवाद का समावेश भी साहित्य-रचना के सभी क्षेत्रों में होता है। प्राथमिक रूप से यथार्थवाद और आदर्शवाद मे यह अन्तर है कि यथार्थ चित्रण में बहुधा आदर्श का अभाव भी हो सकता है जब कि आदर्श प्रत्येक परिस्थिति में आदर्श रहता है। इसी-लिए यथार्थवाद का सम्बन्ध भौतिकता से और आदर्शवाद का आध्यात्मिकता से माना जा सकता है। मानव-जीवन को उदात्तशील बनाने वाली यह विचारधारा मूल रूप से अंतर्मुखी मानी जाती है। इस दृष्टिकोण से आदर्शवाद के अन्तर्गत उसी साहित्य को रखा जाना चाहिए जो अन्तर्मुखी वृत्ति और आध्यात्मिक मूल्यों को शाश्वत रूप में प्रस्तुत कर सके। व्यावहारिक दृष्टिकोण से आदर्शवाद साहित्य में उस यथार्थ के चित्रण का विरोधी होता है, जो आदर्श नहीं होता और उसके चित्रण से पाठक को किसी आदर्श की प्रेरणा नहीं मिलती।

यथार्थवाद की ही भाँति आदर्शवाद भी एक व्यापक क्षेत्रीय विचारधारा है। इसका प्रसार साहित्य की समस्त विधाओं के क्षेत्र में तो है ही, विभिन्न शास्त्रों और विज्ञानों में भी इसकी निहिति मिलती है। डा० प्रेमशंकर के शब्दों में "आदर्शवाद का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाता है। दर्शन, राजनीति, साहित्य और कला के क्षेत्र में आदर्शवाद की विस्तृत विवेचना प्राप्त होती है। आदर्शवाद एक प्रकार का दृष्टिकोण है, जिसकी सहायता से संसार का मूल्यांकन किया जाता है। यह एक विवेचन प्रणाली है। यथार्थ के जो मूल तत्त्व होते हैं, उनके अतिरिक्त भी कोई चेतन सत्ता है, विचारणा है, इसी आधार पर आदर्शवाद अपने चिन्तन में अग्रसर होता है। इस विचार-धारा में विषय वस्तु तथा भौतिक पदार्थों की अपेक्षा मूल सत्य को अधिक महत्ता प्राप्त होती है। आदर्शवाद की दृष्टि बौद्धिक है, किन्तु वह जीवन के सूक्ष्म मूल्यों को अधिक-तर महत्व देता है और इस दृष्टि से वह आध्यात्मिक है।"[1] साहित्य के क्षेत्र में यथार्थ-

---

१: 'हिन्दी साहित्य कोश', प्रधान संपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, प्रथम भाग, सं० २०१५, पृ० ९३।

वाद की भाँति ही आदर्शवाद का अपना मूल्यगत आग्रह रहता है। आदर्शवाद साहित्य में प्रायः भौतिकवादी मूल्यों का विरोध करता है क्योंकि भौतिकवादी दृष्टिकोण मनुष्य और पशु में समान रूप से विद्यमान रहता है। विवेक और चिन्तन की शक्ति के कारण मनुष्य अपने जीवन को साधारण पशु जीवन से विकासशील बना कर उसे एक नया अर्थ देता है। ऐसा तब सम्भव हो पाता है जब वह आत्मिक स्तर पर किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है। इसी कारण आदर्शवादी विचारधारा का प्रसार मानव-जीवन की व्याख्या करने वाले सभी क्षेत्रों में है। दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, नीति-शास्त्र और साहित्य शास्त्र आदि के क्षेत्रों में इसके अपने मानदंड हैं। इन सभी क्षेत्रों में आदर्शवाद उन मूल्यों के समावेश पर बल देता है जो उदात्त जीवन के प्रतीक होते हैं। इस दृष्टि से साहित्य के क्षेत्र में भी आदर्शवाद जिन मूल्यों का स्थापन करता है वे न केवल जीवन की यथार्थता पर आधारित होते हैं वरन् उसी की ओर उन्मुख भी होते हैं।

यथार्थवाद और आदर्शवाद को परस्पर विरोधी विचारधारा मानने वाले आलोचक आदर्शवाद के विरुद्ध यह आरोप लगाते हैं कि आदर्शवाद यथार्थ जीवन से विमुख होता है और भावनात्मक तथा कल्पनात्मक तत्वों पर आधारित होता है। वास्तव में यह बात तर्कसंगत नहीं है क्योंकि आदर्श का स्थापना यथार्थ की नींव पर ही होती है। यही कारण है कि साहित्य के क्षेत्र में जो आदर्शवादी रचनाएँ हैं, उनमें तो आदर्श की निहिति रहती ही है उनके साथ उन रचनाओं में भी आदर्श का समावेश होता है जो यथार्थवादी होती हैं। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दुयुगीन कहानी साहित्य आदर्शवादी कहानियों के प्रथम वर्ग में आता है और प्रेमचन्दोत्तर युगीन यथार्थवादी कहानियों में निहित आदर्शवाद द्वितीय कोटि में। इसका कारण यह है कि आधुनिक जीवन में यांत्रिकता और भौतिकता प्रधान दृष्टिकोण के समानान्तर यथार्थ-वाद का तो विकास हुआ ही है, आदर्शवाद की परम्परा भी अक्षुण्ण रही है। इस दृष्टिकोण से यथार्थवाद और आदर्शवाद का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध भी माना जा सकता है। कहानी साहित्य के क्षेत्र में आदर्शवाद प्राचीनतम विचारधारा रही है। प्राचीन काल में विभिन्न भाषाओं में जो भी कथा साहित्य उपलब्ध होता है वह आदर्श से अनुप्राणित है। उसका कारण यह है कि लोक प्रचलित और रोचक विधा होने के कारण कहानी में नैतिक और धार्मिक उपदेशों के रूप में आदर्श की प्रतिष्ठा अपेक्षाकृत सुगम होती है। वास्तव में आदर्श का सम्बन्ध कल्पना से होता है और इसीलिए वह स्वभावतः यथार्थता से भिन्न होता है। परन्तु बहुधा कहानी साहित्य में यथार्थ चित्रण के माध्यम से आदर्श की योजना की जाती है। इस दृष्टि से यथार्थवाद और आदर्शवाद दोनों ही अधिकांश साहित्यिक कृतियों में अनिवार्य रूप से समन्वित रूप में उपलब्ध होते हैं क्योंकि आदर्श परोक्ष रूप में यथार्थ जीवन में अनुकरण किये जाने के

उद्देश्य से प्रस्तुत किया जाता है और यथार्थ किसी आदर्श की प्रतिष्ठा के लिये चित्रित किया जाता है।

**यथार्थवाद और प्रगतिवाद**—आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उत्तर छायावाद काल में यथार्थवादी तत्वों का समावेश प्रगतिवादी विचारधारा का आधार ग्रहण करके हुआ था। द्विवेदी युग की साहित्यिक आदर्शप्रियता और छायावाद युग की कल्पनाप्रियता के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवाद का जन्म हुआ था। आरम्भ से ही प्रगतिवाद ने यथार्थवादी तत्वों को ग्रहण किया। प्रगतिवादी साहित्य के क्षेत्र में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विधाओं के अन्तर्गत आधुनिक सामाजिक जीवन की संघर्षशीलता और विरूपताओं का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। स्पष्टतः यह आन्दोलन मुख्यतः विदेशी साहित्य के प्रभावस्वरूप हिन्दी में आरम्भ हुआ और यथार्थवादी प्रवृत्ति से संयुक्त होकर उसका विकास हुआ। अन्य साहित्यिक विचारधाराओं की भाँति इसे भी अनेक विचारक एकांगी कहते हैं। यथार्थवाद की भाँति ही इसका निर्धारण भी मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से सम्बद्ध है और समाज के वर्ग संघर्ष के आर्थिक कारणों पर आधारित है। सम्भवतः इसी कारण से कार्ल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त के साहित्यिक आरोपण को भी प्रगतिवाद कहते हैं जिसका आविर्भाव हिन्दी साहित्य में द्वितीय विश्वयुद्ध के कुछ पूर्व हुआ था।

हिन्दी में प्रगतिवादी विचारधारा का विकास अन्य आन्दोलनों की तुलना में अपेक्षाकृत तीव्र गति से हुआ। इसका कारण यह था कि इसकी पूर्ववर्ती विचारधारा छायावाद का विरोध करते हुये प्रगतिवादियों ने उसे पलायनवादी कहा। इसलिये आरम्भ में प्रगतिवाद को पर्याप्त समर्थन प्राप्त हुआ, यद्यपि आगे चलकर द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् इसे व्यक्तिवादी आन्दोलन का भी विरोध सहन करना पड़ा। परन्तु प्रगतिवाद इसलिये अधिक ग्राह्य हुआ क्योंकि यह छायावाद की भाँति केवल काव्य के क्षेत्र तक सीमित नहीं रहा, वरन् गद्य और पद्य साहित्य की सभी विधाओं में इसे स्वीकार किया गया। इसके सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण और समर्थन में अनेक चिन्तकों ने अपने विचार व्यक्त किये। राहुल सांकृत्यायन ने प्रगतिवाद का स्वरूप निदर्शन करते हुये उसके यथार्थ तत्वों की व्याख्या के सन्दर्भ में बताया है कि "प्रगतिवाद कोई 'कल्ट' या संकीर्ण सम्प्रदाय नहीं है। प्रगतिवाद का काम है प्रगति के रुंधे रास्ते को खोलना, उसके पथ को प्रस्तुत करना। प्रगतिवाद कलाकार की स्वतन्त्रता का नहीं, परतन्त्रता का शत्रु है। प्रगति जिसके रोम-रोम में भीग गयी है, प्रगति ही जिसकी प्रकृति बन गई है, वह स्वयं अपनी सीमाओं का निर्धारण कर सकता है····प्रगतिवाद कला की अवहेलना नहीं कर सकता।" इसी सन्दर्भ में आगे चलकर उन्होंने प्रगतिवाद के विभिन्न पथों के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं और रचनात्मक कृतियों में भी प्रगतिवाद के साहित्य, समाज और राजनीति के प्रभाव पर स्पष्टीकरण किया है।

साहित्य और समीक्षा के क्षेत्र में प्रगतिवादी आन्दोलन के समर्थक प्रकाशचन्द्र गुप्त ने अपने इस मंतव्य का प्रस्तुतीकरण किया है कि कोई भी जागरूक साहित्यकार समाज के ह्रास के कारणों की ओर से विमुख नहीं रह सकता। प्रगतिवाद में निहित संघर्षशीलता की भावना को उन्होंने जीवन की अनिवार्यता और मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति माना है। उनकी धारणा है कि यदि किसी समाज में किसी प्रकार का वर्गगत कोई संघर्ष विद्यमान है तो उसे साहित्य में भी अभिव्यक्त होना चाहिए क्योंकि साहित्य तभी यथार्थ और सजीव बन सकेगा। प्रगतिवादी समीक्षक डा० रामविलास शर्मा ने प्रगतिवादी विचारधारा को आधुनिक युग की सबसे अधिक प्रचलित विचारधारा माना है। उन्होंने इस मत का विरोध किया है कि प्रगतिशीलता और प्रगतिवाद परस्पर समान हैं। उनके विचार से एक साहित्यकार से ही प्रगतिशील होता है। उन्होंने लिखा है कि "प्रगतिवाद अलग है, प्रगतिशील साहित्य कोई और चीज है। इस तरह का सूक्ष्म भेद किया गया है। जैसे छायावादी कवि की रचनाएँ छायावाद से भिन्न नहीं हैं, वैसे ही प्रगतिशील लेखकों की रचनाएँ प्रगतिवाद से भिन्न नहीं हैं।"[1] यथार्थवाद और प्रगतिवाद के तुलनात्मक स्वरूप से सम्बन्धित शिवदान सिंह चौहान के विचार भी ध्यान में रखने योग्य हैं। उन्होंने युगीन यथार्थ के प्रतिबिम्ब को प्रगतिवादी साहित्य का अनिवार्य तत्व स्वीकार किया है। उनकी धारणा है कि प्रगतिवाद विशुद्ध प्रचारवादी साहित्य कदापि नहीं है और ऐसा मानना संकीर्ण मनोवृत्ति का द्योतक है। उनके विचार से प्रगतिवाद साहित्यिक क्षेत्र में मार्क्सवादी दृष्टिकोण का समावेश करता है और सिद्धान्ततः साहित्य को मुख्य कसौटी है। इस रूप में वह नवीन चेतना के जागरण का प्रतीक है।[2] यथार्थवाद और प्रगतिवाद से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं पर श्री मन्मथनाथ गुप्त ने विचार किया है। उन्होंने प्रगतिशीलता के विरुद्ध लगाये गये अनेक आरोपों का खंडन करते हुए उसके यथार्थ मूल्यांकन पर बल दिया है। उन्होंने यह भी कहा है कि प्रगतिशीलता और प्रगतिवाद साम्यवाद अथवा अन्य किसी भी राजनैतिकवाद के सत्वाधिकार से मुक्त हैं। इसलिए उन्हें राजनैतिक मतवादों से पृथक् करके देखना चाहिए। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उन्होंने प्रगतिवाद का सामान्य अर्थ विकासशील बताया है। आशावाद के प्रचारक के रूप में मन्मथनाथ गुप्त ने प्रगतिवाद को देश और भाषा के लिये एक अनिवार्यता बताया है क्योंकि प्रगतिशील साहित्य ही विकासशील हो सकता है। उन्होंने पलायनवाद, रहस्यवाद और छायावाद का विरोध किया है क्योंकि ये वाद कर्म शक्ति का विघटन करते हैं। उन्होंने चित्रकला, संगीत कला, तथा साहित्य

---

१. 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ', डा० रामविलास शर्मा, भूमिका, पृ० ८।
२. 'प्रगतिवाद', श्री शिवदान सिंह चौहान, पृ० १।

कला के पोषक कलाकारों में व्यक्तित्वगत दो पक्ष बताए हैं जो वैयक्तिक और सामाजिक हैं। इनमें से किसी कलाकार की वैयक्तिक स्वतन्त्रता केवल वहीं तक मान्य होगी, जहाँ तक वह जनता के विरुद्ध न हो, क्योंकि अन्ततः वह जनता का ही एक अंग है। प्रगतिवाद के विरोधियों के आक्षेपों का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा है कि वह साहित्य को समाज की कसौटी पर कसता है।

प्रगतिवाद के व्याख्याताओं में डॉ० रांगेय राघव का नाम भी उल्लेखनीय है। उनकी व्याख्या की विशेषता यह है कि उन्होंने प्रगतिवाद के विरोधियों के साथ-साथ उसके समर्थकों की भी आलोचना की है। उनकी धारणा है कि प्रगतिशील साहित्य मूलतः शोषण का विरोध करता है जो केवल आर्थिक न होकर अनेक रूपात्मक है। प्रगतिवाद को हिन्दी साहित्य के लिये एक जीवन्त प्रेरणा शक्ति के रूप में मान्य करने वाले श्री रामेश्वर शर्मा की धारणा है कि प्रगतिवाद में हिन्दी साहित्य को विकास की नई आधारभूमि प्रदान की है। सामान्य रूप से यह मान्यता प्रचलित है कि प्रगतिवादी आन्दोलन हिन्दी में पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप आया है और इस रूप में बलपूर्वक लादा हुआ एक वाद है। श्री रामेश्वर शर्मा ने इस मान्यता का विरोध करते हुए बताया है कि प्रगतिवाद भारत की अपनी विचारधारा है और परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार उसका उद्भव हुआ है। उन्होंने उस पर राजनीतिक दबाव का भी विरोध किया है और साहित्यिक चिन्तन की एक स्वतन्त्र विचारधारा के रूप में उसकी प्रतिष्ठा की है। इस प्रकार से यथार्थवाद और प्रगतिवाद दोनों विचारान्दोलनों में पर्याप्त समानता है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इन दोनों के आविर्भाव का समय भी लगभग समान ही है। जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यथार्थवादी तत्वों की ही भाँति प्रगतिशीलता के तत्व भी हिन्दी साहित्य में नैसर्गिक रूप से प्रायः सदैव ही विद्यमान रहे हैं, परन्तु बीसवीं शताब्दी में प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ये दोनों विचारधाराएँ सुनियोजित आन्दोलनों के रूप में विकसित हुईं। आरम्भ में यथार्थवाद की ही भाँति प्रगतिवाद को भी अनेक विरोधी विचारधाराओं से संघर्ष करना पड़ा। परन्तु सामाजिक दायित्व के प्रति जागरूकता के कारण ये दोनों ही विचारधारायें अपना अस्तित्व बनाए रख सकीं। यथार्थवाद की ही भाँति प्रगतिवाद भी साहित्य में मानव समाज के यथार्थ प्रतिबिम्ब पर बहुत बल देता है। इस रूप में इन दोनों की आविर्भावकालीन परिस्थितियाँ, सिद्धान्त और दृष्टिकोण परस्पर समानता रखते हैं।

## (ग) यथार्थवाद के प्रमुख रूप

साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवादी विचारधारा का विकास एक व्यापक पृष्ठभूमि में हुआ है। इस दृष्टि से साहित्य की विविध विधाओं में इसके अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। इनमें ऐतिहासिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद

तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद प्रमुख हैं । सामान्यतः ऐतिहासिक यथार्थवाद से आशय उस यथार्थ से समझा जाता है जिसका सम्बन्ध अतीत कालीनमानव जीवन से होता है । वह विभिन्न युगों की वास्तविकता का बोध पाठक को कराता है । इसीलिए ऐतिहासिक यथार्थवाद को यथार्थवाद का ही एक रूप माना जाता है जो अतीत के किसी युग विशेष की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है । मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का विकास साहित्य के क्षेत्र में मनोविश्लेषणात्मक-विचारधारा के समानान्तर हुआ है और इसके अन्तर्गत साहित्य में चित्रित मानव मन, चेतन, उपचेतन तथा अवचेतन मन के रहस्यों की विवृति की जाती है । समाजवादी यथार्थवाद वस्तुतः साहित्य के प्रति एक उपयोगितावादी दृष्टिकोण का परिचायक है और इसकी पृष्ठभूमि में समाजवाद के विकास का उद्देश्य निहित है । आदर्शोन्मुख यथार्थवाद साहित्य में यथार्थ तत्व पर अवश्य बल देता है परन्तु उसके आधार पर वह किसी आदर्श का अनुमोदन करता है । यहाँ पर संक्षेप में यथार्थवाद के इन प्रमुख रूपों की परिचयात्मक व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है ।

(१) ऐतिहासिक यथार्थवाद—साहित्यिक दृष्टिकोण से यथार्थवाद व ऐतिहासिक यथार्थवाद में कोई मौलिक भेद नहीं है । देशकाल के परिवर्तन से ही यथार्थवाद ऐतिहासिक यथार्थवाद हो जाता है । उदाहरणस्वरूप कल जो यथार्थ था वही आज परिस्थितियों में अन्तर पड़ जाने से ऐतिहासिक यथार्थ हो जायगा । इसी प्रकार से आज जो यथार्थ है इसी अन्तर के आने से कल ऐतिहासिक यथार्थ हो जायगा । इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि ऐतिहासिक यथार्थवाद में भूतकाल की सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों का ही स्वाभाविक चित्रण होता है । इतिहास शब्द से ऐतिहासिक यथार्थवाद की व्याख्या नहीं होती वरन् इन दोनों में पर्याप्त अन्तर विद्यमान है । इतिहास में तिथियों, घटनाओं तथा परिणामों का सही विवरण होता है परन्तु ऐतिहासिक यथार्थवाद में सामाजिक, राष्ट्रीय एवं धार्मिक परिस्थितियों के चित्रण पर भी बल दिया जाता है । इसका मुख्य कारण यह है कि यथार्थवादी साहित्य वह होता है जिससे वर्तमान समाज प्रेरणा ले सके तथा उसके परिणामों को देखकर वर्तमान समाज के दोषों में सुधार कर सके । इस प्रकार से ऐतिहासिक यथार्थवाद साभिप्राय यथार्थ की रचना करता है । इसीलिए ऐतिहासिक यथार्थवाद में सत्यता के साथ राष्ट्रीय जीवन के महान् आन्दोलनों का चित्रण होता है तथा वर्तमान समस्याओं का इतिहास द्वारा हल प्रस्तुत किया जाता है । परन्तु इस कथन का अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि हम उसका अन्धानुकरण करने लगें । वस्तुतः ऐतिहासिक यथार्थवाद में तत्कालीन समाज एवं राष्ट्र का सजीव चित्रण होने के साथ ही कल्पनात्मक तत्वों द्वारा समस्याओं का समाधान भी होता है ।

ऐतिहासिक यथार्थवाद यथार्थवाद का एक ऐसा रूप है जो प्रत्येक युग की वास्तविकता का बोध कराता है । जिस साहित्य में अपने युग का सत्य चित्रण होता

है वही श्रेष्ठ साहित्य बन सकता है। वेद इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वेदों की ऋचाओं में तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण हुआ है भले ही वह आदर्श न हो। इसीलिए आज तक समाज में उनका अपना महत्व बना हुआ है। इसी भाँति 'रामायण' और 'महाभारत' में जटिल मानव जीवन की समस्याओं को सुलझे हुए रूप में चित्रित किया गया है। कालिदास के साहित्य में नारी के अधिकारों के लिये मार्मिक वेदना दृष्टिगत होती है। इस प्रकार से आदि काल से ही ऐतिहासिक यथार्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिकालीन रचनाओं में भी ऐतिहासिक यथार्थवाद दृष्टिगत होता है। परन्तु ऐतिहासिक यथार्थ के चित्रण के लिये साहित्यकार को निष्पक्ष होना चाहिए। यदि वह अपनी रचनाओं में वैयक्तिक आग्रहों का पालन करता है तो उसकी कृतियों में ऐतिहासिक यथार्थ नहीं आ पायेगा। राहुल सांकृत्यायन, डॉ० रांगेय राघव, यशपाल तथा वृन्दावनलाल वर्मा आदि कथाकारों की रचनाओं में ऐतिहासिक यथार्थ का प्रभावशाली रूप दृष्टिगत होता है।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, ऐतिहासिक यथार्थवाद के अन्तर्गत कोई कथाकार अपनी रचना में अतीत युगों के जीवन का विश्वसनीय चित्रण प्रस्तुत करता है। ऐसा करते समय वह इतिहास के युग विशेष की वास्तविकता का अध्ययन करता है। इस दृष्टिकोण से ऐतिहासिक यथार्थ पाठक के सामने अतीत कालीन समाज का समग्र स्वरूप उसकी संपूर्ण सत्यता के साथ प्रस्तुत करता है। सामान्य रूप से युग की वास्तविकता को जो कहानीकार समझ सके वही ऐतिहासिक यथार्थ का प्रभावशाली चित्रण कर सकेगा। इस प्रकार से किसी युग की वास्तविकता को जानना ही ऐतिहासिक यथार्थ है। कभी-कभी ऐतिहासिक तथ्य का चित्रण वर्ग विशेष में भी होता है परन्तु सच्चा यथार्थवादी वर्ग विशेष पर नहीं वरन् समकालीन सामाजिक परिस्थितियों से ही अवगत कराता है। इस रूप में विगत युग का सामाजिक यथार्थ ही वर्तमान का ऐतिहासिक यथार्थ होता है। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो कथाकार को इतिहासकार से कम विवेक की आवश्यकता नहीं है। यदि कहीं कहानीकार भौगोलिक भूल कर देता है तो सारी ऐतिहासिक कल्पना ही नष्ट हो जाती है। इसीलिये एक कहानीकार को ऐतिहासिक सामग्री तथा उसका भली प्रकार ज्ञान आवश्यक है। ऐतिहासिक यथार्थवाद के विषय में ऊपर यह संकेत किया जा चुका है कि वह सामाजिक यथार्थवाद का ही एक रूप होता है क्योंकि अन्ततः उसका सम्बन्ध अतीत के समाज से होता है। डा० त्रिभुवन सिंह के विचार से "प्रत्येक युग में कैसे-कैसे परिवर्तन होते हैं और उनमें परिवर्तन लाने वाली कौन-कौन-सी शक्तियाँ हुआ करती हैं तथा प्रत्येक युग की सामाजिक रूपरेखा क्या थी, आदि सभी ऐतिहासिक यथार्थ के ही विषय हैं। मानवता के आरम्भ में स्त्री समाज की अप्सरा थी जो स्वेच्छाचारिणी थी, उस समय स्त्री पर किसी प्रकार का यौन प्रतिबन्ध नहीं था। परन्तु आज की परिस्थिति में पहले की अपेक्षा महान् अन्तर हो गया है। इन सभी समस्याओं को

सजीव रूप में ऐतिहासिक यथार्थवाद के अन्दर चित्रित किया जाता है।"[1] इस प्रकार से ऐतिहासिक यथार्थवाद वास्तव में यथार्थवाद का ही एक रूप है जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध यथार्थवाद की भाँति वर्तमान देशकाल से न होकर अतीत के देशकाल से होता है। इस दृष्टि से ऐतिहासिक यथार्थवाद भी अपने युग में यथार्थवाद ही रहा होता है और इसी क्रम में जो वर्तमान में यथार्थ है वह भविष्य में ऐतिहासिक यथार्थ हो जाता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक यथार्थवाद के अन्तर्गत अतीत के युग विशेष की विभिन्न क्षेत्रीय परिस्थितियों का यथार्थ अंकन किया जाता है। इस दृष्टि से इतिहास और ऐतिहासिक यथार्थ में किंचित् अन्तर होता है, क्योंकि इतिहास जहाँ युग काल की तिथियों तथा घटनाओं का लेखा-जोखा होता है वहाँ ऐतिहासिक यथार्थ के अन्तर्गत उस युग के देशकाल व वातावरण के सन्दर्भ में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण किया जाता है। इस दृष्टि से ऐतिहासिक यथार्थवाद किसी सीमा तक अप्रत्यक्ष रूप से अतीत जीवन के उस आदर्श की प्रतिष्ठा करता है जिससे वह युग अनुप्राणित था और जो वर्तमान के लिये भी अनुकरणीय हो सकता है।

(२) मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद—मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, यथार्थवाद का वह रूप है जिसका विकास आधुनिक हिन्दी साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा के समानान्तर हुआ है। स्थूल रूप से मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद समाजवादी यथार्थवाद के विपरीत मनुष्य की वैयक्तिक चेतना की विवृति करता है। वह उसके समष्टिगत महत्व और मूल्यों को अस्वीकारता नहीं है, फिर भी वह बाह्य सत्ता का विश्लेषण करने के स्थान पर उसके अचेतन, उपचेतन तथा अवचेतन मन के रहस्यों का उद्घाटित करता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी दृष्टिकोण से आधुनिक जीवन का स्वरूप कुछ इस प्रकार है कि अधिकांश अतृप्त कामनाएँ एवं कुंठाएँ किसी-न-किसी रूप में आर्थिक हीनता और निषेध का परिणाम होती हैं तथा इसकी मुक्ति के लिये आर्थिक समानता व संयुक्त परिवार अनिवार्य है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का सुस्पष्ट रूप में समावेश प्रेमचन्द युग से हुआ। जहाँ तक कहानी का सम्बन्ध है, पूर्व प्रेमचन्द युग से ही उसमें मनोवैज्ञानिक तत्वों के संकेत उपलब्ध होते हैं। प्रेमचन्द युग के कहानीकारों ने मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सजगता दिखाई। प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', चतुरसेन शास्त्री तथा पांडेयबेचन शर्मा 'उग्र' आदि लेखकों ने मनोवैज्ञानिक यथार्थ का समावेश अपनी कहानियों में किया है। प्रेमचन्दोत्तर तथा स्वातन्त्र्योत्तर युगीन कहानीकारों ने जहाँ एक ओर अपनी दृष्टि का परिष्कार और विकास करते हुये मनोवैज्ञानिक यथार्थ के चित्रण पर बल दिया वहाँ

---

१. "हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डा० त्रिभुवन सिंह, सं २०१२, पृ० १४३।

दूसरी ओर कुछ कहानीकारों ने संकुचित अर्थ में इसका प्रयोग किया। डा० सुरेश सिन्हा के शब्दों में, "यथार्थवाद की रक्षा के नाम पर कथा साहित्य में इनके चित्रण पर जब मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के नाम पर यथार्थवाद की रक्षा एवं सत्यानुभूति से प्रेरित चित्रण करने के बहाने मनुष्य की अन्य इच्छाओं को छोड़, मात्र काम इच्छाओं एवं उनके हनन से उत्पन्न होने वाले 'दुष्परिणामों' का 'रसमय' चित्रण किया जाने लगता है और कथा साहित्य के नाम कामशास्त्र की रचना होने लगती है, तो यह आपत्तिजनक होता है ; साथ ही साहित्य की श्रेष्ठता एवं गौरव के लिये कलंकपूर्ण भी है। दुःख तो तब होता है, जब ऐसे गोपनीय स्थलों के चित्रण में लेखक सांकेतिकता छोड़ विवरणात्मकता पर उतर आता है और वह यह भूल जाता है कि साहित्य रचना के भी कुछ नियम और सीमाएँ हैं, जिनका पालन करना श्रेष्ठ साहित्य के लिये अनिवार्य है।"[१]

अपने व्यापक स्वरूप के अनुसार मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद मनुष्य के अंतर के समस्त भावनात्मक उतार-चढ़ावों का विश्वसनीय चित्रण साहित्य में उपस्थित करता है। जो साहित्यकार उसके व्यापक अर्थ को मान्यता देते हैं वे मानव मन की विवृति के साहित्य में अनुगामी हैं और उसके निर्बाध चित्रण पर बल देते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान के प्रर्वतक फ्रायड ने अपने सिद्धान्तों में मनुष्य की अंतर चेतना की जो व्याख्या की है वह मानव के अचेतन और अर्ध चेतन के महत्व की असाधारणता प्रतिपादित करती है। फ्रायड के इसी सिद्धान्त के संदर्भ में उसके स्वप्न सिद्धान्त का भी उल्लेख किया जा सकता है, जो परोक्ष रूप में मानव मन की अस्पष्ट इच्छाओं का परिचायक है। साहित्य के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का जो रूप दृष्टिगत होता है, इसके अन्तर्गत फ्रायड के मनोविश्लेषण और स्वप्न सिद्धान्त दोनों का ही समावेश हुआ है। इस प्रकार से मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद यथार्थवाद का एक प्रमुख रूप है जिसका विकास कथा साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट मनोविश्लेषणात्मक शास्त्रियों के सिद्धान्तों का आश्रय ग्रहण करके हुआ है। डा० एस० पी० खत्री ने साहित्य और मनोविज्ञान के समन्वित विकास पर विचार करते हुए यह स्वीकार किया है कि मनोविज्ञान के सहयोग से साहित्य को अपने कलात्मक विकास के लिये एक नया आधार मिला है।[२] परन्तु मनोवैज्ञानिक यथार्थ के सम्यक् रूप से साहित्य के चित्रण के लिये एक लेखक को अत्यन्त सजग रहना पड़ता है। श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय के शब्दों में "जब कृति के अन्दर कृतिकार के सिद्धान्त साधन न होकर साध्य हो जाते हैं तो ऐसी स्थिति में

१. विशेष विवरण के लिये द्रष्टव्य : 'नई कहानी की मूल संवेदना' डा० सुरेश सिन्हा, सन् १९६६, पृ० १७७-७८.

२. देखिए : आलोचना : इतिहास तथा सिद्धांत, डा० एस० पी० खत्री,, पृ० ४७५.

साहित्य अपने लक्ष्य से दूर चला जाता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते समय कलाकार के लिये आवश्यक है कि वह अपने पात्रों के विकास क्रम में स्वयं अपनी मानसिकता का दुर्बल पहलू अज्ञात रूप में सामने न रख दे।"[1] अतएव मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का साहित्य में आधार मनोविश्लेषण शास्त्री सिद्धान्तों को ही माना जा सकता है।

(३) **समाजवादी यथार्थवाद**—समाजवादी यथार्थवाद वास्तव में साहित्य के प्रति एक उपयोगितावादी दृष्टिकोण है। इसकी पृष्ठभूमि में पूंजीवाद के विनाश और समाजवाद के विकास का उद्देश्य निहित है। इसीलिये इस विचारधारा में आस्था रखने वाला लेखक समाज की उन शक्तियों का आवाहन करता है जो यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आर्थिक समानता के निदर्शक वर्गहीन समाज की स्थापना के लिये संघर्ष कर सके। प्रो० विजयशंकर मल्ल के विचार से...."यह स्पष्ट है कि समाजवादी यथार्थ पहले समाजवादी और तब यथार्थवादी। वह अर्थ को समाजवादी दृष्टि से देखता है। वह प्रकृतवादियों (नेचुरलिस्ट) की तरह सम्पूर्ण वाह्य जगत् को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करके जीवन की ऊपरी सतह पर दिखाई देने वाली स्थूल व्यवस्थाओं को चित्रित मात्र नहीं करता, बल्कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर जीवन और जगत की परिस्थितियों का विश्लेषण करके समाज के भीतर छिपी भविष्य की नियामक शक्तियों की अभिव्यक्ति करने वाली सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करता है।"[2] समाजवादी यथार्थवाद के आविर्भाव और विकास पर यदि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि इसका उद्भव रूसी साहित्य के क्षेत्र में क्रान्ति के परवर्ती काल में हुआ था। उस समय साहित्य में निम्न वर्गों के जीवन का व्यापक चित्रण होने लगा था और उनके संघर्ष को प्रधानता दी जा रही थी। इस प्रकार का साहित्य मार्क्सवाद के सिद्धान्तों से विशेष प्रभावित था और इसे वहाँ समाजवादी यथार्थवाद की संज्ञा दी गई थी। मार्क्सवादी सिद्धान्तों के सन्दर्भ में यदि साहित्य और समालोचना पर विचार किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि इनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती वरन् वे समकालीन राज्य सत्ता से नियंत्रित होते हैं। जैसा कि अन्यत्र संकेत किया जा चुका है, काडवेल भी साहित्य का मूल आधार आर्थिक ही मानता है।

(कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों के विषय में ऊपर संकेत किया जा चुका है कि वे यथार्थवाद के विकास में आधारभूमि सिद्ध हुए। उन्होंने साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। फलतः पाश्चात्य साहित्य के क्षेत्र में विचारकों का एक दल ऐसा संगठित हुआ जिसने मार्क्स की मान्यताओं का व्यावहारिक आरोपण साहित्य में किया।

---

१. 'आधुनिक कथा साहित्य', श्री गंगा प्रसाद पांडेय, पृ० २०५.
२. 'हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद', प्रो० विजयशंकर मल्ल, पृ० ११९।

कार्ल मार्क्स अपनी व्यापक वैचारिक मान्यताओं के सन्दर्भ में साहित्य का आधार मूलतः आर्थिक ही मानता है। मार्क्स का यथार्थवाद यह स्पष्ट मान्यता प्रस्तुत करता है कि सम्पूर्ण समाज शोषक और शोषित वर्गों के संयोग से संगठित होता है। इनमें शोषित वर्ग को वह सर्वहारा वर्ग कहता है और यथार्थवादी साहित्य के रूप में केवल उसी साहित्य को मान्यता देता है जिसमें सर्वहारा वर्ग की समस्याओं और परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया जाय। इस दृष्टिकोण से समाजवादी यथार्थवाद का आधार मार्क्स की उपर्युक्त मान्यतायें ही हैं। समाजवादी यथार्थवाद का चित्रण करने वाला साहित्य व्यष्टि को समष्टि का एक अनिवार्य और महत्वपूर्ण अंग मानते हुये उसके समग्र स्वरूप को रूपायित करने पर बल देता है। स्वभावतः व्यक्ति और समाज की समस्यायें समान रूप से महत्व रखती है।

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में समाजवादी यथार्थ से प्रभावित रचनाओं में यथा-सम्भव समाज के वास्तविक स्वरूप का चित्रण करने पर बल दिया जाता है। इस प्रकार की कहानियों में मुख्य रूप से सामाजिक विषमताओं, कुंठाओं और हीनताओं का चित्रण किया जाता है क्योंकि यह चित्रण ही उनके मूलभूत कारणों और तज्जनित समस्याओं के निर्मूलन में सहायक होता है। इसके साथ ही सामाजिक यथार्थवाद समाज के यथातथ्य के वर्णन के समानान्तर ही उसके प्रति अपना निदानात्मक दृष्टि-कोण भी प्रस्तुत करता है। डा० त्रिभुवन सिंह के अनुसार "सामाजिक यथार्थवाद का अर्थ होता है समाज की वास्तविक अवस्था का यथार्थ चित्रण। परन्तु साहित्य के अन्दर किसी भी वस्तु का चित्र उतार कर रख देना कठिन होता है क्योंकि साहित्यिक चित्र कैमरे द्वारा लिया गया चित्र नहीं होता, बल्कि वह साहित्यकार की कूची के द्वारा चित्रित किया गया ऐसा चित्र होता है जिसमें साहित्यकार के अनुभव एवं कल्पना के सुन्दर रंग ढले होते हैं। सामाजिक विषमताओं, भ्रष्टाचारों तथा वैयक्तिक स्वार्थों से आक्रान्त, पीड़ित समाज की दयनीय परिस्थितियों को उसके वास्तविक रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करना सामाजिक यथार्थ का प्रधान लक्ष्य है। सामाजिक यथार्थवादी साहित्यकार समाज और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों, उसके प्रत्येक आचार-विचारों तथा उसकी राष्ट्रीय, आर्थिक एवं नैतिक अवस्थाओं का मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर करता है। वह केवल समाज जैसा है वैसा ही उसका वर्णन मात्र नहीं कर देता, बल्कि इस रूप में प्रस्तुत करता है जिससे पाठक युग के सत्य एवं समाज में होने वाले कार्य-व्यापारों के औचित्य तथा अनौचित्य की सरलता से परख कर सके और उन मर्यादाओं का अनुसरण कर सके जिन पर चलकर एक आदर्श समाज की स्थापना हो सके।" समाजवादी यथार्थवाद वास्तव में समाज की उस चेतना से सम्बन्धित है जो समग्र रूप से एक इकाई के रूप में मान्य की जा सकती है। इसके अन्तर्गत लेखक सामाजिक संघर्ष पर बल देता है। यह संघर्ष शोषित वर्गों की ओर से शोषितों के विरुद्ध किया

जाता है। डा० सुरेश सिन्हा ने बताया है कि सामाजिक यथार्थवाद समष्टि को मान्यता देता है व्यष्टि को नहीं। उनके विचार से "समाजवादी यथार्थवाद साहित्य और कला में यथार्थवादी चित्रण पर बल देता है। वह मानवीय शक्तियों के विकास के प्रति आग्रहशील है। वह मानवीय प्रगति की अवरोधक शक्तियों का रहस्योद्घाटन करता है। उसका कार्य अतीत काल की व्याख्यात्मक चित्रांकन मात्र ही नहीं अपितु वर्तमान की क्रान्तिकारी सफलताओं को एक सूत्र में आबद्ध करने में सहायक होना एवं भविष्य के लिये महान् समाजवादी उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करना भी है। समाजवादी यथार्थवाद व्यापक दृष्टिकोण को अपनाता है और इसकी क्षमता उन्हीं लेखकों में व्याप्त हो सकती है, जो वर्तमान को भविष्य के सन्दर्भ में मूल्यांकित कर सकने में समर्थ हैं। यही दृष्टिकोण वास्तव में समाजवादी यथार्थवाद की आधारशिला होनी चाहिये।"[1]

(४) आदर्शोन्मुख यथार्थवाद—यथार्थवाद के उस रूप को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहते हैं जो यथार्थपरक होते हुए भी किसी आदर्श की प्रतिष्ठा करता हो। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द के पूर्व युग में यथार्थवाद के आरम्भिक संकेत मिलते हैं। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का उद्भव प्रेमचन्द युग से माना जाता है। स्वयं मुंशी प्रेमचन्द के साहित्य में यथार्थवाद का जो रूप दृष्टिगत होता है उसे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की संज्ञा दी जाती है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रेमचन्द को विशुद्ध आदर्शवादी ही माना है। उन्होंने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अथवा यथार्थोन्मुख आदर्शवाद को मान्यता नहीं दी है। उनके विचार से "साहित्यिक निर्माण में यथार्थोन्मुख आदर्शवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद नाम की कोई वस्तु नहीं है। साहित्य में यथार्थवादी और आदर्शवादी रचना के दो अलग-अलग विभाग हैं। इन दोनों को मिलाने वाला कोई पृथक् वाद नहीं है। यह तर्कसंगत भी प्रतीत नहीं होता क्योंकि दो परस्पर विरोधी जीवन-दर्शनों और कला-परिपाटियों में एकत्व की कल्पना कैसे की जा सकती है।"[2] प्रेमचन्दयुगीन कहानी साहित्य में समाविष्ट यथार्थवाद के एक रूप विशेष को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की संज्ञा इसलिए दी गई क्योंकि इस विचारधारा के अनुगमनकर्ता साहित्यकार सिद्धान्ततः साहित्य में यथार्थ के समावेश के समर्थक थे। परन्तु वे यथार्थ के उसी स्वरूप का समर्थन करते थे जो पाठकों को किसी आदर्श की ओर उन्मुख कर सकें। इस रूप में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद वस्तुतः आदर्श और यथार्थ का समन्वय है क्योंकि एक मध्यम मार्ग के रूप में यह विचारधारा यथार्थ के कट्टर अनुगमन की भी

---

१. 'नई कहानी की मूल संवेदना', डा० सुरेश सिन्हा, सन् १९६६, पृ० १७५-१७६।
२. 'प्रेमचंद : साहित्यिक विवेचन', आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पृ० ४३।

उतनी ही विरोधिनी है जितनी कि आदर्श की। प्रेमचन्द चूँकि यथार्थ को साहित्य की एक कसौटी मानते हैं इसलिए उनकी दृष्टि में यथार्थवाद आदर्श के अभाव में अर्थहीन हो जाता है। इसीलिए उन्होंने यथार्थवादी साहित्यकार के लिए आदर्श को भी अनिवार्य माना है। उनकी धारणा है कि एक शिल्पकार के लिए तो विशुद्ध यथार्थवादी होना आवश्यक है परन्तु एक साहित्यकार के लिए नहीं। इसका कारण यह है कि साहित्य की महत्ता और आवश्यकता का आधार यही है कि वह आदर्श भावों को चित्रित करके मानव हृदय को उत्कृष्ट करता है। इस दृष्टिकोण से उन्होंने सच्चे और समाजोपयोगी यथार्थ को ही आदर्श की ही संज्ञा दी।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कि हिन्दी कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का उद्भव प्रेमचन्द युग से मिलता है। इसके पूर्व यथार्थ का समावेश आंशिक रूप में ही दृष्टिगत होता था। प्रेमचन्द-युग तक आते-आते हिन्दी कहानी की यथार्थवादी परम्परा ने एक विशिष्ट रूप ग्रहण कर लिया था। पूर्ववर्ती कहानी वस्तु तत्व पर ही अधिक बल देती थी और उनमें नीति और उपदेशात्मकता को ही कथात्मक आवरण में प्रस्तुत किया जाता था। पूर्व प्रेमचन्दयुगीन रचनाओं में केशव सिंह लिखित 'आपत्तियों का पर्वत', गोपालराम गहमरी लिखित 'गुमनाम चिट्ठी', किशोरी-लाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', तथा रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' जैसी कहानियों का यदि आदर्श और यथार्थ की दृष्टि से परीक्षण किया जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि उनमें आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के प्रारम्भिक संकेत मिलते हैं। इसका कारण यह है कि इस युग में लिखी गई इन रचनाओं में यथार्थ के प्रति एक क्षीण आग्रह के साथ आदर्श के प्रति एक क्षीण आग्रह के साथ आदर्श के प्रति कट्टर आग्रह की भावना दृष्टिगत होती है। यही कारण है कि इस युग के कथा साहित्य का महत्व यथार्थ के स्थान पर कल्पनात्मकता के कारण ही महत्वपूर्ण है। यद्यपि यह कल्पना उनमें निहित आदर्शात्मकता की ही प्रतिष्ठा करती है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को हिन्दी कहानी के क्षेत्र में व्यापक मान्यता इसलिए प्राप्त हुई क्योंकि हिन्दी में यथार्थवादी कथा परम्परा की तुलना में आदर्शवादी कथा परम्परा अधिक प्रशस्त है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, हिन्दी कहानी के विकास के प्रारम्भिक काल से ही आदर्श-वादी कोटि की रचनाएँ प्राप्त होने लगती हैं। पूर्व प्रेमचन्द युग में जब कहानी के आधु-निक स्वरूप का विकास हुआ तब आदर्शोन्मुखता का ही दृष्टिकोण प्रधान रहा। प्रेमचन्द युग में यथार्थ से समन्वित होकर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का स्वरूप स्पष्ट हुआ क्योंकि प्रेमचन्द आदर्शविहीन यथार्थ का समर्थन नहीं करते थे। उन्होंने इस विषय में लिखा भी है कि "यथार्थवादियों का कथन है कि संसार में नेकी-बदी का फल कहीं मिलता नजर नहीं आता, बल्कि बहुधा बुराई का परिणाम अच्छा और भलाई का बुरा होता है। आदर्शवादी कहता है, यथार्थ का यथार्थ रूप दिखाने में फायदा ही क्या? वह तो

अपनी ही आँख से देखते ही हैं। कुछ देर के लिए तो हमें इन कुत्सित व्यवहारों से अलग रहना चाहिए, नहीं तो साहित्य का मुख्य उद्देश्य ही गायब हो जाता है। वह साहित्य को समाज का दर्पण मात्र नहीं मानता है, जिसका काम प्रकाश फैलाना है। भारत का प्राचीन साहित्य आदर्शवाद का ही समर्थक है। हमें भी आदर्श की ही मर्यादा का पालन करना चाहिये।"[1] इस प्रकार से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद वस्तुतः यथार्थवाद का ही एक रूप है और हिन्दी कहानी के क्षेत्र में इसका आरम्भ प्रेमचन्द युग से माना जाता है।

## (घ) हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रायः सभी विधाओं के अन्तर्गत यथार्थवाद का प्रारम्भ और विकास आधुनिक युग में ही हुआ। भारतेन्दु युग मे जिन साहित्यिक विधाओं का आधुनिक रूप में विकास हुआ है वे क्रमशः यथार्थ की ओर उन्मुख प्रतीत होता है। यहाँ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना अप्रासंगिक न होगा कि हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवादी विचारधारा क्रमशः स्पष्ट और विस्तृत होती हुई विकसित हुई है। योरोप की भाँति हिन्दी साहित्य में इसका आरम्भ एक विचारान्दोलन के रूप मे नही हुआ। इसके विपरीत पाश्चात्य सभ्यता और साहित्य के प्रभाव के बढ़ने के साथ हिन्दी के साहित्यकारों ने योरोपीय भाषाओं में सुविकसित यथार्थवादी आन्दोलन से प्रेरणा, और प्रभाव ग्रहण किया। यहाँ तक कि पाश्चात्य साहित्य में यथार्थवाद के अतियथार्थवाद तथा प्रकृतवाद आदि जो रूप दृष्टिगत होते हैं, हिन्दी में भी उनका विकास पाश्चात्य प्रभाव के समानांतर ही हुआ है। यही कारण है कि जहाँ एक ओर अनेक आलौकिक यथार्थवाद को एक शाश्वत विचारधारा स्वीकार करते हैं वहाँ दूसरी ओर अनेक विचारक यथार्थवाद को आधुनिकयुगीन हिन्दी साहित्य की एक प्रवृत्ति के रूप मे मान्यता देते है और उसका आरम्भ भारतेन्दु युग से मानते हैं। जयशंकर प्रसाद जैसे मूर्धन्य साहित्यकार हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद का आरम्भ भारतेन्दु युग से ही स्वीकार करते है और उनकी यह धारणा है कि सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं में यथार्थवाद का आरम्भिक स्वरूप दृष्टिगत होता है।

**हिन्दी की आरम्भिक कहानियां और यथार्थवाद**—भारतेन्दु युग के पूर्व लिखित जो हिन्दी की आरम्भिक कहानियाँ उपलब्ध होती हैं वे यथार्थवादी साहित्य के अन्तर्गत नहीं परिगणित की जा सकती हैं। इन रचनाओं में मुख्य रूप से कल्पनात्मकता और चमत्कारिकता के तत्व विद्यमान मिलते हैं। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी इंशाअल्ला खां लिखित 'रानी केतकी की कहानी' एक कल्पित प्रेम कथा है जो सामान्य रूप से मध्ययुगीन हिन्दी प्रेमाख्यानों की परम्परा से प्रभावित प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु का पूर्ववर्ती जो अन्य कथा साहित्य उपलब्ध होता है वह नीति और धर्म तत्वों से अनुप्राणित है। उसमें आदर्श के प्रति कट्टर आग्रह दृष्टिगत होता

---

१. 'साहित्य का उद्देश्य', मुंशी प्रेमचंद, पृ० ३९।

है। भारतेन्दु काल मे जो हिन्दी कहानियाँ लिखी गई उनमें अवश्य यथार्थ तत्वों का न्यूनाधिक रूप में समावेश मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी की आरम्भिक कहानियाँ प्राचीन परम्परा से प्रभावित होते हुए भी किसी न किसी तत्व के क्षेत्र में यथार्थ की अवश्य परिचायक हैं। इस वर्ग में किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा बंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' आदि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है, जो प्रकाशन काल की दृष्टि से आधुनिक युग की प्रारम्भिक रचनाएँ हैं और जो 'सरस्वती' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हुई थीं। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में आधुनिक युग में जो आरंभिक कालीन साहित्य लिखा गया उसका यथार्थ से कोई प्रत्यक्ष और घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं दृष्टिगत होता। उसका कारण यह है कि यह साहित्य जिस भाषा मे लिखा गया वह जनसाधारण की भाषा नहीं थी वरन् तथाकथित अभिजात वर्ग की भाषा थी। इसके अतिरिक्त इस साहित्य का विषय भी जनजीवन नहीं है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के युग में जो साहित्य लिखा गया वह शिक्षित वर्ग का साहित्य था और उसकी भाषा भी शिक्षित समाज की थी। इस समय शिक्षा की जो पद्धति प्रचलित थी वह अंग्रेजी प्रभाव से युक्त थी और उसके फलस्वरूप भी जनभाषा और जन साहित्य की उपेक्षा हो रही थी आगे चलकर जब साहित्य मे यथार्थवादी तत्वों का समावेश क्रमशः बहुलतापूर्वक किया जाने लगा, तब बोलचाल और सामान्य व्यवहार की भाषा साहित्य में स्थान पाने लगी और वह जनता के अधिक निकट आने लगा।

आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद का सामावेश एक महत्वपूर्ण घटना है। पाश्चात्य साहित्य में यद्यपि यथार्थवादी विचारधारा का उद्भव और विकास पूर्व युग में ही हो चुका था परन्तु हिन्दी में उसका आविर्भाव बीसवीं शताब्दी मे हुआ। इसके प्रारम्भिक संकेत हिन्दी कहानी के प्रथम विकास काल में भी दृष्टिगत होते हैं परन्तु तब तक इसका स्वरूप निर्धारण सम्यक् रूप में न हो सका था (ऐतिहासिक दृष्टिकोण से आधुनिक गद्य साहित्य की प्रायः सभी विधाओं का आविर्भाव भारतेन्दु युग में हुआ था। इनमें कहानी का स्थान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विधा प्राचीनता और आधुनिकता दोनों दृष्टियों से विशिष्टता रखता है। यहां पर इस तथ्य का उल्लेख करना असंगत न होगा कि यद्यपि भारतेन्दु युग से पूर्व ही अनेक कथात्मक रचनाएं हिन्दी में उपलब्ध होती हैं परन्तु वे सभी संस्कृत कथा शैली से परम्परागत रूपों से प्रभावित हैं। इसलिए आधुनिक हिन्दी कहानी का आविर्भाव भारतेन्दु युग से स्वीकार करना औचित्यपूर्ण होगा। इस प्रकार से यथार्थवाद सिद्धान्ततः एक विशेष विदेशी विचारान्दोलन है, जिसका उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रान्स में हुआ। इसी शताब्दी में यह विचारधारा कला के क्षेत्र से स्थानान्तरित होकर साहित्य के क्षेत्र में भी समाविष्ट हुई। आरम्भ से ही इसे आदर्श से प्रभावित विचारधाराओं के व्यापक विरोध का सामना करना पड़ा। साहित्य की विभिन्न विधाओं में उसका सबसे अधिक प्रभाव कथा साहित्य पर ही पड़ा जो क्रमशः बढ़ता

गया। हिन्दी कहानी के सन्दर्भ में यदि यथार्थवादी विचारधारा के आरम्भ और विकास का विवेचन किया जाय तो इस तथ्य की अवगति होगी कि आरम्भिक काल में उपेक्षित रहने के पश्चात् यह तत्व निरन्तर विकसित होता रहा है।

## (ङ) इस अध्ययन का दृष्टिकोण और मौलिकता

प्रस्तुत प्रबन्ध में लेखिका का उद्देश्य हिन्दी कहानी में समाविष्ट यथार्थवाद का अध्ययन करना है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है हिन्दी गद्य के आधुनिक रूपों का आविर्भाव भारतेन्दु युग में हुआ था। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि यद्यपि हिन्दी गद्य का प्रारम्भिक स्वरूप पूर्व भारतेन्दु काल में ही उद्धृत हो चुका था परन्तु खड़ीबोली गद्य की परम्परा का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक रूपों में ही खड़ीबोली गद्य में लिखी गई पहली कहानी इंशा-अल्ला खां के द्वारा 'रानी केतकी की कहानी' शीर्षक से प्रस्तुत की जा चुकी थी। यद्यपि यह एक कल्पना-प्रधान साधारण प्रेमकथा है परन्तु कहानी क्षेत्रीय सर्वप्रथम रचना होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्व है। इसके पश्चात् विभिन्न युगों में जो हिन्दी कहानी लिखी गयीं वह कलात्मक परिपक्वता और विचारगत विशिष्टता के कारण महत्वपूर्ण है। यथार्थवाद हिन्दी कहानी में समाविष्ट एक विशिष्ट विचारधारा है जिसका निरन्तर विकास होता रहा है। पूर्व प्रेमचन्द्र युग, प्रेमचन्द्र युग, प्रेमचन्दोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युगों में जो हिन्दी कहानी लिखी गई हैं वह अपनी विकास रेखा में एक विशिष्ट उपलब्धि की प्रतीति कराती हैं, क्योंकि उसका इतिहास कल्पनामूलकता से लेकर यथार्थपरकता तक का इतिहास है। यह यथार्थ कोई सैद्धान्तिक वाद विवाद तक ही सीमित नहीं रहा है वरन् यह युग जीवन का यथार्थ है और उसका समग्रता से बोध कराता है। हिन्दी समीक्षा और शोध के क्षेत्र में अब तक जो ग्रन्थ प्रस्तुत किए जा चुके हैं उनका सम्बन्ध मुख्यतः हिन्दी कहानी के विकास और कला सौष्ठव से है। इनमें लेखकों का दृष्टिकोण मुख्यतः ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से हिन्दी कहानी का अध्ययन करना रहा है। हिन्दी कहानी में यथार्थवाद से सम्बन्धित यह शोध प्रबन्ध अपने विषय की सर्वप्रथम रचना है। इसके अन्तर्गत लेखिका ने यथार्थवाद को आधुनिक साहित्य की एक प्रमुख विचारधारा मान कर पूर्व प्रेमचन्द्र काल से लेकर वर्तमान काल तक अर्थात् लगभग एक शताब्दी में विकसित हिन्दी कहानी में यथार्थवाद का विभिन्न विकास युगों के आधार पर पृथक् पृथक् अध्यायों में अध्ययन प्रस्तुत किया है।

आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास का इतिहास लगभग एक शताब्दी तक प्रशस्त है। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवादी विचारधारा के समावेश और विकास का भी लगभग यही काल है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से ही हिन्दी कहानीकारों की दृष्टि में यथार्थ की चेतना का आभास होता था। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, इस युग में लिखी गई अधिकांश कहानियां सामान्य मनोरंजन की दृष्टि में

रख कर प्रस्तुत की गयी हैं। उनमें मानव जीवन की यथार्थ समस्याओं के प्रति आग्रह अवश्य विद्यमान है परन्तु यह बहुत सांकेतिक और न्यून रूप में है। यह वह यथार्थ नहीं है जो प्रेमचन्द काल में परिपक्व रूप में दृष्टिगत होता है। इसका एक कारण सम्भवतः यह है कि पिछले सौ वर्षों में बौद्धिकता और वैज्ञानिकता का जो बोध हमारे देश में हुआ, उसमें जनता के दृष्टिकोण को धीरे-धीरे यथार्थपरक बनाया। प्रबन्ध की लेखिका का यह मत है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद का जो समावेश हुआ है उसका सम्यक् अध्ययन करने की दृष्टि से कहानी एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इस दृष्टि से यह शोध प्रबन्ध इस क्षेत्र विशेष में विश्वविद्यालय स्तर पर किया गया प्रथम अनुसंधान कार्य कहा जा सकता है और इस रूप में निश्चय ही एक अभाव की पूर्ति करता है।

———

अध्याय २

# पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद

## (क) युगीन पृष्ठभूमि

हिन्दी गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं की भांति कहानी का आविर्भाव भी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में हुआ । पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी के अन्तर्गत इस उद्‌भव काल से लेकर प्रेमचन्द के आविर्भाव तक की रचनाओं को परिगणित किया जा सकता है । ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह युग चतुर्मुखी जागरुकता का सूचक है । साहित्य के क्षेत्र में यह जागरुकता विशेष रूप से इसलिए लक्षित होती है, क्योंकि अपने आविर्भाव के समय से ही आधुनिक हिन्दी साहित्य यथार्थपरक दृष्टिकोण को क्रमशः अंगीकृत करता रहा है । उन्नीसवीं अर्धशताब्दी में भारत में लिथोग्रेफिक प्रेस की स्थापना हो चुकी थी, जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी पुस्तकों का मुद्रण और प्रकाशन बहुलता से होने लगा था । विभिन्न भाषाओं का लोकप्रिय साहित्य हिन्दी में अनुवादित रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था । इन भाषाओं में जहां एक ओर अंग्रेजी तथा रूसी आदि विदेशी भाषाएँ थीं, वहाँ दूसरी ओर बंगला, गुजराती और मराठी आदि भारतीय भाषायें भी थीं । अनूदित कृतियों में बड़ी संख्या कथा साहित्य विषयक रहीं, क्योंकि हिन्दी में इस विधा के प्रति पाठकों की रुचि का जागरण भारतेन्दु युग के लोकप्रिय कथाकार कर चुके थे । इस पृष्ठभूमि ने हिन्दी कहानी साहित्य के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका का कार्य किया यहां पर संक्षेप में इसी युगीन पृष्ठभूमि का विविध क्षेत्रीय परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है । ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह वह युग था जब भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम अंग्रेजी शासकों के द्वारा पूर्ण रूप से दमित हो चुका था । इसके पश्चात् अंग्रेजी शासन नीति में व्यापक परिवर्तन भी हुए थे । परिणामतः भारतीय समाज में चतुर्मुखी जागरुकता लक्षित हुई । यहाँ पर समकालीन विभिन्न क्षेत्रीय परिस्थितियों का पृथक्-पृथक् परिचय दिया जा रहा है, क्योंकि उन्होंने युग को पृष्ठभूमि के निर्माण में योग दिया । साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न विधाओं के अन्तर्गत जो विकास हुआ, उसकी आधारभूमि भी विविध क्षेत्रीय परिस्थितियां रहीं । जहां तक कहानी साहित्य का सम्बन्ध है, उसमें समाविष्ट यथार्थवादी तत्वों के विश्लेषण के पूर्व यह आवश्यक है कि उन परिस्थितियों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जाय, जो कहानीकारों के दृष्टिकोणगत परिवर्तन का मूल कारण है ।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—आधुनिक हिन्दी कहानी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने भी इसके विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका का कार्य किया है। प्रारम्भिक हिन्दी कहानी मे संस्कृति का जो स्वरूप परिलक्षित होता है, वह वास्तव में मध्ययुगीन संस्कृति का ही प्रभाव है। वास्तव में यह संस्कृति धार्मिक भावना प्रधान है और इसके आधारभूत तत्व धर्म क्षेत्रीय मान्यताओं से अनुप्राणित हैं। कुछ विद्वानों का यह अनुमान है कि पूर्ववर्ती सांस्कृतिक परम्परा व्यक्ति प्रधान नहीं थी। इसीलिए इस काल मे विज्ञान का विकास नही हो सका। वास्तव में उन युगों में विभिन्न विषयों के क्षेत्र में ज्ञान के साधन भी सीमित थे। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, धर्म प्रधान इस संस्कृति में वैयक्तिक जीवन, सांस्कृतिक जीवन और राजनैतिक जीवन आदि सभी क्षेत्रों में धर्म का सर्वोपरि स्थान था। इसीलिए मानव भौतिक सुख की अपेक्षा पारलौकिक जीवन और पुनर्जन्म में अधिक विश्वास रखता था। इस प्रकार के विश्वासों के कारण धर्म का स्वरूप विकृत हो गया और पुरोहितवर्ग ने धर्म को शोषण का एक माध्यम बना दिया। वैज्ञानिक शोधों के अभाव में और धर्म के प्राधान्य ने प्रायः सभी वर्गों के मनुष्यों को भाग्यवादी बना दिया। वे दुर्भाग्य और सौभाग्य के सूचक प्रत्येक कार्य कलाप में ईश्वरीय इच्छा और शक्ति का हाथ मानने लगे। उन्नीसवीं अर्धशताब्दी में संस्कृति के क्षेत्र में जो परिवर्तनशीलता आई, उसके फलस्वरूप संस्कृति का नवीन स्वरूप निर्धारण हुआ। वास्तव में इस काल में सामाजिक विकास के समानान्तर ही सांस्कृतिक विकास भी हुआ। सम्भवतः इसी कारण से इस युग में औद्योगिक सभ्यता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और यूरोपीय भौतिकवादी संस्कृति के प्रभावस्वरूप देश में एक नई संस्कृति का जन्म हुआ। इस संस्कृति में आभ्यान्तरिक रूप से एक ओर प्राचीन भारतीय परम्पराओं पर बल दिया गया था और दूसरी ओर बाह्य रूप में अंग्रेजी रीति रिवाजों का अंधानुकरण था। यह संस्कृति वास्तव में नौकरशाही संस्कृति थी, जिसके लिए अंग्रेज ही आदर्श थे। यह आदर्श अनुकरण पर निर्भर था जिसकी पृष्ठभूमि में भारतीय संस्कृति के विरोधी तत्व थे। परन्तु अपनी समस्त सीमाओं के होते हुए भी यह सांस्कृतिक विकास में सहायक हुए। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि इस काल में जो प्रमुख भारतीय नेता हुए वे भी संस्कृति के इन दोनों पक्षों में से एक-एक के समर्थन और विरोध में हो गये। उनमे से कुछ का यह मत था कि प्राचीन और रूढ़िवादी परम्पराओं का अनुगमन देश के लिए श्रेयस्कर है तथा कुछ की यह धारणा थी कि आधुनिकतावादी बनने में ही देश का हित है। श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने इस विषय में पर्याप्त सुगमता से विचार करते हुए यह निर्देशित किया है कि अनेक नेतागण विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय में भी आस्था रखते थे। केशवचन्द्र सेन ने तो इसी समन्वय के प्रतीक स्वरूप एक धार्मिक पुस्तक का भी सम्पादन किया था जिसमें हिन्दू, बौद्ध, यहूदी, इसाई, इस्लाम तथा चीनी धार्मिक ग्रन्थों से प्रार्थनाएं संकलित की गयीं थी। इस नवीन धारणा के विरुद्ध जो रूढ़िवादी नेता थे वे हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों को एक करके एकेश्वरवाद का नारा लगा रहे थे, जिससे हिन्दू धर्म के

अनुयायी विकेन्द्रित न हो सकें। इस एकेश्वरवाद के प्रचार और साम्प्रदायिक एकता के लिए यह आवश्यक था कि संस्कृति के उस रूप का अनुगमन किया जाय जिसका सम्बन्ध प्राचीन भारत से था। यह इसलिए भी आवश्यक था, क्योंकि अनेक पाश्चात्य विचारक प्राचीन भारतीय भाषा, साहित्य, संस्कृति और सभ्यता में रूचि ले रहे थे। इसका फल यह सामने आया कि संस्कृति एक सर्वसुलभ वस्तु बन गयी और उसमें किसी धार्मिक संप्रदाय की प्रधानता के स्थान पर मानवतावादी दृष्टिकोण का समावेश हो गया। दूसरे शब्दों में, आशय यह है कि नवनिर्मित संस्कृति मानव मात्र की एकता और कल्याण में विश्वास रखती थी। समकालीन अनेक संस्थाओं और नेताओं ने भी इसी का अनुमोदन किया था और उसे लोक प्रचलित रूप प्रदान किया था।

इस प्रकार से, उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम चतुर्थांश और (बीसवीं शताब्दी का प्रथम चतुर्थांश सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से नव जागरण का युग है जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, इस काल में नवीन मान्यताओं का समावेश हुआ और प्राचीन रूढ़ियों की समाप्ति हुई ऐसा इस कारण सम्भव हो सका क्योंकि राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक नेताओं ने उसे एक युगीन आवश्यकता समझा और इसीलिए अपने कट्टरवादी दृष्टिकोण से उसे उदारवादी बनाया। जो नेता उदार दृष्टि को अपनाने के पक्ष में नहीं थे, वे भी राष्ट्रीय एकता का विचार करके उदार बन गए। कुछ विद्वानों का यह भी अनुमान है कि सम्भवतः इसी दृष्टिगत उदारता के कारण भारतीय जनता के सांस्कृतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन तो आ गया परन्तु उनके लिए उन्हें अपने धार्मिक विश्वास भी बदलने पड़े जब कि मध्ययुग में ऐसा सम्भव नहीं हो सकता था।

सामाजिक पृष्ठभूमि -/उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय नागरिक व ग्रामीण समाज में ग्राम-पंचायत, जाति-व्यवस्था, तथा संयुक्त परिवार आदि संस्थाएं विद्यमान थीं। यद्यपि ग्राम-पंचायत, एक शासकीय तथा आर्थिक-व्यवस्था थी परन्तु फिर भी वह जाति-व्यवस्था के कार्यों को करती थी। जाति-व्यवस्था में व्यक्ति जिस जाति में उत्पन्न होता, उसका कार्य, खान-पान व विवाह आदि उसी में होता। इस काल में समाज चार वर्गों में विभजित था और उनमें भी अनेक उपजातियां थीं। वह भी वर्णों की ही भांति कट्टर नियमात्मक होती थीं। हिन्दू परिवारों की प्रमुख विशेषता उसकी संयुक्तता थी। के० एम० पान्निकर ने बताया है कि व्यवहारिक रूप से कुछ संयुक्त परिवार ही उपजाति का निर्माण करते हैं तथा प्रत्येक हिन्दू इस सीमा के बाहर किसी समाज तथा समूह को स्वीकार नहीं करता। संयुक्त परिवार तथा जातीय संस्थाएं राज्य व न्याय से अलग थीं। वह धर्म निरपेक्ष न होकर हिन्दू कानूनों व रीति रिवाजों पर आधारित थीं। यह कारण है कि राजकीय व्यवस्था में परिवर्तन तथा अन्य विदेशी आक्रमणों के होने पर भी उनमें परिवर्तन न आ सका परन्तु कुरूपताएं अवश्य आ गयी। के० एम० पान्निकर के ही

मतानुसार हिन्दू समाज में इन कुरूपताओं के आने का कारण उसकी रक्षात्मक स्थिति थी। समाज का मुख्य ध्येय यह हो गया था कि समाज, सामाजिक संस्थाओं तथा सभी रीति रिवाजों की रक्षा की जाय जो कुछ अपना है, उसे समेट लिया जाय। ऐसी स्थिति में समाज ने सभी कुरूपताओं को भी अंगीकार किया जो कुछ उसका अपना था। इस समाज की यह भी एक विशेषता थी कि इसके वैयक्तिक अधिकारों को महत्व नहीं दिया जाता था। यदि कोई मानव सुधार करना भी चाहता तो उसे समाज से बहिष्कृत होना पड़ता था। इसीलिए समाज में कोई सुधार न हो सका। ये तीनों संस्थाएँ व्यक्ति पर वैचारिक नियंत्रण रखती थीं और हमें उन मान्यताओं को स्वीकार करना पड़ता था। समाज में व्यक्ति का अस्तित्व किसी समूह के सदस्य के नाते था।

(यह वह समय था जब समाज धर्म के नाम पर सब बुराइयों को स्वीकार कर लेता था। समाज में नारी की दयनीय स्थिति थी। वह केवल उपभोग की ही सामग्री समझी जाती थी। यही कारण है कि नवजात कन्याओं का गला दबा कर मार डालने के दृष्टांत भी कुछ जातियों में मिलते हैं। विधवा को पति की चिता पर जलकर भस्म होना पड़ता था। इस समारोह को पुरुष वर्ग बड़े गौरव से देखता था। छुआ-छूत की भावना भी प्रबल रूप में थी। देवी देवताओं की विभिन्न रूपों में कल्पना की जाती थी। पूजा-पाठ पँडा पुरोहित संपन्न करते थे। इससे समाज में उनका मान भी होता और आर्थिक लाभ भी। इन्हीं लोगों के कारण समाज में सुधार नहीं हो पाता था। यहां तक कि जो जाति जितने अधिक अन्धविश्वासों को प्रश्रय देती थी वह उतनी ही उच्च समझी जाती थी। सुधारवादी दृष्टिकोण का अनुगमन करने पर बहिष्कृत होना पड़ता था। स्थिति में समाज कुरूपताओं के विषम वर्ग में गोते लगा रहा था। उसी समय इन सब बुराइयों को देख ईसाई मिशनरियों ने धर्म-परिवर्तन से लाभ उठाने के लिए समाज सेवा तथा नवीन विचारों का आरम्भ किया। हमारे देशवासी जो कुरूपताओं से ऊब चुके थे उन्होंने धर्म-परिवर्तन केवल सामाजिक स्वतंत्रता के लिए किया। अब शिक्षित वर्ग का ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ और विभिन्न सामाजिक, धार्मिक आन्दोलनों का जन्म हुआ। इन आन्दोलनों का मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों का दमन करना था) राजा राममोहन राय ब्रह्मसमाज के प्रवर्तक थे। उन्होंने ईसाई धर्म के मर्म को समझ कर धर्म म सुधार का यथाशक्ति प्रयत्न किया। उस समय तथा भरतीय राजनीति को आधुनिक रूप देना सबसे बड़ी देश सेवा समझी जाती थी। बहु विवाह तथा बाल विवाह के कारण कुप्रथाएँ अधिक प्रचलित थीं। इस समय सती प्रथा बंगाल में अन्य प्रदेशों की तुलना में दस गुनी अधिक थी। राजा राममोहन राय ने विधवा विवाह का अनुमोदन किया तथा बालविवाह का विरोध किया। वह स्वयं एक कुलीन ब्राह्मण होते हुए भी 'काला समुद्र' पार कर अन्धविश्वासों को नष्ट कर यूरोप गये। उन्होंने लोगों में यह भावना भी भरी कि शास्त्रों में भी पहले लड़की को चौथाई भाग तथा पति की मृत्यु पर पत्नी व उसके पुत्र का समान

अधिकार था। इनके अतिरिक्त देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा केशवचन्द्र सेन ने भी सामाजिक सुधार के क्षेत्र में अनेक कार्य किये। उन्होंने नारी शिक्षा, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, आदि का केवल प्रचार ही न किया प्रत्युत् उन्हें व्यावहारिक रूप भी दिया। इसका कुछ वर्गों द्वारा विरोध हुआ तो उन्होंने १८९२ ई० में 'सिविल मैरेज ऐक्ट' पास कराया, जिससे अन्तर्जातीय विवाह होने लगे। उन्होंने अकाल पीड़ित व महामारी से द्रवित जनता के लिए भोजन व धन वितरण की व्यवस्था भी की।

इस काल के सामाजिक आन्दोलन में प्रमुख आर्यसमाज की स्थापना सन् १८७५ ई० में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा हुई। अन्य आन्दोलनों की भाँति यह शहरों के मध्य वर्ग के विशिष्ट लोगों तक ही सीमित न रहकर भारतीय गांवों की समस्त जनता तक पहुँचा और लाखों व्यक्तियों का धर्म बन गया। हिन्दी को माध्यम बनाकर आर्यसमाज का प्रचार एवं प्रसार हुआ, जिससे सभी ने लाभ उठाया। इसमें अंग्रेजी को बिल्कुल नहीं अपनाया गया। उन्नीसवीं शताब्दी में मातृभाषा को अपनाना एक महत्वपूर्ण एवं सराहनीय बात था। इस समाज की विशेषता यह थी कि इसमें जाति व्यवस्था का आधार जन्म या जाति न होकर गुण, कर्म तथा स्वभाव आदि माना गया था। इस समाज ने यह भी बताया कि अछूत जब तक शिक्षित नहीं होंगे, तब तक किसी भी स्थिति में उच्च वर्ग के सामने नहीं आ सकते। इसलिए इसमें अछूतों की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। नारी शिक्षा के प्रचार तथा बाल-विवाह का विरोध भी इस समाज के द्वारा किया गया। इस प्रकार से उन्नीसवीं शताब्दी में जितने भी आन्दोलन हुये, वह सभी धार्मिक तथा सांस्कृतिक थे। उन्हें विशुद्ध सामाजिक आन्दोलन की संज्ञा नहीं दी जा सकती। फिर भी उस समय समाज में जो विकृतियां थीं वे सब खास कर धर्म के कारण ही थीं। इसीलिए धर्म में परिवर्तन आवश्यक था। इस युग में रूढ़िवादी समाज का विरोध ही सबसे बड़ी क्रान्ति थी।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, उन्नीसवीं शताब्दी से समाज में नारी को समान अधिकार देने के बहुत से प्रयत्न हुए। इनका नतीजा यह सामने आया कि सती प्रथा, बाल हत्या आदि क्रूर प्रथाएँ बीसवीं शताब्दी के लिए केवल ऐतिहासिक कथाएं मात्र रह गयी थीं। इसीलिए इस युग को सुधारपरक संस्थाओं का युग भी कहा जा सकता है। यद्यपि अब भी कुछ कट्टर विरोधी और पुरातनपंथी लोग इन सुधारकों के विरुद्ध कार्य करते रहे थे और यदि कोई सुधारक विधवाविवाह करता था तो उसके सहयोगी मित्र प्रीति भोज आदि में उसे सम्मिलित नहीं होने देते थे। फिर भी भारत सेवक समाज ने सुधारकों को व्यावहारिक शिक्षा देकर उनमें उत्साह व निष्काम भाव उत्पन्न कर उसकी पूर्ति की। सन् १९०५ में गोपालकृष्ण गोखले द्वारा भारत सेवक समाज की स्थापना हुई थी, जिसका उद्देश्य सामाजिक कार्यकर्ताओं का निर्माण करना था। इससे पूर्व सामाजिक संस्थाओं में प्रधान रूप से धर्म भावना निहित रहती थी। यह संस्था कम से कम उस दोष से तो मुक्त ही थी। इसीलिए इसे

विशुद्ध 'समाज' कह सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति इसके कार्यकलाप में भाग ले सकने का अधिकारी था। राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दू व मुसलमान परस्पर विषमता की भावना भरे रहते थे। गोपालकृष्ण गोखले ने हिन्दू मुस्लिम एकता का आदर्श स्थापित कर इसे दूर किया। केवल स्नातक व्यक्ति ही इस संस्था का सदस्य हो सकता था। नारी शिक्षा, मजदूरों में सहकारी आन्दोलन, मेले, उत्सवों, यात्रियों की सहायता तथा मुसलमान बस्तियों में हिन्दू कार्यकर्ताओं को सेवार्थ भेजकर हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करना आदि इस संस्था के प्रमुख कार्य थे।

इस युग में नारी समाज में चतुर्मुखी जागरूकता दिखायी देती है। भारत सेवक समाज के सदस्य जी० के० देवधर ने उत्तरप्रदेश के अकाल पीड़ितों की सहायता में महिला कार्यकर्ताओं की कमी को अनुभव किया। अतः १ ०६ में उस सदन की स्थापना हुई। इसने प्रथम बार स्त्रियों के लिए डाक्टरी व नर्स का पेशा घृणास्पद न कह कर गौरवमय बताया गया। इसमें हिन्दू स्त्रियों के अतिरिक्त मुसलमान व पारसी स्त्रियां भी समान भाव से सम्मिलित हुईं। मालवारी व डिगमल ने भी बम्बई में सेवा सदन को स्थापित किया। आधुनिक युग में विभिन्न जातीय महिलाओं में परस्पर सौहार्द का श्रेय इसी को है इसी काल में देश में प्रथम महिला विश्वविद्यालय की स्थापना भी हुई। इस विश्वविद्यालय के संस्थापक घोन्दो केशव कार्वे बीस रुपया मासिक वेतन पाने वाले थे। विधुर होने पर ब्राह्मण कार्वे ने विधवा विवाह किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने विधवा आश्रम की नींव भी डाली। विधवाओं के सुधार के लिए यह आवश्यक था कि उन्हें शिक्षित किया जाय। उनकी शिक्षा के लिए उन्होंने एक स्कूल की स्थापना की। इस स्कूल की शिक्षा प्रणाली से प्रभावित होकर विधवाओं के अतिरिक्त कुमारी लड़कियाँ भी इसमे आने लगीं। सन् १६१६ मे इसी संस्था में महिला विश्वविद्यालय की नींव पड़ी। यह भारत का प्रथम महिला विश्वविद्यालय था। उसके उपकुलपति सर भंडारकर थे। इस विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा थी। स्त्रियों के लिए गृह-विज्ञान आवश्यक था। आज भी गृह विज्ञान की शिक्षा को आवश्यक माना जाता है और यह कार्वे की ही प्रेरणा का फल है।

सन् १९०६ मे भारतीय दलित जन संघ की स्थापना हुई। इसमें सबसे सक्रिय भाग लेने वाले गोपालकृष्ण गोखले थे। अछूत वर्ग पर जागरण काल के सुधारकों की दृष्टि नहीं पड़ी थी। इस समय तक अछूत प्रथा को जाति का कलंक समझा जाने लगा था। सबसे प्रमुख बात इसमे यह थी कि स्वयं अछूत इसके माध्यम से समानाधिकार के लिए कटिबद्ध हुए। सन् १६१० में महाराष्ट्र के निम्न वर्ग के व्यक्तियों ने भारत मंत्री के प्रमुख समानाधिकार पाने के लिए प्रार्थनापत्र भेजा तथा जालंधर में मेहतरो ने बाल्मीकि समाज की स्थापना की। इसी काल में आर्य भ्रातृ मंडल की स्थापना भी हुई। इस मंडल का उद्देश्य जाति व्यवस्था को समूल नष्ट करना था इसी

उद्देश्य से सन् १९१२ में एक भोजन-आयोजन भी सम्पन्न हुआ, जिनमें विभिन्न प्रान्तों से १५० लोग सम्मिलित हुए। इसमें से अधिकांश को बाद में प्रायश्चित करना पड़ा था। भौतिक व आर्थिक परिस्थितियां इस समय तक इतनी प्रबल हो गयी थीं कि साधारणजन रीति रिवाजों को निभा नहीं सकते थे। इसीलिए खान-पान में भी अब भेद कम रह गया था। सन् १९११ में सामाजिक सेवा समिति के रूप में भारत सेवक समाज के सदस्य एन० एम० जोशी ने श्रमिकों के मनोरंजनार्थ एक संस्था की स्थापना की। इसी समिति के कारण भारतीय श्रमिक आन्दोलन का उदय हुआ। साथ ही सन् १९१४ में सेवा समिति की स्थापना हृदयनाथ कुंजरू ने इलाहाबाद में अकाल पीड़ित जनता की सेवा के लिए की। इसके प्रमुख कार्य शिक्षा का प्रचार तथा अछूत वर्ग की सेवा आदि थे।

इस प्रकार से उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में देश में सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में एक नवीन जागरण हुआ। यह जागरण विगत शताब्दियों से परम्परागत रूप में चले आने वाली कुरीतियों और रूढ़िवादी परम्परा के विरुद्ध उनके उन्मूलन के उद्देश्य से एक आन्दोलन के रूप में हुआ इस आन्दोलन के प्रसार में जिन समाज सुधारक संस्थाओं ने जन्म लेकर महत्वपूर्ण भूमिका निभायी उनसे सम्बन्धित संक्षिप्त परिचयात्मक परिचय ऊपर प्रस्तुत किया जा चुका है। इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि आलोच्य काल में आदर्शवादी भावभूमि से पृथक यथार्थ की ओर क्रमशः उन्मुख होना प्रायः सभी संस्थाओं की नीति रही है। वस्तुतः समाज में नव जागरण एवं यथार्थ को प्रत्यक्ष आत्मसात् करने की क्षमता ने आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य को भी अनुप्राणित किया एवं हिन्दी कहानी के लिए एक नवीन पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया जो समाज के यथार्थ रूपों को अपने में समाहित किए हुये है और जिसका विकास हिन्दी कहानी साहित्य के विभिन्न विकास कालों में अपने नवीन रूपों में दृष्टिगत होती है।

आर्थिक पृष्ठभूमि—युग युगान्तर से समाज का जीवन सदैव विभिन्न संस्थाओं एवं पृष्ठभूमि पर आधारित होता है। इन्हीं पृष्ठभूमियों में आर्थिक पृष्ठभूमि भी अपने युग की सामाजिक प्रणाली पर आधारित होती है। समाज की आर्थिक व्यवस्था सामाजिक चेतना, संगठन आदि को एक नवीन गति प्रदान करती है। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था के निर्माण तत्व उत्पादन शक्तियों का वर्गीकरण, आर्थिक वर्गों के आपसी सम्बन्ध, भूमि व्यवस्था तथा उत्पादन पद्धति आदि का अर्थ व्यवस्था से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अंग्रेजी शासनकाल के पूर्व भारतवर्ष का प्रत्येक ग्राम एक आर्थिक इकाई था। दैनिक उपयोग की आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन और आदान प्रदान विनिमय के रूप में ही होता था। अर्थ व्यवस्था जन्म तथा श्रम विभाजन पर आधारित थी। व्यक्ति अपनी जाति के परंपरात्मक कार्यों को ही अपना आर्थिक जीवन का साधन बनाता था। इसके अतिरिक्त स्त्री पुरुषों में कार्य विभाजन की समुचित

व्यवस्था थी । इस दृष्टि से अर्थ व्यवस्था संगठित एवं व्यवस्थित थी । इस समय देश में राजनीतिक संस्थाएं निश्चित नहीं थीं फिर भी ग्राम पंचायत राजनीतिक संस्थाओं का अस्तित्व मात्र था । इस व्यवस्था का मुख्य कर्त्तव्य जाति व्यवस्था के नियमों का पालन करना ही होता था । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में भारत के ग्राम स्वतः में अपने पूर्ण होते थे । अपनी आवश्यकताओं की प्रत्येक उपलब्धि का वह गांव में ही उपार्जन कर लेते थे । आवश्यकता से अधिक उत्पादन को वह शहरों में ले जाकर बेच देते थे । इस प्रकार व्यापार का क्षेत्र शहरों तक ही सीमित रहा । इस समय यातायात के अधिकांश साधन प्राकृतिक थे, मानव निर्मित नहीं । नदियों द्वारा व्यापार अधिक होने के कारण सभी बड़े बड़े शहर नदियों के किनारे बसे थे । भूमि पर सार्वजनिक अधिकार ही होता था, व्यक्तिगत अधिकार की प्रणाली नहीं थी । वैज्ञानिक साधनों का अभाव होने पर भी देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी । भारत की आर्थिक स्थिति सामान्यतः मध्ययुगीन यूरोप के ही समान थी और यूरोप भारतीय व्यापार का बाजार था । इसीलिए कुछ यूरोपीय इतिहासकारों का अनुमान था कि उस समय यूरोप का सोना भारत में जा रहा था । अंग्रेज भारतवर्ष में अन्य विजेताओं की भांति लूटपाट के लिये नहीं बल्कि आर्थिक शोषण की नीति को लेकर आये । उनका दृष्टिकोण अर्थ-व्यवस्था के प्रति तटस्थ न रहकर उस पर अधिकार करने का था । अंग्रेजों की नीति शोषण की नीति थी जो आन्तरिक रूप से समाज को खोखला बना रही थी । उन्होंने कानूनों, अधिकारों और सभ्यता का मिथ्या प्रदर्शन कर सैकड़ों वर्षों तक भारत को लूटा । सर्वप्रथम भारत में वह व्यापारी रूप में आये । तत्पश्चात् शासन सूत्र को अपने हाथों में लेकर शीघ्र ही अपने स्वार्थ और हित को प्रधान उद्देश्य बनाकर नवीन कानूनों का निर्माण कर इंग्लैण्ड की भांति भूमि व्यवस्था की स्थापना की । भारत को खेतिहर देश बनाना उनका मुख्य ध्येय था ताकि कच्चे माल की प्राप्ति भारत से हो सके और मशीनों द्वारा तैयार माल इंग्लैंड से भारत के बाजारों में बिना किसी प्रतियोगिता के बिक सके । उन्होंने अंग्रेजी सहायक वर्ग के लिए जमींदारी प्रथा का श्रीगणेश किया शोषण की प्रतिक्रिया को पूर्ण करने के लिए रेलों का जाल बिछवा दिया जिससे व्यापार आदि में सुविधा मिल सके एवं इंग्लैंड से आये पक्के माल की खपत हो सके । इस प्रकार से उन्होंने सदैव यही प्रयास किया कि भारत का आर्थिक स्तर सदैव वैसा ही बना रहे और वह सदैव इंग्लैंड का मशीनों से तैयार माल खरीदें ।

अंग्रेजों की उपर्युक्त आर्थिकनीति के कारण भारत के कुटीर उद्योग धन्धे प्रायः समाप्त से हो गये । इसके फलस्वरूप भूमि पर भार पड़ा क्योंकि जीविकोपार्जन का यही एक साधन था, दूसरे अंग्रेजों ने व्यक्तिगत अधिकार भी भूमि पर दे दिये । इससे भूमि छोटे छोटे टुकड़ों में बँट गयी । अतः भूमि की उत्पादन क्षमता भी कम

हो गयी। इग्लैंड की मिलों की रूई भारत में पर्याप्त रूप में न आ सकी अतएव व्यक्तिगत लाभ तथा सरकार के प्रोत्साहन से भारतीय कृषि व्यापार विदेशों से हो गया। इस स्थिति में अकाल-पीड़ित समय में सभी प्रान्त एक दूसरे पर अन्न की सहायता के लिये निर्भर रहने पर बाध्य हुये।

मशीनों द्वारा सस्ती व सुडौल वस्तुओं के कारण पुराने भारतीय उद्योग धन्धे नष्ट तो हो गये पर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां जैसे अमेरिका के गृहयुद्ध तथा क्रीमिया युद्ध आदि के कारण भारत में जूट का कारखाना खोलना नितान्त आवश्यक हो गया। इसके साथ भारत में आधुनिक कल कारखानों की स्थापना हुई। उपर्युक्त प्रमुख कारण के अतिरिक्त भारत में मजदूर भी सस्ते थे और उनके लिये कोई कानून नहीं बने थे। इसलिए भी उद्योग-धन्धों को अधिक लाभ की आशा थी। इसलिए ब्रिटिश सरकार की नीति के विरुद्ध केवल परिस्थितिवश भारत में आधुनिक उद्योग स्थापित हुये। जिससे देश का आर्थिक विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम तीस वर्षों में भयंकर अकाल से लगभग दो करोड़ व्यक्ति मृत्यु के ग्रास बने। इसी समय फसलों की बरबादी, पुराने उद्योग-धन्धों का विनाश भी हुआ। परन्तु फिर भी खेती पर अधिक निर्भरता ही बढ़ी। इसके अलावा सरकार की लगान व कर नीति अति निर्ममतापूर्ण होने के कारण भी जनता का बलिदान हुआ। भारत का अधिकांश धन विदेश में अपव्यय होता था, जिसकी पूर्ति दीन हीन कृषक वर्ग से की जाती थी . इस स्थिति में उनकी दशा बहुत ही दयनीय हो गयी थी।

राजनैतिक पृष्ठभूमि—आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में राजनैतिक चेतना के जागरण के संकेत भी पिछली शताब्दी से ही मिलने लगते हैं। वास्तव में सन् १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् अंग्रेजी शासन की नींव भारतवर्ष में और भी दृढ़ हो गयी थी। इस समय तक देश में राजनैतिक असंतोष बहुत बढ़ चुका था और विभिन्न रियासतों में पृथक् पृथक् रूप से इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हो रही थी। जैसा कि सर्वविदित है, इस समय भारत के अनेक राज्यों में शासन व्यवस्था अव्यवस्थित थी। प्रत्येक रियासत में कानून राजा या नवाब की इच्छा पर आधारित थे। राजा वैधानिक प्रतिनिधि न होकर दैवी राजदूत माना जाता था। इसलिए वह जो भी कानून बनाये, जनता को उसे मानना पड़ता था। राजा कभी भी जनकल्याण का ध्यान नहीं रखता था। यदि कभी किसी राजा ने समाज कल्याण को अपनाया भी तो वह उसके व्यक्तिगत गुण व महानता का ही प्रतीक होता था। इस समय राजा का कर्तव्य राज्य की सुरक्षा करना होता था और वैसा न करने का आरोप लगाकर अंग्रेज उसके राज्य पर अधिकार कर लेते थे। आर्थिक नीति भी राजाओं की विलासिता की पूर्ति के स्रोत के कारण क्षीण और असफल थी। युद्ध व्यक्तिगत स्वार्थों और आकांक्षाओं के कारण अधिक होते थे। इस स्थिति में पारस्परिक फूट व चारित्रिक पतन होना स्वाभाविक था, जिसका लाभ यूरोपीय लोगों ने

व्यापारी रूप में आकर उठाया और ईस्ट-इण्डिया कम्पनी को सबसे प्रबल शक्ति बना दिया।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देश की राजनैतिक स्थिति में एक नवीन युग का आरम्भ सन् १९३३ के करीब से होता है। अब ईस्ट-इण्डिया कम्पनी व्यापारी संस्था के स्थान पर शासन सत्ताधारी संस्था के रूप में सामने आई। उसमें प्रत्येक व्यक्ति धर्म, जाति, राष्ट्र तथा वर्ग भेद के नौकरी प्राप्त कर सकता था। अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया और ऐसी शिक्षा देने वाली संस्थाओं को सरकारी सहायता भी दी गई। महारानी विक्टोरिया ने उदारवादी नीति तो अपनाई पर व्यावहारिक रूप में उस पर अमल न हो सका। भारतवासियों को कोई आजादी न थी। प्रेस की स्वतंत्रता को भी नष्ट किया गया। लिटन के समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध लगाए। भारत की गुलाम जनता के लिए अंग्रेज महारानी ने जो शस्त्र कानून बनाए उनके अनुसार भारतीय नागरिक शस्त्र नहीं रख सकते थे। अंग्रेजों की आर्थिक नीति सदैव शोषण की रही थी, जिससे ब्रिटेन का व्यापार किसी भी प्रकार से बढ़े। भारतीय नागरिक उच्च पदों पर नियुक्त नहीं किये जाते थे। जो थे भी उनमें कमी कर दी गयी थी। लार्ड रिपन के काल में हलवर्ट बिल का विरोध किया गया। इस समय वर्ण भेद भी स्पष्ट होने लगा था। के० एम० पन्निकर ने अपनी पुस्तक में चाय बगानों के मालिकों के शोषण का विवरण दिया है कि चार व्यक्तियों के योरोपियन परिवार का एक सौ दस भारतीय सेवा टहल करते थे। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय कितना दुर्दशापूर्ण जीवन बिताते थे तथा अंग्रेज जातीय उच्चता का ढोंग करते थे।

इस युग की राजनैतिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व जिन नेताओं ने किया, उनमें सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, महादेव गोविन्द रानाडे, दादाभाई नौरोजी तथा फीरोजशाह मेहता आदि प्रमुख हैं। ये राजनीतिज्ञ केवल वैधानिक सुधार ही चाहते थे। देश को स्वतंत्र कराने का आन्दोलन उनकी दृष्टि में नहीं था। यही कारण है कि इस समय के इन नेताओं ने इस दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया। उनकी दृष्टि में ब्रिटेन ही वैधानिक सुधार के क्षेत्र में उनका मार्ग दर्शक था। वे विक्टोरिया-युगीन उदारवादी विचारों से इतने अधिक प्रभावित थे कि अपने देश के हितार्थ कुछ नहीं समझते थे। इन नेताओं का विश्वास था कि भारत का हित ब्रिटिश सरकार के सहयोग में ही है। इस रूप में अंग्रेजों के आगमन से ही भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म हुआ क्योंकि अंग्रेजों के आने से ही ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हुई थीं। सुदृढ़ राजकीय प्रणाली, नवीन औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था, आधुनिक वर्ग का प्रदुर्भाव आदि द्वारा भारतीय राष्ट्रीयता के जन्म और विकास में योग मिला। दूसरे ब्रिटिश स्वार्थों से भी इसे बल मिला और भारतीय एकता के सूत्र में बांध सके।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लार्ड कर्जन की पक्षपातपूर्ण नीति के कारण

देश में विरोध की भावना का विकास हुआ। लार्ड कर्जन ने उच्च नौकरियों में भारतीयों को पृथक् रखने की नीति अपनाई। कलकत्ता कार्पोरेशन तथा विश्वविद्यालयों के प्रति भी प्रतिक्रियावादी नीति लागू की गयी। सन् १९०४ में कर्जन द्वारा विश्वविद्यालय एक्ट पास कर उनके सारे अधिकार छीन लिये गये। इसी समय गोखले का अनिवार्य शिक्षा बिल भी रद्द किया गया। परन्तु इन सभी में महत्वपूर्ण बंग भंग की उसकी नीति थी। इस समय बंगाल व देश की राजधानी कलकत्ता था। यह नगर बौद्धिक व राजनीतिक गतिविधि का केन्द्र था। यहीं से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन संचालित हो सकता था। १६ अक्तूबर सन् १९०५ को बंगाल का विभाजन हो गया। कर्जन के उत्तराधिकारी लार्ड मिन्टो ने भी सुधारवादी नीति के नाम पर साम्प्रदायिक विरोध को वैधानिक रूप प्रदान किया। उसने यह भी कहा कि मुसल-मानों के लिए अंग्रेज हिन्दुओं से अधिक निकट हैं। इस्माइल सम्प्रदाय के धार्मिक नेता शाहजादा आगा खां ने कर्जन के पास अपनी मांगें भेजीं, जिन्हें स्वीकार किया गया। अब हिन्दू व मुसलमान दोनों के प्रतिनिधि बराबर किये गये, जब कि हिन्दू संख्या में अधिक थे तथा मुस्लिम कम थे। हिन्दू मतदाताओं के लिये तीन लाख वार्षिक आय तथा ग्रेजुएट हुए तीन वर्ष की अवधि होना आवश्यक था जब कि मुस्लिम मतदाताओं के लिये तीन हजार वार्षिक आय व तीन वर्ष ग्रेजुएट हुए पर्याप्त था। वास्तव में मिन्टो के सुधार सन् १८९२ के पीछे के सुधार थे, जिन्हें न्युनाधिक हेरफेर कर सुनहरे शब्दों में प्रस्तुत किया गया था। यह नीति आगे बढ़ने की अपेक्षा सदैव पीछे की ओर ढकेलती थी क्योंकि एक ओर तो सुधार की बात दोषी थी तथा दूसरी ओर उग्र राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं का दमन किया जाता था।

इस समय भारत ही नहीं वरन् विश्व के अन्य गुलाम देशों में भी चेतना जाग्रत हो गई थी। इन सबका अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव भारत पर भी पड़ रहा था। भारत में भी दो दल हुए। माडरेट का व्यवहार भिक्षा मांगने सा था और दूसरे का क्रान्ति द्वारा अपना जन्मसिद्ध अधिकार पाना था। कांग्रेस में हिन्दुओं का बहुमत था। केवल लाला लाजपतराय ही एक उग्र राष्ट्रवादी थे। बाल गंगाधर तिलक ने प्रतियोगी सहकारिता को माना जिसका अर्थ है यदि ब्रिटिश सरकार सहयोग करे तो सहयोग अन्यथा असहयोग। इनके अनुयायी भारत की तत्कालीन सरकार से सहयोग करने को भी प्रस्तुत हो गये। यद्यपि अब भी यही मांग करते रहे कि स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है और वह भिक्षा रूप में दयावश नहीं वरन् त्याग और कर्म से ही प्राप्त हो सकती है। यहां पर यह संकेत करना अप्रासंगिक न होगा कि इस समय यूरोप के अनेक देशों में स्वतन्त्रता की मांग बलवती हो रही थी और प्रायः शाश्वत क्रान्ति में लोगों की आस्था बढ़ रही थी। भारत में प्रकट रूप में सरकार सुधारवादी दृष्टिकोण की घोषणा करती रहती थी, परन्तु आन्तरिक रूप

से वह सभी प्रकार से असहयोग आन्दोलन का क्रूरता से दमन कर रही थी। उस समय का इतिहास देखने से यह ज्ञात होता है कि 'वन्देमातरम्' शब्द उच्चारण करने वाले पर भी लाठी प्रहार होता था। विद्यार्थियों पर निर्ममता से प्रहार होते थे इस पर भी बंगला में उपेन्द्रनाथ तथा धीरेन्द्र कुमार घोष 'युगान्तर' तथा 'संध्या' पत्रों द्वारा क्रान्ति मे रत तथा महाराष्ट्र में विनायक राव जी सावरकर 'अभिनव भारत समाज' द्वारा सशस्त्र क्रान्ति की दीक्षा देते थे। पंजाब में लाला हरदयाल ने जो क्रान्ति दल तैयार किया उसी ने अमेरिका में गदर किया तथा बाद में अमेरिका में गदर पार्टी के रूप में सामने आया। भारतीय श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा मानवेन्द्रनाथ राय रूसी क्रान्ति के पक्ष में थे। सन् १६०८ में खुदीराम वसु मातृभूमि पर मिट गया। भारतीय आन्दोलन तो करते थे परन्तु उनमें आध्यात्मिकता का बाहुल्य रहता था वह बौद्धिक कार्य नहीं करते थे। दूसरे सभी क्रान्तिकारी आपस में न मिल सके जिससे आन्दोलन संगठित न हो सका। भारतीय जनता अशिक्षित थी और वह इस आन्दोलन की हिंसक मार्ग की अनुयायी नहीं हो पायी।

इस समय तक देश में गोखले तथा मेहता आदि नेता भारतीय राष्ट्रीय-करण का नेतृत्व कर रहे थे यद्यपि उग्रवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व बाल गंगाधर तिलक तथा विपिनचन्द्र पाल आदि कर रहे थे। दादाभाई नौरोजी जैसे नेता उग्र तथा नरमदल के मध्यम मार्ग का अनुसरण कर रहे थे। उन्होंने ही सन् १६०६ में सर्वप्रथम स्वराज्य शब्द का प्रयोग और माँग की और इसी समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नीति निर्धारण के रूप में स्वराज्य स्वदेशी आन्दोलन तथा राष्ट्रीय शिक्षा से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि इस समय तक स्वराज्य का अर्थ केवल औपनिवेशिक स्वतन्त्रता समझा जाता था। इसी प्रकार स्वदेशी आन्दोलन विदेश निर्मित वस्तुओं को तिरस्कृत करती, राष्ट्रीय शिक्षा के लिए अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का विरोध करती। इसका उद्देश्य राजनीतिक जाग्रत करना था। सूरत में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में परस्पर संघर्ष हो जाने के कारण शीर्षस्थ नेताओं में मतभेद हो गया। उग्र दल द्वारा आयोजित आन्दोलन में भाग लेते हुए अनेक नेता बन्दी बना लिए गए। जन स्तर पर संघर्ष की तीव्रता और व्यापकता के कारण सरकार को राजधानी कलकत्ते से दिल्ली स्थानान्तरित करनी पड़ी और इसके अतिरिक्त राजनीतिक गतिविधि का केन्द्र भी दिल्ली हो गया। इस युग की एक महत्वपूर्ण घटना लखनऊ पैक्ट है। जिसके अनुसार हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य की समाप्ति हुई और इस एकता से स्वराज्य प्राप्ति की माँग को और बल मिला।

**साहित्यिक पृष्ठभूमि**—हिन्दी कहानी में यथार्थवाद के अध्ययन के संदर्भ में यह आवश्यक है कि प्रथम विकासकालीन उस साहित्यिक पृष्ठभूमि को भी ध्यान में रखा जाय जिसमें आधुनिक हिन्दी कहानी का आविर्भाव हुआ। आधुनिक हिन्दी

गद्यात्मक और पद्यात्मक विधाओं की साहित्यिक पृष्ठभूमि का आधार वे प्रवृत्तियाँ हैं जो उन्नीसवीं अर्द्धशताब्दी तक विकासशील थीं, इस काल तक जो पद्य साहित्य लिखा गया था वह श्रृङ्गारिक मुक्तक काव्य था तथा गद्य साहित्य की पद्यात्मकता के कारण गद्य साहित्यांगों में भी पद्य तत्व का समावेश था। उदाहरण के लिए यदि इस काल में लिखे गये उपन्यासों, नाटकों, कहानियों और निबन्धों का अवलोकन किया जाय तो ज्ञात होगा कि उनमें पद्यात्मक उद्धरण बहुलता से समाविष्ट हुए हैं। (आधुनिक काल में भारतीय जीवन पर पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रभाव के फलस्वरूप जो विविध क्षेत्रीय उन्नति हुई है उससे साहित्य के क्षेत्र में भी गतिशीलता आई। भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम के समाप्त होने पर जो विभिन्न क्षेत्रीय विनिमय हुआ उससे हिन्दी साहित्य विदेशी भाषाओं के साहित्य से विशेष प्रभावित हुआ। मुद्रण यंत्रों के आविष्कार और कागज आदि की सुविधाओं के कारण प्रकाशन कार्य में एक क्रान्ति-सी आ गई। केवल इतना ही नहीं अनेक सामयिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन और प्रचार होने से साहित्य अपेक्षाकृत जन-स्तर की वस्तु बन गया। शिक्षित समाज में उसका प्रचार एक युगीन आवश्यकता के रूप में हुआ। इस साहित्य की भाषा भी किसी वर्ग विशेष की आडम्बरपूर्ण भाषा न होकर जन-सामन्य की लोक व्यवहार की भाषा थी।)

(उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही इंशाअल्ला खां लिखित 'रानी केतकी की कहानी' से खड़ीबोली गद्य की परम्परा का प्रवर्तन हो चुका था। शिक्षा और साहित्य का प्रचार बढ़ने के साथ विभिन्न विषयों की पुस्तकों की मांग हिन्दी में बढ़ने लगी और खड़ीबोली हिन्दी का साहित्य समृद्ध हुआ। अंग्रेजी सरकार की नीति के अनुसार हिन्दी साहित्य का विदेशी प्रभाव इस सीमा तक और इस गति से बढ़ा कि अनेक विषयों के उत्कृष्ट ग्रन्थों का विदेशी भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद हुआ। (विदेशी साहित्य के माध्यम से जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण निर्मित हुआ वह आदर्शवाद के प्राचीन आग्रह से सर्वथा मुक्त था और उसमें यथार्थ का समावेश हो रहा था। पश्चिमी सभ्यता के संपर्क और प्रभाव से निम्न वर्ग में समानता की भावना जागृत हुई और अब साहित्य राजा-रानियों के काल्पनिक चरित्रों को छोड़कर यथार्थ समाज के पात्रों का चित्रण करने लगा। अंग्रेजी साहित्य के अतिरिक्त बंगला साहित्य ने भी इस काल के हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया।) इसीलिए जहाँ एक ओर शेक्सपियर, सर वाल्टर स्काट, शेली और कीट्स के साहित्य का हिन्दी में अनुवाद और प्रचार हुआ वहाँ दूसरी ओर बंकिमचन्द्र, द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शरत्चन्द्र की कृतियाँ भी हिन्दी में अनूदित होकर हिन्दी में लोकप्रिय हैं।)

सन् १८९३ में डा० श्यामसुन्दरदास के परिश्रम से काशी में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना से भी साहित्यिक विकास की एक नई दिशा स्पष्ट हुई।

नागरी प्रचारिणी सभा में नियमित रूप से नागरी प्रचारिणी पत्रिका का प्रकाशन किया जिससे न केवल हिन्दी साहित्य में वरन् इतिहास, भूगोल व संस्कृति, मनोविज्ञान और दर्शन आदि विषयों पर भी महत्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त अनेक कोष ग्रन्थों तथा शास्त्रीय महत्व की रचनाओं के सम्पादन व प्रकाशन की योजना भी नागरी प्रचारिणी सभा ने बनाई। सभा ने हिन्दी प्रचार विषयक जो महत्वपूर्ण आन्दोलन किए उनके फलस्वरूप सन् १६०० में हिन्दी को सरकारी कचहरियों में भी प्रवेश मिला। आगे चलकर सन् १६१० में अनेक हिन्दी साहित्यकारों के प्रयत्नों से प्रयाग में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की भी स्थापना हुई। सम्मेलन ने अपनी राष्ट्रव्यापी योजनाओं से संपूर्ण देश में हिन्दी के प्रचार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। कहने का आशय यह है कि इस युग में आधुनिक साहित्य का आविर्भाव और आरम्भिक विकास उपर्युक्त साहित्यिक पृष्ठभूमि में ही हुआ।

हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि भी उपर्युक्त साहित्यिक परिस्थितियों में हुई। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में लिखी गयी थी। यह इंशाअल्ला खाँ लिखित 'रानी केतकी की कहानी' थी। इस रचना के समान ही इस युग की अन्य कहानियाँ भी मुख्य रूप से चमत्कारिक तत्व प्रधान हैं। इनमें दैवी घटनाओं, नाटकीय सहयोगों, पौराणिक प्रसंगों और कौतूहलजनक घटनाओं की योजना है। इसका कारण यह है कि आधुनिक हिन्दी कहानी की मूल प्रेरणा जिन सूक्तियों से सम्बद्ध है प्राचीन संस्कृत साहित्य, अपभ्रंशकालीन वीरगाथाओं, मध्ययुगीन प्रेमाख्यानों, रीति-युगीन वीर कथाओं आदि के रूप में हैं। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, खड़ीबोली की पहली हिन्दी कहानी सन् १८०० और १८०८ के मध्य लिखी गई थी। यह कहानी इंशाअल्ला खाँ ने खड़ीबोली हिन्दी की कथात्मक सामर्थ्य का परिचय देने के उद्देश्य से की थी। इसके उपरान्त आधुनिक युग के पूर्व जो कथा क्षेत्रीय कृतियाँ उपलब्ध होती हैं, उनमें सदासुखलाल लिखित 'सुखसागर' का नाम उल्लेखनीय है जो विष्णु पुराण पर आधारित है। लगभग इसी समय लल्लूलाल ने 'माधोनल', 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पचीसी', 'प्रेमसागर', 'माधव विलास' और 'राजनीति' शीर्षक कृतियाँ प्रस्तुत कीं। सदल मिश्र लिखित 'नासिकेतोपाख्यान' और 'रामचरित' का भी उल्लेख यहीं किया जा सकता है। राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' लिखित 'राजा भोज का सपना' तथा गौरीदत्त लिखित कहानी 'टका कमानी' और 'देवरानी और जेठानी' की कहानी भी इसी युग में लिखी गयी थीं। इन रचनाओं ने हिन्दी कहानी की उस पृष्ठभूमि को निर्मित किया जिस पर आधुनिक कहानी का उद्भव और विकास सम्भव हुआ।

### (ख) पूर्व-प्रेमचन्द युग के प्रमुख कहानीकार

हिन्दी कहानी के इतिहास को यदि हम अलग-अलग विकास युगों में बाँट

दें तो इसके पहले विकास युग को सुविधा के विचार से पूर्व प्रेमचन्द युग नाम दिया जा सकता है। इस युग मे कहानी साहित्य का जो विकास हुआ उसमें भारतेन्दु से पहले की हिन्दी कहानी, भारतेन्दु की समकालीन हिन्दी कहानी तथा द्विवेदी युग की हिन्दी कहानी को रखा जा सकता है। वास्तव में परिमाण की दृष्टि से इस समय लिखी गयी कहानियाँ बहुत कम हैं। इसका कारण यह है कि इस समय खड़ी बोली हिन्दी का साहित्यिक रूप स्थिर हो रहा था और ज्यादातर लेखकों और कवियों का ध्येय निबंध तथा कविता की ओर अधिक था। कथा साहित्य में भी कहानी की तुलना में उपन्यास की ओर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा था। इंशाअल्ला खाँ ने हिन्दी की सबसे पहली कहानी 'उदयभानचरित' या 'रानी केतकी की कहानी' शीर्षक से प्रस्तुत की थी। उनके अतिरिक्त पूर्व प्रेमचन्द युग के लेखकों में लल्लूलाल, सदासुखलाल, सदल मिश्र, राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' गौरीदत्त, कार्तिकप्रसाद खत्री, राधाचरण गोस्वामी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, किशोरीलाल गोस्वामी, बालमुकुन्द गुप्त, गोपालराम गहमरी, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', उदयनारायण वाजपेयी, यशोदानन्दन अखौरी, महेन्द्र भल्ला गर्ग, रामचन्द्र शुक्ल, पार्वतीनन्दन, गदाधर सिंह, जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी, सूर्यनारायण दीक्षित, मधुमंगल प्रेमनाथ, भट्टाचार्य, वेंकटेशनारायण तिवारी, भगवानदास, निजाम शाह, बंग महिला, गिरिजादत्त वाजपेयी, केशवप्रसाद सिंह, लक्ष्मीधर वाजपेयी, सत्यदेव, शालिगराम, कुंदनलाल शाह, बालमुकुन्द गुप्त, शिव-नारायण शुक्ल, प्यारेलाल गुप्त, फूलदेवी तथा रुद्रदत्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सभी ने हिन्दी कहानी के आरम्भिक विकास में किसी-न-किसी रूप में योग दिया है। यहाँ पर इन लेखकों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

**इंशाअल्ला खाँ**—खड़ीबोली गद्य के प्रारम्भिककालीन कथाकारों में इंशा अल्ला खाँ का सर्वप्रमुख स्थान है। इनकी लिखी हुई 'रानी केतकी की कहानी' सम्भवतः खड़ीबोली हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी है। इनकी रचना लगभग अट्ठारह सौ से लेकर अट्ठारह सौ दस के बीच की मानी जाती है। खड़ीबोली गद्य के अतिरिक्त उर्दू, फारसी व अरबी में भी इन्होंने अनेक रचनाएँ कीं। 'रानी केतकी की कहानी' का कथा सार यह है कि किसी देश का राजकुमार उदयभान एक बार शिकार में किसी हिरणी का पीछा करते-करते वहाँ पहुँचा जहाँ चालीस-पचास स्त्रियाँ झूला झूल रही थीं। वह रानी केतकी पर आसक्त हो गया। बाद में अनेक कठिनाइयों के बाद उनका विवाह हो गया। यह एक प्रेम तत्व प्रधान कहानी है। इस कहानी में कुछ शब्द ऐसे भी आ गये हैं, जो आज के शिष्टाचार की दृष्टि से उचित नहीं हैं। इस कहानी को इंशाअल्ला खाँ ने लखनऊ में रहकर लिखा था। स्वयं लेखक का इस कहानी लिखने का उद्देश्य था कि 'एक ऐसी कहानी लिखी जाय

जिसमें हिन्दी पुट और किसी बोली का पुट न मिले तथा हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि भाषा का परिचय ही लेखक का मुख्य ध्येय रहा है। इस कहानी में प्रेमतत्व की प्रधानता के साथ-साथ चमत्कारिक तत्वों की भी प्रधानता है। हिन्दी कहानी साहित्य में इंशा अल्ला खाँ लिखित 'रानी केतकी की कहानी' का ऐतिहासिक महत्व है।

लल्लूलाल—श्री लल्लूलाल का जन्म सन् १७६३ तथा मृत्यु १८३५ में हुई थी। सन् १८०० में यह कलकत्ते के कोर्ट विलियम कालेज में आसीन थे। हिन्दी में इन्होंने अनेक कहानियाँ लिखीं परन्तु ये मौलिक न होकर संस्कृत से अनुवादित हैं। इनमें 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैतालपचीसी', 'प्रेमसागर', 'माधव विलास' तथा 'राजनीति' शीर्षक कृतियाँ मुख्य हैं। 'बैतालपचीसी' में लेखक ने इसकी रचना तथा अनुवाद के विषय में लिखा है: 'मुहम्मद शाह बादशाह के जमाने में राजा जयसिंह सवाई ने जो मालिक जयनगर का था, सुरति नामक कवीश्वर से कहा कि 'बैताल पच्चीसी' की जो जबान संस्कृत में है तुम ब्रजभाषा में कहो तब उसने बमूजिब हुक्म राजा के ब्रज की बोली में कही, जब यह खड़ी बोली में होकर छापी जाती है, जिससे सब लोगों की समझ में आवे।' 'प्रेमसागर' की रचना सन् १८०२ में हुई है। श्री रमाकान्त त्रिपाठी ने इसे भी अनुवादित माना है। उनके अनुसार यह कृति 'श्रीमद्भागवत के दशम स्कान्ध का उल्थामात्र है।' इसी भाँति 'माधव विलास' व 'राजनीति' के विषय में यही उल्लेख मिलता है कि ये संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद हैं। हिन्दी कहानी साहित्य में लल्लूलाल जी की उपर्युक्त कृतियों का महत्व समकालीन कथा साहित्य में कल्पनात्मक तत्वों की अधिकता का परिचय देने की दृष्टि से अधिक है।

सदासुखलाल 'नियाज'—सदासुखलाल 'नियाज' का जन्म सन् १७४६ तथा मृत्यु सन् १८२४ में हुई थी। इनका नाम भी हिन्दी के प्रारम्भिक गद्य लेखकों में उल्लेखनीय है। हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, फारसी में भी इनका ज्ञान था। यह स्वतंत्र विचार रखने वाले थे। इन्होंने सन् १८११ में नोकरी से त्यागपत्र देकर यह साहित्य सेवा के कार्य में रत हुए। कथा साहित्य के क्षेत्र में 'सुखसागर' इनकी प्रतिनिधि रचना है। ऐसा अनुमान है कि यह कथा 'विष्णु पुराण' पर आधारित है। यह ग्रन्थ अपूर्ण रूप में ही उपलब्ध होता है। इस कृति में सदासुख लाल ने खड़ी बोली के उस रूप का प्रयोग किया है, जिसका व्यवहार प्रायः धार्मिक कथाओं में किया जाता था।

सदल मिश्र—सदल मिश्र का जन्म सन् १७६७ तथा मृत्यु १८४७ में हुई थी। 'नासिकेतोपाख्यान' तथा 'रामचरित' इनकी कथा कृतियाँ हैं। 'नासिकेतो-पाख्यान' या 'चन्द्रावती' की रचना सन् १८०३ में हुई थी। यह एक स्वतंत्र कथा है

जो खड़ी बोली गद्य में लिखी गई है। यह दो खंडों में विभाजित है, इसमें चन्द्रावती व नासिकेत की कथा ही मुख्य है। इसमें भी अलौकिक व चमत्कारिक तत्वों की ही प्रधानता है। इस कृति में लेखक ने यह उल्लेख किया है 'अब संवत् १८६० में नासिकेतोपाख्यान को जिसमें चन्द्रावती की कथा कही है, देववाणी से कोई समझ नहीं सकता, इसीलिए खड़ीबोली में किया।' इस युग की तमाम दूसरी कथा कृतियों की भाँति ये भी अनुवादित रचनाएँ ही हैं।

राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द'—राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का जन्म सन् १८२३ तथा मृत्यु सन् १८९५ में हुई थी। इनका ज्ञान हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी व बंगला आदि में भी था। इनकी प्रसिद्ध कथा कृति 'राजा भोज का सपना' सन् १८८८ में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुई थी। यह कहानी काल्पनिक तथा उपदेशात्मक है। लेखक ने अपनी ओर पाठकों को सम्बोधित करते हुए लिखा है—'हे पाठकगण क्या तुम भी भोज की तरह ढूँढ़ते हो और भगवान से उससे मिलने की प्रार्थना करते हो। भगवान उन्हें शीघ्र ऐसी बुद्धि दे और अपनी राह पर चलावे, यही हमारे अन्तःकरण का आशीर्वाद है।' यह स्वप्न कहानी वर्णनात्मक शैली में लिखी गयी है। इसके अतिरिक्त इनकी कुछ अन्य कथात्मक रचनाएँ भी हैं। लेखक ने स्वयं अपने भाषा विषयक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में लिखा है कि 'हम लोगों को जहाँ तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए कि जो आमफहम और खास पसन्द हों, अर्थात् जिनको जियादा आदमी समझ सकते हैं।' इस युग की अन्य कथात्मक रचनाओं की भाँति ही राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का उद्देश्य भी भाषागत अधिक था।

पं० गौरीदत्त—पं० गौरीदत्त का जन्म सन् १८३६ तथा मृत्यु १९०५ में हुई थी। 'कहानी टका कमानी' तथा 'देवरानी व जेठानी' शीर्षक कहानियाँ इनकी स्त्री-शिक्षा विषयक रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त 'गौरी नागरी कोश' के भी यह सम्पादक रहे। 'देवनागरी का प्रकार' नामक ग्रन्थ भी उन्होंने सम्पादित किया था। इस युग के अन्य कहानीकारों की अपेक्षा इनकी भाषा और शैली सरल, स्पष्ट व परिमार्जित है। 'कहानी टका कमानी' में नारी चेतना का आवाहन मिलता है, यद्यपि यह कहानी भी उपदेशात्मकता प्रधान है। लेखक ने स्त्री-जाति के विषय में स्वयं लिखा है 'इस कहानी में पहले समय की स्त्री ने कैसे-कैसे बढ़कर काम किये हैं कि जो आजकल के पुरुषों से होने कठिन हैं—यह कहानी मुझसे एक दिल्ली वाले ने कही थी, मैं इसको आजकल को चाल-ढाल ओर बोलचाल को भाषा में यहाँ लिखता हूँ।' इसी प्रकार 'देवरानी व जेठानी' कहानी भी महिलोपयोगी है। इसमें भी लेखक ने लिखा है कि 'जो स्त्रियाँ इसको पढ़ेंगी या ध्यान देकर सुनेंगी वह सुशील होकर अपनी संतान का पालन-पोषण अच्छी रीति से करेंगी और कुरीतियों से बचकर गृहस्थी के प्रबन्ध में उनको रुचि होगी, पति की सेवा और विद्या की तरफ उनका

स्नेह बढ़ेगा और येही उनके सुख भोगों का कारण होगा।' इस प्रकार से गौरीदत्त की लिखी हुई 'कहानी टका कमानी' तथा 'देवरानी जेठानी की कहानी' शीर्षक कथा-कृतियाँ युग की जिन्दगी का वह खाका सामने रखती हैं, जो इस काल की अन्य कृतियों की तुलना में अधिक यथार्थ कहा जा सकता है।

**कार्तिकप्रसाद खत्री**—श्री कार्तिकप्रसाद खत्री का जन्म सन् १८५२ में और मृत्यु १९०५ में हुई थी। इनकी मुख्य देन अनूदित साहित्य के क्षेत्र में है। इन्होंने 'दामोदरराव की आत्मकहानी' शीर्षक रचना आत्मकथात्मक शैली में लिखी है। इस कहानी में भी युगीन प्रवृत्तियों के अनुरूप कल्पना तत्व की ही प्रधानता है। इसके अतिरिक्त पत्रकारिता में भी इनका योगदान है। 'दामोदरराव की आत्मकहानी' भी इस युग में लिखी गई ज्यादातर कहानियों की तरह कल्पना-प्रधान रचना कही जा सकती है।

**राधाचरण गोस्वामी**—राधाचरण गोस्वामी का जन्म सन् १८५९ में तथा मृत्यु १९२५ हुई थी। इन्होंने 'यमपुर यात्रा' शीर्षक से एक कल्पनात्मक कहानी की सृष्टि की है। इसमें लेखक ने यह दिखाया है कि समाज के विभिन्न वर्ग मूलतः मिथ्या भावनाओं एवं रूढ़िवादी परम्पराओं में किस भाँति आस्था रखते हैं तथा उनके कार्यकलाप की पृष्ठभूमि में कितना अधिक निजी स्वार्थ निहित होता है। समाज में अधिकांश कुरीतियों के विद्यमान रहने का यही कारण है। राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा समानता की ओट में समाज में शोषण को बढ़ावा दिया जाता है तथा देश के नेता भी इसे बढ़ावा देते हैं। गोस्वामीजी की इस रचना में इस प्रकार के यथार्थ-परक संकेत प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इसमें कटु व्यंग्यात्मकता भी मिलती है, जो इंसान के असली चेहरे को उघाड़ कर सामने लाती है।

**भारतेन्दु हरिश्चन्द्र**—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म सन् १८५० तथा मृत्यु सन् १८८५ में हुई थी। गद्य साहित्य के क्षेत्र में ये आधुनिक युग के प्रवर्तक के रूप में सामने आये हैं। हिन्दी कहानी साहित्य में इनकी लिखी हुई एक रचना 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' शीर्षक से उपलब्ध होती है। यह कथा-वस्तु व भाषा शैली की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इस कहानी में समकालीन सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि में इंसान की मनोवृत्ति का विश्लेषण किया गया है। यह कहानी 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' में संगृहीत है। भारतेन्दु युग में लिखे कहानी साहित्य में इस रचना का ऐतिहासिक महत्व है। उसके अतिरिक्त भारतेन्दु लिखित एक अन्य कथात्मक ग्रन्थ रचना "एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न" शीर्षक से भी उपलब्ध होती है। यह मूलतः निबन्धात्मक रचना है, जो कथा तत्वों से युक्त है। लेखक ने अपनी कृतियों में समकालीन जीवन की पृष्ठभूमि में आधुनिक शिक्षा पद्धति तथा

अन्य सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है, हमारे मुल्क में अंग्रेजों के शासन-काल में समाज में राजा-रईसों के आस-पास किस प्रकार से निकम्मे और चापलूस आदमी इकट्ठे रहते थे और किस प्रकार से उन्हें मूर्ख बनाते थे, इसका व्यंग्यपूर्ण चित्र इन कहानियों में मिलता है, जो इस जमाने के सामाजिक जीवन का सच्चा चित्र पाठक के सामने रखता है।

किशोरीलाल गोस्वामी—किशोरीलाल गोस्वामी का जन्म सन् १८६५ में तथा मृत्यु सन् १९३२ में हुयी थी। कथा साहित्य के क्षेत्र में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है परन्तु मुख्यतः इनकी देन उपन्यास साहित्य के क्षेत्र ही में है। कहानी साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने कुछ रचनाएं प्रस्तुत की हैं, जिनमें 'इन्दुमती' नाम से उपलब्ध इनकी एक प्रतिनिधि रचना है। यह कहानी भी कल्पना तत्व प्रधान ही है और उसमें यथार्थपरक दृष्टिकोण एवं समाज सुधार की भावना का अभाव है। उसमें कल्पना व इतिहास का सम्मिश्रण है। पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानियों में यह बात परम्परागत रूप में पायी जाती है। यह कहानी इन्दुमती व चन्द्रशेखर की कल्पनात्मक प्रेम कथा पर आधारित है। सारी कहानी में कुछ पात्रों के नाम तथा कुछ घटनाएँ ऐतिहासिक हैं, बाकी सब कल्पनात्मक ही है। यह आदर्श भावना प्रधान रचना है, जिसमें उपदेशात्मकता का भी समावेश है।

गोपालराम गहमरी—गोपालराम गहमरी का जन्म सन् १८६६ में तथा मृत्यु १९४६ में हुई थी। इनकी अधिकांश कहानियाँ जासूसी एवं साहसपूर्ण हैं। इनकी मुख्य देन उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में है। 'शिक्षा का युद्ध उर्फ रावत मानसिक चरित्र', 'गल्पपोचक', 'चतुर चंचला', 'डाकू की पहुनाई', 'तीन तहकीकात', 'त्रिवेणी तट', 'सौभद्रा' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। ये कौतुहलजनक रचनाएँ हैं। ये कहानियाँ मुख्यतः रोमांचकारी घटनाओं द्वारा जनता का मनोरंजन करने के उद्देश्य से लिखी गयी हैं। 'सौभद्रा' एक प्रेम प्रधान कहानी है। त्रिवेणी में तीन कहानियाँ संग्रहीत हैं, जिनके शीर्षक 'विचित्र चोरी', 'सच्ची घटना' तथा 'गुमनाम चिट्ठी' हैं। इनमें से तीसरी रचना जासूसी तथा कौतूहलपूर्ण है। 'आदमी बनो' शीर्षक राजनीतिक कहानी में जेल-यात्रा, देश व समाज सेवा, हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का विरोध आदि महत्त्वपूर्ण समस्याओं का विवेचन हुआ है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, इन कहानियों का उद्देश्य केवल घटना वैचित्र्य के माध्यम से पाठकों का मनोरंजन करना ही है। शायद इसी कारण से इनकी भाषा विशुद्ध साहित्यिक न होकर साधारण बोलचाल की रही है।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री—श्री गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का जन्म सन् १८७० में तथा मृत्यु सन् १९३१ में हुयी थी। उन्होंने मुख्यतः आलोचना साहित्य में ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। कहानी साहित्य के क्षेत्र में इनकी एक मात्र

रचना 'सच्चाई का शिखर' शीर्षक से मिलती है। यह भी कल्पना प्रधान कहानी है, जैसा कि उस काल की ज्यादातर कहानियाँ हैं।

**चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'**—श्री चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का जन्म सन् १८८३ में तथा मृत्यु सन् १९२० में हुयी थी। हिन्दी साहित्य में गुलेरी जी ने कहानी, निबन्ध, आलोचना तथा भाषा शास्त्र के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। गुलेरीजी लिखित 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी उन्हें अमरत्व प्रदान करने में काफी है। इसका प्रकाशन सन् १९१५ में 'सरस्वती' पत्रिका में हुआ था। इसके पूर्व इनकी एक और कहानी 'भारत मित्र' में सन् १९११ में 'सुखमय जीवन' शीर्षक से प्रकाशित हो चुकी थी। इनकी तीसरी और अन्तिम कहानी 'बुद्धू का काँटा' शीर्षक से प्रकाशित हुयी थी। गुलेरीजी ने इन तीन कहानियों के बल पर ही हिन्दी कहानी साहित्य में अपना स्थान अमर बना लिया है।

**उदयनारायण वाजपेयी**—पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों में उदयनारायण बाजपेयी का उल्लेख भी किया जा सकता है। इनकी 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' शीर्षक कहानी की रचना सन् १९०७ में हुई थी। यह कहानी आदर्शवादी रचना है। यह कहानी मनोरंजनात्मक एवं घटना प्रधान है। इस कहानी का लक्ष्य उपदेश देना लगता है। यह वर्णनात्मक शैली में लिखी गई कहानी है, जिसमें इस युग की अधिकांश कहानियों की भाँति कल्पनात्मकता और आदर्शात्मकता की प्रधानता है।

**महेन्द्र भल्ला गर्ग**—समकालीन कहानी लेखकों में महेन्द्र भल्ला गर्ग का नाम भी उल्लेखनीय है। कहानी साहित्य के क्षेत्र में ही इनका योगदान रहा है। इनकी लिखी हुई 'पेट की आत्मकहानी' शीर्षक कहानी सितम्बर सन् १९०४ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी कथात्मक शैली में लिखी गयी है। इसमें हास्य और व्यंग्य की प्रधानता है।

**रामचन्द्र शुक्ल**—पं० रामचन्द्र शुक्ल का जन्म सन् १८८४ तथा मृत्यु १९४० में हुई थी। इनकी प्रतिभा मूलतः आलोचना साहित्य में ही अधिक निखरी है। आलोचना साहित्य के अन्तर्गत ही इन्होंने सूर, तुलसी तथा जायसी पर गवेषणात्मक ग्रन्थ लिखे हैं। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इन्होंने हिन्दी साहित्य की विविध युगीन उपलब्धियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। कहानी के क्षेत्र में इनकी एकमात्र रचना 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक में मिलती है। यह सितम्बर सन् १९०३ की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी अन्य कहानियों की भाँति कल्पना पर ही आधारित है। इस कहानी में लेखक ने ग्यारह वर्षों से बिछुड़े हुए दो प्रेमी हृदयों को आपस में मिलाया है। इस कहानी का आरम्भ प्रथम पुरुष के रूप में आत्मकथात्मक शैली में हुआ है। इसमें लेखक ने आधुनिक युगीन सामाजिक व्यवस्था के आदर्श रूप तथा नारी जीवन से सम्बन्धित आदर्शपरक दृष्टिकोण ही दिखाया है।

पार्वतीनन्दन—पूर्व-प्रेमचन्द्र युग के कहानीकारों में लाला पार्वतीनन्दन का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी लिखी हुई अधिकांश कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थीं। 'प्रेम का फुव्वारा' शीर्षक इनकी एक कहानी समस्यापरक कथावस्तु के आधार पर लिखी गई है। इस कहानी में भारतेन्दुयुगीन कल्पनात्मक प्रवृत्ति अपेक्षाकृत न्यून रूप में दृष्टिगत होती है। इस कहानी में मुख्य रूप में नारी वर्ग से सम्बन्धित समस्याओं का विश्लेषण है। 'एक के दो-दो' तथा 'मेरा पुनर्जन्म' आदि कहानियाँ भी भारतीय समाज और जीवन के विभिन्न पहलुओं को आधार बनाकर लिखी गई हैं। इनकी प्रत्येक रचना का उद्देश्य समाज सुधार है। यद्यपि इनकी रचनाओं में कथागत कल्पना भी समाविष्ट है फिर भी इनमें उठायी गई समस्याओं का आधार सामाजिक आधार ही कहा जा सकता है।

सूर्यनारायण दीक्षित—पूर्व-प्रेमचन्द युग के कहानीकारों में सूर्यनारायण दीक्षित का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी कहानियाँ भी 'सरस्वती' के कुछ अंकों में प्रकाशित हुई थीं। इनकी एक प्रतिनिधि रचना 'चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान' शीर्षक से उपलब्ध है। जैसा कि इस कहानी के शीर्षक से ही स्पष्ट है, इसमें लेखक ने एक पौराणिक कथासूत्र को आधार बनाकर कल्पना प्रधान कहानी लिखी है।

मधु मंगल—पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी साहित्य के क्षेत्र में मधु मंगल लिखित 'भुतही कोठरी' शीर्षक कहानी का भी उल्लेख किया जा सकता है जो काल्पनिक तथा चमत्कारिक तत्वों से ओत-प्रोत है। इनकी लिखी हुई अन्य किसी कहानी का उल्लेख नहीं मिलता।

प्रेमनाथ भट्टाचार्य—प्रेमनाथ भट्टाचार्य लिखित 'पक्का गठबन्धन' शीर्षक कहानी आदर्शवादी कहानी है तथा इसमें भी कल्पना तत्व की ही प्रधानता है। अपने समकालीन कहानीकारों की भाँति इनकी इस कहानी में भी कल्पना व चमत्कारिक तत्वों के साथ दैवी संयोग की प्रधानता है।

वेंकटेशनारायण तिवारी—श्री वेंकटेशनारायण तिवारी लिखित 'एक अशर्फी की आत्म कहानी' शीर्षक रचना भी नाटकीयता व काल्पनिकता प्रधान है। जैसा कि उसके शीर्षक से ही स्पष्ट है, यह आत्म-कथात्मक शैली में प्रथम पुरुष के रूप में प्रस्तुत की गयी है।

भगवानदास—पूर्व-प्रेमचन्द युग में भगवानदास बी० ए० ने भी कुछ कथात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनकी कहानियाँ खासतौर से सामाजिक हैं। इनका प्रकाशन भी 'सरस्वती' में हुआ था। इनकी 'प्लेग की चुड़ैल' शीर्षक कहानी में सामाजिक पृष्ठभूमि में गृहस्थ जीवन का चित्रण प्रस्तुत हुआ है। यह कहानी हालांकि नाटकीयता प्रधान है लेकिन इसमें उस समय की जिन्दगी के वास्तविक पहलुओं की ओर इशारा किया गया है। उस समय समाज में लोग आमतौर पर कितने रूढ़िवादी होते थे, यह इस कहानी में दिखाया गया है।

**निजामशाह**—इस युग में यथार्थ तत्व और रोमांच व वीरता से सम्बन्धित कहानियों की रचना निजामशाह ने की है। इनका प्रकाशन भी 'सरस्वती' पत्रिका में हुआ है। 'सुअर का शिकार' जैसी इनकी कहानियाँ वीरता से भरी हुई हैं और वे सर्वथा सत्य घटनाओं पर आधारित हैं। इस कहानी में कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण अभिनयात्मक शैली अथवा उत्तम पुरुष में हुआ है। इस काल की अन्य प्रवृत्तिगत कहानियों की भाँति इन्होंने भी कल्पना तत्व का सहारा लिया है।

**वंग महिला**—वंग महिला लिखित जो कहानियाँ 'सरस्वती' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हुई हैं, उनमें 'कुम्भ में छोटी बहू', 'दान प्रतिदान', 'दुलाई वाली', 'बालिया' आदि उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों की मुख्य विशेषता यही है कि इनमें सामाजिक, पारिवारिक जीवन का विश्वसनीय वर्णन हुआ है तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण भी मिलता है। ये कहानियाँ कल्पना प्रधान होते हुए भी मानवीय संवेदनाओं से युक्त होने के कारण कलात्मक बन पड़ी हैं।

**गिरिजादत्त वाजपेयी**—गिरिजादत्त बाजपेयी की कहानियों में भी यथार्थ के स्थान पर कल्पना का ही आधिक्य है। 'पति का पवित्र प्रेम' शीर्षक कहानी में लेखक ने योरोपीय पात्र-पात्रियों को चित्रित किया है। इसमें विमली नामक सौदागर की कन्या लिली तथा जेम्स पादरी के पुत्र की प्रेम-कथा है। इसी भाँति 'पंडित और पंडितानी' शीर्षक कहानी में भी मनोवैज्ञानिक आधार पर पारस्परिक आकर्षण एवं विकर्षण का चित्रण हुआ है। इन कहानियों में भी यथार्थ की अपेक्षा कल्पना का आधिक्य है, लेकिन फिर भी इनसे समकालीन समाज में प्रचलित अनमेल विवाह तथा वृद्ध विवाह आदि कुरीतियों का परिचय मिलता है।

**केशवप्रसाद सिंह**—केशवप्रसाद सिंह लिखित 'आपत्तियों का पहाड़' शीर्षक कहानी कथात्मक निबन्ध की कोटि की रचना है। यह भी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त 'चन्द्रलोक की यात्रा' तथा 'काश्मीर यात्रा' आदि कहानियाँ कल्पित होते हुए भी यथार्थ स्थानों की यात्रा के रोचक वर्णनों से युक्त हैं।

**पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन अन्य कहानीकार**—पूर्व-प्रेमचन्द युग में उपर्युक्त कहानीकारों के अतिरिक्त अन्य अनेक कहानीकार ऐसे हुए हैं, जिन्होंने हिन्दी कहानी के विकास में अपना योगदान दिया है। इनमें लक्ष्मीधर वाजपेयी, सत्यदेव, शालिगराम, कुन्दनलाल शाह, शिवनारायण शुक्ल, प्यारेलाल गुप्त, फूलदेवी तथा रुद्रदत्त आदि प्रमुख हैं। इनमें से सत्यदेव लिखित 'कीर्ति कालिमा' शीर्षक कहानी उपलब्ध होती है। यह कहानी भी समकालीन कहानियों की भाँति कल्पना प्रधान है। शालिगराम लिखित 'एक ज्योतिषी की आत्मकथा' भी उल्लेखनीय है। कुन्दनलाल शाह की 'प्रत्युपकार का एक अद्भुत उदाहरण' शीर्षक कहानी भी इसी युग में प्रकाशित हुई थी। 'सात कुमार' शीर्षक रचना का सृजन शिवनारायण शुक्ल ने विशुद्ध

कल्पना के आधार पर किया है। प्यारेलाल गुप्त लिखित 'समालोचक' कहानी गल्प-माला में प्रकाशित हुई थी। श्रीमती फूलदेवी लिखित 'बड़े घर की बेटी' तथा रुद्रदत्त भट्ट लिखित 'अजीबदास की जासूसी' नामक रचनाएँ भी इसी पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। ये रहस्ययुक्त कहानियाँ हैं। बालमुकुन्द गुप्त की एक रचना 'मेले का ऊँट' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। यह एक कथात्मक निबन्ध कोटि की रचना है, जिसमें एक मेले में आए किसी ऊँट को आधार बनाकर व्यंग्यपरक कथा-सूत्र संयोजित किये गये हैं। यद्यपि इस युग की लगभग सभी कहानियाँ कल्पना तत्व पर आधारित थीं परन्तु फिर भी समकालीन परिस्थितियों का आभास इन कहानियों में मिलता है। नारी जागरण के संकेत भी इन कहानियों में पाये जाते हैं। सामाजिक प्रवृत्ति के अतिरिक्त जासूसी प्रवृत्ति की कहानियाँ भी इस युग की देन है। इन्ही कहानियों के आधार पर आगे कहानी साहित्य का विकास हुआ।

## (ग) समकालीन कहानी, क्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ और यथार्थवाद

( पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानीकारों तथा कहानी साहित्य का जो संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण ऊपर प्रस्तुत किया गया है, उससे यह स्पष्ट आभास मिलता है कि हिन्दी कहानी की आविर्भावकालीन प्रवृत्तियाँ मुख्यतः आदर्श और कल्पना से युक्त थीं। प्राचीन भारतीय कथा साहित्य के विषय में भी पीछे यह संकेत किया जा चुका है कि वह मूलतः धार्मिक और पौराणिक होने के कारण नीति और उपदेश के आदर्श-परक तत्वों से युक्त था। वैदिक-साहित्य, संहिता-ग्रन्थ, अरण्यक ग्रन्थ, उपनिषद् साहित्य, पुराण साहित्य, जातक साहित्य तथा हितोपदेश और पंचतंत्र आदि में भी यही परम्परा अक्षुण्ण रही। इनकी प्रेरणा और प्रभाव से युक्त आधुनिक हिन्दी कहानी का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। भारतेन्दु युग से हिन्दी कहानी का आधुनिक रूप में विकास आरम्भ हुआ। इस काल में लिखी गयी कहानियों में यद्यपि यथार्थ की सांकेतिक योजना यत्र-तत्र ही दृष्टिगत होती है, परन्तु उस यथार्थ की योजना नहीं मिलती जो परवर्ती काल की हिन्दी कहानियों में प्रतिबिम्बित हुई है। इसका एक कारण यह है कि इस काल की कहानियाँ सामाजिक विषयों के अतिरिक्त काल्पनिक विषयों पर ज्यादा लिखी गई हैं। विषय-वस्तु के आधार पर यदि पूर्व-प्रेमचन्द-युगीन कहानियों का विश्लेषण किया जाए तो उसमें खासतौर से सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक तथा रहस्यात्मक कहानियों की प्रवृत्तियाँ ही मिलती हैं। यहाँ पर संक्षेप में इन्हीं प्रमुख प्रवृत्तियों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।)

**सामाजिक कहानियों की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—पूर्व-प्रेमचन्द्रयुगीन कहानी की सर्वप्रथम प्रवृत्ति सामाजिक कहानियों से सम्बन्धित है। स्थूल रूप से इस का सम्बन्ध पूर्ववर्ती कल्पना प्रधान कहानियों से जोड़ा जा सकता है, जिसका आदि रूप इन्शाअल्ला खाँ लिखित 'रानी केतकी की कहानी' शीर्षक कहानी में मिलता

है। इसी क्रम में आगे चलकर पंडित गौरीदत्त ने दो कहानियाँ प्रस्तुत कीं जिनके शीर्षक क्रमशः 'कहानी टका कमानी' और 'देवरानी जेठानी की कहानी' है। इनमें से प्रथम रचना सामाजिक कोटि की है और उपदेश प्रधान है। इसका उद्देश्य स्त्री-शिक्षा को महत्त्व प्रदान करना है। इसमें लेखक ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि एक स्त्री भी यदि पुरुषार्थी हो तो वह समृद्ध और समर्थ बन सकती है। स्वयं लेखक के शब्दों में "इस कहानी में पहले समय की स्त्री ने कैसे-कैसे बढ़ कर काम किये कि जो आज के पुरुषों से होने कठिन हैं...यह कहानी मुझसे एम दिल्ली वाले ने कही थी, मैं इसको आजकल की बोलचाल और चाल-ढाल में यहाँ लिखता हूँ।"[1] इस प्रकार से इस कहानी में नारी समाज की नवीन चेतना के जागरण के संकेत मिलते हैं। पंडित गौरीदत्त लिखित दूसरी रचना 'देवरानी जेठानी की कहानी' भी महिलोपयोगी है। इसमें स्वयं लेखक ने रचना उद्देश्य के विषय में बताया है कि "इस पुस्तक में मैंने स्त्रियों की ही बोलचाल लिखी है और इस पुस्तक में यह भी दर्शा दिया है, दिखा दिया है कि पढ़ी हुई स्त्री जब एक काम को करती है उससे क्या लाभ होता है और बिना पढ़ी स्त्री जब उसी काम को करती है उससे क्या हानि होती है।" इस उद्देश्य प्रधान रचना के अन्त में भी लेखक ने यह स्पष्ट रूप से निर्देश किया है कि जो स्त्रियाँ इसको पढ़ेंगी या ध्यान देकर सुनेंगी वह सुशील होकर अपनी सन्तान का पालन-पोषण अच्छी रीति से करेंगी और कुरीतियों से बचकर गृहस्थ के प्रबन्ध में उनकी रुचि होगी, पति की सेवा और विद्या की तरफ उनका स्नेह बढ़ेगा और यही उनके सुख भोगों का कारण होगा।[2] स्पष्ट है कि पहली रचना की भाँति इस कहानी में भी लेखक ने नारी समाज की विवेचना का स्वर मुखरित किया है।

आधुनिक युग में पूर्व-प्रेमचन्द्रयुगीन हिन्दी कहानी का आविर्भाव होने के पूर्व जो अन्य कहानियाँ सामाजिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत उल्लेखनीय हैं उनमें 'किस्सा चम्पा चमेली', 'किस्सा मर्द औरत का', 'ठगलीला', 'जवानी की कहानी', 'मोहिनी चरित', 'त्रियाचरित' तथा 'इन्साफ संघर्ष' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें किस्सा 'चम्पा चमेली' एक सामाजिक कहानी है जिसकी कथा का आधार दो सहेलियाँ हैं। 'किस्सा औरत मर्द का' एक लम्बी कहानी है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें एक प्रधान कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाएँ भी नियोजित हुई हैं। इस कृति की रचना का उद्देश्य स्त्री वर्ग पर पुरुष वर्ग के अत्याचारों को यथार्थ रूप में चित्रित करना है। इसकी लेखिका श्रीमती जैन अग्रवाल हैं। इसमें लिखा है

---

१. 'कहानी टका कमानी', पं० गौरीदत्त, विद्या दर्पण यंत्रालय, मेरठ, पृ० ३

२. 'देवरानी जेठानी की कहानी', पं० गौरीदत्त, ज्ञान सागर प्रेस, मेरठ, पृ० २८.

"हालांकि जितने ऐब मर्दों में भरे हुए हैं औरतों में उसका दसवाँ हिस्सा भी नहीं है, हजारों ऐसी दास्तानें हैं जिनसे औरतों की वफाई और मर्दों की बेवफाई जाहिर होती है मगर मर्दों ने जब कोई किताब लिखी है उसमें औरतों ही को बुरा कहा। इस वास्ते मैं एक दास्तान मर्द औरत लिखती हूँ। उसके देखने से मर्द अपने दिल में इन्साफ करें कि कौन बुरा और कौन अच्छा है।" इससे स्पष्ट है कि इस समय तक हिन्दू समाज में नारी वर्ग इतना चेतना सम्पन्न हो चुका था कि समानाधिकारों और उचित न्याय की माँग करने लगा था। 'ठगलीला' में धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार की विवृति योगादास, सुन्दरदास और उनके गुरुजी के चरित्रों के आधार पर की गई है। जनता की धर्म और धार्मिकों में अन्ध-भक्ति के विरुद्ध इसमें आवाज उठायी गयी है।

सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति का नवीन रूप में विकास भारतेन्दु की रचनाओं में मिलता है। आधुनिक गद्य और पद्य साहित्य के प्रवर्तक होने के रूप में उन्होंने कहानी का भी आधुनिक रूप में प्रवर्तन किया। इस क्षेत्र में इनकी कई रचनाएँ उपलब्ध होती हैं जिसमें 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती', 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' तथा 'मदालसोपाख्यान' हैं। इनमें से प्रथम रचना 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' में संग्रहीत है और आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत की गई है। इस कहानी की पृष्ठभूमि में समकालीन सामाजिक जीवन में व्याप्त स्वार्थ की भावना का चित्रण किया गया है। दूसरी रचना एक 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' निबन्धात्मक होते हुए भी कथा तत्वों से युक्त है। प्रथम रचना की भाँति यह भी समकालीन समाज पर किया गया एक सशक्त व्यंग्य है। इस रचना में भी तत्कालीन सामाजिक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण किया गया है। समकालीन सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत यहाँ पर राधाचरण गोस्वामी का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी लिखी हुई एक कहानी 'यमपुर की यात्रा' शीर्षक से प्रकाशित हुई है। यद्यपि यह कहानी मूल रूप से काल्पनिक रचना है परन्तु इसमें समकालीन सामाजिक जीवन में व्याप्त मिथ्याडम्बरों, रूढ़िवादी मान्यताओं और स्वार्थी दृष्टिकोण की ओर संकेत किया गया है।

हिन्दी के विशिष्ट समालोचक पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत एक रचना 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक से प्रस्तुत की है। इसमें भी यद्यपि कल्पनात्मक तत्वों का ही प्राधान्य है परन्तु फिर भी मुख्य कथा सूत्र में समकालीन सामाजिक व्यवस्था के आदर्शपरक रूप का दिग्दर्शन कराया गया है। इस कहानी में नारी जीवन से सम्बन्धित लेखक का जो दृष्टिकोण अभिव्यंजित हुआ है वह भी रूढ़िवादी ही है, क्योंकि इसकी तालिका प्राचीन और परम्परावादी दृष्टिकोण की ही अनुगामिनी है और समकालीन नारी के चेतना संपन्न वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करती। सामाजिक कहानी की इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत इस युग के एक अन्य कहानीकार केशवप्रसाद सिंह लिखित 'आपत्तियों का पहाड़' शीर्षक

रचना का भी उल्लेख किया जा सकता है। स्वार्थ वृत्ति के प्रति व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण व्यक्त किया है।

'पति का पवित्र प्रेम' तथा 'पंडित और पंडितानी' शीर्षक कहानियों के लेखक गिरिजादत्त वाजपेयी का नाम भी पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत उल्लेखनीय है। इनमें से प्रथम की रचना अर्थात् 'पति का पवित्र प्रेम' एक ऐसी सामाजिक कहानी है जिसमें हिन्दी कहानी में सम्भवतः पहली बार विदेशी पात्र-पात्रियों को चित्रित किया गया है। यह कहानी समकालीन समाज की एक महत्वपूर्ण समस्या पर लिखी गयी है जिसका सम्बन्ध स्वच्छंद प्रेम से है। गिरिजादत्त बाजपेयी की दूसरी कहानी 'पंडित और पंडितानी' भी सामाजिक है। इसमें भी सामाजिक कथा प्रवृत्ति के साथ पहली बार मनोवैज्ञानिक दृष्टि का समन्वय हुआ है। लोकप्रियता की दृष्टि से इस युग के सामाजिक कहानीकारों में पार्वतीनन्दन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने 'प्रेम का फुव्वारा', 'एक के दो-दो' तथा 'मेरा पुनर्जन्म' आदि कहानियाँ भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं को आधार बनाकर लिखी हैं। इस युग की अधिकांश कहानियों की भाँति ये रचनाएँ भी कल्पना प्रधान हैं परन्तु इनमें विश्लेषित समस्याएँ यथार्थ जीवन से सम्बन्धित हैं। पार्वती नन्दन की अन्य कहानियाँ भी इसी प्रकार सामाजिक जीवन के किसी न किसी पहलू से सम्बन्धित हैं। वंग महिला की लिखी हुई 'कुम्भ में छोटी बहू', 'दान प्रतिदान', 'दुलाईवाली' तथा 'वालिका' आदि कहानियाँ भी इस युग की सामाजिक कहानियों की प्रवृत्ति के अन्तर्गत उल्लेखनीय हैं। वंग महिला की सामाजिक कहानियों की मुख्य विशेषता यह है कि उनमें पारिवारिक जीवन के यथार्थ चित्र पेश किये गये हैं। आलोच्य काल में सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत जो अन्य रचनाएँ उल्लेखनीय हैं, उनमें भोलानाथ पाण्डेय लिखित 'नयी दुनिया' से सम्बन्धित एक राम कहानी है। जैसा कि इसके शीर्षक से ही स्पष्ट है, इसमें लेखक की अमेरिका यात्रा से सम्बन्धित यथार्थ प्रसगों का चित्रण है। मास्टर भगवानदास लिखित 'प्लेग की चुड़ैल' गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित एक रचना है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक कहानीकारों ने इस काल में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित ऐसी रचनाएँ कीं जिनमें यत्र-तत्र यथार्थपरक संकेत दृष्टिगत होते हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है वर्ण व्यवस्था का विरोध, प्राचीन परम्पराओं की अर्थहीनता, आधुनिक शिक्षा का प्रचार, धर्म भावना की आडम्बरपूर्णता, नारी समाज की जागृति आदि यथार्थपरक समस्याएँ इस युग के कहानी साहित्य में समाविष्ट यथार्थवादी तत्वों का मूल आधार है।

**ऐतिहासिक कहानियों की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन

कहानी का दूसरी उल्लेखनीय प्रवृत्ति ऐतिहासिक कहानियों से सम्बन्धित है। इस प्रवृत्ति की मूल प्रेरणा पूर्व-युगीन इतिहास और लोक-प्रचलित व्याख्यान है। इसका प्रारम्भिक रूप जटमल लिखित 'गोरा बादल की बात' तथा इन्शाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' जैसी रचनाओं में मिलता है। इन्हीं की भाँति इस युग में लिखी गई अनेक ऐतिहासिक कहानियाँ ऐतिहासिक तथ्यों और कल्पना तत्वों का समन्वित रूप प्रस्तुत करती हैं। आधुनिक कहानी की प्रायः सभी प्रवृत्तियों की भाँति इस प्रवृत्ति का प्रारम्भिक रूप भी अपरिपक्व है। इसीलिए इसमें अधिकांशतः ऐतिहासिक यथार्थ की उपेक्षा और कल्पना-तत्वों का बाहुल्य दिखाई देता है। इसका प्रतिनिधि उदाहरण किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' शीर्षक कहानी को माना जा सकता है। यह रचना मूलतः एक काल्पनिक प्रेम कथा है। इसमें ऐतिहासिकता के आरोपण के रूप में इब्राहिम लोदी जैसी ऐतिहासिक पात्र तथा अजयगढ़ और देवगढ़ जैसे स्थानों का उल्लेख मात्र है। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि इस युग के प्रायः सभी ऐतिहासिक कथाकारों का दृष्टिकोण इसी प्रकार रहा, क्योंकि उन सभी ने इतिहास की उपेक्षा करके कल्पना को प्राथमिकता दी। यही दृष्टिकोण किशोरीलाल गोस्वामी की दूसरी कहानी 'गुलबहार' में मिलता है। यह रचना 'सरस्वती' के जुलाई सन् १९०२ के अंक में प्रकाशित हुई थी और यह भी नाममात्र के लिए ही ऐतिहासिक है। इस युग के एक अन्य कहानीकार पार्वती-नन्दन ने 'मुहम्मद गोरी का अन्त' जैसी रचनाओं में इतिहास के कुछ चरित्रों का उल्लेख करते हुए कल्पना-प्रधान कथाएँ प्रस्तुत कीं। गोपालराम गहमरी ने भी 'डाकू की पहुनाई' शीर्षक कहानी में तांत्या भील के शौर्य का अतिरंजित चित्रण किया है। गहमरीजी ने ही अपनी एक अन्य ऐतिहासिक कहानी 'सौभद्रा' शीर्षक से प्रस्तुत की है। यह कहानी किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' से बहुत साम्य रखती है, क्योंकि इसमें भी नायक और नायिका की भेंट जंगल में होती है इसमें भी उसके प्रेम की परीक्षा ली जाती है। पूर्व-प्रेमचन्द काल में ही 'सरस्वती' के संपादक और मशहूर आलोचक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अनेक ऐतिहासिक कहानियाँ प्रस्तुत कीं जिनमें 'शाहजहाँ', 'शायरों के शाहिनशाह अबूतालिब', 'खानखाना' और सुमेर पर्वत' तथा 'मिर्जा अब्दुल रहीम खानखाना की उदारता' आदि खास हैं। ये कहानियाँ 'इन्दुमती' तथा 'सौभद्रा' की भाँति कल्पना से अति-रंजित नहीं हैं, वरन् इनमें ऐतिहासिक यथार्थ का भी संतुलित स्वरूप दृष्टिगत होता है। ये कहानियाँ समकालीन जीवन के नैतिक मूल्यों के सन्दर्भ में सुधारवादी दृष्टि-कोण से लिखी गयी हैं और इसी कारण उपदेशात्मक भी हो गयी हैं।

**धार्मिक पौराणिक कहानियों की प्रवृत्ति**—पूर्व-प्रेमचन्द-युगीन कहानियों की तीसरी उल्लेखनीय प्रवृत्ति धार्मिक पौराणिक कहानियों से सम्बन्धित है। वास्तव में इस कथा प्रवृत्ति का प्रसार सुदूर अतीत तक मिलता है। मूल रूप से हिन्दुओं का

धार्मिक साहित्य इसकी मूल प्रेरणा रहा है जो इसकी विभिन्न मान्यताओं के साथ लगभग पाँच हजार साल ई० पू० तक में अस्तित्ववान था। वैदिक, औपनिषदिक तथा पौराणिक कथा साहित्य में इस प्रवृत्ति के सूत्र निहित हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदि काल के अन्तर्गत अनेक लेखकों ने पौराणिक सूत्रों पर आधारित वीर गाथाएँ प्रस्तुत की थीं। मध्य युग में प्रेमाख्यानों की परम्परा में भी इनका समावेश हुआ है। रीतिकाल में अनेक कवियों ने पौराणिक चरित्रों को आधार बना कर काव्य रचना की। आधुनिक काल में अवधी, व्रज तथा खड़ी बोली में इन कथाओं की परम्परा जारी रही। उन्नीसवीं शताब्दी में मुन्शी सदासुख लाल ने 'सुखसागर' की रचना विष्णु पुराण के आधार पर की थी। इसी शताब्दी में लल्लू लाल ने 'प्रेमसागर' शीर्षक कथा रचना श्रीमद्भागवत के आधार पर प्रस्तुत की। उपनिषद और अध्यात्म रामायण के आधार पर उन्नीसवीं शताब्दी में ही सदल मिश्र ने क्रमश: 'नासिकेतोपाख्यान और 'रामचरित' की रचना की। जैसा कि ज्ञान कथात्मक रचनाओं के शीर्षकों से स्पष्ट है, ये सभी पौराणिक प्रसंगों पर ही आधारित हैं। जहाँ तक इनके प्रेरणा स्रोत का सम्बन्ध है, ये दोनों कथाएँ मूल रूप में 'यजुर्वेद' और 'कठोपनिषद्' में उपलब्ध होती हैं। 'रामचरित' की कथा 'आध्यात्म रामायण' के आधार पर की गयी थी। इस परम्परा में पूर्व-प्रेमचन्द युग में ही सूर्यनारायण दीक्षित ने एक नाटकीय कहानी 'चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान' शीर्षक से प्रस्तुत की। इस युग के एक अन्य महत्वपूर्ण लेखक महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'स्वर्ग की झलक' जैसी कहानी भी पौराणिक सूत्रों के आधार पर प्रस्तुत की।[1] स्वभावत: ये कहानियाँ सामाजिक यथार्थ के उन तत्वों से रहित हैं जिनका समावेश इस काल की सामाजिक कहानियों में हुआ है और जिनका विकास परवर्तीकाल की कहानियों में मिलता है।

**रहस्यात्मक कहानियों की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—पूर्व प्रेमचन्द काल में कहानी साहित्य के अन्तर्गत एक बड़ी संख्या में ऐसी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं जो रहस्य और रोमांच के तत्वों से युक्त हैं। आंशिक रूप से यह तत्व भी इन्शाअल्ला खाँ लिखित 'रानी केतकी की कहानी', लल्लू लाल द्वारा रचित 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बैताल पचीसी' तथा सदल मिश्र लिखित 'नासिकेतोपाख्यान' आदि रचनाओं में समाविष्ट मिलते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' तथा रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' जैसी सामाजिक रचनाओं में भी न्यूनाधिक रूप में यह दिखाई पड़ते हैं परन्तु इसका बहुलता से समावेश उस काल की जासूसी और साहसिक कहानियों में ही हुआ है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इस क्षेत्र में गोपालराम गहमरी ने 'शिक्षा का युद्ध उर्फ रावत मानसिंह चरित्र', 'गल्प पंचक', 'चतुर चंचला', 'डाकू की पहुनाई', 'तीन तहकीकात', 'चिवेरी' तथा

१. देखिये 'सरस्वती', सन १९०४, भाग ५, संख्या ३, पृ० ८ .

'सौभद्रा' आदि कहानी संग्रह में जो कहानियाँ संग्रहीत की हैं उनमें रहस्यात्मक तत्व विद्यमान हैं। रहस्यात्मक तत्वों की बहुलता की दृष्टि से उनकी लिखी हुई अन्य रचनाओं में 'विचित्र चोरी', 'गुमनाम चिट्ठी', 'जासूस की जवाँमर्दी', 'मुर्दे की जाँच' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी काल में निजामशाह ने शिकारी जीवन से सम्बन्धित जो कहानियाँ लिखी हैं, उनमें भी रहस्य और रोमांच के तत्व बहुलता से समाविष्ट हुए हैं। उदाहरण के लिए निजामशाह की लिखी हुई 'सुअर का शिकार' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इस प्रकार की कहानियों का आधार बहुधा रहस्य और रोमांच से पूर्ण यथार्थ घटनाएँ होती हैं। इसलिए ऐसी रचनाएँ इन सामाजिक कहानियों से सहज ही अलग की जा सकती हैं जो सर्वथा कल्पित और विशुद्ध भावना प्रधान होती है। इस कोटि की कहानियाँ कम से कम समकालीन कहानी लेखक के उस रूप का परिचय देती हैं जहाँ वह निष्ठापूर्वक सत्य घटनाओं का प्रस्तुतीकरण अपनी रचना में करता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि विश्वसनीयता और यथार्थता की दृष्टि से भी ये कहानियाँ महत्व रखती हैं, क्योंकि इनमें कल्पनात्मक घटनाओं की जगह सच्ची घटनाओं को कथावस्तु का आधार बनाया जाता है।

## (घ) पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद के विभिन्न रूप

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में यह संकेत किया जा चुका है कि यथार्थवाद किसी युग विशेष की विशेषता नहीं है वरन् वह साहित्य का एक नैसर्गिक गुण है। यद्यपि आधुनिक हिन्दी साहित्य में यथार्थवादी प्रभाव विदेशी साहित्य के प्रभाव से स्वीकार किया जाता है परन्तु इसके पूर्व भी आंशिक रूप में यत्र-तत्र इसका प्रभाव आधुनिक हिन्दी साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी के अन्तर्गत हिन्दी कहानी का प्रारम्भिक स्वरूप ही मात्र दृष्टिगत होता है। इस काल में मध्ययुगीन कथा-साहित्य की प्रवृत्तियों का हिन्दी कहानी साहित्य पर इतना व्यापक प्रभाव था कि वह स्वभावतः कल्पना प्रधान हो गया। परन्तु जैसा कि इस अध्याय में ऊपर बताया जा चुका है, पूर्ववर्ती प्रभाव के होते हुए भी आंशिक रूप में यथार्थवाद का समावेश इस युग की कहानी में भी मिलता है। ये तत्व विशुद्ध यथार्थवाद से भिन्न होते हुए भी सम्भावित सत्य पर आधारित हैं और पर्याप्त सीमा तक विश्वसनीय कहे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त इस युग की हिन्दी कहानी में यथार्थवाद के सन्दर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि यथार्थवाद एक युगीन परम्परा थी जिसकी पृष्ठभूमि में समकालीन सामाजिक जागरण और राजनैतिक चेतना मौजूद थी। इसलिए यथार्थवाद का आविर्भाव हिन्दी कहानी के इस प्रथम विकास-काल में ही हो गया था, यद्यपि परवर्ती युगों में उनका स्वरूप अवश्य परिवर्तित होता गया। यहाँ पर

पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में समाविष्ट यथार्थवाद के विभिन्न रूपों का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

**पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद**—पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है वह इतिहास के किसी युग विशेष पर आधारित नहीं है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि ऐतिहासिक यथार्थवाद, यथार्थवाद का एक विशिष्ट रूप है जो देश कालगत अन्तर के कारण भिन्नता रखता है। इस दृष्टिकोण से अतीतकालीन यथार्थ ही ऐतिहासिक यथार्थ है, जो विगत जीवन का समग्र चित्र यथार्थपरक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करता है। पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में इस यथार्थ रूप का परिचय केवल कुछ ही कहानियों के माध्यम से मिलता है। अपभ्रंश युगीन वीरगाथाओं, मध्ययुगीन प्रेमाख्यानों तथा रीतिकालीन वीर गाथाओं ने आधुनिक हिन्दी कहानी के ऐतिहासिक यथार्थवादी पृष्ठभूमि को निर्मित करने में विशेष रूप से योग दिया है। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' में ऐतिहासिक यथार्थ के क्षीण संकेत मिलते हैं, यद्यपि यह विशुद्ध कल्पनात्मक रचना है। इस युग में ऐसे बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं जब शक्तिशाली मुगल शासकों का संघर्ष हिन्दू रियासतों के राजाओं के अधिपतियों से हुआ था। पराजित होने पर हिन्दू राजाओं ने अपने विजेताओं से बदला लेने का प्रण किया था। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' शीर्षक कहानी में इतिहास के उस युग का संकेत किया गया है, जब देवगढ़ का राजा इब्राहीम लोदी से पराजित होता है और बाद में पानीपत की पहली लड़ाई में अजयगढ़ का राजकुमार इब्राहीम लोदी की हत्या करता है। इन्दुमती के पिता की यह प्रतिज्ञा कि वह अपनी पुत्री की शादी उसी व्यक्ति से करेगा जो इब्राहीम का बध करेगा इस तरह पूरी हो जाती है। वस्तुतः यह इतिहास की एक विशिष्ट परम्परा की परिचायक है।

पूर्व-प्रेमचन्द युग में हिन्दी कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद के सन्दर्भ में महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखित कतिपय रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है, जिनके शीर्षक 'स्वर्ग की झलक', 'खानखाना और सुमेरु पर्वत', 'मिर्जा अब्दुल रहीम खानखाना की उदारता', 'शायरों के शाहनशाह अबूतालिब' तथा 'शाहजहाँ' आदि हैं। इसी परम्परा में गिरिजाकुमार घोष उपनाम पार्वतीनन्दन लिखित 'कन्नौज सुन्दरी' तथा 'मुहम्मद गोरी का अन्त' आदि कहानियाँ भी उल्लिखित की जा सकती हैं। इन रचनाओं में ऐतिहासिक यथार्थवाद का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है वह किशोरीलाल गोस्वामी की लिखी हुई 'इन्दुमती' की तुलना में अधिक प्रभावशाली और विश्वसनीय है। जैसा कि इन रचनाओं के शीर्षकों से स्वतः स्पष्ट है, इनका सम्बन्ध भी भारतीय इतिहास के उस युग से है जब दिल्ली पर मुगल शासकों का

आधिपत्य था। इनमें ऐतिहासिक सत्यों का पूर्ण निर्वाह मिलता है और कल्पना-तत्वों का अनुपात अपेक्षाकृत न्यून है। वास्तव में ये कहानियाँ ही हिन्दी की ऐतिहासिक कहानियों का प्रारम्भिक स्वरूप सूचित करती हैं। इनमें से प्रायः सभी का प्रकाशन 'सरस्वती' पत्रिका के विभिन्न अंकों में हुआ था तथा इनमें शाहजहाँ और औरंगजेब के युगों को मूर्तिमान किया गया है। संक्षेप में यथार्थवाद के सभी रूपों की भाँति ऐतिहासिक यथार्थवाद का सम्यक् विकास प्रेमचन्द युग में हुआ परन्तु इसके प्रारम्भिक संकेत आलोच्य युग की उपर्युक्त रचनाओं में दृष्टिगत होते हैं।

पूर्व-प्रेमचन्द युगीन कहानी में सामाजिक यथार्थवाद—पूर्व-प्रेमचन्द-युगीन कहानी में सामाजिक यथार्थवाद के उस रूप का प्रायः अभाव-सा है, जिसका उत्कर्ष परवर्ती काल में हुआ। इस काल की ज्यादातर कहानियों में कल्पना तत्व का ही प्राधान्य रहा है, क्योंकि इस युग में कल्पनात्मकता व चमत्कारिकता के तत्व सामान्य प्रवृत्ति के रूप में दृष्टिगत होते हैं। परन्तु फिर भी आंशिक रूप में सामाजिक यथार्थवाद के संकेत अनेक कहानियों में मिलते हैं, क्योंकि इस युग में मनोरंजन के साथ सामाजिकता का लक्ष्य भी लेखक के सामने रहा है। जैसा कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में ही स्पष्ट किया जा चुका है, सामाजिक यथार्थवाद में जीवन को गतिशील रखने की क्षमता होती है। इस दृष्टिकोण से यद्यपि पूर्व-प्रेमचन्द युगीन कहानी में सामाजिक यथार्थ का प्रायः अभाव-सा ही है, परन्तु उन्हें पूर्णरूपेण यथार्थ से रहित भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उस समय साहित्यकारों में भी सामाजिक चेतना का जागरण हो चुका था। सिद्धान्ततः सामाजिक यथार्थ समाज की वास्तविक स्थिति का चित्रण करता है। वह सामाजिक विषमताओं, भ्रष्टाचारों तथा वैयक्तिक स्वार्थों से आक्रान्त, पीड़ित समाज की दयनीय परिस्थितियों को भी चित्रित करता है।

सामाजिक यथार्थवाद की दृष्टि से इस काल की रचनाओं में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित एक कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती', गौरीदत्त लिखित 'देवरानी जेठानी की कहानी' तथा 'कहानी टका कमानी', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम' तथा 'पंडित और पंडितानी', गिरिजाकुमार घोष उपनाम पार्वतीनन्दन लिखित 'कमर रेख', 'मोतियों की माला', 'मानवीय या दानवीय', मास्टर भगवानदास लिखित 'प्लेग की चुड़ैल', वंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' तथा चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' में समकालीन समाज में प्रचलित प्रेम और विवाह की परम्परागत भावना का चित्रण है। यह वस्तुतः समाज के एक वर्ग विशेष की यथार्थ मनोवृत्ति का द्योतक है। पार्वतीनन्दन की कहानियों में भी समाज के उस स्वरूप का यथार्थपरक चित्रण है, जो अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित था।

मास्टर भगवानदास को कहानी सामाजिक यथार्थ का अत्यन्त मार्मिक रूप प्रस्तुत करती है। इन्होंने 'प्लेग की चुड़ैल' शोर्षक कहानी में समकालीन समाज में व्याप्त नारी जाति के प्रति असहिष्णुता की भावना का प्रभावशाली चित्रण किया है। नारी-जीवन का ही आधार बनाकर बंग महिला ने अपनी मौलिक कहानियाँ प्रस्तुत कीं जिनमें 'दुलाई वाला' का प्रमुख स्थान है। यह कहानी नागरिक स्त्रियों से सम्बन्धित न होकर ग्रामीण स्त्रियों का यथार्थपरक चित्रण प्रस्तुत करती है। बंग महिला लिखित एक अन्य रचना सामाजिक यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से उल्लेखनीय है जिसका शीर्षक 'कुम्भ में छोटी बहू' है। यह कहानी तीर्थ-स्थलों में धार्मिक पर्वों पर घटित होने वाली उन दुर्घटनाओं का प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करती है, जो बहुधा विभिन्न परिवारों के लिए अभिशाप सिद्ध होती हैं।

गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी' शीर्षक कहानी का भी उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। यद्यपि इस कहानी का आधार मुख्यतः हास्य और व्यंग्य प्रधान है परन्तु फिर भी इसमें समकालीन समाज की एक ज्वलन्त समस्या की ओर संकेत किया गया है। इसका सम्बन्ध भी परोक्षतः नारी-समाज से ही है क्योंकि इसमें एक पैंतालीस वर्ष के पति और उसकी बीस वर्ष की पत्नी के वैवाहिक जीवन का चित्रण हुआ है। इसी क्रम में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी का है यद्यपि गुलेरी जी की लिखी हुई 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा' शीर्षक दो अन्य रचनाएँ भी सामाजिक यथार्थ के प्रभावशाली चित्रण की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'उसने कहा था' में समकालीन जीवन में सहज प्रेम-भावना की सामाजिक-पृष्ठभूमि में विकास तथा प्रथम विश्व-युद्ध की विभीषिका का अंकन हुआ है। 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा' में भी सामाजिक रूढ़ियों और अंध-विश्वासों का चित्रण हुआ है, जो समकालीन समाज की अशिक्षा और पिछड़ेपन का परिचय देता है। इस प्रकार से पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में सामाजिक यथार्थवाद के संकेत स्पष्ट रूप से विद्यमान मिलते हैं। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, इस युग की अधिकांश कहानियाँ कल्पना प्रधान होने के कारण यथार्थ के प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण रखती हैं। परन्तु फिर भी उनमें सामाजिक-जीवन के अनेक पक्षों का चित्रण हो सका है। लेखकों के भावात्मक दृष्टिकोण के कारण यह चित्रण सामाजिक यथार्थवाद के उस रूप से भिन्न है, जिसका विकास प्रेमचन्द-युग से स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। परन्तु फिर भी समकालीन सामाजिक-व्यवस्था, समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, धर्म क्षेत्रीय रूढ़िवादिता, नारी जाति की अशिक्षा और स्वावलम्बन-हीनता आदि के चित्रण में लेखकों की यथार्थपरक दृष्टि के संकेत अवश्य विद्यमान हैं। इस युग में हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक विकास को ध्यान में रखते हुए यह तथ्य महत्व रखता है।

**पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद**—आधुनिक काल में यथार्थवादी विचारधारा के विकास में मनोविज्ञान का विशेष योग रहा है। प्रस्तुत प्रबन्ध के विगत अध्याय में यह संकेत किया जा चुका है कि इस प्रभाव के फलस्वरूप मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के रूप में यथार्थवाद के एक विशिष्ट भेद का स्वरूप विकसित हुआ है। फ्रायड द्वारा प्रवर्तित मनोवैज्ञानिक ने मानव-मन की समुचित व्याख्या करते हुए उनके अचेतन स्वरूप का विस्तृत विश्लेषण किया है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का स्वरूप-यथार्थवाद के अन्य भेदों की भाँति प्रेमचन्द-युग से ही स्पष्ट हुआ है। परन्तु संकेत रूप में इसका समावेश भी पूर्व प्रेमचन्दयुगीन कहानियों में दृष्टिगत हो जाता है। यहाँ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना अनुचित न होगा कि हिन्दी कहानी का विकास मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के प्रसार का समानान्तर ही होता रहा है और आगे चलकर उसका तांत्रिक समावेश सूक्ष्मतर होता गया है। फ्रायड ने मन के विभिन्न विभागों से सम्बन्धित जिन तत्वों का विवेचन किया है और उनके मूल में जिन ग्रन्थियों और कुंठाओं की स्थिति बताई है, वह विशुद्ध मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेमचन्द की परवर्ती कालीन कहानी में दृष्टिगत होता है, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में ही पाश्चात्य साहित्य में मनोविज्ञान और यथार्थ दोनों का ही समुचित विकास होने लगा था और परोक्ष रूप में इसके संकेत हिन्दी कथा साहित्य में भी मिलने लगे थे।

पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में प्राचीन भारतीय कथा साहित्य की प्रेरणा और अभाव की मुख्यता के कारण मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के संकेत अत्यन्त क्षीण रूप में मिलते हैं। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी इंशाअल्ला खाँ लिखित 'रानी केतकी की कहानी' में लेखक के मनोरंजनपरक उद्देश्य के कारण कथावस्तु-गत कृत्रिमता और चमत्कारिता की अधिकता रही है। पात्र-योजना भी सर्वथा अविश्वसनीय और अस्वाभाविक है। केवल कुछ पात्रों की प्रतिक्रियाएँ कहीं-कहीं पर मनोवैज्ञानिकता की परिचायक हैं। नायक और नायिका की प्रेम-भावना का विकास भी मनोवैज्ञानिकता युक्त कहा जा सकता है। लल्लूलाल, सदल मिश्र और राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' की रचनाओं में मनोवैज्ञानिकता का सर्वथा अभाव है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' अवश्य कुछ मनोवैज्ञानिकता युक्त है और इसमें समकालीन समाज में व्याप्त अवमूल्यता और चाटुकारिता की भावनाओं का स्वाभाविकता-युक्त चित्रण हुआ है। गौरीदत्त शर्मा लिखित 'कहानी टका कमानी' तथा 'देवरानी जेठानी की कहानी' में भी मनो-वैज्ञानिक दृष्टिकोण का न्यूनाधिक रूप में समावेश मिलता है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' में नायक चन्द्रशेखर, नायिका इन्दुमती तथा नायिका के पिता देवगढ़ के राजा आदि के चरित्र किंचित नाटकीयता से युक्त होते हुए भी कहीं-

कहीं पर मनोवैज्ञानिकता के उस रूप का परिचय अवश्य देते हैं, जो इस युग की कहानियों में प्रायः विलुप्त-सा है।

मनोवैज्ञानिक यथार्थ की दृष्टि से आलोच्य युगीन कहानी में गिरिजादत्त बाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम' तथा 'पंडित और पंडितानी' शीर्षक रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रथम को एक विदेशी कथा पर आधारित बताया गया है। द्वितीय रचना 'पंडित और पंडितानी' एक मौलिक प्रेम भावना प्रधान कहानी है। इसमें एक ऐसे पति और पत्नी का मनोवैज्ञानिक चित्रांकन हुआ है, जिनकी अवस्था में बीस वर्ष का अन्तर है। इस कहानी में लेखक ने बीस वर्ष की पत्नी और चालीस वर्ष के पति के रुचि वैभिन्य का परिचय देते हुए यह बताया है कि अनेक अवसरों पर उनमें तीव्र मतभेद हो जाने पर भी प्रायः प्रेम-पूर्ण सन्धि हो जाती है। रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक कहानी का उल्लेख भी यहीं किया जा सकता है। इस कहानी में लेखक ने समकालीन प्रेम-भावना और प्रणय-सम्बन्धों के आदर्शपरक स्वरूप का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिचय प्रस्तुत किया है। गिरिजाकुमार घोष उपनाम पार्वतीनन्दन ने भी 'मेरा पुनर्जन्म' में विभिन्न स्थलों पर मनोवैज्ञानिक संकेत प्रस्तुत किये हैं। मास्टर भगवान दास लिखित 'प्लेग की चुड़ैल में भी एक पति और पत्नी का समकालीन सामाजिक आचार-विचार के सदर्भ में मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है जिसमें अपनी पत्नी को मृत समझने के उपरान्त पुनः उससे भेंट होने से पति उसे पत्नी का भूत समझ कर वैसा ही आचरण करता है। बंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' में एक स्त्री को एक विशिष्ट परिस्थिति में रखकर उसकी प्रतिक्रियात्मक भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है।

चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' मनोवैज्ञानिक यथार्थ की दृष्टि से युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कहानी है। इसके अतिरिक्त 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा' शीर्षक कहानियाँ भी इस दृष्टि से यहाँ उल्लिखित की जा सकती हैं। इनमें से 'सुखमय जीवन' एक ऐसी प्रेम कहानी है जिसमें कथा नायक जयदेव शरण की शहर से दूर एक अनजान स्थान में साइकिल पंचर हो जाने से नायिका कमला से भेंट, उसके परिवार से निकटता, एक दिन एकांत में प्रणय-याचना, किंचित हताश परन्तु अन्ततोगत्वा सुखान्त रूप में कहानी की समाप्ति आदि घटनाओं का मनोवैज्ञानिकता और स्वाभाविकता से पूर्ण घटनाओं का चित्रण है 'बुद्धू का काँटा' में भी नायक रघुनाथ और नायिका भगवन्ती के प्रेम विकास की कथा है, जिसमें काँटा लग जाने की घटना प्रधानता देकर कथा के उत्तरार्द्ध को सुखान्तक बनाया गया है। 'उसने कहा था' मनोवैज्ञानिक यथार्थ की दृष्टि से इस युग की सर्वोत्कृष्ट और प्रतिनिधि रचना है, जिसमें नायक नायिका के बाल्यावस्था में परिचय के उपरान्त प्रथम विश्व-युद्ध की पृष्ठभूमि में नायक के चारित्रिक उत्कर्ष

का अत्यधिक मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। इनमें प्रेम की विभिन्न परिस्थितियों का भावनापरक चित्रण अवश्य है, परन्तु कथा-वस्तु और पात्रों का चारित्रिक विकास विशुद्ध यथार्थ की दृष्टि से हुआ है। यह कहानी परवर्ती काल की उत्कृष्ट रचनाओं का स्वरूप बोध इसी युग में कराने में समर्थ है। स्वयं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस कहानी के आधारभूत यथार्थ और उदात्त आदर्श की प्रशंसा करते हुए लिखा कि 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी में 'गुलेरी' जी ने पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ संपुटित किया है।......घटना के भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है—केवल झाँक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी : उसने कहा था : भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स विवृत्ति नहीं है। सुरुचि के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुँचता। इसकी घटनाएँ ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।[1] डा० ब्रह्मदत्त शर्मा ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि 'हिन्दी की यथार्थवादी कहानियों का आरम्भ करने वाले कथाकारों में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का प्रमुख स्थान है।'[2] इस प्रकार से मनोवैज्ञानिक यथार्थ का सांकेतिक समावेश तो इस काल की कुछ रचनाओं में मिलता ही है उसका परिपक्व स्वरूप भी गुलेरी जी की कहानियों में दृष्टिगत होता है।

**पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद**—हिन्दी कहानी के क्षेत्र में यथार्थवाद के जो रूप उपलब्ध होते हैं, उनमें से एक आदर्शोन्मुख यथार्थवाद भी है। विगत अध्याय में यह संकेत किया जा चुका है कि प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती हिन्दी कहानी साहित्य में यथार्थवाद के प्रति अपेक्षाकृत उपेक्षा का भाव मिलता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस युग की कहानी आदर्श से अत्यधिक अनुप्राणित थी। सामान्यतः यथार्थवाद के अन्य रूपों की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का सम्यक् विकास भी प्रेमचन्द के समय से ही हुआ, यद्यपि उनकी सांकेतिक अभिव्यंजना पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में भी दृष्टिगत होती है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के अन्तर्गत उस यथार्थ का चित्रण किया जाता है जो बाह्य-रूप से आदर्श द्वारा आवृत होता है। पूर्व-प्रेमचन्द युग में अधिकांश कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में यथार्थवाद के जिन रूपों का आंशिक अथवा सांकेतिक रूप में समावेश किया है उनमें आदर्शोन्मुख यथार्थवाद ही प्रमुख है। यहाँ पर इस काल में लिखी गयी प्रतिनिधि कहानियों के आधार पर उनमें समाविष्ट आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तत्वों का संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है।

---

१. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', श्री रामचन्द्र शुक्ल, सं० २०१९, पृ० ५४१.
२. 'हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन', डा० ब्रह्मदत्त शर्मा, सन् १९५ , पृ० २४६।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से खड़ी बोली हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी इंशाअल्ला खाँ लिखित 'रानी केतकी की कहानी' में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की सांकेतिक निहिति स्वीकार की जा सकती है। इस कहानी की रचना का मूल उद्देश्य यद्यपि खड़ी बोली की भाषागत कथात्मक सामर्थ्य का परिचय देना था, परन्तु इसमें उद्देश्यात्मकता की प्रवृत्ति प्रधान होने के कारण इसका स्वरूप आदर्शपरक बन गया है। लल्लूलाल और सदल मिश्र की कथात्मक रचनाएँ भी आदर्शप्रधान हैं और यथार्थ की उपेक्षा करती हैं। गौरीदत्त शर्मा की लिखी हुई 'कहानी टका कमानी' तथा 'देवरानी जेठानी की कहानी' में अवश्य आदर्श के साथ-साथ यथार्थ का समन्वय मिलता है। इसमें समकालीन नारी-जीवन की यथार्थ स्थिति का चित्रण करते हुए उन्हें उदात्त जीवन की ओर उन्मुख होने का उपदेश दिया गया है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' शीर्षक कहानी भी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी संकेतों की दृष्टि से उल्लेखनीय है। जिसमें व्यावहारिक परिस्थितियों की कठोर यथार्थकता की पृष्ठभूमि में प्रण-पालन और आदर्श प्रेम की भावना का चित्रण किया गया है। गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी' भी इस दृष्टिकोण से उल्लेखनीय है, क्योंकि इसमें आयुगत भारी अन्तर के होते हुए भी आदर्श दाम्पत्य-प्रेम की अभिव्यंजना है। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टि से पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानियों में रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक रचना का उल्लेख भी यहाँ किया जा सकता है। यह कहानी भी यद्यपि संयोग और चमत्कार प्रधान है परन्तु, फिर भी इसमें एक विशिष्ट परिस्थिति में आदर्श प्रेम का चित्रण हुआ है। गिरिजा कुमार घोष उपनाम पार्वतीनन्दन की 'गल्प लहरी' में संगृहीत अनेक कहानियाँ भी यहाँ पर उल्लेखनीय हैं। इनमें 'प्रेम का फुव्वारा', 'कर्म रेख' तथा 'उमा भवानी' आदि कहानियाँ आदर्श की विशेष व्यंजना की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। मास्टर भगवानदास लिखित 'प्लेग की चुड़ैल' शीर्षक कहानी समकालीन जीवन के यथार्थ स्वरूप को प्रस्तुत करती है और इसका अन्त आदर्शवादी है। बंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' भी यथार्थ पर आधारित है और इसमें नारी जीवन को आदर्शपरक बनाने के लिए नव जागरण का संदेश निहित है। उदयनारायण बाजपेयी लिखित 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' विशुद्ध आदर्शवादी कहानी है और उपदेशात्मकता प्रधान है। इस काल की अन्य अनेक आदर्शपरक कहानियों की भाँति ये कहानियाँ भी यद्यपि समकालीन जीवन की किसी न किसी क्षेत्रीय यथार्थ समस्या पर आधारित हैं और अन्ततः इनमें आदर्श की ही प्रतिष्ठा की गयी है।

विशुद्ध आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के समावेश की दृष्टि से आलोच्य-युग में लिखी गई रचनाओं में सर्वप्रमुख और सर्व-प्रतिनिधि कहानियाँ चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा, तथा 'उसने कहा था' हैं।[1] ये तीनों

---

१. द्रष्टव्य 'गुलेरी जी की अमर कहानियाँ', सं० श्री सत्यधर गुलेरी।

कहानियाँ हिन्दी कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के उस स्वरूप की प्रारम्भिक अवस्था की द्योतक हैं जिनका विकास परवर्ती काल में प्रेमचन्द की रचनाओं में मिलता है। 'गुलेरी' जी की ये तीनों कहानियाँ समाज की यथार्थ पृष्ठभूमि पर आधारित हैं और इनमें समकालीन जीवन के विभिन्न पक्षों का विश्वसनीय चित्रण मिलता है। आलोच्ययुगीन कहानी की सामान्य प्रवृत्तियों की भांति ये तीनों कहानियाँ भी मुख्यतः प्रेम-भावना प्रधान हैं। परवर्ती हिन्दी कहानी में कर्तव्य और प्रेम का जो द्वन्द्व अभिव्यक्त हुआ है, वह इन कहानियों में प्रौढ़ रूप में दृष्टिगत होता है। इनमें कर्तव्य यथार्थ का प्रतीक है और प्रेम आदर्श का। 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा' में इन दोनों का संतुलित समन्वय मिलता है इसलिए इन्हें आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहा जा सकता है। इन कहानियों में कर्तव्य और प्रेम दोनों का निर्वाह हुआ है। 'सुखमय जीवन' में जयदेवशरण वर्मा और नायिका कमला के विवाह में कथा की समाप्ति तथा 'बुद्धू का काँटा' में नायक और नायिका का मिलन इन दोनों रचनाओं को सुखान्तक वर्ग में ले आता है, जो वस्तुतः आदर्श की प्रधानता का द्योतक है। परन्तु 'उसने कहा था' में कर्तव्य और प्रेम के द्वन्द्व में कर्तव्य की विजय दिखायी गयी है और इसलिए यह कहानी आदर्श की तुलना में यथार्थ प्रधान है। इसमें नायक लहनासिंह का निर्वाह करते हुए अपने प्रेम के लिए जो बलिदान दिखाया गया है वह समकालीन कहानी की सामान्य स्तरीयता को देखते हुए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।[1] संक्षेप में यथार्थवाद के अन्य रूपों की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समावेश भी पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानियों में अत्यन्त अल्प रूप में मिलता है। यद्यपि यथार्थवाद के अन्य भेदों की अपेक्षा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की अपेक्षाकृत प्रधानता आलोच्ययुगीन कहानियों में दृष्टिगत होती है।

### (ङ) पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद के उपकरण

इस अध्याय में पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में समाविष्ट यथार्थवाद के विभिन्न रूपों के सन्दर्भ में यह संकेत किया जा चुका है कि ऐतिहासिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का आंशिक समावेश कहानीकारों के दृष्टिकोण का परिचायक है। इस काल में जिन प्रवृत्तियों का विकास हिन्दी कहानी के क्षेत्र में हुआ, उसमें भी यथार्थवाद के ये ही रूप कम या अधिक रूप में मिलते हैं। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी के मूल उपकरणों में कथावस्तु, पात्र-योजना अथवा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद-योजना, भाषा, शैली, देशकाल अथवा वातावरण तथा उद्देश्य आदि की गिनती की जाती है। इस युग की लिखी गई तमाम कहानियों में इन्हीं चार तत्वों के अन्तर्गत यथार्थवाद का विवेचन किया जाय तो यह पता चलेगा कि धीरे-धीरे हिन्दी कहानी में आदर्श और

---

१. वही, पृ० ३९.

कल्पना के स्थान पर यथार्थता का समावेश होता गया है। आगे चलकर कहानी में यथार्थवाद का जो उभरा हुआ रूप दिखायी पड़ता है, उसके संकेत भी पूर्व-प्रेमचन्द-युगीन कहानी में यथार्थवाद के उपकरणगत विवेचन से मिल जाते हैं। इसीलिए यहाँ पर संक्षेप में प्रेमचन्द के पूर्व लिखी गयी हिन्दी की तमाम कहानियों के आधार पर कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, भाषा, शैली, वातावरण तथा उद्देश्य तत्वों के अन्तर्गत यथार्थवाद के बढ़ते हुए आग्रह का परिचय संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ—पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में समाविष्ट यथार्थवादी तत्वों का परिचय कथावस्तु उपकरण के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कथावस्तु कहानी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। वस्तुतः कथावस्तु की सफलता उसकी यथार्थ-परकता पर ही आधारित होती है। इस दृष्टि से उसमें कल्पनात्मकता आ सकती है, परन्तु उसकी विश्वसनीयता बनी रहनी चाहिए। डा० श्यामसुन्दरदास के विचार से "बौद्धिक वृत्ति जागरूक रहने के कारण आख्यायिका का पाठक उसके लेखक से बहुत अधिक विवेक की अपेक्षा रखता है। लेखक को भी तद्नुसार ही अधिक कौशलपूर्वक अपना कार्य करना पड़ता है। वह अपनी आख्यायिका में कहीं भी अविश्वसनीय अंश न आने देगा, ऐसा अंश जो पाठक की कल्पना को कुछ भी खटके। वह आख्यान को अधिक स्थायी प्रभावकारक बनाने के आशय से वस्तुओं के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि का सूक्ष्म वर्णन करेगा। ये तन्मात्राएँ पाठक के मन में बैठ जाती हैं और उसकी स्मृति को दृढ़ करती हैं।"[1] जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, यह युग हिन्दी का प्रथम विकास-युग है। इंशाअल्ला खाँ लिखित 'रानी केतकी की कहानी', लल्लूलाल लिखित 'सिंहासन बत्तीसी' आदि, सदल मिश्र लिखित 'नासिकेतोपाख्यान', राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्दी' लिखित 'राजा भोज का सपना' आदि इस आविर्भाव काल की ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें यथार्थ की सर्वथा उपेक्षा मिलती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती कुछ जग बीती' इस दृष्टि से अवश्य उल्लेखनीय है, जिसमें लेखक ने कथा-तत्त्व के माध्यम से युगीन यथार्थ का एक पक्ष चित्रित किया है। कथावस्तुगत यथार्थ की दृष्टि से इस युग में लिखी गयी अन्य कहानियों में महावीरप्रसाद द्विवेदी की रचनाओं-विशेष रूप से 'स्वर्ग की झलक' आदि का भी उल्लेख किया जा सकता है। पीछे यह संकेत किया जा चुका है कि महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस युग में पहली बार ऐतिहासिक यथार्थ का सम्यक्‌रूप अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है और यह विशेष रूप से कथावस्तु में संग्रहित घटनाओं के माध्यम से हुआ है। इस विषय में उन्होंने स्वयं भी स्पष्ट रूप से लिखा है कि "ये आख्यायिकायें मन की गढ़न्त नहीं हैं, सर्वथा सत्य हैं। औरंगजेब ने एक लम्बा

१. 'साहित्यालोचन', डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० १६०-१६१.

उत्तर भेजकर उत्तराधिकार का नियम 'रसम' को जारी रखने में होने वाले अन्याय का बहुत ही अच्छा वर्णन किया है। उसने इस पत्र में इन दोनों आख्यायिकाओं का भी निदर्शन किया है।'

आलोच्य-काल में कथावस्तुगत यथार्थ का परिचय निजामशाह की लिखी हुई शिकार सम्बन्धी कहानियों में मिलता है। उदाहरण के लिए यहाँ उनकी प्रसिद्ध रचना 'सुअर का शिकार' का उल्लेख किया जा सकता है जो एक सत्य घटना पर आधारित है। मास्टर भगवानदास लिखित 'प्लेग की चुड़ैल' शीर्षक कहानी कथावस्तु की दृष्टि से यथार्थपरक कही जा सकती है। इसमें कथा की आधारभूत मुख्य घटना समकालीन समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता की दृष्टि से विश्वसनीय है और पारिवारिक सम्बन्धों पर आधारित है। वंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' भी वास्तव में कथावस्तुगत यथार्थ की दृष्टि से उल्लेखनीय रचना है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा' और 'उसने कहा था' नामक कहानियाँ भी कथावस्तुगत यथार्थ का प्रभावशाली रूप प्रस्तुत करती हैं। उनमें 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा' कहानी में जो कथावस्तु प्रस्तुत की है, वह सर्वथा यथार्थपरक कही जा सकती है। 'उसने कहा था' में भी कथावस्तुगत यथार्थ का सर्वोत्कृष्ट रूप दृष्टिगत होता है। इसकी कथावस्तु का आरम्भ एक सामान्य घटना से होता है, और उसकी समाप्ति प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति पर होती है। इस प्रकार से पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ का जो स्वरूप उपलब्ध होता है उसका आधार समकालीन मानव-जीवन के विभिन्न पक्ष हैं। उसमें लेखकों के सुधारपरक दृष्टिकोण के कारण विभिन्न रूढ़ियों और उनसे उत्पन्न समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। यथार्थ जीवन की समस्याओं पर आधारित होने के कारण ही इनमें वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर विभिन्न कुरीतियों और विकृतियों का चित्रण हुआ है। शिकार सम्बन्धी कहानियों में घटनात्मक स्वाभाविकता विद्यमान है। अनेक रचनाओं में कथावस्तुगत असंगतियों, अस्वाभाविकताओं और नाटकीयता के होते हुए भी इस प्रारम्भिक युगीन रचनाओं में कथावस्तुगत यथार्थ दृष्टिगत होता है, जो परवर्तीयुगीन कहानी के लिए एक पुष्ट आधारभूमि सिद्ध हुई।

**पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में पात्र-योजना अथवा चरित्र-चित्रणगत यथार्थ**—पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में अधिकांशतः घटनात्मकता की प्रधानता और चित्रांकन की उपेक्षा मिलती है। इसीलिए इस काल में घटना प्रधान कहानियाँ अधिक लिखी गयीं और चरित्र प्रधान कहानियाँ कम। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी में चरित्र-चित्रण अथवा पात्र योजना के सफल नियोजन के लिए यह आवश्यक है कि पात्रों में सजीवता और यथार्थता का आभास हो। इन गुणों को अनेक आलोचकों ने पात्र-योजना के आवश्यक गुणों के रूप में स्वीकार किया है। डा० प्रताप

नारायण टंडन के अनुसार, "कहानी में चरित्र-चित्रण तत्व की एक विशेषता पात्रों की आधारिक यथार्थता है। इसके अनुसार कहानी के आधारभूत रूप से यथार्थ जीवन के ही प्रतिनिधि होने चाहिए। यथार्थता और कल्पनात्मकता का प्रश्न कहानी की कथावस्तु के सन्दर्भ में जितना जटिल है, उतना ही कहानी के पात्रों के सन्दर्भ में भी। जिस प्रकार से एक कहानीकार अपनी रचना के लिए कथावस्तु का चयन जीवन के किसी क्षेत्र विशेष से करता है, उसी प्रकार से उसके पात्र भी समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रायः ऐतिहासिक कहानियाँ भी किसी न किसी रूप में युगीन सामाजिक सन्दर्भ में महत्व रखती हैं। इसलिए यदि कहानी में नियोजित पात्रों का आधार यथार्थपरक है, तो पाठक उनके व्यक्तित्व से अवश्य प्रभावित होता है। इसके विपरीत यदि ये पात्र विशुद्ध कल्पना की उपज होते हैं तो पाठक को वे सर्वथा प्रभाव-विहीन प्रतीत होते हैं, भले ही उनके माध्यम से कहानी लेखक कितने भी महत्वपूर्ण आदर्श का प्रतिपादन क्यों न करे। कहानीकार की चरित्र-चित्रण की कलात्मक प्रौढ़ता भी कभी-कभी पात्रों की यथार्थता की सम्भावनाएँ उत्पन्न करने में सफल होती हैं, चाहे उनकी आधार-भूमि यथार्थपरक न भी हो। वह कल्पित पात्रों को भी अपनी चरित्रांकन की मनोविश्लेषणात्मक शैली के माध्यम से यथार्थ स्वरूप प्रदान कर सकता है।"[1]

आलोच्य युग में इंशाअल्ला खां लिखित 'रानी केतकी की कहानी', लल्लू लाल लिखित 'प्रेमसागर', सदल मिश्र लिखित 'नासिकेतोपाख्यान' तथा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' लिखित 'राजा भोज का सपना' आदि में पात्र-योजना विशुद्ध काल्पनिक आधार पर मिलती हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती कुछ जग बीती' में यथार्थ जीवन में पात्र चयन हुआ है और समकालीन समाज में व्याप्त चाटुकारिता और स्वार्थपरता की मनोवृत्ति इनमें दृष्टिगत होती है। गौरीदत्त शर्मा लिखित 'कहानी टका कमानी' तथा 'देवरानी जेठानी की कहानी' में भी यथार्थ पृष्ठभूमि पर पात्रों का चारित्रिक उत्कर्ष दिखाया गया है। नारी पात्रों के चित्रण की दृष्टि से ये कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखित 'मिर्जा अब्दुल रहीम खानखाना की उदारता', निजामशाह लिखित 'सुअर का शिकार', मास्टर भगवानदास लिखित 'प्लेग की चुडै़ल' तथा वंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' आदि कहानियों में जिन पात्रों की योजना हुई है, वे व्यवहारतः यथार्थ परक प्रतीत होते हैं। उपयुक्त रचनाओं में से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित एक कहानी 'कुछ आप बीती' कुछ जग बीती' में आत्मचरितात्मक शैली में अपने दीवानखाने में एकत्र मित्रों के स्वभाव का जो चित्रण किया है, वह युग जीवन की चाटुकारी प्रवृत्ति और स्वार्थ-भावना का परिचायक है।

---

१. 'हिन्दी कहानी कला', डा० प्रतापनारायण टंडन, सन १९७०, पृ० ३०२.

वंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' शीर्षक कहानी में भी पात्रों की चारित्रिक योजना यथार्थपरक और विश्वसनीय है। इसमें चरित्र-चित्रण का जो स्वरूप मिलता है, वह कलात्मक दृष्टि से भी हिन्दी कहानी की प्रारम्भिक अवस्था का द्योतक है। इसमें परिचयात्मक शैली में पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का दिग्दर्शन कराया गया है। आलोच्य-युग की कुछ कहानियाँ पात्र-योजना अथवा चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में लेखकों के मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी दृष्टिकोण की परिचायक हैं। इस दृष्टिकोण से गिरिजादत्त बाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी' शीर्षक कहानी का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। इस रचना में आयु के भारी अन्तर के होते हुए भी पात्रों के मनोवैज्ञानिक और यथार्थ चित्रांकन का प्रयत्न हुआ है। इसमें भी चरित्र-चित्रण की सामान्य परिचयात्मक शैली का प्रयोग हुआ है, "एक पंडित जी, जिनकी अवस्था पैंतालीस वर्ष की है, मेज पर झुके कुछ लिख रहे हैं। उनसे कुछ दूर पंडितानी, जिनकी अवस्था बीस वर्ष है, कुछ पढ़ रही है। पंडितानी पंडित जी को आकर्षित करने के लिए खांसती है। पंडित जी कार्यरत होने के कारण ध्यान नहीं देते। उन्हें लेख समाप्त करने की चिन्ता है। पंडितानी तोता पालने का प्रस्ताव रखती है। पंडित जी चुप हैं, और चुप इसलिए भी हैं कि तोता पालना उन्हें अरुचिकर प्रतीत होता है। पंडितानी तर्क करती है। फिर पंडित जी प्रेम-वश मान जाते हैं और वचन देते हैं कि एक नहीं छः तोते तुम्हें लाकर देंगे। पंडितानी प्रसन्न हो उठती है, और पंडित जी जल्दी-जल्दी अपना लेख पूरा कर डालते हैं।"[1]

चरित्र-चित्रणगत यथार्थता की दृष्टि से इस काल की सर्वाधिक उल्लेखनीय कहानियाँ चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का कांटा' तथा 'उसने कहा था' हैं। ये तीनों रचनाएं सामाजिक हैं और इनमें समकालीन मान्यताओं और नैतिक मूल्यों की पृष्ठभूमि में पात्रों का चरित्र-चित्रण हुआ है। इन रचनाओं में पात्रों के चारित्रिक विकास का आधार कर्तव्य और प्रेम का अन्तर्द्वन्द्व है, जो इन तीनों कहानियों के नायक और नायिकाओं को जीवंत स्वरूप प्रदान करता है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में 'गुलेरी' जी के चरित्र मानवीय और यथार्थ हैं। इनकी अवतारणा व्यक्ति, समाज और उसकी मान्यताओं के धरातल पर हुई है। 'सुखमय जीवन' के जयदेवशरण वर्मा, 'बुद्धू का कांटा' का रघुनाथ दोनों पुरुष चरित्रों का मानवीय पक्ष इनमें सहज रूप में आया है कि ये दोनों चरित्र पूर्ण वैयक्तिक होते हुए भी पूर्ण सामाजिक हो गए हैं।...ये दोनों चरित्र अपनी सहज दुर्बलता के कारण हमारे आकर्षण के पात्र हो गए हैं। जयदेव शरण ने कमला के प्रति आकर्षण और उसके प्रेम प्रस्ताव में जयदेव शरण का व्यवहार उच्छृंखलता तक पहुँच गया है, फलतः इसमें कुछ अस्वाभाविकता भी आ गयी है। दूसरी ओर इनमें चरित्र की वह गम्भीरता भी नहीं रह गयी है, जो 'बुद्धू का कांटा' में रघुनाथ में है। कमला का भी

---

१. 'सरस्वती', स० १९०३, भाग ४, सं० ६, पृ० १२६.

चरित्र बहुत दब गया है तथा इसमें और भी अस्वाभाविकता आ गयी है, क्योंकि जो तरुणी जयदेव शरण को जीवन की प्रथम भेंट में अनन्य श्रद्धा और प्रशंसा देती है, स्वयं उसे अपने घर लाती है, वह कैसे जयदेव के प्रणय प्रस्ताव पर इतनी निर्ममता से उपेक्षा कर सकती है? 'बुद्धू का कांटा' का रघुनाथ और भगवन्ती दोनों चरित्रों की अवतारणता अपेक्षाकृत अधिक चारित्रिक गम्भीरता और मानवीय धरातल पर हुई है।'[1] इस प्रकार से पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानियों में पात्र-योजना किसी सीमा तक युग जीवन के स्वाभाविक, विश्वसनीय और यथार्थ हुई है। इस काल के लेखक युग जीवन की विभिन्न समस्याओं का सम्यक् निदान प्रस्तुत करने की दिशा में प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। इनमें कर्तव्य और प्रेम का अन्तर्द्वन्द्व भी चित्रित हुआ है, जो उनके जीवन्त और यथार्थ व्यक्तित्व का द्योतक है। इसके साथ ही ये पात्र युग-जीवन के क्रमशः परिवर्तित होते हुए स्वरूप का भी यथार्थ रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं। इनकी प्रतिक्रियाएं, संघर्षशीलता, नैतिक जागरूकता, सामाजिक-चेतना और अन्तर्द्वन्द्वात्मकता भी इन्हें यथार्थ स्वरूप प्रदान करती है।

**पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में कथोपकथनगत यथार्थ**—पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानियों में कथोपकथन अथवा संवाद-योजनागत यथार्थ के संकेत भी न्यूनाधिक रूप में मिलते हैं। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से इस तत्व का कहानी में विशिष्ट महत्व है। डा० श्यामसुन्दरदास ने कहानी में संवाद तत्व का महत्व बताते हुए लिखा है कि 'कथोपकथन का आख्यायिका के लिए बहुत बड़ा महत्त्व है।...कथोपकथन के द्वारा यदि वह अत्यन्त मार्मिक तथा वास्तविकत हो तो एक अनोखा चमत्कार उत्पन्न किया जा सकता है और पाठक स्वतः उससे अपना निष्कर्ष निकाल लेता है।'...[2] इसी प्रकार डा० गुलाब राय ने कथोपकथन के विषय में लिखा है कि 'कथोपकथन या वार्तालाप द्वारा ही हम पात्रों के हृद्गत भावों को जान सकते हैं। यदि वार्तालाप पात्रों के चरित्र के अनुकूल न हो, तो हम उनके चरित्र का मूल्यांकन करने में भूल जायंगे। कहानीकार 'घर के भौतरिनाई' की भाँति विश्वासपात्र अवश्य हैं, किन्तु मार्मिक स्थलों पर पात्रों के वार्तालाप को ज्यों का त्यों उपस्थित कर देने में हमको दूसरे आदमी द्वारा बनाई हुई बात की अपेक्षा परिस्थिति का ठीक अंदाज लग जाता है।'[3] कथोपकथन की व्याख्या डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने विभिन्न साहित्यिक रूपों में की है। उनके अनुसार, 'यदि देश, काल और संस्कृति विशेष का कोई प्राणी किसी से भी किसी प्रकार की बातचीत करता है, तो उसकी बातचीत की प्रांजलता और विदग्धता, शब्द और वाक्य के प्रयोग भाषा और पदावली से हमें

---

१. 'हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास', डा० लक्ष्मीनारायण लाल, स० १९५३, पृ० ८४.

२. 'साहित्यालोचन', डा० श्यामसुन्दर दास, पृ० १९०.

३. 'काव्य के रूप', डा० गुलाबराय, पृ० २२३.

प्रत्यक्ष मालूम होता है कि व्यक्ति किस कोटि, वर्ग, देश और काल का है। संवाद से अन्य सभी तत्वों का सीधा सम्बन्ध होता है। संवाद जहां एक और कथा के प्रसार का मुख्य साधन होता है, वहीं चरित्रोद्घाटन का भी, साथ ही देश काल का भी पर्याप्त बोध करा देता है।'[1] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इस विषय में लिखते हैं कि 'कथोपकथन कहानी का छोटा, स्वाभाविक और प्रभविष्णु अंश होता है। उसका प्रत्येक शब्द सार्थक और सोदेश्य होना चाहिये। बड़े संवादों के लिए कहानी में स्थान नहीं होता। कहानी के कथोपकथन ऐसे न होने चाहिए जो स्वतंत्र रूप से पाठक का ध्यान आकृष्ट कर उसे विलमाते चलें या कथा के प्रवाह में किसी प्रकार विक्षेप डालें।[2] इससे स्पष्ट है कि कथोपकथन अथवा संवाद योजना आधुनिक कहानी का एक महत्वपूर्ण उपकरण है और उसकी सफलता का आधार उसमें स्वाभाविकता और यथार्थता के गुण हैं।

पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानियों में किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' में आयोजित अधिकांश कथोपकथन नाटकीय और कृत्रिम हैं परन्तु फिर भी कुछ स्थलों पर वे स्वाभाविकता से युक्त हैं और पात्रों की प्रतिक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक और विश्वसनीय रूप प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणार्थ '...उसका इतना परिश्रम इन्दुमती से न देखा गया और बड़े प्रेम से वह उसका हाथ थाम कर बोली—'प्यारे ! ठहरो, बस करो, बाकी लकड़ियाँ मैं रख आती हूँ। हाय, तुम्हारा परिश्रम देखकर मेरी छाती फटी जाती है। प्यारे, तुम राजकुमार होकर आज लकड़ी काटते हो। तुम सुस्ता लो।'

युवक ने मुस्कराकर कहा—'प्यारी सावधान, ऐसा भूल कर भी न करना, अपने पिता का क्रोध याद करो, अबका उन्होंने तुम्हें लकड़ो उठाने या हमसे बोलते देख लिया तो सर्वनाश हो जायगा।'

इतना कहकर इन्दुमती की आँखों में आँसू भर आये। वह बोली—'प्यारे, मेरे पिता का तो बहुत अच्छा स्वभाव था, सो तुम्हें देखते ही एकदम से ऐसा बदल क्यों गया ? वह तो ऐसे नहीं थे, अब उन्हें क्या हो गया ? आज तक मैंने उन्हें कभी क्रोध करते नहीं देखा था। खैर, जो होय, पर तुम जरा ठहरो, दम ले लो तब तक मैं इन लकड़ियों को फेंक देती हूँ।'[3]

कथोपकथनगत यथार्थता और विश्वसनीयता के जिस रूप का ऊपर संकेत

---

१. 'कहानी रचना का विधान', डा० जगन्नाथ शर्मा पृ० १२१.
२. हिन्दी कहानियाँ', स० आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० १४.
३. 'हिन्दी कहानी माला', सं० डा० केसरीनारायण शुक्ल तथा डा० भगीरथ मिश्र, स० १९६१, पृ० ७९.

किया गया है वह परवर्ती युगीन यथार्थ की दृष्टि से भले ही महत्वपूर्ण न हो परन्तु पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में जो नाटकीयता और बनावटीपन बहुलता से मिलता है, उसको देखते हुए इसका अवश्य महत्व है। इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक कहानी में उपलब्ध होता है: इस पर उसने उदास स्वर से कहा—'तुम हमारा परिचय लेकर क्या करोगे ? इतना जान लो कि मेरे समान अभागिनी इस समय इस पृथ्वी मंडल में कोई नहीं है।'

मेरे मित्र से न रहा गया, हाथ जोड़कर उन्होंने फिर निवेदन किया...'देवि ! अपने वृत्तान्त से मुझे परिचित करो। उसी हेतु हम लोगों ने इतना साहस किया है। मैं भी तुम्हारे ही समान दुखिया हूँ। मेरा इस संसार में कोई नहीं है।' मैं अपने मित्र का यह भाव देखकर चकित रह गया।

स्त्री ने करुण स्वर से कहा—'तुम मेरे नेत्रों के सम्मुख भुला भुलाया मेरा दुःख फिर उपस्थित करने का आग्रह कर रहे हो। अच्छा, बैठो।'

मेरे मित्र निकट एक पत्थर पर बैठ गये। मैं भी उन्हीं के पास जा बैठा। कुछ काल तक सब लोग चुप रहे। अन्त में वह स्त्री बोली—'इसके प्रथम कि मैं अपने वृत्तान्त से तुम्हें परिचित करूँ, तुम्हें शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम्हारे सिवाय यह रहस्य संसार में और किसी के कानों तक न पहुँचे, नहीं तो मेरा इस स्थान पर रहना दुष्कर हो जायगा और आत्म-हत्या ही मेरे लिए एकमात्र उपाय शेष रह जायगा।"[१]

कथोपकथनगत यथार्थ का सबसे ज्यादा प्रभावशाली रूप इस युग के प्रमुख कहानीकार चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानियों में दृष्टिगत होता है। 'सुखमय जीवन' में जो कथोपकथन हैं वे मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक हैं। 'बुद्धू का कांटा' में अवश्य सहजता और विनोदपूर्णता लक्षित होती है, जो आधारभूत यथार्थता की द्योतक है:

'क्या ?'

'कल से नदी में नहाने मत आना।'

'क्यों ?'

'गोते खाओगे, तो कोई बचाने वाला नहीं मिलेगा।'

रघुनाथ झेंपा, पर सम्हल कर बोला, 'अब कोई मेरी जान बचाएगा तो पीछा नहीं करूँगा, दो गाली भी सुन लूँगा।'

'इसलिए नहीं, मैं आज अपने बाप के यहाँ जाऊँगी।'

'तुम्हारा घर कहाँ है ?'

---

१. 'हिन्दी कहानी माला', सं० डा० केसरी नारायण शुक्ल और डा० भागीरथ मिश्र, सन १९६१, पृ० ६०.

'जहाँ अँतड़ियों को डूबने के लिए कोई नदी नहीं है।"[1]

'गुलेरी' जी की लिखी हुई सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' के प्रारम्भिक भाग में कथोपकथन का अत्यन्त मार्मिक रूप दृष्टिगत होता है, परन्तु कहानी के मध्य भाग में जो कथोपकथन मिलते हैं वे परिस्थितिगत यथार्थ के अनुरूप परिवर्तित हो गये हैं और इसी कारण से अधिक प्रभावशाली बन पड़े हैं। उदाहरणार्थ: 'लहना सिह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ में देकर कहा, अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।'

'हाँ देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दश गुना जमीन यहीं मांग लूँगा और फूलों के बूटे लगाऊँगा।'

'लाड़ी होरां को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेमें?'

'चुपकर। यहाँ वालों को शरम नहीं।'

'देश देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख, तमाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया। अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं'"[2] इस प्रकार से, जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कि आलोच्य युगीन हिन्दी कहानी में कथोपकथन अथवा संवाद योजनागत यथार्थ के जो संकेत मिलते हैं वे उसके परवर्ती रूप के समानान्तर भले ही महत्व न रखते हों, परन्तु उनमें जहाँ एक ओर कृत्रिमता और नाटकीयता की बहुलता है वहाँ दूसरी ओर यथार्थता और विश्वसनीयता भी मिलती है। ऊपर प्रस्तुत किये गये उदाहरण स्पष्ट रूप से इस तथ्य के परिचायक हैं कि उन्होंने युग जीवन के यथार्थ को अपने वास्तविक रूप में यथासम्भव प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

## पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में भाषागत यथार्थ

पूर्व प्रेमचन्द युगीन हिन्दी कहानी में भाषा तत्व का विशेष महत्व लेखकों के द्वारा स्वीकार किया गया है। यही कारण है कि केवल भाषा के नमूने प्रस्तुत करने की दृष्टि से इस युग में अनेक कहानियाँ लिखी गयीं। सैद्धान्तिक दृष्टि से कहानी की भाषा दुरूह नहीं होनी चाहिए। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने भाषा के विषय में लिखा है कि "भाषा साधन है, साध्य नहीं, अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा में आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माणकार्य आरम्भ किया गया था, वह क्योंकर पूरा हो। वही भाषा जिसमें आरम्भ में 'बागोबहार' और 'बेताल

---

१. 'गुलेरी जी की अमर कहानियाँ,' सं० श्री सत्यधर गुलेरी, पृ० ३०.

२. वही, पृ० ४१.

पच्चीसी' की रचना ही सबसे बड़ी साहित्यिक सेवा थी, अब इस योग्य हो गयी है कि उसमें शास्त्र और विज्ञान के प्रश्नों की भी विवेचना की जा सके।"[१] भाषा तत्व के सन्दर्भ में यदि हिन्दी कहानी के स्वरूप पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में उर्दू प्रधान भाषा का प्रचलन था। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी इंशाअल्ला खाँ लिखित 'रानी केतकी की कहानी' मुख्य रूप से भाषा की कथात्मक सामर्थ्य का परिचय देने के लिए ही लिखी गयी थी।

लल्लूलाल लिखित मौलिक तथा अनूदित कथात्मक रचनाओं की भाषा युगीन प्रभावों से युक्त है। इनमें ब्रजभाषा के साथ उर्दू, फारसी शब्द-योजना भी दृष्टिगत होती है और मुहावरे तथा कहावतें भी मिलती हैं। सदल मिश्र द्वारा प्रस्तुत 'नासिकेतोपाख्यान' की भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली है और इसे लेखक ने इसलिए खड़ीबोली में प्रस्तुत किया है, जिससे यह जनसाधारण के लिए सुलभ हो सके। इसकी भाषा आलंकारिक है। पार्वतीनन्दन की कहानियों में भाषा का जो स्वरूप उपलब्ध होता है, वह वास्तव में युगीन रचनाओं के सन्दर्भ में अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ है। इनकी भाषा अधिक व्यावहारिक और स्वाभाविकतायुक्त है। इसी कारण इसमें प्रभावात्मकता भी दृष्टिगत होती है। उदाहरण के लिए इनकी लिखी हुई 'मुहम्मद गोरी का अन्त' शीर्षक कहानी से कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं: "इस समय सूर्य डूब रहा था, उसकी गति बड़ी धीमी थी। किरणें लाल रंग के बादलों की शोभा बढ़ाती हुई पेड़ों के ऊपरी भाग पर आ पहुँची थीं। बादलों के छोर का भाग मानों घूँघट पर था। उस पर सूर्य की किरणें आ जाने से एक अपूर्व सुन्दरता हो रही थी।"[२]

बंग महिला की कहानियों में मुख्य रूप से भाषा का वह रूप उल्लेखनीय है जिसका आधार लोक तत्व है। यह लोकभाषा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में ग्रामों में प्रयोग की परिचायक है। इसमें ग्रामीण पात्रियों की भाषा की अभिव्यक्ति अत्यन्त स्वाभाविक रूप में हुई है। बंग महिला लिखित कहानी 'दुलाईवाली' शीर्षक से लोक-भाषा का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:

'अरे इनकर मनई तो नहीं आई लेन।'
'हों देखहों—रोवल करथ ईन।'
'अरे दुसर गाड़ी में बैठा होइ।'
'दुर बौरही। ई जनानी गाड़ी थोड़े है।'

---

१. 'साहित्य का उद्देश्य', मुंशी प्रेमचन्द, पृ० २१.
२. 'गल्पलहरी' : 'मुहम्मद गोरी का अन्त', श्री गिरिजाकुमार घोष, उपनाम पार्वतीनन्दन, पृ० ६२.

'तऊ ही भलती कहू।''[1]

किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' शीर्षक कहानी में भाषा का सरल और स्वाभाविक रूप दृष्टिगत होता है, जो सहज वर्णनात्मकता से युक्त है। यह भाषा की समकालीन व्यावहारिकता युक्त भाषा रूप की परिचायक है जिसमें कहीं-कहीं संस्कृत निष्ठता भी मिलती है। खड़ीबोली का जो संस्कृतनिष्ठ और परिपक्व स्वरूप परवर्ती कहानियों में मिलता है, उसका परिचय इस युग में रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' जैसी रचनाओं में दृष्टिगत होता है। लोकभाषा का व्यावहारिक रूप चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी में भी उपलब्ध होता है। इस कहानी में यत्र-तत्र पंजाब देश की आंचलिक भाषा पर स्थानीय प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिए : "जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ से चाबुक धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है पर मीठी छूरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चुनौती देने पर लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा जीनों जोगिये, हटना करमा वालिये, हट जा पुत्ता प्यारिए, बच जा लम्बी वालिए।''[2]

इस प्रकार से, पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में जो रचनाएँ जीवन के यथार्थ और सत्य को निरूपित करती हैं उनकी भाषा काल्पनिक और बनावटी न होकर यथार्थ और स्वाभाविक है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, आलोच्ययुगीन कहानियों में खड़ी बोली गद्य का प्रारम्भिक रूप दृष्टिगत होता है। संस्कृत, उर्दू, अरबी तथा फारसी के शब्द उस पर समकालीन प्रभाव के परिचायक हैं। धीरे-धीरे उसमें लोकपरक तत्व का भी विकास हुआ और भाषा का वह रूप कहानियों में प्रयुक्त किया जाने लगा जो जनता के निकट का था। इस युग की हिन्दी कहानी में खड़ी बोली के रूपगत स्तरीकरण का श्रेय इन कहानीकारों को है जिन्होंने भाषा के महत्व को समझा और उसे लोकपरक बनाया। इसी का विकसित रूप आगे के युगों में वह सुलझी हुई भाषा बनी, जिसे जन-भाषा की संज्ञा दी गई।

**पूर्व-प्रेमचन्द युगीन कहानी में शैलीगत यथार्थ**—पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में शैलीगत तत्व का जो विकास दृष्टिगत होता है वह भी कल्पना से यथार्थ की ओर उन्मुख होता प्रतीत होता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से शैली कहानी का पाँचवाँ मूल उपकरण है। सामान्य रूप से कहानी में जिन प्रमुख शैलियों का प्रयोग किया

१. 'सरस्वती', भाग ८, सं० ५, पृ० १८१, मई सन १६०७.
२. 'गुलेरी जी की अमर कहानियाँ', स० श्री सत्यधर गुलेरी, पृ० १२.

जाता है उनमें वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, संवेदनात्मक शैली, डायरी शैली, काव्यात्मक शैली, लोककथात्मक शैली, स्मृतिपरक शैली तथा मनोविश्लेषणात्मक शैली आदि हैं। कहानी में शैली की कहानी का निदर्शन करते हुए भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने विभिन्न मत प्रकट किये हैं। डा० गुलाबराय ने इस विषय में लिखा है कि 'शैली का सम्बन्ध कहानी के किसी एक तत्व से नहीं वरन सब तत्वों से है और उसकी अच्छाई या बुराई का प्रभाव पूरी कहानी पर पड़ता है। कला की प्रेषणीयता अर्थात् दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति शैली पर ही निर्भर करती है। किसी बात के कहने या लिखने के विशेष प्रकार को शैली कहते हैं। इसका सम्बन्ध केवल शब्दों से ही नहीं है, वरन विचार और भावों से भी है।'[१] श्री गिरधारीलाल शर्मा के मतानुसार 'रचना के भावी भाव, तत्व और विषय एवं उसे अभिव्यक्त करने का ढंग ही तो है। यानी इनका सम्मिश्रण ही रचना है। जहाँ उत्कृष्ट शैली का अभाव है, वहाँ तत्व और भावों के रहते हुए भी रचना का अंग अपूर्व रहता है और जहाँ केवल शब्द-योजना, पद-विन्यास, प्रसंग गर्भत्व आदि का अच्छा निर्वाह है, लेकिन भाव और तत्व की कमी है, तो भी कहानी निर्जीव ही रह जाती है। कहने का तात्पर्य यह कि रचना से शैली और भाव विषय दोनों ही का बोध होता है।[१]' एक अंग्रेजी विचारक एस० ओ० फाउलेन ने लिखा है कि कहानी का शिल्प विधान ही उसकी घटनात्मक संरचना का आधार होता है।[२]

पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग ही प्रायः हुआ है। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी इंशाअल्ला खां लिखित 'रानी केतकी की कहानी' इसी शैली में लिखी गयी है। यद्यपि इस कहानी में काल्पनिक तत्वों की प्रधानता है और नाटकीयता की भी प्रधानता है परन्तु फिर भी कहीं-कहीं शैलीगत यथार्थ का अच्छा पुट मिलता है।[3] लल्लूलाल की कृतियाँ शैलीगत यथार्थ की दृष्टि से नगण्य हैं क्योंकि उनमें अतिशयोक्ति और कल्पनात्मकता की अधिकता ही दृष्टिगत होती है। 'सिंहासन बत्तीसी', 'बेताल पच्चीसी', 'राजनीति' आदि कृतियों के सन्दर्भ में यही बात समान रूप से कही जा सकती है। सदल मिश्र लिखित 'नासिकेतोपाख्यान' में भी शैलीगत यथार्थ का अभाव है। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' लिखित 'राजा भोज का सपना' आदि रचनाओं में भी शैलीगत यथार्थ का अभाव ही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित' एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' में अवश्य शैली तत्व का किंचित यथार्थपरक रूप दृष्टिगत होता है। इसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ

---

१. 'कहानी : एक कला', श्री गिरधारीलाल शर्मा गर्ग, पृ० ९२.
२. 'दि शार्ट स्टोरी', श्री एस० ओ० फाउलेन, भूमिका, पृ० १२.
३. 'रानी केतकी की कहानी', सं० डा० श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ३.

उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही हैं : 'कोई कहता था आपसे सुन्दर संसार में नहीं, कोई कसमें खाता था---आपसा पंडित मैंने नहीं देखा, कोई पैगाम देता था---चमेली जान आप पर मरती हैं...कोई बोला हाय ! आपका फलाना कवित्त पढ़ कर रात भर रोते रहे। एक मीर साहब चिड़िया वाले ने चोंच खोली, बेपर की उड़ाई। बोले, कि आप के कबूतर किससे कम हैं। बल्लाह कबूतर नहीं परीजाद हैं, खिलौने या तस्वीर हैं। सिद्धान्त यह है कि मैं बिचारा अकेला और वाहवाहें इतनी कि चारों ओर से मुझे दबाए लेती थीं और मेरे ऊपर गिरी तथा फिसली पड़ती थीं।...यह तो दीवानखाने का हाल हुआ। अब सीढ़ी का तमाशा देखिए। चार-पाँच हिन्दू चार-पाँच मुसलमान सिपाही, एक जमादार दो-तीन उम्मेदवार, और दस-बीस उठल्लू के चूल्हे कोई खड़ा है, कोई बैठा है। हाय रुपया, हाय रुपया सबकी जुबान पर। कोई रंडी के भड़ुए से लड़ता है, रुपये में दो आना न दोगे तो सरकार से ऐसी बुराई करेंगे कि फिर बीबी का इस दरबार में दर्शन भी दुर्लभ हो जायगा।'[१]

पं० गौरीदत्त शर्मा लिखित 'कहानी टका कमानी' तथा 'देवरानी व जिठानी' भी शैलीगत यथार्थ की दृष्टि से उल्लेखनीय है, यद्यपि उसका विशेष महत्व सोद्देश्यता के विचार से है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' भी शैलीगत यथार्थ का रूप आभासित होता है। सामान्य वर्णनात्मक शैली में लिखी गयी यह कहानी सहज स्वाभाविकता और विश्वसनीयता से युक्त प्रतीत होती है। इसके इस गुण की वृद्धि में इसकी ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि भी किसी सीमा तक सहायक सिद्ध हुई है। रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक कहानी भी शैलीगत यथार्थ की दृष्टि से उल्लेखनीय है, यद्यपि इसमें भी युगीन प्रभाव के फलस्वरूप नाटकीय तत्वों का बाहुल्य है ; इसमें एक असाधारण विभीषिका से पूर्ण बाढ़ को कहानी की मुख्य घटना के रूप में वर्णित किया गया है। कहानी की नायिका के माध्यम से जो रहस्योद्घाटन लेखक ने कराया है, वह जहाँ एक ओर पाठक को संपूर्ण कथावस्तु के मर्म से अवगत करा देता है, वहीं दूसरी ओर शैलीगत स्वाभाविकता में भी वृद्धि करता है।[२] शैलीगत यथार्थ की दृष्टि से पूर्व-प्रेमचन्द युग के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कहानीकार के रूप में श्री चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का उल्लेख किया जा सकता है। इनकी लिखी हुई तीन कहानियाँ 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का कांटा' तथा 'उसने कहा था' शीर्षक से प्रकाशित हुई हैं। इनमें से पहली दो कहानियाँ किंचित नाटकीयता से युक्त कही जा सकती हैं, परन्तु तीसरी कहानी 'उसने कहा था' में अवश्य यथार्थ पूर्णतः विद्यमान है। वर्णनात्मक शैली में लिखी गई यह कहानी अंशतः भावात्मक, विवरणात्मक,

---

१ 'नागरी प्रचारिणी सभा', काशी द्वारा प्रकाशित 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' से उद्धृत।

२. 'हिन्दी कहानी माला' सं० डा० केसरीनारायण शुक्ल तथा डा० भगीरथ सन १९६१। पृ० ९१.

मनोवैज्ञानिक और स्वप्नपरक शैलियों से भी युक्त है। शैलीगत यथार्थ की दृष्टि से इस कहानी का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है : "स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है...मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घघरिया पल्टन क्यों बना दी, जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ, उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया। 'सूबेदारनी रोने लगी...'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़ों की लातों में चले गये थे और मुझे उठा कर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।...रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आंसू पोंछता हुआ बाहर आया।...वजीरासिंह...पानी पिला'...उसने कहा था।"[१]

इस प्रकार से, पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में जहाँ एक ओर अनेक रचनाएँ शैलीगत नाटकीयता और कृत्रिमता की द्योतक हैं, वहाँ दूसरी ओर कुछ रचनाएँ शैलीगत यथार्थ का बोध कराने में भी समर्थ हैं। ऊपर जिन कहानियों का उल्लेख किया गया है, वे इसी वर्ग की हैं। आलोच्ययुगीन कहानियों में यह तत्व अपेक्षाकृत अप्रौढ़रूप में मिलता है और अधिकांश कहानियाँ सामान्य वर्णनात्मक नाटकीयता पूर्ण शैली में लिखी गयी हैं। कहानी के अन्य तत्वों की भाँति शैलीगत यथार्थ की दृष्टि से भी प्रायः वे ही रचनाएँ यहाँ उल्लिखित की गयी हैं, जो व्यावहारिक जीवन के किसी न किसी यथार्थ पक्ष से सम्बन्धित हैं। इस युग की जो कहानियाँ विशुद्ध कल्पनात्मक हैं उनमें शैली भी कृत्रिम और अतिरंजित रूप में मिलती है, परन्तु जो कहानियाँ सामाजिक जीवन के किसी यथार्थ पक्ष अथवा समस्या से सम्बन्धित हैं वह शैलीगत यथार्थ की भी द्योतक हैं। इस युग की कहानियों में कथा-वस्तु तथा पात्र-योजना आदि की पृष्ठभूमि के विचार से जो बनावटीपन दिखाई देता है, उसे ध्यान में रखकर यदि देखा जाय तो शैलीगत यथार्थ का अल्प रूप भी विशेष महत्व का मालूम होगा।

**पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में वातावरण तत्वगत यथार्थ**—पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में देश, काल अथवा वातावरण तत्वगत यथार्थ का भी समावेश विभिन्न रूपों में दृष्टिगत होता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से देशकाल अथवा वातावरण तत्व की योजना कहानी को विश्वसनीय बनाने के लिए की जाती है। हिन्दी के

१. 'गुलेरी जी की अमर कहानियाँ', सं० श्री सत्यधर गुलेरी, पृ० ६७.

अनेक आलोचकों ने इस तत्व की महत्ता स्वीकार की है। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के विचार से 'वातावरण अथवा परिस्थिति के वर्णन का प्रधान उद्देश्य होता है, संपूर्ण कथानक के भीतर आयी हुई क्रियाओं और परिणामों का तर्कसंगत क्रमन्यास। यथार्थता को कल्पना की सीढ़ियों से ऐसा सजाना चाहिए कि किसी घटना अथवा कर्म के पूर्व की समस्त परिस्थितियाँ कड़ी के रूप में संगठित मालूम पड़ें। पाठक को यह विदित होना चाहिए कि अमुक कार्य के पहले उसके मूलभूत कारण किस रूप में उपस्थित थे। परिस्थितियों की सीढ़ी चढ़कर ही कोई परिणाम शिखर पर पहुँचता है और चमत्कृत हो सकता है।'[1] डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने देश-काल और वातावरण-चित्रण के विषय में विचार करते हुए लिखा है कि 'वास्तविक जीवन देश-काल और जीवन की विभिन्न सत्-असत् से परिस्थितियों के निर्मित होता है, अतएव इन तत्वों का एक स्थान पर संचयन और चित्रण करना कहानी में वातावरण उपस्थित करना है। कहानी की कथावस्तु और उसके संचालक पात्रों का सम्बन्ध उक्त परिस्थितियों से होता है, अर्थात् इसका उद्गम सूत्र और सम्बन्ध किसी देश में होगा या किसी विशिष्ट स्थान अथवा प्रदेश में होगा।'[2] डा० प्रतापनारायण टंडन के विचार से 'कहानी के सातवें मूल-तत्व के रूप में देश-काल अथवा वातावरण को मान्य किया जाता है। इस तत्व की आयोजना कहानी को विश्वसनीय एवं यथार्थात्मक पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए की जाती है। कहानी में संग्रहित घटना, व्यापार तथा पात्र-योजना के अनुकूल वातावरण के चित्रण से उसकी सफलता की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं। यदि किसी कहानी में इस तथ्य की उपेक्षा रहती है, तो पाठक कहानी की सामाजिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अपरिचित रहता है। कहानी में देश-काल अथवा वातावरण तत्व के अन्तर्गत उसकी उपर्युक्त पृष्ठभूमि के साथ ही सांस्कृतिक परम्पराओं, सामाजिक आचार-विचार, रहन-सहन तथा रीति-रिवाज आदि का भी चित्रण किया जाता है। इसका नियोजन कहानी की कलात्मक पृष्ठभूमि, रचना-काल, घटनात्मक आधार तथा पात्रों के वर्ग और स्तर के अनुकूल किया जाता है।'[3]

वातावरण की प्रधानता के विचार से कहानी का एक स्वतंत्र भेद विकसित हुआ है, जिसे वातावरण-प्रधान कहानी कहते हैं। पूर्व-प्रेमचन्द युग में इस प्रकार की कहानियाँ उपलब्ध होती हैं। तथापि इस युग में लिखी गयी अधिकांश कहानियों

---

१. 'हिन्दी कहानी का रचना विकास', डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, सन् १९६१, पृ० १८८.
२. 'हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास', डा० लक्ष्मीनारायण लाल, सन् १९५३, पृ० ३५२.
३. 'हिन्दी कहानी कला', डा० प्रतापनारायण टंडन, सन १९७०, पृ० १४२.

में भी वातावरण की अभिव्यंजना अवश्य हुई है। इंशाअल्ला खाँ लिखित 'रानी केतकी की कहानी', लल्लूलाल लिखित 'बैताल पच्चीसी' तथा 'सिंहासन बत्तीसी', सदल मिश्र लिखित 'नासिकेतोपाख्यान' और शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' लिखित 'राजा भोज का सपना' आदि रचनाओं में देश-काल और वातावरण का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है, उसमें यथार्थवाद का अभाव है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' में देश-काल अथवा वातावरण का तत्वगत यथार्थ अवश्य उल्लेखनीय रूप में मिलता है। बालमुकुन्द गुप्त लिखित 'मेले का ऊँट' में आधुनिक महानगरियों की सामाजिक पृष्ठभूमि में जीवन के परिवर्तनशील रूप को व्यक्त किया गया है, जब मनुष्य अपनी परम्पराओं और संस्कारों से ही स्वयं को अनभिज्ञ और अजनबी अनुभव करने लगता है। वातावरण की यथार्थता की दृष्टि से पूर्व-प्रेमचन्द युग की जो अन्य कहानियाँ उल्लेखनीय हैं, उनमें गिरिजादत्त बाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम' में प्राकृतिक वातावरण का अच्छा चित्रण है। केशव प्रसाद सिंह लिखित 'कश्मीर यात्रा' में भी प्रकृतिक वातावरण का प्रभावशाली रूप उपलब्ध होता है। कार्तिक प्रसाद खत्री लिखित 'दामोदर राव की आत्म कहानी' भी वातावरण-चित्रण की दृष्टि से उल्लेखनीय कही जा सकती है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' में भी प्राकृतिक वातावरण को कहानी के अन्य तत्वों के सन्दर्भ में यथासंभव विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। लाला पार्वतीनन्दन लिखित 'प्रेम का फुव्वारा' जैसी सामाजिक कहानियों में भी यथार्थ वातावरण चित्रित हुआ है। उसकी पृष्ठभूमि में सामाजिक जीवन की एक यथार्थ समस्या है, यद्यपि कथानक के विकास में अनेक नाटकीय घटनाएँ भी सम्मिलित हुई हैं। रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' में भी कुछ स्थलों पर वातावरण का प्रभावशाली रूप चित्रित हुआ है। विशेष रूप से बाढ़-ग्रस्त इलाके में सहायता के कार्य के समय का यह चित्र काफी विश्वसनीय मालूम होता है। "नौका आई, लोग टूट पड़े और बलपूर्वक चढ़ने का यत्न करने लगे। मल्लाहों ने भारी विपत्ति सम्मुख देखी। नाव पर अधिक बोझ होने के भय से तुरन्त अपनी नाव आगे बढ़ा दी। बहुत लोग रह गये। नौका पवन गति से गमन करने लगी। लोग उतरे। चन्द्रशेखर मिश्र भी नाव पर से उतरे और अपने पुत्र का नाम लेकर पुकारा। कोई उत्तर न मिला। उन्होंने अपने साथ उसे नाव पर चढ़ाया था। किन्तु भीड़-भाड़ नाव पर होने के कारण वह उनसे पृथक् हो गया था, मिश्र जी बहुत घबड़ाए और तुरन्त नाव लेकर लौटे। देखा, बहुत से लोग रह गये थे, उनसे पूछ-ताछ किया। किसी ने कुछ पता न दिया। निराशा भयंकर रूप धारण करके उनके सामने उपस्थित हुई।'[१]

बंग महिला लिखित 'कुम्भ में छोटी बहू' शीर्षक कहानी में भारतीय तीर्थ-

---

१. 'सरस्वती', सन १९०३, भाग ४, सं० ९, पृ० २०४.

स्थलों का वैरूप्यजनक चित्रण मिलता है। इसमें यह संकेत किया गया है कि बड़े नगरों में आयोजित मेलों में ग्रामीण स्त्रियों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' कहानी में भी इसी प्रकार से रेल-यात्रा की पृष्ठभूमि में स्टेशनों की भीड़-भाड़ का चित्रण है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' में वातावरण का सर्वाधिक प्रभावशाली चित्रण मिलता है। इसमें पंजाब प्रदेश के अमृतसर जिले की स्थानीय विशेषताओं से युक्त सामाजिक वातावरण का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसी कहानी से एक उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है—'बड़े-बड़े शहरों के इक्के गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है, कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए, इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चींथकर अपने को ही सताया हुआ बताते हैं, और संसार भर की ग्लानि-निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में हर एक लड्ढी वाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसा जी', 'हटो माई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लाला जी', 'हटो बाछा' कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जंगल में राह लेते हैं।'[1] इस प्रकार से पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानियों में वातावरण के जो रूप मिलते हैं, वे कल्पनापरक अधिक और यथार्थपरक कम हैं। परन्तु जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती', बालमुकुन्द गुप्त लिखित 'मेले का ऊँट', गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम', केशवप्रसाद सिंह लिखित 'कश्मीर यात्रा', कार्तिक प्रसाद खत्री लिखित 'दामोदर राव की आत्म कहानी', किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', लाला पार्वतीनन्दन लिखित 'प्रेम का फुव्वारा', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', बंग महिला लिखित 'कुम्भ में छोटी बहू', 'दुलाई वाली' तथा चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' आदि कहानियों में वातावरण के तत्त्वगत यथार्थ के संकेत मिलते हैं।

पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में उद्देश्य तत्त्वगत यथार्थ—सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी का आठवाँ और अन्तिम मूल उपकरण उद्देश्य है। अनेक विद्वानों ने उद्देश्य तत्त्व की महत्ता के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। डा० श्यामसुन्दर दास के अनुसार, 'कहानी एक निश्चित लक्ष्य को आधार बनाकर लिखी जाती है तथा उसी पूर्ति के लिए उसमें अन्य तत्त्वों की योजना होती है। यदि ये तत्त्व उस लक्ष्य की पूर्ति में सहायक नहीं होते और उनकी स्वतन्त्र सत्ता होती है, तो कहानी

सफल नहीं कही जा सकती। इस रूप में एक ही मुख्य लक्ष्य या भाव की अभिव्यक्ति करना, आख्यायिका कला की अनिवार्य और प्राथमिक विशेषता है।'[१] डा० गुलाबराय के शब्दों में 'प्रत्येक कहानी में कोई उद्देश्य या लक्ष्य अवश्य रहता है। कहानी का ध्येय केवल मनोरंजन या लंबी रातों को काट कर छोटा करना नहीं है, वरन् जीवन सम्बन्धी कुछ तथ्य देना या मानव मन का निकट परिचय कराना है, किन्तु वह उद्देश्य या तथ्य हितोपदेश या ईसप की कहानियों की भाँति व्यक्त नहीं किया जाता है। वह अधिकांश में व्यंजित ही रहता है। कहानी के अध्ययन में उसका उद्देश्य समझना एक आवश्यक बात होती है।'[२]

इस प्रकार से श्री राय कृष्णदास ने भी इस विषय में लिखा है कि "आख्यायिका चाहे किसी लक्ष्य को सामने रखकर लिखी गयी हो या लक्ष्य-विहीन हो, मनोरंजन के साथ-साथ अवश्य किसी न किसी सत्य का उद्घाटन करती है।"[३] प्रो० देवमित्र ने कहानी के उद्देश्य तत्व के विषय में लिखा है कि 'कहानी के तत्वों तथा रस का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य के अन्य अंगों की तुलना में कहानी ही वह अकेला अंग है, जिसमें सोद्देश्यता स्वाभाविकतः ठहरायी जाती है। सबसे पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि सोद्देश्यता और उपदेशात्मकता में बहुत अन्तर है। सोद्देश्य होने का तात्पर्य इतना ही है कि उसका अपना कुछ लक्ष्य होता है, प्रयोजन होता है। यों तो साहित्य के प्रत्येक अंग का अपना कुछ प्रयोजन होता है, किन्तु वह प्रयोजन कुछ इस तरह उसमें घुला-मिला होता है कि उसको पृथक् करके अलग नाम नहीं दिया जा सकता।"[४] डा० प्रतापनारायण टंडन के विचार से "कहानी का आठवाँ और अन्तिम मूल उपकरण उद्देश्य है। प्राचीन युगीन कथा साहित्य से लेकर वर्तमान-कालीन कहानी तक उद्देश्य तत्व का स्वरूप भी परिवर्तित और विकसित होता रहा है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से प्रत्येक कहानी की रचना का एक उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य पाठकों के मनोरंजन से लेकर गम्भीर समस्या का निरूपण तक हो सकता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि प्राचीन कथा साहित्य में उद्देश्य के तात्विक स्वरूप पर विचार किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि उसकी रचना मूलतः मनोरंजन तथा उपदेशात्मकता की दृष्टि से की जाती थी। जो रचनाएँ मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी जाती थीं, वे प्रायः कल्पनात्मक होती थीं। इनकी रचना का आधार उत्सुकता तथा कौतूहल की वृत्तियाँ होती थीं।"[५] पाश्चात्य

---

१. 'साहित्यालोचन', डा० श्यामसुन्दर दास, पृ० १८५.
२. 'काव्य के रूप', डा० गुलाबराय, पृ० २२४.
३. 'इक्कीस कहानियाँ', श्री रायकृष्ण दास, आमुख, पृ० ५.
४. 'कहानी के रूप और तत्व', प्रो० देवमित्र, पृ० ६.
५. 'हिन्दी कहानी कला', डा० प्रतापनारायण टंडन, सन १९७०, पृ० ४४२.

साहित्यालोचकों ने भी कहानी के उद्देश्य तत्व पर अपने-अपने दृष्टिकोण को प्रकट किया है। फोर्ड एम० व्हेफर लिखते हैं कि "कहानी का उद्देश्य केवल घटना व्यापार का चित्रण है। उनमें उपदेशात्मकता अथवा किसी प्रकार की शिक्षा का दिग्दर्शन औचित्यपूर्ण नहीं है।"[१] ए० एम० सा० क्लार्क भी कहानी में उद्देश्य तत्व पर विचार करते हुए बताते हैं कि "कहानी में जीवन का स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है, उसमें यथार्थ के साथ उद्देश्य का भी योग होता है। लेखक मानव-जीवन के किसी क्षेत्र विशेष का पर्यवेक्षण करता है और फिर उन्हीं को अपनी कल्पना की सहायता से एक ऐसा स्वरूप प्रदान करता है, जो उसका अभीष्ट होता है। इस दृष्टिकोण से क्लार्क ने इस मन्तव्य की स्थापना की है कि कहानी का आधारभूत उद्देश्य यथार्थ का चित्रण करना नहीं है।"[२] रोम्या रोलां ने कहानी साहित्य के उद्देश्य तत्व के सम्बन्ध में संकेत करते हुए अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं कि "उसके माध्यम से जब तक लेखक अपनी जीविका नहीं अर्जित करेगा, तब तक उसे गम्भीरता नहीं प्रदान करेगा। उसने अपने इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया है कि यदि कोई लेखक जीविका की दृष्टि से किसी अन्य व्यवसाय पर आश्रित रहता है और केवल शौक, व्यसन अथवा मनोरंजन के लिए साहित्य-सृजन करता है, वह साहित्य का सच्चा आराधक नहीं है। सच्चे कलाकार के लिए कला ही उसका जीवन और आत्मा होती है। यह भावना तभी उसमें आ सकती है, जब वह पूर्ण रूप से उसी पर आश्रित हो। फ्रान्सिस विवियन ने कहानी के उद्देश्य को उसका एक ऐसा तत्व निर्दिष्ट किया है, जो उसमें आदि से लेकर अन्त तक व्याप्त रहता है।"[३] इसी प्रकार ए० जे० स्मिथ तथा डब्लू० एच० मैसन ने भी कहानी के परम्परागत उद्देश्य पर लिखा है कि आज का पाठक कहानी के मनोरंजन से अधिक कुछ और भी अपेक्षा करता है।[४]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि उद्देश्य कहानी का एक महत्वपूर्ण उपकरण है और इसके क्षेत्र में भी निरन्तर विकासशीलता लक्षित होती है। इस तत्व की प्रधानता के आधार पर कहानी को उद्देश्य प्रधान कहा जाता है। आरम्भिक युग में जो हिन्दी कहानियाँ लिखी गयीं। उनमें मनोरंजन, नीति-शिक्षा, कौतूहल सृष्टि, उपदेशात्मकता की प्रधानता थी। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी इंशाअल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' खड़ी बोली के रचनात्मक सामर्थ्य का

---

१. 'स्टोरीज फ्राम गार्ड० डी० मोपांसा', श्री फोर्ड एम० व्हेफर, भूमिका।
२. 'ए मैनुअल आफ शार्ट स्टोरी', श्री ए० एम० सी० क्लार्क, पृ० ११८.
३. क्रियेटिव टेक्नीक इन फिक्शन', श्री फ्रांसिस विवियन, पृ० ६२.
४. 'शार्ट स्टोरी स्टडी : ए क्रिटिकल एंथालोजी', : प्राक्कथन :, श्री ए० जे० स्मिथ तथा डी० डब्लू० एच० मैसन, पृ० ३१.

परिचय देने के उद्देश्य से लिखी गयी थी। लल्लूलाल लिखित 'बैताल पच्चीसी' जैसी कृतियाँ केवल हिन्दी पाठकों के लिए सुलभ बनाने के उद्देश्य से लिखी गयी थीं : "मुहम्मद शाह बादशाह के जमाने में राजा जयसिंह सवाई ने जो मालिक जयनगर का था सुख नाम कवीश्वर से कहा कि 'बैताल पच्चीसी' की जो जबान संस्कृत में है तुम ब्रज भाषा में कहो, तब उसने बमूजिब हुक्म राजा के ब्रज की बोली में कही। अब वह खड़ीबोली में होकर छापी जाती है जिसमें सब लोगों की समझ में आवे।"[1] यही उद्देश्य सदल मिश्र कृत नासिकेतोपाख्यान में भी मिलता है : "अब सम्वत् १८६० में नासिकेतोपाख्यान को कि जिसमें चन्द्रावती की कथा कही है, देववाणी से कोई समझ नहीं सकता, इसीलिए खडी बोली में किया। तहाँ कथा का आरम्भ इस रीति से हुआ।"[2] राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द लिखित 'राजा भोज का सपना' में उपदेशात्मकता की प्रधानता है और इसका अन्त भी उपदेशात्मक है : "हे पाठक जनों क्या तुम भी भोज की तरह ढूंढ़ते हो और भगवान से उसके मिलने की प्रार्थना करते हो। भगवान तुम्हें शीघ्र ऐसी बुद्धि और अपनी राह पर चलावे यही हमारे अन्तःकरण का आशीर्वाद है।"[3] पूर्व-प्रेमचन्द युग की अन्य अनेक कहानियाँ भी विशुद्ध मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी गयी थीं और इनमें कल्पनात्मक तत्वों की ही प्रधानता लक्षित होती है। उदाहरण के लिए मधुमंगल लिखित 'भुतही कोठरी' तथा रुद्रदत्त भट्ट लिखित 'अजीबदास की जासूसी' आदि। परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'कुछ आप बीती कुछ जगबीती' एवं गिरिजादत्त बाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी' में यथार्थ पृष्ठभूमि में व्यक्त रचनाओं में उद्देश्य तत्व स्वतः ही परिलक्षित होता है। इनकी पृष्ठभूमि यथार्थपरक है और इनका उद्देश्य स्त्री-शिक्षा का प्रचार, अंध-विश्वास की समाप्ति और मानव की आन्तरिक चेतना को जाग्रत करना है।

उद्देश्यगत यथार्थता का एक रूप रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' में भी मिलता है जो पृष्ठभूमिगत आदर्शवादी आग्रह के होते हुए भी यथार्थ रूपों के बदले रूपों का परिचायक है। "गौरीदत्त शर्मा लिखित 'कहानी टका कमानी' तथा 'देवरानी जेठानी' की कहानियाँ दोनों सोद्देश्य हैं। इनमें से प्रथम का

---

१. 'बेताल पच्चीसी', श्री लल्लूलाल, प्रकाशक श्री रामनारायण लाल, प्रयाग, पृष्ठ १.

२. 'चन्द्रावती अथवा नासिकेतोपाख्यान', श्री सदल मिश्र, अनुवादित नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० २.

३. 'कुछ साहित्यिक स्वप्न', : राजा भोज का सपना :, श्री सोमनाथ गुप्त, पृ० १८.

उद्देश्य यह बताना है कि यथार्थतः नारी अपने पुरुषार्थ से कितनी स्वावलम्बी और समृद्ध बन सकती है।[1] 'देवरानी जेठानी' कहानी में भी यही उद्देश्य प्रधान है और परोक्षतः नारी के परिवर्तित रूप की पृष्ठभूमि में नवचेतना के जागरण का आह्वान करता है : "इस पुस्तक में मैंने स्त्रियों की हां बोलचाल लिखी है और इस पुस्तक में ये भी दर्शा दिया है, दिखा दिया है कि पढ़ी हुई स्त्री जब एक काम को करती है, उससे क्या लाभ होता है और कुपढ़ स्त्री जब उसी काम को करती है, उससे क्या हानि होती है।...जो स्त्री इसको पढ़ेगी या ध्यान देकर सुनेगी वह सुशील होकर अपनी संतान का पालन-पोषण अच्छी तरह से करेगी और कुरीतियों से बचकर गृहस्थी के प्रबन्ध में उसकी रुचि होगी, पति की सेवा और विद्या की तरफ उनका स्नेह बढ़ेगा और ये ही उनके सुख भोगों का कारण होगा।"[2]

पूर्व-प्रेमचन्द युग में ही नारी जागरण की परिचायक एक अन्य रचना उपलब्ध होती है जिसका शीर्षक 'किस्सा मर्द औरत' का है। इसकी लेखिका सुश्री जैनमती अग्रवाल हैं। इस रचना के उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए लेखिका ने स्वयं लिखा है : "हालाँकि जितने ऐब मर्दों में भरे हुए हैं, औरतों में उसका छठवाँ हिस्सा भी नहीं है। हजारों ऐसी दास्तान हैं, जिनसे औरतों की भलाई और मर्दों की बेवफाई जाहिर होती है, मगर मर्दों ने जब कोई किताब लिखी है, उसमें औरतों ही को बुरा कहा है, इस वास्ते मैं एक दास्तान मर्द-औरत की लिखती हूँ, उसके देखने से मर्द अपने दिल में इंसाफ करें कि कौन बुरा और कौन अच्छा है। वह दास्तान यह है।"[3] पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखित 'स्वर्ग की झलक', 'खानखाना और सुमेरु पर्वत', 'मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखाना की उदारता', 'शायरों के शहिनशाह अबूतालिब' तथा 'शाहजहाँ' एवं चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा', 'उसने कहा था' आदि में भी उद्देश्य तत्वगत यथार्थ का परिचय मिलता है। 'उसने कहा था' कलात्मक दृष्टि से अपने युग की सर्वाधिक उत्कृष्ट रचना है और इसमें राष्ट्रीय चेतना के जागरण के संकेत मिलते है। इस प्रकार से इस युग की कहानी मनोरंजन, कौतूहल दृष्टि और उपदेशात्मकता के साथ यथार्थपरक समस्याओं के उन्मूलन का लक्ष्य भी प्रस्तुत करती है।

## पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद : सिंहावलोकन

प्रस्तुत अध्याय में पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में यथार्थवाद का जो अध्ययन किया गया है, वह हिन्दी कहानी की प्रारम्भिक स्थिति और कहानीकारों

---

१. 'कहानी टका कमानी', श्री गौरीदत्त शर्मा, पृ० ३.

२. 'देवरानी जेठानी की कहानी', श्री गौरीदत्त शर्मा, सन १८७० ई०, पृ० २८.

३. 'किस्सा मर्द औरत का', सुश्री जैनमती अग्रवाल, सन १८९५, पृ० २.

के दृष्टिकोण में यथार्थ के बढ़ते हुए आग्रह का परिचायक है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, हिन्दी गद्य-साहित्य के विभिन्न रूपों का आविर्भाव भारतेन्दु-युग से हुआ था, यद्यपि उनके पूर्व भी खड़ीबोली गद्य के अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रजभाषा गद्य का आरम्भ सम्वत् १४०० से आरम्भ हुआ था और १८ वीं शताब्दी तक सूरति मिश्र, कथा-साहित्य के क्षेत्र में 'बैताल पचचीसी' की रचना कर चुके थे। रामप्रसाद निरंजनी, दौलतराम, सदासुख लाल, सदल मिश्र, जटमल तथा राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द आदि की विविध विधायक कृतियों में हिन्दी-गद्य का प्रारम्भिक रूप दृष्टिगत होता है। सम्वत् १९०० तक ब्रजभाषा गद्य का अधिक प्रसार रहा तथा इसके पश्चात् खड़ीबोली का व्यवहार अधिक बढ़ने लगा। खड़ीबोली गद्य के विकास में सैयद इंशाअल्ला खाँ का उल्लेखनीय योगदान रहा। इनकी सुप्रसिद्ध रचना 'उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी' है जिसे कुछ विद्वान् हिन्दी की प्रथम कहानी रचना मानते हैं। इसी क्रम में लल्लूलाल लिखित 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'माधोनल', 'प्रेम सागर', सदल मिश्र लिखित 'नासिकेतोपाख्यान' अथवा 'चन्द्रावती' तथा 'रामचरित', जटमल लिखित 'गोरा बादल' तथा राजा शिवप्रसाद लिखित 'राजा भोज का सपना' आदि रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। यह कलात्मक रचनाएँ पूर्ण रूप से कल्पनात्मकता और चमत्कारिता प्रधान हैं तथा इनमें उस यथार्थवादी दृष्टिकोण का अभाव है जो हिन्दी कहानी के परवर्ती युग में विकासशील मिलता है।

भारतेन्दु-युग में हिन्दी कहानी का नवीन उत्थान हुआ। और हिन्दी-कहानी के क्षेत्र में पहली बार सामाजिक तथा पारिवारिक समस्याओं का निरूपण किया गया। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' तथा 'गुलबहार', मास्टर भगवानदास लिखित 'प्लेग की चुड़ैल', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरजादत्त बाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी', बंग महिला लिखित 'दुलाई वाली', गंगाप्रसाद अग्निहोत्री लिखित सच्चाई का शिखर', सूर्यनारायण दीक्षित लिखित 'चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान', पार्वतीनन्दन लिखित 'प्रेम का फुव्वारा', 'एक के दो दो' तथा 'मेरा पुनर्जन्म' आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त इस युग के अन्य कहानीकार भी हुए, जिनमें महेन्द्रनाथ गर्ग लिखित 'पेट की आत्म कहानी' आदि इस युग की उल्लेखनीय कहानियाँ हैं, जिनमें समकालीन सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण हुआ है। यद्यपि इनमें से अधिकांश कहानी नाटकीय तथा काल्पनिक तत्वों से परिपूर्ण हैं। परन्तु इनमें यथार्थ चेतना का समन्वय अपने प्रारम्भिक रूप में आभासित होता है। भारतेन्दु ने आधुनिक-युग के प्रवर्तक होने के नाते कहानी साहित्य का प्रवर्तन किया। कहानी-साहित्य के क्षेत्र में उनकी लिखी हुई एक रचना 'कुछ आप बीती कुछ जगबीती' उपलब्ध होती है। यह कहानी समकालीन सामाजिक

जीवन की पृष्ठभूमि में मनोवृत्ति का विश्लेषण करती है। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु लिखित एक अन्य कथात्मक गद्य रचना 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' शीर्षक से भी उपलब्ध होती है। यह मूलतः एक निबन्धात्मक रचना है, जो कथा तत्वों से युक्त है। अपनी रचनाओं में लेखक ने समकालीन जीवन की पृष्ठभूमि में आधुनिक शिक्षा-पद्धति तथा अन्य सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' लिखित 'राजा भोज का सपना' शीर्षक कल्पनात्मक कहानी नयी कड़ी के रूप में अपेक्षाकृत यथार्थपरक दृष्टि की सूचक है। राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यमपुर की यात्रा' कल्पना प्रधान कहानी है। इसमें लेखक ने यह दिखाया है कि समाज के विभिन्न वर्ग मूलतः मिथ्या भावनाओं एवं रूढ़िवादी भावनाओं में आस्था रखते हैं तथा उनके कार्यकलाप की पृष्ठभूमि में निजी स्वार्थ निहित होता है। समाज में अधिकांश कुरीतियों के विद्यमान रहने का यही कारण है। राजनीतिक स्वतंत्रता तथा समानता की ओट में समाज में शोषण को प्रश्रय दिया जाता है तथा देश के नेता इसे बढ़ावा देते हैं। गोस्वामी की रचना में इस प्रकार के यथार्थपरक संकेत प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

श्री किशोरीलाल गोस्वामी ने कहानी साहित्य के क्षेत्र में अनेक रचनाएँ प्रस्तुत कीं। परन्तु इनकी रचना 'इन्दुमती' कहानी साहित्य में एक मुख्य देन है। यह कहानी कल्पनात्मक है, इसमें यथार्थपरक दृष्टिकोण एवं समाज-सुधार की भावना का अभाव है तथा कल्पना व इतिहास का सम्मिश्रण है जो भारतेन्दु युगीन कहानी-की एक सामान्य विशेषता है। इसी युग में श्री रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी कहानी साहित्य के क्षेत्र में एकमात्र रचना 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक से सितम्बर सन् १९०३ की 'सरस्वती' में प्रकाशित की। इस कहानी का आरम्भ प्रथम पुरुष के रूप में हुआ। यह आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी है और इसमें लेखक ने आधुनिक युगीन सामाजिक व्यवस्था के आदर्श रूप तथा नारी-जीवन से सम्बन्धित आदर्शपरक दृष्टिकोण दिखाया है। श्री केशवप्रसाद सिंह लिखित 'आपत्तियों का पहाड़' शीर्षक कहानी कथात्मक निबन्ध की कोटि की रचना है। यह भी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त 'चन्द्रलोक की यात्रा' तथा 'काश्मीर यात्रा' आदि कहानियाँ कल्पित एवं यथार्थ स्थलों की यात्रा के रोचक वर्णनों से युक्त हैं। श्री कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'दामोदर राव की आत्म कहानी' शीर्षक से एक कहानी आत्मकथात्मक शैली में लिखी। युगीन प्रवृत्तियों के अनुरूप इसमें भी कल्पना तत्व की ही प्रधानता है। श्री गिरिजादत्त वाजपेयी की कहानियों में भी यथार्थ के स्थान पर कल्पना का ही आधिक्य है। 'पति का पवित्र प्रेम' शीर्षक कहानी में लेखक ने योरोपीय पात्र-पात्रियों को लिया। ब्रिमली नामक सौदागर की कन्या लिली तथा जेम्स पादरी के पुत्र की प्रेम-कथा है। इसी भाँति 'पंडित और पंडितानी' में भी मनोवैज्ञानिक आधार पर पारस्परिक आकर्षण का चित्रण हुआ।

श्री यशोदानन्दन अखौरी लिखित एक कहानी सन् १९०४ में 'सरस्वती' के जून अंक में प्रकाशित हुई थी। यह कथात्मक निबन्ध के रूप में है। इसका महत्व केवल भाषा शैलीगत विशेषताओं की दृष्टि से है। श्री सूर्यनारायण दीक्षित की कहानियाँ भी 'सरस्वती' के कुछ अंशों में प्रकाशित हुई थीं। इनकी एक प्रतिनिधि रचना 'चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान' शीर्षक से उपलब्ध है। इसमें नाटकीय एवं चमत्कारिक तत्वों की प्रधानता है।

इस युग के एक लोकप्रिय सामाजिक कहानीकार पार्वतीनन्दन हैं। इनकी लिखी हुई अधिकांश कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थीं। 'प्रेम का फुव्वारा' शीर्षक इनकी कहानी समस्यापरक कथावस्तु के आधार पर लिखी गयी है। इस कहानी में भारतेन्दुयुगीन कल्पनात्मक प्रवृत्ति अपेक्षाकृत न्यून रूप में दृष्टिगत होती है। इस कहानी में मुख्य रूप से नारी वर्ग से सम्बन्धित समस्याओं का विश्लेषण है। 'एक के दो दो' तथा 'मेरा पुनर्जन्म' आदि कहानियाँ भारतीय समाज और जीवन के विभिन्न पक्षों को आधार बना कर लिखी गयीं। इनकी प्रत्येक रचना का उद्देश्य समाज-सुधार है। यद्यपि इनकी रचनाओं में कथागत कल्पना भी समाविष्ट है फिर भी इनमें उठाई गयी समस्याओं का आधार यथार्थ ही है। बंग महिला लिखित जो कहानियाँ 'सरस्वती' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हुई हैं, उनमें 'कुम्भ में छोटी बहू', 'दान प्रतिदान', 'दुलाई वाली' तथा 'बालिया' आदि उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों की मुख्य विशेषता यही है कि इनमें सामाजिक, पारिवारिक विश्वसनीय वर्णनात्मकता तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण संयोजित हुआ है। ये कहानियाँ कल्पना प्रधान होते हुये भी मानवीय संवेदना तथा कलात्मकता से युक्त हैं। इसके अतिरिक्त इस युग में एक कहानी 'सच्चाई का शिखर' शीर्षक से उपलब्ध होती है, जिसके लेखक श्री गंगाप्रसाद अग्निहोत्री हैं। यह रचना भी युगीन प्रवृत्तियों से साम्य रखती है और कल्पनात्मक तत्वों से युक्त है। इस काल में 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं के माध्यम से भी हिन्दी कहानी के भावी विकास की आधारभूमि निर्मित होने में सहायता मिली। कल्पना तत्व के अतिरिक्त इन रचनाओं में सामाजिक यथार्थ के प्रारम्भिक स्वरूप का भी समावेश मिलता है।

सामाजिक यथार्थ के कतिपय रूपों का आविर्भावकालीन परिचय देने वाली उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त इस युग में अनेक ऐतिहासिक कहानियाँ भी लिखी गयीं। सन् १९०५ में 'शाहजहाँ' तथा 'औरंगजेब' कहानियों में राज-नियमों की ओर अधिक संकेत मिलते हैं। 'खानखाना और सुमेरु पर्वत', 'मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखाना की उदारता', 'शायरों के शहिनशाह अबूतालिब' और 'शाहजहाँ' आदि कहानियाँ भी ऐतिहासिक तत्वों पर ही आधारित हैं। इनमें कल्पना तत्व को ऐतिहासिक तथ्यों के साथ समन्वित करके प्रस्तुत किया गया है। इन कहानियों में मुख्यतः दर्शनात्मक पद्धति का प्रयोग हुआ तथा भाषा का स्वरूप सामान्य है। स्थूल दृष्टि से देखने पर

यह ज्ञात होता है कि इस काल में कहानी कला अपने प्रारम्भिक रूप में ही मिलती है। इन सभी कहानियों में पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ न उभर कर केवल घटनाओं की ही विशेषताएँ महत्वपूर्ण हैं। कहानी के अन्य तत्व भी इनमें अपेक्षाकृत अप्रधान रूप में ही मिलते हैं। कथावस्तु क्षेत्रीय घटना-प्रबाहुल्य और चमत्कार-वैचित्र्य का एक अन्य रूप बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में जासूसी तथा साहस-प्रधान कहानियों के अन्तर्गत उपलब्ध होता है। श्री गोपालराम गहमरी तथा श्री निजामशाह के नाम इस कोटि के कहानीकारों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गहमरी ने जासूसी तथा निजामशाह ने वीरता एवं साहसपूर्ण कहानियाँ लिखी हैं। गहमरी लिखित 'शिप्रा का युद्ध उर्फ रावत मानसिंह चरित्र', 'गल्पपंचक', 'चतुर चंचला', 'डाकू की पहुनाई', 'तीन हकीकात', 'त्रिवेणी' तथा 'सौभद्रा' आदि कहानियाँ मुख्यतः कौतूहलजनक घटनाओं द्वारा जनता का मनोरंजन करने के उद्देश्य से लिखी गयी हैं। इनमें 'सौभद्रा' एक प्रेम-प्रधान कहानी है। 'त्रिवेणी' में तीन कहानियाँ संगृहीत हैं जिनके शीर्षक 'विचित्र चोरी', 'सच्ची घटना' तथा 'गुमनाम चिट्ठी' हैं। इसमें से तीसरी रचना जासूसी तथा कौतूहलपूर्ण है। 'आदमी बनो' शीर्षक राजनीतिक कहानी में जेल-यात्रा, देश व समाज सेवा, हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य का विरोध आदि महत्वपूर्ण समस्याओं का विवेचन हुआ है। इन कहानियों की शैली वर्णनात्मक है। जैसा कि संकेत किया गया है इन कहानियों का उद्देश्य केवल घटना-वैचित्र्य के माध्यम से पाठकों का मनोरंजन करना ही था। सम्भवतः इस कारण भी इनकी भाषा विशुद्ध साहित्यिक न होकर साधारण बोलचाल की ही रही है।

इसी युग में यथार्थ तत्व के समावेश की दृष्टि से वीरता, शौर्य और रोमांच से सम्बन्धित कहानियों की रचना निजामशाह ने की। इनका प्रकाशन भी 'सरस्वती' पत्रिका में हुआ है। 'सुअर का शिकार' जैसी इनकी कहानियाँ वीरता से भरी हुई और सर्वथा सत्य घटनाओं पर आधारित हैं। इस कहानी में कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण अभिनयात्मक शैली अथवा उत्तम पुरुष में हुआ है। इस काल की अन्य प्रवृत्तिगत कहानियों की दृष्टि से मास्टर भगवानदास बी० ए० तथा बंग महिला द्वारा लिखित 'सरस्वती' में प्रकाशित कहानियाँ सामाजिक होते हुए भी कथावस्तु क्षेत्रीय विशिष्टता से युक्त हैं। 'प्लेग की चुड़ैल' शीर्षक कहानी की सामाजिक पृष्ठभूमि में गृहस्थ जीवन का चित्रण हुआ है। इसी दृष्टि से 'वहू की गिल्टी काँटे से फूट गई' शीर्षक कहानी का आधार आश्चर्यजनक नाटकीय घटना तत्व है। आलोच्य युग में उपर्युक्त कहानीकारों के अतिरिक्त भी अन्य अनेक ऐसे कहानीकार हुए हैं, जिन्होंने विशेष रूप से इस काल में कहानी के विकास में योगदान दिया है। इन लेखकों में महेन्द्रलाल गर्ग का नाम भी उल्लेखनीय है, जिनकी लिखी हुई 'पेट की आत्म-कहानी' शीर्षक कहानी 'सरस्वती' के सितम्बर १९०४ अंक में प्रकाशित हुई थी। आत्मकथात्मक शैली में लिखित यह कहानी हास्य और व्यंग्य प्रधान है। साथ ही श्री वेंकटेशनारायण तिवारी लिखित 'एक अशर्फी की आत्म-कहानी' शीर्षक रचना भी नाटकीयता

व काल्पनिकता से पूर्ण है। जैसा कि इसके शीर्षक से ही स्पष्ट है, यह आत्मकथा-त्मक शैली में प्रथम पुरुष के रूप में प्रस्तुत की गयी है। इसी कोटि में प्रेमनारायण भट्टाचार्य लिखित 'पक्का गठबन्धन' शीर्षक आदर्शवादी कहानी है तथा मधुमंगल लिखित 'भुतही कोठरी' शीर्षक में चमत्कारिक तत्वप्रधान कहानी भी उल्लेख-नीय हैं।

संक्षेप में, पूर्व-प्रेमचन्द युग हिन्दी कहानी के विकास का प्रथम काल है। जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में संकेत किया जा चुका है, यह युग जनजागरण का था। जब प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम के विफल होने के उपरान्त चतुर्मुखी चेतना उद्भूत हो रही थी, नारी समाज में भी यद्यपि तीव्र गति से जागरण हो रहा था फिर भी वह जिन कुंठाओं, अन्धविश्वासों का शिकार थी उसका चित्रण भगवानदास बी० ए० लिखित 'प्लेग की चुड़ैल' शीर्षक में प्रभावशाली रूप में दृष्टिगत होता है। राज-नैतिक गति-विधियों का सांकेतिक परिचय चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' में मिलता है। परन्तु इस युग में समाविष्ट यथार्थ के रूपों की दृष्टि से यहाँ पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इस युग में यथार्थ के वास्तविक स्वरूप की उपेक्षा स्वाभाविक थी क्योंकि जनरुचि काल्पनिक कथाओं की ओर ही थी। इसके अतिरिक्त संस्कृत आख्याएँ और मध्ययुगीन प्रेम आख्याएँ भी कल्पना-तत्वों और नाटकीय घटनाओं से भरे हुए थे। अंग्रेजी, अरबी और उर्दू के प्रचलित किस्से भी यथार्थ से दूर थे। इसीलिए पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी का यथार्थ वास्तव में सूक्ष्म चित्रांकन से युक्त नहीं है और उसकी सार्थकता केवल इतनी ही है कि उसमें घटनाओं और पात्रों के काल्पनिक होते हुए भी वे उस समाज के प्रतीक हैं जो समकालीन यथार्थ का सूचक है। इस युग की कहानियों में केवल सामाजिक दुर्बलताएँ ही अंशतः चित्रित हैं उनकी विस्तृत व्याख्या नहीं की गयी है। कहानी के विविध उपकरणों के क्षेत्र में जो यथार्थ व्यक्त हुआ है वह राष्ट्रीय भावना और सामाजिक चेतना का संकेत मात्र ही करता है। अतएव निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि यथार्थवाद के विभिन्न रूपों का सम्यक् विकास आगामी युग में ही मिलता है परन्तु उसके उद्भव और चित्रण की दृष्टि से पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी साहित्य का भी विशिष्ट महत्व है। यह यथार्थ इस युग के कहानीकारों की उस दृष्टि का परिचायक है जो जीवन की सत्य पृष्ठभूमि में समकालीन समस्या और यथार्थ वातावरण का चित्रण करता है, परन्तु अंशतः सुधारपरक दृष्टिकोण से युक्त है। सुधारपरकता के इसी आग्रह के कारण अधिकांश लेखकों का दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हो गया है। इसीलिए पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी यथार्थवाद के आरम्भिक स्वरूप-निदर्शन की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व रखती है।

---

अध्याय ३

# प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद

## (क) युगीन पृष्ठभूमि

प्रेमचन्द युग का हिन्दी कहानी के इतिहास में विशेष महत्व है। इसका विस्तार मोटे तौर से पहले और दूसरे विश्वयुद्धों के बीच का समय है। हमारे मुल्क के इतिहास में यह काल बड़ी गहरी उथल-पुथल का था। इसमें जनता के जीवन में जड़ से परिवर्तनशीलता दिखाई देती है। आजादी की जो माँग पिछली सदी में अंग्रेजी सरकार द्वारा कुचल दी गयी थी, उसने इस युग में फिर जोर पकड़ा। देश की प्रेम-भावना के जागृत होने पर भारत की जनता में सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक चेतना भी जागी। जैसा कि आगे चलकर संकेत किया जायगा, इस युग में हिन्दू और मुसलमानों की परंपरागत संस्कृति के साथ ही नई ईसाई संस्कृति का भी तीव्र गति से विकास हो रहा था। यह नई संस्कृति देश की परम्परागत सांस्कृतिक धाराओं को प्रभावित कर रही थी। महात्मा गांधी का आविर्भाव इस युग की सबसे महत्वपूर्ण घटना है। उन्होंने समकालीन सांस्कृतिक चेतना के जागरण में विशेष योग दिया। उनके द्वारा प्रवर्तित सिद्धान्तों में सामाजिक संगठन के नये रूपों पर विशेष बल दिया गया है। अस्पृश्यता और छुआछूत की भावना को समाज के लिए एक अभिशाप बताते हुए उन्होंने समानता का नारा लगाया। उनके आवाहन के फलस्वरूप समकालीन नारी समाज में भी अभूतपूर्व चेतना जागृत हुई। दहेज प्रथा, विधवा प्रथा तथा अनमेल विवाह आदि अनेक कुरीतियों को समाप्त करने के लिए गांधीजी ने औरतों की शिक्षा पर बड़ा जोर दिया, जिससे वे अपने पैरों पर खड़ी हो सकें। इस युग में नारी ने न केवल सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में जागरूकता दिखाई, वरन् राजनीति के क्षेत्र में भी वह आगे आई। इसका श्रेय भी महात्मा गांधी जैसे नेताओं को है। इस युग के साहित्य के क्षेत्र में भी भारत का समूचा चित्र प्रतिबिम्बित होता है। इस युग के कहानीकारों ने देश की जनता के जीवन में होने वाले परिवर्तनों का सच्चा चित्रण अपनी रचनाओं में किया। यहाँ पर इस युग की सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि का संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है।

**सांस्कृतिक पृष्ठभूमि**—आलोच्य युग में देश में सांस्कृतिक क्षेत्र के अन्तर्गत

अनेक आन्दोलन हो रहे थे। इस समय तक सांस्कृतिक क्षेत्र में नवीन चेतना की लहर आ चुकी थी। समाज, धर्म तथा राजनीति के क्षेत्र में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे उन्होंने भी सांस्कृतिक स्वरूप के निर्धारण में योग दिया परन्तु इतना होते हुए भी सांस्कृतिक परिवर्तन की यह गति इतनी तीव्र थी कि अनेक विद्वानों ने यह धारणा व्यक्त की कि आधुनिक काल में धार्मिक मान्यताओं में कोई विशेष परिवर्तन न होने के कारण सांस्कृतिक परिवर्तन हो गया है। यद्यपि पूर्व युग में धार्मिक परिवर्तन होने पर ही सांस्कृतिक परिवर्तन होता था। सम्भवतः इसका मुख्य कारण यह है कि इस समय तक भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव की गति तीव्र हो चुकी थी और इसीलिए हिन्दू तथा इस्लाम धर्मानुयायियों ने अपना धर्म बदल कर भी पाश्चात्य संस्कृति को स्वीकार कर लिया था। देश पर अंग्रेजों के आधिपत्य के कारण यह और भी सरलतापूर्वक सम्भव हुआ। अनेक विद्वानों ने इसका कारण निर्दिष्ट किया है कि चूँकि भारत परतन्त्र था और परतन्त्र देश की संस्कृति राजनीति से स्वतन्त्र नहीं हो सकती इसीलिए भारतीय संस्कृति का स्वरूप-परिवर्तन पाश्चात्य संस्कृति के आकर्षण के कारण हो रहा था। डा० डी० पी० मुकर्जी जैसे विद्वानों ने आधुनिक भारतीय संस्कृति के स्वरूप पर विचार करते हुए अपनी इसी धारणा का उल्लेख किया है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग में देश में हिन्दू तथा मुसलमान संस्कृतियों के समानान्तर ही पाश्चात्य संस्कृति का भी विकास हुआ है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह युग सांस्कृतिक संघर्ष का युग था जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का विरोध एवं समन्वय हुआ। स्थूल रूप से इस सांस्कृतिक संघर्ष का प्रभाव यह हुआ कि संस्कृति विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के अनुसार निर्धारित न होकर विभिन्न वर्गों के अनुसार निर्धारित होने लगी। यह वर्ग एक दूसरे के विरोधी थे। इसका मूल आधार शिक्षा और अशिक्षा था। बड़े बड़े-नगरों में रहनेवाले शिक्षित वर्गों की संस्कृति छोटे-छोटे गाँवों में रहनेवाले अशिक्षित व्यक्तियों की संस्कृति से भिन्न हो गयी। इस प्रकार से नागरिक और ग्रामीण संस्कृतियों का स्वतन्त्र रूप में विकास हुआ। इनमें से नागरिक संस्कृति एक नवीनतावादी समन्वित संस्कृति थी तथा ग्रामीण संस्कृति पुरातनपंथी और रूढ़िवादी संस्कृति थी। स्वामी विवेकानन्द जैसे जागरूक विचारकों ने सांस्कृतिक विषयक् उपर्युक्त भेद को स्वीकार करते हुए यह बताया है कि अशिक्षित और निम्न वर्ग इस परिवर्तन से प्रभावित नहीं हुआ और इसी कारण उसमें प्रगति भी अधिक न हो सकी।

**सामाजिक पृष्ठभूमि**—प्रेमचन्द युग का महत्व सामाजिक परिस्थितियों की परिवर्तनशीलता की दृष्टि से बहुत अधिक है। यह वह समय था जब प्रथम

विश्वयुद्ध हुआ और उसके उपरान्त सामाजिक परिस्थितियाँ तीव्र गति से परिवर्तित हुईं। जैसा कि विगत अध्याय में संकेत किया जा चुका है, इस युग में समाज क्षेत्रीय अनेक आन्दोलन हुए और उन्होंने जन-जीवन को प्रभावित किया। कृषि-उद्योग आदि क्षेत्रों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। सामाजिक सुधार के जो आन्दोलन इस काल में आयोजित हुए उन्होंने न केवल समाज में क्रान्ति उत्पन्न कर दी वरन् उससे कहानीकारों को भी प्रेरणा मिली। अनेक नेताओं ने समाज के नये संगठन पर बल दिया। बाल गंगाधर तिलक जैसे नेताओं ने स्पष्ट रूप से इसके लिए आह्वान करते हुए कहा—'जब तक स्वतन्त्रता का अथवा राष्ट्रीयता का अभिमान या तेज कायम और जाग्रत है तब तक समाज रचना में कुछ दोष भी हो तो राष्ट्र की उन्नति अथवा उत्कर्ष में बाधक नहीं होता। इसलिए विशिष्ट समाज रचना की अपेक्षा लोगों में अपनी संस्थाओं और अपने देश के प्रति अभिमान जाग्रत रखने की चेष्टा प्रत्येक देशभक्त को करनी चाहिए। इसी को हमने स्वाभिमानी राष्ट्रवाद नाम दिया है।'[1]

इस काल में हुए नारी समाज के आन्दोलनों का सम्पूर्ण श्रेय इस युग की जागरूक नारियों को है क्योंकि उन्हें प्रायः इन आन्दोलनों में भाग लेने के लिए अपने घर वालों का तीव्र विरोध भी सहन करना पड़ा। पं० जवाहरलाल नेहरू, जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने यह स्वीकार किया कि 'मामूली तौर पर लड़कियाँ और स्त्रियों ने हमारी लड़ाई में क्रियात्मक भाग अपने पिताओं और भाइयों या पतियों की इच्छा के विरुद्ध ही लिया। किसी भी हालत में उन्हें अपने घर के पुरुषों का पूरा सहयोग नहीं मिला।'[2] इससे स्पष्ट है कि नारी समाज ने जो आन्दोलन अपने लिए किये उनका सम्बन्ध उनकी अधिकार-प्राप्ति भावना से था। यह केवल युगीन परिस्थितियों का प्रभाव था कि उनके इस आन्दोलन को समकालीन राजनैतिक आन्दोलनों से सम्बद्ध कर दिया गया।

समकालीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में यहाँ पर आर्यसमाज द्वारा आयोजित आन्दोलनों की ओर भी संकेत करना असंगत न होगा। इस काल में आर्य-समाज के प्रमुख नेता स्वामी श्रद्धानन्द थे जिन्होंने समकालीन परिस्थितियों को देखते हुए परित्यक्त व्यक्तियों की शुद्धि और स्फुट हिन्दू जातियों के संगठन पर बल दिया। इस कार्य का जहाँ एक ओर अच्छा फल यह हुआ कि लोगों में धार्मिक चेतना जाग्रत हुई वहाँ दूसरी ओर लोगों में इसका यह दुष्परिणाम भी देखने में आया कि कतिपय स्वार्थों के वशीभूत होकर विभिन्न नेताओं ने साम्प्रदायिक कटुता भी उत्पन्न की जो अनेक

---

१. 'आधुनिक भारत', आचार्य जावडेकर, अनु० श्री हरिभाऊ उपाध्याय, सन् १९५३, पृ० ६२.
२. 'मेरी कहानी—पं० जवाहरलाल नेहरू', अनु० हरिभाऊ उपाध्याय, सन् १९५६, पृ० ४८२.

विवादों का कारण बनी । इसके अतिरिक्त शिक्षा प्रचार ने भी सामाजिक नवजागरण में विशेष योग दिया । आलोच्य युग के हिन्दी कहानीकारों ने अपनी सामाजिक कहानियों में उन समस्याओं का समावेश किया जिनका सम्बन्ध समाज की अनेक समस्याओं से है । उदाहरण के लिए मुं० प्रेमचन्द, चतुरसेन शास्त्री, राजा राधिका-रमण प्रसाद सिंह, सुदर्शन, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा डा० वृन्दावन लाल वर्मा आदि कहानीकारों ने समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है । शोषण की समस्या, छुआछूत की समस्या, नारी शिक्षा की समस्या तथा दहेज आदि की समस्याओं का चित्रण करते हुए इस युग के कहानीकारों ने अपने सुधारवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया ।

आर्थिक पृष्ठभूमि—आलोच्य युग की काल अवधि के आर्थिक क्षेत्र में भी अनिश्चयता और परिवर्तनशीलता लक्षित होती है क्योंकि इस युग में देश में औद्योगिक क्षेत्र के अन्तर्गत क्रान्ति लक्षित होती है । यद्यपि भारतवर्ष सदैव से ही एक कृषि-प्रधान देश रहा है और देश का अस्सी प्रतिशत व्यवसाय कृषि ही रहा है, परन्तु औद्योगिक क्षेत्रों में जो प्रगति इस युग में हुई है वह विशेष महत्व रखती है । जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, आलोच्य युग प्रथम विश्वयुद्ध का पूर्ववर्ती व परवर्ती काल है । युद्ध-कालीन वातावरण के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार स्वभावतः उतनी सुगमता से न हो सका जितना शांतिपूर्ण परिस्थितियों में होता था । इसके अतिरिक्त जो सबसे बड़ी विडम्बना लक्षित होती है, वह यह कि कृषि-प्रधान देश होते हुए भी भारत को युद्ध-जनित परिस्थितियों के कारण खाद्यान्न के लिए दूसरे देशों का आश्रय लेना पड़ा । इस युग में लोहा, स्पात, सीमेंट, कोयला आदि से सम्बन्धित उत्पादन-कार्य पर विशेष बल दिया गया क्योंकि इनका सीधा सम्बन्ध समकालीन आवश्यक-ताओं से था । विद्युत शक्ति के उत्पादन में वृद्धि होने से भी उद्योग-धन्धों का अपेक्षाकृत तीव्र गति से विकास हुआ ।

गांधीवाद की आर्थिक नीति के अनुसार उधोग-धन्धों के माध्यम से आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीयकरण समाज के विकास के लिए आवश्यक था । उनकी यह धारणा थी कि मशीनों के द्वारा उद्योग-धन्धों का जो विकास होता है, वह देश के लिए इसलिए घातक सिद्ध होता है, क्योंकि उसके माध्यम से आर्थिक शक्ति कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित हो जाती है और इससे शोषण की भी वृद्धि होती है । इसका दुष्परि-णाम यह होता है कि शोषक और शोषित वर्गों में संघर्ष होता है और अनेक समस्याएँ सामने आती हैं । इसके अतिरिक्त इसमें एक और हानि यह होती है कि कीमती मशीनों का निर्माण विदेशों में होता था और उन्हें मँगाने के लिए देश को भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा व्यय करना पड़ता था । यहाँ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना असंगत न होगा कि गांधीवाद के अन्तर्गत मद्य-निषेध की जो भावना है उसका सम्बन्ध

नैनिक पक्ष से तो है ही, आर्थिक पक्ष से भी है क्योंकि गांधीजी यह स्पष्ट अनुभव कर रहे थे कि विदेशी शराब के आयात में स्वदेश का धन विदेश को जा रहा था।

प्रथम विश्वयुद्ध काल में पूंजीपतियों और उद्योगपतियों ने भारी मात्रा में धन संचय कर लिया था और इसीलिए उनका बड़े उद्योगों पर आधिपत्य स्थापित हो गया। जो उद्योग-धन्धे अभी सरकार अथवा विदेशी पूंजीपतियों के हाथ में थे, वे भी क्रमशः भारतीय पूंजीपतियों के हाथ में आने लगे और इस क्षेत्र में उनकी सत्ता स्थापित हो गयी। इसके साथ ही देश में पूंजीवाद और सामन्तवाद के नये शोषक रूपों का आविर्भाव हुआ। कृषक वर्ग इतना अधिक शोषित हुआ कि वह श्रमिक बन जाने को बाध्य हुआ। ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था इससे छिन्न-भिन्न हो गयी और इससे कृषि-कार्य को बहुत बड़ी हानि हुई। प्रेमचन्द युग के प्रमुख कहानीकारों ने आर्थिक और औद्योगिक क्रान्ति के महत्त्व को समझा और उन्होंने जहाँ एक ओर किसी भी प्रकार के शोषण का विरोध किया वहाँ दूसरी ओर प्रत्येक क्षेत्र में स्वावलम्बन पर बल दिया। मद्य-निषेध तथा सहकारिता आदि से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति का समर्थन अनेक कहानीकारों ने किया है। प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, सुदर्शन तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जैसे कहानीकारों ने आर्थिक विषमता के दुष्परिणामों का चित्रण अपनी कहानियों में करते हुए आर्थिक समानता की आवश्यकता बताई है।

राजनैतिक पृष्ठभूमि—राजनैतिक दृष्टिकोण से आलोच्य युग का बहुत समय उथल-पुथल का है क्योंकि इस काल में ही सबसे अधिक राष्ट्रीय आन्दोलन हुए। प्रथम विश्वयुद्ध के चतुर्मुखी प्रभाव के फलस्वरूप देश में नवीन जागरण हुआ और जनता की राष्ट्रीय चेतना जागी। इस युग में सरकार ने राजनैतिक नेताओं का दमन करने को अनेक प्रकार के कानून बनाये जिनके अन्तर्गत राजनैतिक क्रांतिकारियों को दंड देने का विधान था। देश में राजनैतिक गतिविधि जिस रूप में बढ़ रही थी उसमें यह स्वाभाविक था कि इस प्रकार के कानूनों का जन स्तर पर विरोध किया जाता। महात्मा गांधी ने इस विरोध का नेतृत्व किया और देशव्यापी आन्दोलन आरम्भ किया। यद्यपि अंग्रेजी सरकार ने ऐसी परिस्थिति में कूटनीति से काम लिया परन्तु फिर भी उसकी दमन नीति का चक्र चलता रहा। जवाहरलाल नेहरू सदृश राष्ट्रीय नेताओं ने इस स्थिति का भलीभाँति अध्ययन किया और अंग्रेजी सरकार से विभिन्न स्तरों पर विरोध प्रकट किया। उन्होंने स्थानीय शासन अर्थात् नगरपालिका आदि पर भी सरकारी हस्तक्षेप का विरोध किया। इस विषय में उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि 'सरकार ने म्युनिसपैलिटी के शासन का फौलादी चौखटे में जैसा ढाँचा बनाया, वह आमूल परिवर्तन या नवीन सुधारों को रोकने वाला था...म्युनिसपैलिटियाँ हमेशा ही सरकार के कर्ज से दबी रहती हैं और इसलिए पुलिस की निगाह के

अलावा सरकार जिस दूसरी निगाह से म्युनिसपैलिटी को देखती है वह है कर्ज देने वाले साहूकार की निगाह।'[1]

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में अनेक राजनैतिक घटनाएँ हुईं, जिनमें सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रमुख है। इसी काल में आन्दोलन साम्प्रदायिक स्तर पर हुए क्योंकि एक ओर तो सरकार ने पूंजीपतियों और जमींदारों को अपनी ओर मिला लिया और ईसाइयों तथा मुसलमानों आदि अल्पसंख्यकों को। महात्मा गांधी जैसे विचारकों ने इस संक्रान्ति काल में विशेष उत्तरदायित्व का निर्वाह किया और अपनी समन्वयवादी विचारधारा का प्रसार किया। अहिंसा के रूप में उन्होंने जिस सत्याग्रहवादी दर्शन का प्रचलन किया वह राजनैतिक क्रान्ति के इतिहास में एक महत्व-पूर्ण घटना है क्योंकि इसके माध्यम से ऐसे कार्य सम्पन्न हो गये जो बड़ी-बड़ी सशस्त्र क्रान्तियों और युद्धों से भी नहीं हुए थे। यद्यपि गान्धीवादी विचारधारा के व्यापक स्तर पर प्रचारित होने पर भी हिंसात्मक घटनाएँ और सशस्त्र क्रान्ति के प्रयत्न भी निरन्तर होते रहे परन्तु फिर भी इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि अहिंसा को विश्वव्यापी मान्यता मिली।

साहित्यिक पृष्ठभूमि—आलोच्य युग की साहित्यिक परिस्थितियों में विशेष रूप से विकासशीलता इसलिए दिखाई पड़ती है, क्योंकि इस काल के साहित्य पर कल्पना का प्रभाव धीरे-धीरे हटता रहा है और उसके समानान्तर ही यथार्थ के प्रभाव की वृद्धि होती रही है। साहित्य की सभी रचनात्मक विधाएँ पाश्चात्य विचारधाराओं और समकालीन विचारान्दोलनों से प्रभावित हुई थीं। कविता के क्षेत्र में यह वह युग था, जब राष्ट्रीय और छायावादी काव्यधाराएँ उत्कर्ष पर थीं। बुद्धिवादी प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी में यथार्थवाद की प्रवृत्ति का भी विकास हुआ और प्रगतिवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि भी निर्मित हुई। आलोच्य काल में मैथिलीशरण गुप्त, माखन-लाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान ने प्रधानतः राष्ट्रीय कविताएँ लिखी हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्यामलाल पाठक, जगन्नाथ पाठक और सियाराम-शरण गुप्त ने धार्मिक और आर्थिक विषयों पर रचनाएँ प्रस्तुत कीं जिनमें आधुनिक सन्दर्भ में राष्ट्र-प्रेम की भावना का आवाहन किया। आलोच्य युग में गद्य साहित्य के क्षेत्र में भी अनेक शैलियों का विकास हुआ। विगत काल में ही हिन्दी गद्य का परिष्कार युक्त रूप सामने आ चुका था। इस काल में हिन्दी गद्यकारों ने उसे कला-त्मक परिपक्वता प्रदान की। नाटक के क्षेत्र में पूर्व युग के प्रभावस्वरूप आदर्शवाद का ही आग्रह अधिक मिलता है यद्यपि लेखकों की रुचि युगीन यथार्थ की ओर अवश्य उन्मुक्त थी। उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में इस काल में विशेष क्रियाशीलता लक्षित

---

'मेरी कहानी : जवाहरलाल नेहरू', अनु० हरिभाऊ उपाध्याय, स० १९५६, पृ० २०६...२०७.

होती है। प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक युगांतर उपस्थित किया और सेवा-सदन' के प्रकाशन से उसे विकास की एक नई दिशा दी। निबन्ध साहित्य के क्षेत्र में भी विषयगत यथार्थता उल्लेखनीय है जिसका श्रेय महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल और गुलाबराय जैसे लेखकों को है। समीक्षा के क्षेत्र में भी इस काल में भी शास्त्रीयता के साथ आधुनिकता और नवीनता दृष्टिगत होती है। संक्षेप में बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में हिन्दी के गद्य-पद्य क्षेत्र की सभी विधाएँ विकासशीलता की परिचायक हैं।

## (ख) प्रेमचन्द युग के प्रमुख कहानीकार

हिन्दी कहानी के इतिहास में प्रेमचन्द युग का विशेष महत्व है। इस युग के सर्वप्रमुख कहानीकार स्वयं प्रेमचंद थे जिन्होंने हिन्दी कहानी को कल्पना की भावभूमि से हटाकर यथार्थ का आधार प्रदान किया। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह हिन्दी का द्वितीय विकास काल है। इसमें पिछले युग की सभी प्रवृत्तियों का विकास होने के साथ-साथ अनेक नई प्रवृत्तियाँ भी शुरू हुईं। इसका नतीजा यह दिखाई देता है कि इस युग की कहानियों का विषय-क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत हो गया है। प्रेमचन्द ने अपनी लिखी हुई लगभग तीन सौ कहानियों में भारतीय जनता के जीवन के सभी पहलुओं का एक चित्रण किया है। उन्होंने जहाँ एक ओर पुरानी रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्ति का संदेश दिया है वहाँ दूसरी ओर समाज में होने वाले नव जागरण का संदेश भी उनकी कहानियों में मिल जाता है। प्रेमचन्द के अलावा राहुल सांकृत्यायन, जयशंकर 'प्रसाद',वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'सुदर्शन', उषादेवी मित्रा, गोविन्दवल्लभ पंत, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जहूर बख्श आदि इस युग के प्रतिनिधि कहानीकार हैं, जिनकी कहानियों में इस युग में विकसित होने वाली ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं।

प्रेमचन्द---मुंशी प्रेमचन्द का जन्म सन् १८८० में तथा मृत्यु सन् १९३६ में हुई थी। प्रेमचन्द की मुख्य देन कहानी साहित्य में ही है, यद्यपि कहानियों के अतिरिक्त उपन्यास क्षेत्र में भी इनका महत्वपूर्ण योग रहा है। इन्होंने लगभग तीन सौ कहानियों की रचना की है, जो विभिन्न संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं। सन् १९१८ में प्रकाशित 'सप्त सरोज', सन् १९१८ में प्रकाशित 'नवनिधि', सन् १९२० में प्रकाशित 'प्रेम पूर्णिमा', सन् १९२१ में प्रकाशित 'बड़े घर की बेटी', 'लाल फीता' तथा 'नमक का दरोगा', सन् १९२३ में प्रकाशित 'प्रेम पचीसी', सन् १९२४ में प्रकाशित 'प्रेम प्रसून', सन् १९२६ में प्रकाशित 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम प्रतिमा' तथा 'प्रेम प्रमोद', सन् १९२९ में प्रकाशित 'प्रेम तीर्थ', 'पाँच फूल', 'प्रेम चतुर्थी' तथा 'प्रेम प्रतिज्ञा', सन् १९३० में प्रकाशित 'सप्त सुमन', सन् १९३२ में प्रकाशित 'प्रेरणा' तथा 'समर यात्रा', सन्

१९३४ में प्रकाशित 'पंच प्रसून' तथा सन् १९३५ में प्रकाशित 'वनजीवन' आदि इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। इनके अतिरिक्त सन् १९२४ में प्रकाशित 'बैंक का दीवाला', सन् १९२७ में प्रकाशित 'गति', सन् १९२९ में प्रकाशित 'अग्नि समाधि', सन् १९३७ में प्रकाशित 'कफन' और शेष रचनाएँ', सन् १९३८ में प्रकाशित 'नारी जीवन की कहानियाँ', सन् १९४१ में प्रकाशित 'प्रेम पीयूष', सन् १९२८ में प्रकाशित 'गल्प समुच्चय', सन् १९३७ में प्रकाशित 'गल्प संसार माला' आदि में भी प्रेमचन्द की कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। 'ग्राम्य जीवन की कहानियाँ' शीर्षक से इनका एक अन्य कहानी संग्रह भी प्रकाशित हुआ था। उपर्युक्त पुस्तकों में प्रकाशित अधिकांश कहानियाँ 'मानसरोवर' शीर्षक से भी आठ भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं।

राहुल सांकृत्यायन—श्री राहुल सांकृत्यायन का जन्म ९ अप्रैल १८९३ ई० और मृत्यु १४ अप्रैल १९६३ ई० में हुई थी। इन्होंने कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास साहित्य में भी अपना योगदान दिया है। इन्होंने अपने जीवन काल में देश-विदेश की अनेक यात्राएँ की थीं और विभिन्न भाषाओं का अध्ययन किया था। नेपाल, लंका, तिब्बत, इंग्लैण्ड, जापान, कोरिया, मन्चुरिया, रूस, ईरान, तथा चीन आदि देशों में भ्रमण करते हुए इन्होंने दर्शन, धर्म तथा साहित्य विषयक लगभग डेढ़ सौ पुस्तकों की रचना की। अपनी विभिन्न कहानी कृतियों में राहुल जी ने प्राचीन भारतीय इतिहास तथा वर्तमान सामाजिक जीवन को आधार बनाकर यथार्थ से युक्त चित्रण किया। उनका दृष्टिकोण साहित्य में सामाजिक यथार्थवादी था। यही कारण है कि उनके साहित्य में जनता का जीवन चित्रित हुआ है और वह जनता के लिए लिखी गयी हैं। कहानी साहित्य के क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन की जो प्रमुख कृतियाँ उपलब्ध हैं उनमें सन् १९३५ में प्रकाशित 'सतमी के बच्चे', सन् १९४४ में प्रकाशित 'वोल्गा से गंगा', सन् १९५३ में प्रकाशित 'बहुरङ्गी मधुपुरी' तथा सन् १९५६ में प्रकाशित 'कनैला की कथा' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

जयशंकर 'प्रसाद'—श्री जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म सन् १८८९ तथा मृत्यु सन् १९३७ में हुई थी। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में इनका योग महत्वपूर्ण अवश्य है, परन्तु इनकी मूल देन कविता क्षेत्र में ही है। इनकी कहानियों में सांस्कृतिक चेतना प्रखर रूप में पायी जाती है, जिनमें जीवन के सौन्दर्य तत्वों का उद्घाटन हुआ है। इनकी कहानियों में सामाजिक तथा नैतिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना अधिक दिखाई देती है। इनके प्रमुख कहानी-संग्रहों में सन् १९२२ में प्रकाशित 'छाया', सन् १९२६ में प्रकाशित 'प्रतिध्वनि', सन् १९२९ में प्रकाशित 'आकाशदीप', सन् १९३१ में प्रकाशित 'आँधी' तथा सन् १९३६ में प्रकाशित 'इन्द्रजाल' है। 'प्रसाद' जी ने ऐतिहासिक विषयों पर विश्वसनीय कथानक से युक्त

कहानियाँ लिखी हैं। ऐतिहासिक यथार्थ के साथ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश और आदर्शवादी दृष्टिकोण की निहिति उनकी कहानियों की सर्वप्रथम विशेषता है।[1] इनकी प्रमुख कहानियाँ 'तानसेन', 'जहाँआरा', 'अशोक', 'सिकन्दर की शपथ', 'ममता', 'चित्तौर उद्धार', 'हिमालय का पथिक', 'प्रणय चिह्न', 'रूप की छाया', 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'सलीम', 'परिवर्तन', 'करुणा की विजय', 'आँधी' तथा 'मधुआ' आदि हैं।

डा० वृन्दावनलाल वर्मा—डा० वृन्दावन लाल वर्मा का जन्म सन् १८८९ में हुआ था। इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय कहानी के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक तथा निबन्ध के क्षेत्रों में भी दिया। कहानी साहित्य के क्षेत्र में वर्माजी ने अधिकांशतः बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक गाथाओं तथा शिकार आदि को ही विषय बनाया है। लेखक की बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली विविध जातियों के सम्बन्ध में विविध पक्षीय जानकारी है। 'दबे पाँव', मेंढकी का ब्याह', 'अम्बपुर के अमर वीर', 'ऐतिहासिक कहानियाँ', 'अंगूठी का दान', 'शरणागत', 'कलाकार का दण्ड' तथा 'तोषी' आदि प्रमुख कहानी संग्रह हैं। 'इधर से उधर', 'मुँह न दिखाना', 'राजनीति या राजनीति', 'चोरबाजारी की गंगोत्री', 'सरोज की दृढ़ता', 'वचन का निर्वाह', 'शेरशाह का न्याय' तथा 'रक्तदान' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियों में समाज सुधार, उपदेशात्मकता तथा आदर्शवाद की प्रमुखता है। 'मेंढकी का ब्याह' जैसी कहानियों में समाज की कुरीतियों के प्रति करारा व्यंग्य किया गया है। 'तोषी' जैसी कहानी में साम्प्रदायिकता से मुक्ति तथा राष्ट्रीय चेतना के जागरण का आह्वान मिलता है तथा 'शरणागत' शीर्षक कहानी में बुन्देलखण्डी जातियों की राष्ट्रीय भावना तथा आदर्श को मान्यता दी गयी है। इस प्रकार से इनकी कहानियों में विविध पक्षीय समस्याओं का चित्रण हुआ है।

चतुरसेन शास्त्री—आचार्य चतुरसेन शास्त्री का जन्म सन् १८९१ में तथा मृत्यु सन् १९६० में हुई थी। इन्होंने उपन्यास, गद्य काव्य, नाटक, इतिहास, धर्मशास्त्र, राजनीति, चिकित्सा शास्त्र आदि विषयों पर भी रचनाएँ की हैं। विविध साहित्य विषयक इनकी लिखी हुई दो सौ कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ कृतियाँ अभी भी अप्रकाशित हैं जो सामान्यतः धीरे-धीरे प्रकाश में आ रही हैं। इस प्रकार शास्त्री जी की लगभग चार सौ कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विषयों का निरूपण हुआ है। इनके प्रतिनिधि कहानी संग्रहों में 'बाहर भीतर', 'दुखवा मैं कासे कहूँ', 'धरती और आसमान', 'सोया हुआ शहर' तथा 'कहानी खत्म हो गयी', आदि प्रमुख हैं। इन उपर्युक्त कहानी-संग्रहों के

---

१. 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास', डा० प्रतापनारायण टंडन, पृ० ६७७.

अतिरिक्त इनके कुछ पूर्व प्रकाशित संग्रहों का भी यहाँ उल्लेख किया जा रहा है, जो इस प्रकार हैं। सन् १९३१ में प्रकाशित 'अक्षत', सन् १९३३ में प्रकाशित 'राजकरण', सन् १९४८ में प्रकाशित 'नवाब ननकू', सन् १९५१ में प्रकाशित 'लम्बग्रीव', 'पीर नाबालिग' तथा 'वर्मा रोड', सन् १९५४ में प्रकाशित 'सफेद महुआ' तथा 'राजा साहब की पतलून' तथा सन् १९५९ में प्रकाशित 'मेरी प्रिय कहानियाँ' आदि।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'—विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' का जन्म सन् १८९१ तथा मृत्यु सन् १९४५ में हुई थी। इनकी लिखी हुई 'रक्षाबन्धन' कहानी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। यह सामाजिक संचेतना के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। सन् १९१९ में प्रकाशित 'मणिमाला', सन् १९२४ में प्रकाशित 'चित्रशाला' : दो भाग : तथा सन् १९३३ में प्रकाशित 'कल्लोल' आदि प्रमुख कहानी संग्रह हैं। 'तीर्थ', 'पाप का फल', 'माता का हृदय', 'मोह' तथा 'ताई' आदि इनकी प्रमुख कहानियाँ हैं। 'कौशिक' जी की कहानियों में समस्या को भी उठाया गया परन्तु प्रेमचन्द की भाँति सक्रिय व 'प्रसाद' की भाँति ज्ञानात्मक नहीं बन पाई और न ही इनकी कहानियों में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता ही आ पाई है। वैसे प्रेमचन्द की आदर्शवादी कहानियों के समान उनकी 'ताई' जैसी कहानियाँ हैं। इसके साथ ही साथ 'ताई' कहानी की समस्या अपेक्षाकृत मनोवैज्ञानिक समस्या है। 'कौशिक' ने सामाजिक यथार्थ को अपनी कहानियों में प्रस्तुत तो किया है परन्तु इनका दृष्टिकोण सुधारवादी व आदर्शवादी अधिक है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म सन् १८९६ में हुआ था। कहानी के अतिरिक्त इनकी प्रतिभा का परिचय कविता, उपन्यास, नाटक, आलोचना आदि साहित्य के विविध क्षेत्रों में मिलता है। 'चतुरी चमार', 'सखी', 'सुकुल की बीवी', 'अपना घर' आदि इनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 'ज्योतिर्मयी', 'राजा साहब का ठेंगा', 'चतुरी चमार', 'दो दाने' तथा 'सफलता' आदि हैं। 'अपना घर' जैसी कहानियों में देश-प्रेम व राष्ट्रीयता की भावनाएँ प्रबल हैं।

सुदर्शन—'सुदर्शन का जन्म सन् १८९६ में हुआ था। आप इस युग के प्रतिनिधि कहानीकारों में से हैं। इनका वास्तविक नाम बदरीनाथ है। परन्तु साहित्य के क्षेत्र में 'सुदर्शन' नाम से ही विख्यात हैं। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास तथा नाटक आदि में भी इनका योगदान रहा है। सन् १९१९ में प्रकाशित 'पुष्पलता', सन् १९२३ में प्रकाशित 'सुप्रभात', सन् १९२६ में प्रकाशित 'परिवर्तन तथा 'सुदर्शन सुधा', सन् १९२७ में प्रकाशित 'तीर्थ यात्रा' तथा 'फूलवती', सन् १९३३ में प्रकाशित 'सात कहानियाँ', सन् १९३४ में प्रकाशित

'सुदर्शन सुमन', तथा 'गल्प मंजरी', सन् १६३८ में प्रकाशित 'चार कहानियाँ', सन् १६३६ में प्रकाशित 'पनघट' तथा सन् १६४० में प्रकाशित 'अंगूठी का मुकदमा' आदि इनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। 'हार की जीत' व 'अचल बम' प्रमुख कहानियाँ हैं।

उषादेवी मित्रा—श्रीमती उषादेवी मित्रा का जन्म सन् १८६७ में हुआ था। इनके प्रमुख कहानी संग्रह 'संध्या', 'पूर्वी', 'रात की रानी', 'आंधी के छन्द', 'महावर', 'नीम चमेली' तथा 'मेघ मलहार' आदि हैं। इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास साहित्य में भी दिया है। परम्परागत इनकी कहानियों में भी आदर्शवादी दृष्टिकोण ही प्रधान है, परन्तु समाज के उदात्त पक्षों का चित्रण करके ही नैतिकता को प्रश्रय दिया है। नारी जीवन के प्रति भी इनका प्राचीन दृष्टिकोण है। यह पाश्चात्य संस्कृति को भारतीय नारी के लिए अहितकर बताती हैं। आधुनिक नारी कुण्ठाओं, दुर्बलताओं से तब तक मुक्ति नहीं पा सकती जब तक वह आत्मसम्मान, मातृत्व और गौरव तथा उदात्त जीवन के आदर्श को नहीं अपनाती है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी—श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी का जन्म सन् १८६६ में हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त काव्य तथा उपन्यास साहित्य में इनका योगदान रहा है। 'मधुपर्क', 'हिलोर', 'पुष्करिणी', 'दीप मालिका', 'मेरे सपने', 'उपहार', 'उतार चढ़ाव', 'खाली बोतल', 'आदान प्रदान', 'अंगारे', 'स्नेह' तथा 'बाती और लौ' आदि इनके प्रमुख कहानी-संग्रह है। यह कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द की आदर्श यथार्थवादी परम्परा को लेकर चले हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ के साथ साथ मनोवैज्ञानिकता को भी सम्मिलित किया है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'—श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का जन्म सन् १६०० में हुआ था। इनकी प्रतिभा का परिचय कहानी, उपन्यास, नाटक, पत्रकारिता आदि क्षेत्रों में मिलता है। इनकी प्रमुख कहानी रचनाएँ 'इन्द्रधनुष', 'दोजख की आग', 'चिनगारियाँ', 'रेशमी', 'निर्लज्ज', 'बलात्कार', 'गल्पांजलि', 'चाकलेट', 'सनकी अमीर', 'पोली इमारत', 'यह कंचन की काया', 'कला का पुरस्कार', 'काल कोठरी', 'चित्र विचित्र' तथा 'उग्र की श्रेष्ठ कहानियाँ' आदि संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं। 'उग्र' की प्रतिनिधि कहानियाँ मुख्यतः यथार्थ की भावभूमि पर आधारित हैं। इन्होंने यथार्थपरक सामाजिक दृष्टिकोण को आधार बनाकर व्यंग्यात्मक भाषा शैली द्वारा सामाजिक रूढ़ियों की निरर्थकता की ओर संकेत किया है। प्रेमचन्दयुगीन अन्य लेखकों की भाँति इनका भी सुधारवादी दृष्टिकोण ही रहा है। लेखक ने सामाजिक जीवन के अभिशप्त, विकृत और घृणित पक्षों को अपनी

कहानियों में चित्रित किया है। इसी कारण से इनकी कहानियों में कहीं-कहीं यथार्थ से आगे अतियथार्थवाद तथा प्रकृतवाद का भी समावेश हो गया है।

**प्रेमचन्द युग के अन्य कहानीकार**—ऊपर प्रेमचन्द युग के जिन कहानीकारों का परिचय दिया गया है, इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य कहानीकार इस युग में हुए हैं। इनमें विद्यानाथ शर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी प्रमुख कहानियाँ 'विद्या विहार' तथा 'कुलीनाथ पाण्डेय' आदि हैं। इनकी कथावस्तु कौतूहलजनक है। लेखक ने अपनी कहानियों में समकालीन समाज का विशद निरूपण प्रस्तुत किया है। इनकी कहानियों में काल्पनिकता अधिक है। इस युग के अन्य कहानीकारों में कमलाकान्त वर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने अपनी कहानियों में अधिकांशतः मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन का विस्तार से चित्रण किया है। वैसे शहरी व नागरी, कस्बे की जीवन लीला का विस्तृत चित्रण इन्होंने किया है। कमलाकान्त वर्मा ने मानव के प्रति एक उदात्त सहानुभूति के साथ जीवन की छोटी से छोटी घटना का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। इनकी कहानियों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद एक साथ भावनात्मक यथार्थवाद के साथ-साथ दृष्टिगत होता है। 'पगडंडी', 'तकली' तथा 'खंडहर' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। संवेदनात्मकता इनकी कहानियों में मुख्य रूप से मिलती है। उन्होंने प्रतीकात्मक शैली में मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण किया है। इस युग के वैज्ञानिक कहानीकारों में यमुनादत्त वैष्णव का नाम उल्लेखनीय है। इनकी वैज्ञानिक कहानियों का 'अस्थिपिंजर' नामक एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। इसमें कुल १६ कहानियाँ संगृहीत हैं। 'कुत्ता', 'हड़ताल', 'वैज्ञानिक पत्नी', 'दो रेखाएँ', 'इजा', 'घबराहट', 'सोच', 'डाक्टर और नर्स', 'दारोगा की द्विविधा' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। इनकी कहानियाँ भी यथार्थवादी भावभूमि पर आधारित हैं। इस प्रकार से, प्रेमचन्द युग हिन्दी कहानी के इतिहास का द्वितीय विकास काल है, जिसमें उपर्युक्त कहानीकारों ने मुख्य रूप से सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक तथा सामाजिक कहानी की प्रवृत्तियों के विकास में योग दिया है।

## (ग) समकालीन कहानी क्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ और यथार्थवाद

प्रेमचन्द युग में पूर्ववर्ती कहानी प्रवृत्तियों का तो विकास हुआ ही, साथ ही नई प्रवृत्तियाँ भी जन्मीं। इस युग की प्रमुख कहानी-प्रवृत्ति सामाजिक कथावस्तु से सम्बन्धित है। इसके विकास में इस युग के प्रमुख कहानीकारों ने योग दिया है। प्रेमचन्द, 'प्रसाद', 'निराला', 'कौशिक', 'उग्र' तथा चतुरसेन शास्त्री आदि सामाजिक कहानी-प्रवृत्ति के मुख्य लेखक हैं। इस युग की ऐतिहासिक कहानियों की प्रवृत्ति के विकास में योग देने वाले कहानीकारों में भी प्रेमचन्द, 'प्रसाद', राहुल सांकृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री तथा डा० वृन्दावन लाल वर्मा आदि हैं। प्रेमचन्द युग की तीसरी उल्लेखनीय कहानी-प्रवृत्ति धार्मिक रचनाओं से सम्बन्धित है। प्रेमचन्द

के अतिरिक्त पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', 'प्रसाद', 'निराला' तथा चतुरसेन शास्त्री ने इसके विकास में योग दिया है। राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति का आविर्भाव भी इसी युग में हुआ है। इस प्रवृत्ति के विकास में योग देने वाले कहानीकारों में समकालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में राजनैतिक चेतना के जागरण का चित्रण किया है। मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति का आरम्भ भी प्रेमचन्द युग में ही हुआ है। इसे इस काल के अधिकांश प्रमुख कहानीकारों का सहयोग मिला, जिसके फलस्वरूप इसका भावी विकास हुआ। यहाँ पर प्रेमचन्द युग की इन प्रमुख कहानी-प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में यथार्थवाद के हिन्दी कहानी के समावेश का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

**सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—प्रेमचन्दयुगीन कहानी की सर्वप्रथम प्रवृत्ति सामाजिक कहानियों से सम्बन्धित है। इस प्रवृत्ति के सम्बन्ध में यहाँ पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इसी में यथार्थवाद का समावेश सबसे अधिक मिलता है। इस प्रवृत्ति के सबसे प्रमुख लेखक मुंशी प्रेमचन्द हैं। प्रेमचन्द ने अपनी सामाजिक कहानियों में भारतीय समाज का समग्र रूपात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। भारतीय सामाजिक जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं है जो उनकी कहानियों में अभिव्यंजित न हुआ हो। ग्रामीण और नागरिक शोषक और शोषित, कृषक और श्रमिक, शिक्षित और अशिक्षित, पूँजीपति और जमींदार, आस्तिक और नास्तिक, धार्मिक और राजनैतिक, विद्यार्थी और अध्यापक, रोगी और चिकित्सक, अछूत और सवर्ण आदि वर्गों के जीवन का प्रेमचन्द ने विशद चित्रण किया है। श्री श्रीपति शर्मा के विचार से "चूँकि अपनी कहानियों के द्वारा प्रेमचन्द भारतीय समाज के व्यापक अंग का चित्रण करना चाहते थे, अतएव उन्होंने अपनी कथावस्तु को भी समाज के विभिन्न अंगों से लिया है। आधुनिक युग में दैनिक जीवन के संघर्ष को चित्रित करने के लिए जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की घटनाओं का आधार लिया है। किसान की टूटी-फूटी झोपड़ी से लेकर नगर की विशाल अट्टालिकाओं तक में होने वाली घटनाओं को अपनी कहानी का कथानक बनाया है। यदि एक ओर उन्होंने निरक्षर सरल देहातियों का हृदयग्राही चित्रण किया है तो दूसरी ओर विश्वविद्यालयों के उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वानों का वर्णन। इसके अतिरिक्त सेठ-साहूकार, मजदूर, धर्म-सुधारक, वकील, डाक्टर, राजनीतिक, धर्मात्मा, नेता, पंडे, साधु और चोर, पुलिस, क्लर्क, विद्यार्थी आदि सबको अपनी कहानियों का पात्र बनाया है।"[1]

प्रेमचन्द के अतिरिक्त इस युग के अन्य कहानीकारों में भी यथार्थ के अनेक रूपों का चित्रण अपनी सामाजिक कहानियों में किया है। जयशंकर 'प्रसाद' ने

---

१. 'कहानी कला और प्रेमचन्द', डा० श्रीपति शर्मा, पृ० ७२-७३.

अपनी सामाजिक कहानियों में नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है। उन्होंने समकालीन जीवन के वेरूप्यजनक चित्र भी अपनी 'गुन्डा', 'नीरा' तथा 'ग्रामगीत' आदि कहानियों में किया। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने भी समाज का बहुपक्षीय चित्रण अपनी अनेक कहानियों में प्रस्तुत किया। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'दो दाने', 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 'चतुरी चमार' तथा 'ज्योतिर्मयी' आदि कहानियों में सामाजिक जीवन के करुण स्वरूप का चित्रण किया है। भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने भी मध्यवर्गीय समाज के विभिन्न चित्रों के आधार पर सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं। 'सुदर्शन' ने अपनी कहानियों में आधुनिक समाज के जीवन की उन वृत्तियों का चित्रण अपनी कहानियों में किया है जो समाज की पतनोन्मुख अवस्था की परिचायक हैं। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने सामाजिक जीवन के विकृत रूपों का चित्रण सुधारवादी दृष्टि से किया है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने समाज की विभिन्न परिस्थितियों को आधार बना कर अपनी कहानियों में यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत किए हैं। डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने अपनी सामाजिक कहानियों में मध्य प्रदेश के विभिन्न वर्गों को आधार बनाया है। चतुरसेन शास्त्री ने परिवार, प्रेम और विवाह सम्बन्धी समस्यापरक कहानियाँ लिखी हैं।

सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के यथार्थ चित्रण की दृष्टि से इस युग में विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने अपनी कहानियों में पारिवारिक जीवन के यथार्थ स्वरूप का प्रभावशाली चित्रण किया है। 'वह प्रतिमा' तथा 'ताई' जैसी कहानियों में उन्होंने गार्हस्थ जीवन के वास्तविक चित्र प्रस्तुत किए हैं। 'सुदर्शन' ने समाज-सुधार की दृष्टि से 'हार की जीत', 'मास्टर', 'हेर-फेर', तथा 'सन्यासी' आदि कहानियाँ लिखीं, जिनमें पात्रों का हृदय-परिवर्तन मार्मिक रूप में दिखाया गया है। 'राखीबन्ध भाई', 'एक वीर राजपूत' तथा 'शरणागत' आदि कहानियों में डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने भी यथार्थ के इन्हीं रूपों का चित्रण किया है, जिनका सम्बन्ध जीवन के नैतिक मूल्यों से है। जयशंकर 'प्रसाद' ने 'कलावती की शिक्षा' तथा 'स्वर्ग के खंडहर में' आदि कहानियों में समाज के अपेक्षाकृत असामान्य रूप का चित्रण किया है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अपनी सामाजिक कहानियों में जीवन के उन पक्षों का चित्रण किया है जो राजनीति से प्रभावित हैं। 'गांधी टोपी', 'मरीचिका', 'तितली' तथा 'दरिद्रनारायण' जैसी कहानियाँ इसी वर्ग की हैं। जी० पी० श्रीवास्तव की कहानियों में यथार्थ से प्रति व्यंग्यात्मकता की भावना मिलती है। इस दृष्टि से उनकी लिखी हुई 'पिकनिक', 'भूठमूठ' तथा 'मैं न बोलूँगी' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। विश्वम्भरनाथ जिज्जा ने आलोच्य युग में जो कहानियाँ लिखी हैं, उनकी पृष्ठभूमि यथार्थवादी अवश्य है परन्तु उनमें लेखक का दृष्टिकोण

आदर्शपरक हो गया है। 'विदीर्ण हृदय' तथा 'परदेशी' आदि कहानियाँ इसी वर्ग की हैं।

समकालीन कहानीकारों ने अतियथार्थवादी तथा प्रकृतवादी दृष्टिकोण प्रधान सामाजिक कहानियाँ लिखनेवालों में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, इनके इस दृष्टिकोण के पीछे सुधारवादी भावना विद्यमान है। 'देशभक्त', 'पागल', 'वह दिन', 'दोजख की आग', 'ईश्वरद्रोही', 'कर्तव्य और प्रेम', 'हत्यारा समाज', 'अछूत', 'काल कोठरी', 'खुदाराम' आदि बहुसंख्यक कहानियों में 'उग्र' ने धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, साम्प्रदायिक समस्याओं, मिथ्यावादिता, समाज-विरोधी तत्वों तथा सामाजिक और पारिवारिक जीवन की अनेक विरूपताओं का प्रभावशाली चित्रण किया है। उनकी कहानियाँ सामाजिक जीवन के प्रायः सभी पक्षों से सम्बन्धित ज्वलन्त समस्याओं का चित्रण करती है। यद्यपि आलोचकों ने उन्हें अतिशय यथार्थवादी कहकर आक्षेप लगाये हैं, परन्तु जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, इस दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि में लेखक की सुधारवादी भावना भरी हुई है।

**ऐतिहासिक कहानियों की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—प्रेमचन्द-युगीन कहानी की दूसरी उल्लेखनीय प्रवृत्ति ऐतिहासिक कहानियों से सम्बन्धित है। इस युग के अनेक कहानीकारों ने इस प्रवृत्ति से सम्बन्धित रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इन कहानियों का मूल आधार भारतीय इतिहास के विभिन्न युग रहे। उदाहरण के लिए मुंशी प्रेमचन्द ने 'राजा हरदौल', 'रानी सारन्धा', 'परीक्षा', 'क्षमा', 'मर्यादा की वेदी', 'जुगनू की चमक' तथा 'वज्रपात' जैसी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। राजपूत कालीन इतिहास से सम्बन्धित ये कहानियाँ कल्पनात्मकता तथा यथार्थता दोनों ही दृष्टियों से उल्लेखनीय हैं। मुगल कालीन कहानियाँ भी इसी प्रकार की हैं। 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी रचनाएँ सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। युगीन यथार्थ का उत्कृष्ट स्वरूप इसमें दृष्टिगत होता है। लेखक की सूक्ष्म दृष्टि युगजीवन को पाठक के सामने मूर्तिमान रूप में प्रस्तुत कर देती है। प्रेमचन्द की अन्य कहानियों की भाँति यद्यपि इनमें भी आदर्शवादी दृष्टि प्रधान है परन्तु पृष्ठभूमि की दृष्टि से ये यथार्थवादी हैं।

ऐतिहासिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत इस युग के अन्य कहानीकारों में दूसरा उल्लेखनीय नाम जयशंकर 'प्रसाद' का है जिन्होंने 'तानसेन', 'जहाँआरा', 'ममता' 'पुरस्कार', 'सिकन्दर की शपथ', 'अशोक', 'चित्तौर उद्धार', 'देवरथ', 'आकाश दीप' तथा 'शालवती' आदि कहानियाँ लिखी हैं। ये सभी कहानियाँ ऐतिहासिक, यथार्थ का उत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत करती हैं। इनमें कल्पनात्मक तत्वों का समावेश

तो अवश्य हुआ है परन्तु उससे ऐतिहासिकता में बाधा नहीं आई। इसका कारण यह है कि 'प्रसाद' की ऐतिहासिक कहानियाँ प्राचीन भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित हैं। उनमें भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण कथानक संग्रथित हुए हैं। भावात्मकता तथा काव्यात्मकता के अतिरेक फलस्वरूप भी उसमें कृत्रिमता नहीं आयी है वरन् उनकी स्वाभाविकता में ही वृद्धि हुई है। 'प्रसाद' के साथ ही चतुरसेन शास्त्री का भी उल्लेख यहाँ किया जा सकता है, जिन्होंने 'प्रसाद' की ही भाँति ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भारतीय इतिहास की विशिष्ट कथाएँ प्रस्तुत की हैं। 'बाहर भीतर', 'सोया हुआ शहर', राजकण', 'दुखवा मैं कासे कहूँ', 'अक्षत', 'धरती और आसमान', 'कहानी खत्म हो गई', 'सिंहगढ़ विजय', 'नूरजहाँ का कौशल', 'दे खुदा की राह पर' तथा 'पूर्णाहुति' आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, इन कहानियों में ऐतिहासिक यथार्थ अपनी समस्त विशेषताओं के साथ चित्रित हुआ है। इसका कारण यह है कि उन्होंने इतिहास के सौन्दर्य के साथ-साथ उसकी कुरूपता का भी चित्रण किया है।

आलोच्य युगीन कहानी में ऐतिहासिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत उपर्युक्त कहानीकारों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक कहानीकार हुए हैं जिन्होंने इतिहास के विभिन्न युगों का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। कुछ कहानीकारों ने कल्पना प्रधान ऐतिहासिक कहानियाँ भी लिखी हैं जिनमें सुदर्शन आदि कहानीकारों का नाम रखा जा सकता है। 'महान् की पूजा' तथा 'चम्मच भर आँसू' जैसी ऐतिहासिक कहानियाँ उषादेवी मित्रा ने लिखी है जो यथार्थ की तुलना में पर्याप्त हैं। राहुल सांकृत्यायन ने संस्कृति प्रधान रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इनके अतिरिक्त अन्य लेखकों में रायकृष्णदास का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिनकी कहानियाँ इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। इस प्रकार से प्रेमचन्द युग में ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति का जो विकास हुआ है यह पूर्व युग की ऐतिहासिक कहानियों के भिन्न स्वरूप का बोध करता है। पूर्व-प्रेमचन्द काल की ऐतिहासिक कहानियाँ केवल नाम के लिए ही ऐतिहासिक थीं अन्यथा ऐतिहासिक तथ्यों का पूर्ण अभाव था। उसके विपरीत प्रेमचन्द युग में लिखी गयी ऐतिहासिक कहानियाँ यथार्थता और विश्वसनीयता की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण कही जा सकती हैं। यद्यपि इन कहानियों में भी कल्पना तत्व का समावेश किया है परन्तु इनमें इतिहास और संस्कृति का मूल स्वर सुरक्षित रह सका है।

**धार्मिक कहानियों की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—प्रेमचन्द युग में धार्मिक कहानी की प्रवृत्ति का विकास उस रूप में नहीं मिलता है, जिस रूप में पूर्व युग में उपलब्ध होता था परन्तु फिर भी इस काल में अनेक ऐसे लेखक हुए हैं जिन्होंने धार्मिक विषयों से सम्बन्धित कहानियाँ लिखी हैं। पूर्व युग की भाँति ये कहानियाँ पौराणिक विषयों पर आधारित न होकर धार्मिक समस्याओं से सम्बन्धित हैं।

इस प्रवृत्ति का प्रतिनिधि रूप इस युग की अन्य प्रवृत्तियों की भाँति प्रेमचन्द के साहित्य में विद्यमान मिलता है। प्रेमचन्द ने धर्म के क्षेत्र से सम्बन्धित विषयों पर विशुद्ध तार्किक दृष्टिकोण से विचार करते हुए धर्म के उस रूप का खंडन किया है जो केवल मिथ्या आडम्बर पर आधारित था।

धार्मिक प्रवृत्ति से सम्बन्धित प्रेमचन्द की प्रमुख रचनाओं में 'मन्दिर', 'सद्-गति', 'आगापीछा', 'दूध का दाम', 'जुर्माना' तथा 'मंत्र' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इन कहानियों में प्रेमचन्द ने अछूतों के मन्दिर-प्रवेश से सम्बन्धित समस्याओं का विवेचन किया है। इनमें से कुछ कहानियाँ अत्यन्त धार्मिक हैं और उनमें कथावस्तु का प्रभावशाली रूप उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए 'मन्दिर' में एक ऐसी चमार स्त्री की कथा जो अपने इकलौते बेटे की प्राण-रक्षा के लिए ठाकुर जी की पूजा करने की इच्छा से अपने सारे गहनों को बेच कर पूजन सामग्री एकत्र करती है। परन्तु जब वह भगवान की पूजा करने मन्दिर पहुँचती है, तब पुजारी उसे अछूत जानकर ऐसी ठोकर लगाता है कि उसके आघात से गिर कर बच्चे की तत्काल मृत्यु हो जाती है। 'सद्गति' शीर्षक कहानी में भी एक निर्धन चमार एक सवर्ण ब्राह्मण के निवास पर बेगार करते हुए मृत्यु को प्राप्त होता है। 'दूध का दाम' शीर्षक कहानी में भी अछूत समस्या का ही चित्रण है क्योंकि अछूतों को पशु से भी गया-गुजरा समझा जाता है। 'दिल्ली की रानी' जैसी कहानियों में प्रेमचन्द ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में धर्म के विस्तार की समस्या पर विचार किया है क्योंकि इतिहास के अतीत युग में केवल धर्म प्रचार के लिए अनेक हिंसक युग हुए हैं। 'पं० मोटेराम शास्त्री' जैसी रचनाएँ धर्म के आडम्बरपूर्ण रूप पर व्यंग्य करती हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कहानियों में भी धार्मिक कथावस्तु को आधार बनाकर प्रेमचन्द ने समकालीन धार्मिक जीवन के यथार्थ स्वरूप को उद्घाटित किया है। धर्म के विकृत और संकुचित रूप का विरोध करते हुए उन्होंने सेवा और प्रेम को ही सच्चा धर्म बताया है।

आलोच्य युग के अन्य कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में धार्मिक कथावस्तु के अधार पर समाज की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इस युग में अनेक धार्मिक आन्दोलन हुए जिनका मूल उद्देश्य धर्म क्षेत्रीय संकीर्णताओं का विरोध करना था। सामाजिक जीवन के उन पक्षों का चित्रण इस काल के कहानीकारों ने विशेष रूप से किया जिनका सम्बन्ध परम्परागत समस्याओं से था। बहुविवाह का विरोध, छुआछूत का विरोध, मूर्ति पूजा का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, स्त्री शिक्षा का समर्थन आदि विषय इसी प्रकार के हैं। चतुरसेन शास्त्री ने भी 'उग्र' की भाँति धर्म के उस स्वरूप का चित्रण अपनी कहा-नियों में किया है जो मानवतावादी दृष्टिकोण पर बल देता है। डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने 'राखीबन्ध भाई' तथा 'शरणागत' जैसी कहानियों में धार्मिक संकीर्णता का विरोध किया है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी तथा गोविन्दवल्लभ पंत आदि कहानीकारों

ने भी धार्मिक आडम्बर तथा अन्धविश्वासों का विरोध किया है। संक्षेप में, इस युग के अधिकांश कहानीकारों ने धार्मिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत जो रचनाएँ प्रस्तुत कीं, उनमें धर्म के रूढ़िवादी रूप का विरोध करते हुए मानवता और सेवा धर्म का ही समर्थन किया गया है।

**राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—राजनैतिक कहानी का आविर्भाव हिन्दी कहानी के इतिहास में प्रेमचन्द युग से ही हुआ। इसके पूर्व युग की कहानियों में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती है। इसका कारण यह है कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों से ही राजनैतिक आन्दोलनों के क्षेत्र में तीव्रता आयी और अनेक राजनैतिक विचारधाराओं का प्रचार हुआ। पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में राजनैतिक चेतना का अभाव इस कारण भी मिलता है, क्योंकि उस समय प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् अंग्रेजी सरकार के दमन-चक्र के कारण राजनैतिक क्रिया-कलाप पर अंकुश लग चुका था। प्रेमचन्द युग में जो राजनैतिक कहानियाँ लिखी गयी हैं उनमें साम्यवादी तथा गाँधीवादी विचारधाराओं का विशेष समर्थन हुआ है। इन कहानियों में राष्ट्रीय भावनाओं की भी प्रधानता है जिनका जागरण राजनैतिक चेतना के फलस्वरूप हुआ। प्रेमचन्द, राहुल सांकृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री, 'निराला' तथा 'उग्र' आदि लेखकों की रचनाओं में राजनैतिक कहानी के उदाहरण बहुलता से उपलब्ध होते हैं। गाँधीवादी दृष्टिकोण को आधार बनाकर प्रेमचन्द, 'सुदर्शन', भगवतीप्रसाद बाजपेयी तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं। प्रेमचन्द ने 'होली का उपहार', 'सुजान भगत', 'सुहाग की साड़ी', 'सत्याग्रह' तथा 'कुत्सा' आदि कहानियों में राजनैतिक समस्याओं का निरूपण किया है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता से सम्बन्धित समस्याओं में स्वदेशी आन्दोलन और विदेशी बहिष्कार का उल्लेख भी इनमें हुआ है। प्रेमचन्द ने राजनैतिक क्षेत्र में देश-सेवा का ऊँचा आदर्श सामने रखा।

इस प्रकार से प्रेमचन्द युग में एक नवीन प्रवृत्ति के रूप में राजनैतिक कहानी का आरम्भ हुआ। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, यह प्रवृत्ति भारतेन्दु युग की कहानियों में नहीं मिलती थी। प्रेमचन्द युग की काल-सीमा में विश्व का प्रथम महायुद्ध हुआ था जिसके फलस्वरूप देश में राजनैतिक हलचल बहुत बढ़ गयी थी और जनता की राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हो चुकी थी। प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', 'सुदर्शन', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह आदि इस युग के प्रमुख राजनैतिक विचारधाराओं को आधार बनाकर कहानियाँ लिखीं। इस काल की राजनैतिक कहानियों में सबसे अधिक प्रचलित विचारधारा गाँधीवाद है। गाँधीवाद के मूल सिद्धान्तों का अनुगमन करते हुए इस युग में हुए प्रमुख कहानीकारों में सत्य, अहिंसा, क्षमा, असहयोग आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दो-

लन आदि का समर्थन किया। गाँधीवाद के साथ ही साथ साम्यवादी तथा समाजवादी विचारधारा का समावेश इस युग की अनेक कहानियों में मिलता है। यथार्थ की दृष्टि से ये कहानियाँ देश की जनता के राष्ट्रीय चेतना का सही परिचय प्रस्तुत करती हैं।

मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थ—प्रेमचन्दयुगीन कहानी की अनेक नवीन प्रवृत्तियों की भाँति मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति भी इस युग में आरम्भ हुई। जैसा कि विगत अध्याय में संकेत किया जा चुका है यद्यपि पूर्व-प्रेमचन्द युगीन कहानी में मनोवैज्ञानिकता के अत्यन्त क्षीण संकेत मिलते थे परन्तु इस युग में उसका सम्यक् स्वरूप विकसित हुआ। आधुनिक युग में योरोप में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। फ्रायड आदि मनोवैज्ञानिकों ने मानव मन का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए अनेक नवीन सिद्धान्त निर्दशित किए। उसने मनुष्य के चेतन, अर्धचेतन और अचेतन मन का विश्लेषण करते हुए यह बताया कि मनुष्य की जो इच्छाएँ किन्हीं कारणों से अपूर्ण रह जाती है, वे परिस्थितियों के प्रभाव से अनेक प्रकार की कुंठाओं में परिवर्तित हो जाती हैं और विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों को जन्म देती हैं। प्रेमचन्द युग से मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश कहानी में हुआ। यहाँ तक कि स्वयं मुंशी प्रेमचन्द ने मनोवैज्ञानिक कहानी को ही सर्वश्रेष्ठ कोटि की कहानी बताया। उन्होंने स्वीकार भी किया कि "गल्प का आधार, अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक कोई रोचक दृश्य देख कर कहानी लिखने नहीं बैठता है। उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं। वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चहता है जिसमें सौन्दर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पष्ट कर सके।"[1]

प्रेमचन्दयुगीन कहानी की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के विकास में योग देने वाले अन्य कहानीकारों में जयशंकर 'प्रसाद' का नाम भी उल्लेखनीय है। उनकी ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक कहानियों में उनका उत्कृष्ट रूप दृष्टिगत होता है। 'पुरस्कार', 'देवरथ', 'अपराधी' तथा 'गुंडा' आदि कहानियाँ उत्कृष्ट रचनाएँ कही जा सकती हैं। 'आकाशदीप' में बन्दी नायक नायिका की मुक्ति और अन्तर्द्वन्द्व की रोमांचक गाथा है। 'गुंडा' शीर्षक कहानी के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में ननकू सिंह के आत्मबलिदान की वह कथा है, जो देशप्रेम की भावना से अनुप्राणित होकर अपनी आन पर मर मिटता है। 'पुरस्कार' में मधूलिका का चरित्र-चित्रण बहुत मनोवैज्ञानिक हुआ है। कर्तव्य और प्रेम के अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त मधूलिका अन्ततोगत्वा कर्तव्य की ओर झुकती है और अपने प्रेमी राजकुमार के विरुद्ध राष्ट्र प्रेम की भावना

---

१. 'साहित्य का उद्देश्य', मुंशी प्रेमचन्द, पृ० ३८.

से अनुप्राणित होकर प्राणदंड की याचना करती है। 'मधुआ' में भी मनोवैज्ञानिक तत्व प्रधान एक क्षुधित बालक की मार्मिक कथा है। 'हिमालय का पथिक' में पथिक और नूरी, 'बिसाती' में नायक नायिका, 'अशोक' में तिष्यरक्षिता तथा 'करुणा' में विजय आदि नारी पात्रियों का अन्तर्द्वन्द्व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत अर्थपूर्णता रखता है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की लिखी हुई कहानियों में भी मनोवैज्ञानिक तत्वों की निहिति प्रधान कहानियाँ मिलती है। उन्होंने जो मनोवैज्ञानिक तत्व प्रधान कहानियाँ लिखी हैं, उनमें 'जब सारा आलम सोता है', 'जल्लाद', 'पोली इमारत', 'कला का पुरस्कार', 'गंगा गंगदत्त और गांगी', 'जुआरी' तथा 'विधवा' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी कहानियों में सामाजिक जीवन की विरूपताओं का चित्रण करने के साथ ही लेखक ने समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों और कुसंस्कारों की विवृत्ति करते हुए विभिन्न वर्ग के पात्रों की मनोवृत्ति का प्रभावशाली चित्रण किया है। चतुरसेन शास्त्री की लिखी हुई कहानियों में भी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति प्रमुखता से मिलती है। 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', 'ककड़ी की कीमत', 'दे खुदा की राह पर', 'सोया हुआ शहर' तथा 'बाहर भीतर' आदि उनकी प्रतिनिधि मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हैं। अपने कहानी विषयक दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करते हुए चतुरसेन शास्त्री ने मानवतावाद पर विशेष बल दिया है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने अपनी लिखी हुई अनेक कहानियों में मध्यवर्गीय समाज की मनोवृत्ति का मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में चित्रण किया है। आधुनिक युग में मध्यवर्गीय समाज जिस प्रकार की मिथ्या प्रदर्शन की भावना से ग्रस्त है और विभिन्न जीवन मूल्यों के संघर्ष के कारण उसमें जितना अन्तर्द्वन्द्व है उसका विश्लेषण बाजपेयी जी ने किया है। मनोवैज्ञानिक यथार्थ की दृष्टि से उनकी लिखी हुई प्रमुख कहानियों मे 'खाली बोतल', 'स्वप्नमयी', 'निदिया लागी', 'आत्मघात', 'हारजीत', 'गृह स्वामिनी' तथा 'अँधेरी रात' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के मनोविश्लेषण के सन्दर्भ में उन्होंने जो चरित्र चित्रण किया है उससे उनकी कहानियाँ कलात्मक दृष्टि से तो श्रेष्ठ हो ही गयी हैं, व्यक्ति की निराशा एवं कुंठा के चित्रण की दृष्टि से भी उनका महत्व बढ़ गया है। इस प्रकार से प्रेमचन्द युग में मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में योग देने वाले कहानीकारों ने मुख्य रूप के चरित्र चित्रण की दृष्टि से हिन्दी कहानी में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। ऊपर जिन मनोवैज्ञानिक कहानीकारों का जिक्र किया गया है उनके अतिरिक्त भी इस युग में एक बहुत बड़ी संख्या ऐसे लेखकों की है जिनकी रचनाओं में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश हुआ है, उनका उल्लेख आगे यथास्थान किया जायगा। यहाँ पर केवल इतना ही संकेत करना

काफी होगा कि इन कहानीकारों ने मनोविज्ञान को आधार बनाकर व्यावहारिक और यथार्थ जीवन से सम्बन्धित रचनाएँ प्रस्तुत कीं जिनसे हिन्दी कहानी को विकास की एक नई दिशा मिली।

## प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवादी तत्वों का विश्लेषण

हिन्दी कहानी के इतिहास के प्रथम विकास काल की भाँति इस दूसरे युग में भी यथार्थवाद के प्रायः सभी रूपों का समावेश विभिन्न कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में किया। इनमें ऐतिहासिक यथार्थवाद के क्षेत्र में प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, 'सुदर्शन', राहुल सांकृत्यायन तथा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कहानीकारों ने ऐतिहासिक विषयों पर जो रचनाएँ प्रस्तुत कीं वे कल्पना से युक्त होते हुए भी इतिहास के तत्व पर आधारित हैं। सामाजिक यथार्थवाद के क्षेत्र में प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा उषादेवी मित्रा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने सामाजिक जीवन के तमाम पहलुओं से सम्बधित यथार्थपरक समस्याओं का निरूपण अपनी रचनाओं में किया। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के संकेत इस युग के जिन कहानीकारों की रचनाओं में बहुलता से मिलते हैं उनमें प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', रायकृष्ण दास, उषादेवी मित्रा तथा कमलकांत वर्मा हैं। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के क्षेत्र में भी इस युग के प्रमुख कहानीकारों ने अपनी महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इन्होंने अपने दृष्टिकोण में आदर्श और यथार्थ का समन्वय किया है। यहाँ पर समकालीन कहानी के सन्दर्भ में यथार्थवाद के उन्हीं रूपों का संक्षेप में विवेचन किया जा रहा है।

**प्रेमचन्दयुगीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थ का स्वरूप**—प्रेमचन्दयुगीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थ का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है वह पूर्ववर्ती कहानी की भाँति किसी युग विशेष पर आधारित नहीं है। जैसा कि इस प्रबन्ध के पूर्व अध्याय में संकेत किया जा चुका है, ऐतिहासिक यथार्थवाद यथार्थवाद का एक विशिष्ट रूप है जिसका सम्बन्ध अतीत काल से होता है। इसी कारण इससे सम्बन्धित यथार्थवाद में देश-कालगत विभिन्नता आ जाती है। इस दृष्टिकोण से हिन्दी कहानी में जो ऐतिहासिक यथार्थ दृष्टिगत होता है वह भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों से सम्बन्धित है। इस युग के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने जो ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं, उनमें भी विशिष्ट युगीन इतिहास का सत्य उद्घाटित किया है। उन्होंने इस प्रसंग में इतिहास सम्बन्धी अपनी धारणा का भी परिचय दिया है क्योंकि उनका अनुमान है कि अतीत में भी असुन्दर और असत्य दृष्टिगत होता है। उन्होंने लिखा है "इतिहास में और यथार्थ जीवन में भी आदि से अन्त

तक हत्या, संग्राम और धोखे का ही प्रदर्शन है, जो असुन्दर है, इसीलिए असत्य है।" इसी सन्दर्भ में प्रेमचन्द ने आगे लिखा है "लोभ की क्रूर से क्रूर, अहंकार की नीच से नीच, ईर्ष्या की अधम से अधम घटनाएँ आपको वहाँ मिलेंगी और आप सोचने लगेंगे—मनुष्य कितना अमानुष है। थोड़े से स्वार्थ के लिए भाई, भाई की हत्या कर डालता है और राजा असंख्य प्रजा की हत्या कर डालता है। उसे पढ़कर मन में ग्लानि होती है, आनन्द नहीं, और जो वस्तु आनन्द नहीं प्रदान कर सकती, वह सुन्दर नहीं हो सकती और जो सुन्दर नहीं हो सकती, वह सत्य भी नहीं हो सकती।"[1]

प्रेमचन्द युग में स्वयं मुंशी प्रेमचन्द की रचनाओं में ऐतिहासिक कहानी का परिष्कृत स्वरूप उपलब्ध होता है। 'राजा हरदौल', 'रानी सारन्धा', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुंड', 'परीक्षा', 'क्षमा', 'सती', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'जुगुनू की चमक', 'धोखा', 'वज्रपात' तथा 'लैला' आदि कहानियों के माध्यम से प्रेमचन्द ने ऐतिहासिक यथार्थ का प्रभावशाली रूप प्रस्तुत किया है। उनकी प्रसिद्ध और प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' में अवध के प्रसिद्ध नवाब वाजिदअली शाह के समय का जो चित्रण हुआ है वह युग जीवन की विविध क्षेत्रीय यथार्थताओं का विश्वसनीय स्वरूप प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों में मुगल कालीन समाज का यथार्थ स्वरूप उद्घाटित हुआ है : "वाजिद अली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे बड़े, अमीर गरीब सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता, तो कोई अफीम की पिनक ही के मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन विभाग में, साहित्य क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला कौशल में, उद्योग धन्धों में, आहार में सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राज कर्मचारी विषय वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र, मिस्सी और उबटन का रोजगार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिए बाजी बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी हुई है, पौ बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फकीरों को पैसे मिलते, तो वे रोटियाँ न लेकर अफीम खाते या मदक पीते।"[2]

---

१. 'साहित्य का उद्देश्य', मुंशी प्रेमचन्द, पृ० ४०.

२. 'प्रेम द्वादशी', मुंशी प्रेमचन्द, पृ० १३०.

इस युग के अन्य कहानीकारों में जयशंकर 'प्रसाद' ने अपनी कहानियों में ऐतिहासिक यथार्थ के अनेक रूप उद्घाटित किये हैं। 'पुरस्कार', 'तानसेन', 'जहाँआरा', 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'आकाशदीप', 'ममता', 'चित्तौड़ उद्धार', 'अशोक' तथा 'सिकन्दर की शपथ' जैसी कहानियों में 'प्रसाद' ने ऐतिहासिक युगों में राष्ट्र-प्रेम और बलिदान के आदर्शों का चित्रण किया है। 'पुरस्कार' शीर्षक कहानी में 'प्रसाद' ने यह संकेत किया है कि भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब कर्तव्य और प्रेम में संघर्ष हुआ है और कर्तव्य के साथ साथ मुहब्बत का भी निर्वाह आत्मबलिदान के मूल्य पर किया गया है। इसका एक मार्मिक उदाहरण 'पुरस्कार' शीर्षक कहानी में मिलता है : 'मधुलिका बुलाई गई। वह पगली सी आकर खड़ी हो गई। कोशल नरेश ने पूछा—'मधुलिका तुझे जो पुरस्कार लेना हो माँग।' वह चुप रही।

राजा ने कहा—'मेरे निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूँ।'

मधुलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा—'मुझे कुछ न चाहिए।' अरुण हँस पड़ा।

राजा ने कहा—'नहीं मैं तुझे अवश्य दूँगा। माँग ले ...'

'तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले' कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।'[1]

चतुरसेन शास्त्री की जिन कहानियों में ऐतिहासिक यथार्थ का परिचय मिलता है, उनमें 'हठी हम्मीर', 'सिंहगढ़ विजय', 'जयसलमेर की राजकुमारी', 'टीपू सुल्तान', 'सोया हुआ शहर', 'हैदरअली', 'बीर बादल', 'विश्वासघात', 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' आदि हैं। इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध मुगल-कालीन इतिहास से है। कुछ कहानियाँ ब्रिटिश कालीन इतिहास से भी सम्बन्धित हैं। 'वीर वधू' शीर्षक कहानी में चतुरसेन शास्त्री ने इतिहास के राजपूत जीवन का चित्रांकन किया है, जब प्रतिष्ठा के प्रश्न पर लोग सहज ही प्राणों की बाजी लगा देते थे। इसका एक उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है—

'कौन।'

'प्रिये! मैं हूँ तुम्हारे चरणों का दास।'

'तुम! जगमल!! यहाँ? रात में? अभी निकल जाओ।'

'बिना मनोरथ पूर्ण किये नहीं जाऊँगा।'

'नीच! कापुरुष!! निर्लज्ज!!! चोर...॥'

'चाहे जितना गाली दीजिए।'

---

१. 'हिन्दी कहानी माला', सं० डा० केसरीनारायण शुक्ल तथा डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १२६.

'जान प्यारी है तो जा बाहर।'

'प्रिये, मैंने द्वार बन्द कर लिये हैं।···मनोकामना पूरी कर दो।'

'मर मर, कन्या के शयन गृह को कलुषित करने वाले अधम मर।' सिर काट लेती है।[1]

प्रेमचन्द युग में ऐतिहासिक यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से आचार्य शिवपूजन सहाय का भी यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। उन्होंने राजपूतकालीन इतिहास का यथार्थ चित्रण अपनी 'मुण्डमाल' जैसी रचनाओं में किया है। इस प्रकार की कहानियों की विशिष्टता यह है कि इनमें लेखक ने इतिहास के युग विशेष का जो चित्र खींचा है वह उसे यथार्थ रूप में मूर्तिमान कर देता है और चित्रबद्ध रूप में कहानी के घटना-स्थल का प्रस्तुतीकरण कर देता है। इसी कहानी से इस प्रकार के उदाहरण का चित्रण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है: 'आज उदयपुर के चौक में चारों ओर बड़ी चहल पहल है। नवयुवकों में नवीन उत्साह उमड़ उठा है। मालूम होता है किसी ने यहाँ के कुओं में उमंग की भंग घोल दी है। नवयुवकों की मूँछों में ऐंठ भरी हुई है। आँखों में ललाई छा गई है। सबकी पगड़ी पर देशानुराग की कलंगी लगी हुई है, हर तरफ वीरों की वीरता की ललकार सुन पड़ती है। बाँके लड़ाके वीरों के कलेजे रणभेरी सुनकर चौगुने होते जा रहे हैं···।'[2]

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानियों में भी ऐतिहासिक यथार्थ का प्रभावशाली रूप दृष्टिगत होता है। उनकी लिखी हुई विशिष्ट ऐतिहासिक कहानियों में 'पंजाब की महारानी', 'देश द्रोह', 'एक भीषण स्मृति', 'सिक्ख सरदार', 'कर्तव्य और प्रेम', 'वीर कन्या' तथा 'पवित्र पताका' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश कहानियाँ ब्रिटिश कालीन इतिहास से सम्बन्धित हैं। इनमें लेखक ने अंग्रेजी शासन की दमन नीति और भारतीय देशभक्तों के बलिदानों का चित्रण किया है। भारत की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए विगत शताब्दी में कितने महान् त्याग किये गये हैं और देश की स्वतन्त्रता के लिए किये गये प्रत्येक आन्दोलन को अंग्रेजी सरकार ने कितनी निष्ठुरता से दमित किया है, इसका चित्रण भी 'उग्र' ने प्रभावशाली रूप में किया है। वृन्दावनलाल वर्मा ने 'ऐतिहासिक कहानियाँ' शीर्षक कहानी संग्रह में बुन्देलखण्ड के इतिहास से सम्बन्धित यथार्थ के चित्र प्रस्तुत किये हैं। उषादेवी मित्रा ने 'महान् की पूजा'

---

१. 'स्त्रियों का ओज', आचार्य चतुरसेन शास्त्री, सन् १९३६, पृ० ८.

२. द्रष्टव्य : 'मुंडमाल', पं० शिवपूजन सहाय, 'आर्य महिला' में सन् १९१७ में प्रकाशित।

तथा 'चम्मच भर आँसू' आदि कहानियों में प्राचीन भारतीय इतिहास के स्वरूप को प्रस्तुत किया है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने भी भारत में अंग्रेजी शासन काल से सम्बन्धित कुछ कहानियों में युग जीवन के यथार्थ का प्रस्तुतीकरण किया है। इस प्रकार से इस युग की कहानियों में पिछले युग की तुलना में ऐतिहासिक यथार्थवाद का ज्यादा प्रभावशाली रूप दिखाई देता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है इस युग के कहानीकारों ने भी कल्पनात्मक तत्वों का समावेश तो अपनी ऐतिहासिक कहानियों में किया ही है परन्तु इसके साथ ही ऐतिहासिक सत्य की भी रक्षा की है।

**प्रेमचन्द युगीन कहानी में सामाजिक यथार्थवाद का स्वरूप**—प्रेमचन्द युगीन कहानी में सामाजिक यथार्थवाद का प्रभावशाली रूप उपलब्ध होता है। वास्तव में प्रेमचन्द के आविर्भाव के साथ ही हिन्दी कहानी कल्पना से हटकर यथार्थ की ओर उन्मुख हुई। पूर्व युग में जिस नाटकीयता और चमत्कारिकता की प्रधानता थी उसने साहित्य और जीवन के बीच भारी अन्तर उपस्थित कर दिया था। इस युग के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार प्रेमचन्द ने लिखा भी है कि 'हमने जिस युग को अभी पार किया है, उसे जीवन से कोई मतलब न था। हमारे साहित्यकार कल्पना की एक सृष्टि खड़ी करके उसमें मनमाने तिलस्म बाँधा करते थे। कहीं किसानये अजायब की दास्तान थी, कहीं बोस्ताने ख्याल की और कहीं चन्द्रकान्ता सन्तति की। इन आख्यानों का उद्देश्य केवल मनोरंजन था और हमारे अद्भुत रस प्रेम की तृप्ति, साहित्य का जीवन से कोई लगाव है, यह कल्पनातीत था। कहानी कहानी है, जीवन जीवन। दोनों परस्पर विरोधी वस्तुएँ समझी जाती थीं।'[1]

प्रेमचन्द युग में सामाजिक जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी पक्षों के यथार्थ का चित्रण विभिन्न कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में किया है। स्थूल रूप से प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के मध्य का भारत इस युग की कहानियों में चित्रित हुआ है। इस युग में सर्वाधिक लोकप्रिय कहानीकार प्रेमचन्द ने अपनी बहुसंख्यक कहानियों में सामाजिक यथार्थ का प्रस्तुतीकरण किया। उन्होंने समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्गों को आधार बनाकर सामाजिक जीवन का समग्र रूप चित्रित किया है। यहाँ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना असंगत न होगा कि प्रेमचन्द ने नागरिक समाज और ग्रामीण समाज दोनों का ही विस्तृत चित्रण अपनी रचनाओं में किया। नागरिक जीवन से सम्बन्धित कहानियों में प्रेमचन्द की 'सभ्यता का रहस्य', 'दफ्तरी', 'चपरासी', 'विषम समस्या', 'दुस्साहस', 'जुर्माना', 'मृतक भोज',

---

१. 'साहित्य का उद्देश्य', मुंशी प्रेमचन्द, पृ० ३.

'डिमांस्ट्रेशन', 'कुसुम', लांछन', 'दो बहनें', 'मन्त्र' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से अनेक रचनाओं में प्रेमचन्द ने किसी भी प्रकार के शोषण को मानव समाज के लिए अहितकर बताया है।

जयशंकर 'प्रसाद' की कहानियों में भी सामाजिक यथार्थ का प्रभावशाली रूप दृष्टिगत होता है। 'प्रतिध्वनि', 'प्रतिभा', 'दुखिया', 'कलावती की शिक्षा', 'करुण की विजय', 'सहयोग', 'पाप की पराजय', 'अघोरी का मोह', गुदड़ी के लाल' तथा 'मधुआ' आदि कहानियों में उन्होंने सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का चित्रण किया है। 'मधुआ' इस दृष्टि से उनकी एक प्रतिनिधि कहानी कही जा सकती है जिसमें ठाकुर सरदार सिंह, शराबी तथा बालक मधुआ के चरित्र को आधार बनाकर लेखक ने जीवन के कटु यथार्थ का चित्रण किया है। इस युग की सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी कहानी प्रेमचन्द लिखित 'कफन' की भाँति इसमें एक शराबी की मनोवृत्ति का यथार्थ चित्रण हुआ है। वही शराबी एक बालक के पोषण का दायित्व आने पर किस प्रकार से बदल जाता है, इसका चित्रण इस कहानी की प्रमुख विशेषता है : 'शराबी गली के बाहर भागा। उसके हाथ में एक रुपया था। बारह आने का एक देशी अद्धा और दो आने की चाय··· दो आने की पकौड़ी नहीं—नहीं आलू मटर···अच्छा, न सही। चारों आने में मांस ही ले लूँगा, पर यह छोकरा। इसका गढ़ा जो भरना होगा, यह कितना खायगा और क्या खायगा। ओह आज तक तो कभी मैंने दूसरों के खाने का सोच विचार किया ही नहीं। तो क्या ले चलूँ? पहले एक अद्धा हो ले लूँ इतना सोचते सोचते उसकी आँखों पर बिजली के प्रकाश की झलक पड़ी। वह अपने को मिठाई पूरी खरीदने लगा। नमकीन लेना भी न भूला। पूरा एक रुपये का सामान लेकर वह दूकान से हटा। जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौड़ने लगा। अपनी कोठरी में पहुँचकर उसने दोनों की पाँत बालक के सामने सजा दी। उनकी सुगन्ध से बालक के गले में एक तरावट पहुँची। वह मुस्कराने लगा।'[1]

**प्रेमचन्द युगीन कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का स्वरूप**—प्रेमचन्द युग से हिन्दी में मनोवैज्ञानिक कहानी का आविर्भाव हुआ। इस काल में अधिकांश लेखकों की मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखीं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव बढ़ने के साथ मनोविश्लेषण शास्त्र के प्रभाव की भी वृद्धि हुई। यद्यपि पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में भी मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश अंशतः दृष्टिगत होता है, परन्तु मनोवैज्ञानिक कहानी का सम्यक् स्वरूप प्रेमचन्द युग में ही उपलब्ध

---

१. 'आंधी', जयशंकर 'प्रसाद', सम्वत् २०२२, पृ० ४९.

होता है। प्रेमचन्द ने स्वयं भी यह स्वीकार किया है कि साहित्य की प्रवृत्ति आधुनिक युग में क्रमशः मनोवैज्ञानिक और सामाजिक होती गयी है। इसीलिए कहानी को साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा मानते हुए प्रेमचन्द ने उसमें मनोवैज्ञानिक चित्रण को विशेष महत्व दिया है। उन्होंने यह भी बताया है कि 'गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठता उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं, वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है जिसमें सौन्दर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पष्ट कर सके।'[1]

प्रेमचन्द की जिन कहानियों में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद विशेष दृष्टिगत होता है, उनमें 'मन्त्र' 'कफन', 'बड़े घर की बेटी', 'शतरंज के खिलाड़ी' तथा 'नमक का दरोगा' आदि प्रमुख हैं। प्रेमचन्द ने युग जीवन की यथार्थता को समझा और अपनी कहानियों में उसे अभिव्यंजित किया। ग्रामीण जीवन में भी सरलता के स्थान पर नागरिक जीवन की कृत्रिम सभ्यता का क्या प्रभाव पड़ रहा है और उसके फलस्वरूप ग्राम्य समाज में भी किस प्रकार की मनोवृत्ति का प्रसार हो रहा है इसका चित्रण प्रेमचन्द की 'सुजान भगत' शीर्षक कहानी में स्पष्टतः देखा जा सकता है। 'सीधे सादे किसान धन हाथ आते ही धर्म और कीर्ति की ओर झुकते हैं, धनिक समाज की भाँति वे अपने भोग विलास की ओर नहीं दौड़ते। सुजान की खेती में कई साल से कंचन बरस रहा था। मेहनत तो गाँव के सभी किसान करते थे, परन्तु सुजान के चन्द्रमा बली थे। ऊसर में भी दाना छींट जाता तो कुछ न कुछ पैदा हो ही जाता था। तीन वर्ष लगातार ऊख लगती गई। उधर गुड़ का भाव तेज था। कोई दो ढाई हजार हाथ में आ गए। बस चित्त की वृत्ति धर्म की ओर झुक पड़ी। साधु सन्तों का आदर सत्कार होने लगा। द्वार पर धुनी जलने लगी। कानूनगो इलाके में जाते तो सुजान महतो के चौपाल में ठहरते, हल्के के हेड कांस्टेबिल, थानेदार, शिक्षा विभाग के अफसर, एक न एक उस चौपाल में पड़ा ही रहता। महतो मारे खुशी के फूले न समाते। धन्य भाग। उनके द्वार पर अब इतने बड़े-बड़े हाकिम आकर ठहरते हैं जिन हाकिमों के सामने उनका मुँह न खुलता था, उन्हीं की अब महतो महतो कहते जबान सूखती थी।'[2]

मनोवैज्ञानिक यथार्थ के प्रभावशाली रूप जयशंकर 'प्रसाद' की जिन कहानियों में मिलते हैं, उनमें 'चूड़ीवाली' एक प्रतिनिधि रचना है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें पात्रों की अन्तर्द्वन्द्वात्मकता की पृष्ठभूमि में उनकी मनःस्थिति का भी सूक्ष्म अंकन हुआ है। इस दृष्टि से इस कहानी की ये पंक्तियाँ

---

१. 'मानसरोवर', भाग १, मुंशी प्रेमचन्द, पृ० ६.

२. वही, भाग ५, पृ० ११८.

द्रष्टव्य हैं—'कुलवधू बनने की अभिलाषा हृदय में और दाम्पत्य सुख का स्वर्गीय स्वप्न उसकी आँखों में समाया था। स्वच्छंद प्रणय का व्यापार उसे अरुचिकर हो गया। परन्तु समाज उससे हिंसक पशु के समान सशंक था। उससे आश्रय मिलना असम्भव जानकर विलासिनी ने छल के द्वारा वही सुख लेना चाहा, यह उसकी सरल आवश्यकता थी, क्योंकि अपने व्यवसाय में उसका प्रेम क्रय करने के लिए बहुत से लोग आते थे, पर विलासिनी अपना हृदय खोलकर किसी से प्रेम न कर सकती थी।'[1]

आलोच्य युगीन कहानीकारों में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का नाम भी अपनी रचनाओं में मनोवैज्ञानिक यथार्थ के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से उल्लेखनीय है। 'उग्र' ने 'घायल', 'हत्यारा समाज', 'रेशमी', 'अवतार', 'जल्लाद' और 'तब महाराज राजकुमार को नींद आई' आदि कहानियों में मनोवैज्ञानिक यथार्थ के रूपों को प्रस्तुत किया। 'उग्र' की एक प्रतिनिधि कहानी 'चाँदनी' में से इस प्रकार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है : "यह मिस मिनी कौन हैं? ऐसा सवाल यदि राम राज्य के प्रेमी करना चाहें, तो बड़ी खुशी से कर सकते हैं। वह बड़ी-बड़ी भूरी आँखों वाली, मंगोलियन मुखी, सुखों से फूली नहीं, तो किसी नाटी और छोटी-सी पेरिस रंगमंच की एक विख्यात नर्तकी है। हमारी प्रसिद्ध रियासत के परमेश्वर स्वरूप महाराजाधिराज गत वर्ष जब विदेश यात्रा के लिए गये थे, तब वहीं पेरिस में मिनी-महाराज सम्मिलन हुआ था। एक दृष्टि में तो मिस मिनी ने महाराज के मोही मन को अपनी ओर मोड़ लिया था। फिर प्राइवेट सेक्रेटरी और दल के अन्य सरदारों के लाख मना करने पर भी उन्होंने अपने मत में तिल बराबर भी परिवर्तन नहीं किया। जवाहिरात के भाव में मिस महोदया के उस मंगोली मुख को खरीद कर महाप्रभु उन्हें सादर और सविनय अपने राज्य में ही ले आये। इसी देश की हवा में साँस लेकर, यहीं का नमक खाकर और पानी पीकर, हमारे धर्मावतार की 'लिटिल मिनी ने राम राज्य से नफरत करने और उसे कोसने का अभ्यास किया है।"[2] इस प्रकार से प्रेमचन्द युग के कहानीकारों की रचनाओं में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के विभिन्न रूपों का प्रभावशाली चित्रण दिखलाई देता है। ऊपर इन लेखकों की कहानियों से जो उद्धरण उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये गये हैं वे इन कहानीकारों के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय देने में समर्थ हैं।

**प्रेमचन्दयुगीन कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद**—प्रेमचन्दयुगीन

---

१. 'आकाशदीप', श्री जयशंकर 'प्रसाद', पृ० १३, १४.
२. 'उग्र की श्रेष्ठ कहानियाँ', श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', पृ० ११६.

कहानी में यथार्थवाद के जो रूप उपलब्ध होते हैं, उनमें से एक आदर्शोन्मुख यथार्थवाद भी है। यथार्थवाद के इस रूप का आविर्भाव यद्यपि पूर्व युग में ही हो चुका था परन्तु इसका समुचित विकास प्रेमचन्द युग में ही हुआ। वास्तव में यथार्थवाद के इस रूप में आदर्श के प्रति तीव्र आग्रह होने के कारण ही इसे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की संज्ञा दी गयी है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से आदर्शवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसका आरोपण साहित्य के विभिन्न अंगों के क्षेत्र में अधिकता से मिलता है। साहित्य के क्षेत्र में आदर्शवाद मानव जीवन के उत्थान और कल्याण पर बल देता है। इस दृष्टि से इसके मूल तत्व आत्मिक संतोष और आध्यात्मिक सुख हैं। इसी कारण इस विचारधारा की मूल वृत्ति अन्तर्मुखी कही जाती है। यथार्थवाद के विपरीत आदर्शवाद साहित्य में जीवन की उस वास्तविकता के चित्रण का विरोध करता है जिससे लोक कल्याण न हो और उस आदर्श चित्रण का समर्थन करता है जो समाज को विकासोन्मुखी बनाता है। इसके विपरीत यथार्थवाद के अनुसार आधुनिक युग में नीति और आदर्श के पुराने सिद्धान्तों को अव्यावहारिक और रूढ़िवादी घोषित करते हुए वास्तविक जीवन साहित्य के चित्रण पर ही बल देता है। इन दोनों का समन्वित रूप आदर्शोन्मुख कहा जाता है जिसका समर्थन इस युग में प्रमुख कहानीकार प्रेमचन्द ने भी किया है।

आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का व्यावहारिक स्वरूप प्रेमचन्द की अनेक रचनाओं में उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए उनकी लिखी हुई 'मुक्तिमार्ग' शीर्षक कहानी में दो पात्रों का पारस्परिक वैमनस्य जब अतिशय रूप से बढ़ जाता है, तब उसके निदान स्वरूप वह आदर्शवादी अन्त चित्रित करते हैं। इस कहानी में झींगुर और बुद्धू नामक दो पात्रों की आत्म-स्वीकृति इसी दृष्टिकोण की सूचक है जब वे अपनी वास्तविक शत्रुता को भूल कर आत्मीयता का अनुभव करते हैं: सन्ध्या समय झींगुर ने पूछा—"कुछ बनाओगे ?"

बुद्धू—'नहीं तो खाऊँगा क्या ?'

झींगुर—'मैं तो एक जून चबेना कर लेता हूँ। इस जून सत्तू पर काट देता हूँ। कौन झंझट करे।'

बुद्धू—'इधर-उधर लकड़ियाँ पड़ी हुई हैं, बटोर लाओ। आटा मैं घर से लेता आया हूँ। घर पर पिसवा लिया था। यहाँ तो बड़ा मंहगा मिलता है। इसी पत्थर की चट्टान पर आटा गूंथे लेता हूँ। तुम तो मेरा बनाया खाओगे नहीं, इसीलिए तुम्हीं रोटियाँ सेको, मैं बिला दूँगा।'

झींगुर—तवा भी तो नहीं है।

बुद्धू—'तवे बहुत हैं। यहीं गोर का तसला माँजे लेता हूँ।'

आग जली, आटा गूंथा गया। झींगुर ने कभी पक्की रोटियाँ बनायीं, बुद्धू

पानी लाया। दोनों ने लाल मिर्च और नमक से रोटियाँ खायीं। फिर चिलम भरी गई। दोनों आदमी पत्थर की सिलों पर लेटे, और चिलम पीने लगे।

बुद्धू ने कहा'''तुम्हारी ऊख में आग मैंने लगाई थी।

झींगुर ने विनोद से कहा—जानता हूँ।

थोड़ी देर के बाद झींगुर बोला—बछिया मैंने ही बाँधी थी और हरिहर ने उसे कुछ खिला पिला दिया था।

बुद्धू ने वैसे ही भाव से कहा—जानता हूँ।

फिर दोनों सो गये।"[1]

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का प्रभावशाली रूप 'सुदर्शन' की कहानियों में उपलब्ध होता है। 'सुदर्शन' ने 'हार की जीत' जैसी रचनाओं में विशुद्ध यथार्थवादी पृष्ठभूमि में आदर्श को प्रतिष्ठा की है। इस शीर्षक कहानी में बाबा भारती जब अपने से प्रिय घोड़े को डाकू खड़ग सिंह के द्वारा हरण कर लिए जाने पर भी उसे इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करने को कहते हैं, तब वह आश्चर्य से पूछता है कि बाबा जी 'इसमें आपको क्या डर है।' यह सुनकर बाबा भारती ने उत्तर दिया—लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे'''और यह कहते-कहते उन्होंने सुल्तान की ओर से इस तरह मुँह मोड़ लिया, जैसे उनका उससे कभी कोई सम्बन्ध ही न था। बाबा भारती चले गये, परन्तु उनके शब्द खड़गसिंह के कानों में उसी प्रकार गूँज रहे थे। सोचता था कैसे ऊँचे विचार हैं, कैसा पवित्र भाव है। उन्हें इस घोड़े से प्रेम था। इसे देखकर उनका मुख फूल की नाईं खिल जाता था। कहते थे, इसके बिना मैं रह न सकूँगा। इसकी रखवाली में वह कई रातें सोये नहीं। भजन भक्ति न कर रखवाली करते रहे। परन्तु आज उनके मुख पर दुःख की रेखा तक न देख पड़ती थी। उन्हें केवल यह ख्याल था कि कहीं लोग गरीबों पर विश्वास करना न छोड़ दें। उन्होंने अपनी निज की हानि को मनुष्यत्व की हानि पर न्यौछावर कर दिया। ऐसा मनुष्य, मनुष्य नहीं, देवता है।"[2]

जयशंकर प्रसाद का नाम भी प्रेमचन्दयुगीन आदर्शोन्मुख कहानीकारों में उल्लेखनीय है। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'समुद्र संतरण', 'रूप की छाया', 'आँधी' तथा 'इन्द्रजाल' आदि कहानियों में प्रसाद के आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इसी प्रकार से 'आकाशदीप' में भी यथार्थ के साथ ही आदर्श का निरूपण किया गया है। इस दृष्टि से प्रसाद की सर्वाधिक उल्लेखनीय रचना

---

१. 'प्रेम द्वादशी', मुंशी प्रेमचन्द, पृ० १२९.

२. 'सुदर्शन सुधा', श्री 'सुदर्शन', पृ० १६३.

'गुंडा' शीर्षक कहानी कही जा सकती है जिसमें एक समाज-विरोधी चरित्र को स्वामिभक्ति के प्रतीक रूप में उसका आत्म-बलिदान चित्रित किया गया है। उदाहरण के लिए 'पुरस्कार' शीर्षक कहानी में नायिका मधूलिका के चरित्र में जो उतार-चढ़ाव चित्रित किया गया है वह यथार्थ चित्रण के साथ ही आदर्श के आग्रह का भी परिचायक है। इस कहानी में मधूलिका का कर्तव्य और प्रेम का अन्तर्द्वन्द्व तथा आखीर में कर्तव्य की प्रेम पर विजय दिखाकर लेखक ने अपने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी अपनी अनेक कहानियों में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तत्वों का समावेश किया है। उन्होंने यह मन्तव्य प्रतिपादित किया है कि वास्तविक संसार में मनुष्य की तृष्णा भौतिक स्तर पर कभी समापूर्त नहीं होती और वह अन्ततः असंतुष्ट ही अनुभव करता है। इसलिए स्थायी शान्ति और संतोष के लिए उसे अन्तर्मुखी वृत्तियों का जागरण करना चाहिए। चतुरसेन शास्त्री लिखित 'प्रवुद्ध' शीर्षक कहानी में उसी भावना को निम्नलिखित वार्तालाप से स्पष्ट करने का प्रयत्न हुआ है : "गोपा कुमार की मुखमुद्रा और भाव-भंगी से डर गयी। उसने त्रस्त स्वर में कहा—'आर्यपुत्र, क्या सोच रहे हैं ?'

'प्रिये ! कोई गूढ़ वस्तु कहीं छिपी है।'

'इस राजसम्पदा, अधिकार-सत्ता से भी अधिक ?'

'हाँ।'

'इस यौवन, सौन्दर्य और आनन्द से भी अधिक ?'

'हाँ।'

'आप की इस चिर किंकरी से भी अधिक ?'

'ओह, गोपा प्रिये, ठहरो। वह गूढ़ वस्तु हमें प्राप्त करनी चाहिए।'

'और वह है कहाँ ?'

'मैं उसे ढूढ़ूँगा, वह मनुष्य मात्र के दुख को दूर करने की तालिका होगी।'

उनके होठ फड़कने लगे और नेत्र उन्मीलित हो गये।'[1]

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानियों में भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की दृष्टि से 'गंगा, गंगदत्त और गांगी', 'कला का पुरस्कार', 'करुण कहानी', 'स्वदेश के लिए' तथा 'खुदाराम' आदि उल्लेखीय हैं। उषादेवी मित्रा लिखित 'चातक', 'श्रीमती कमलादेवी चौधरी लिखित 'उन्माद', यमुनादत्त वैष्णव लिखित 'दो रेखाएँ', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'सूर्य भगवान' आदि हैं। राजा राधिका

१. 'बाहर भीतर', आचार्य चतुरसेन शास्त्री', पृ० ५३.

रमण लिखित 'दरिद्र नारायण', रायकृष्णदास लिखित 'नरराक्षर' आदि कहानियों में भी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तत्व मिलते हैं। इनके अतिरिक्त इस युग के अन्य कहानीकारों में श्रीमती उषादेवी मित्रा आदि का उल्लेख करना भी आवश्यक है। मित्रा जी की कहानियों की इस दृष्टि से प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने नारी-हृदय को भावनाओं का प्रभावशाली चित्रण किया है। भावना और कर्तव्य का संघर्ष उनकी ज्यादातर कहानियों में दृष्टिगत होता है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जैसे यथार्थवादी कहानोकारों ने भी कहीं-कहीं आदर्श का पुट दिया है। रायकृष्णदास तथा कमलाकान्त वर्मा आदि कहानीकार भी प्रेमचन्द युग की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा में आते हैं। संक्षेप में इस युग के कहानी साहित्य में यथार्थ के अन्य सभी रूपों की तुलना में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रधानता रही है।

### (ङ) प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद का उपकरणगत विवेचन

प्रेमचन्दयुगीन कहानी साहित्य में समाविष्ट यथार्थवादी तत्वों का यदि उपकरणगत विवेचन किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि कथावस्तु, पात्र-योजना अथवा चरित्र-चित्रण, संवाद-योजना अथवा कथोपकथन, भाषा, शैली, देशकाल अथवा वातावरण तथा उद्देश्य तत्वों की दृष्टि से कहानी अधिक यथार्थपरक होती गयी है। इस युग के प्रमुख कहानीकारों में प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', राहुल सांकृत्यायन, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', उषादेवी मित्रा, 'सुदर्शन' तथा डा० वृन्दावनलाल वर्मा आदि की कहानियों में विभिन्न तत्वों की दृष्टि से यथार्थ का आग्रह निरन्तर बढ़ता गया है। जैसे कि पीछे संकेत किया जा चुका है, प्रेमचन्द युग हिन्दी कहानी के इतिहास का दूसरा विकास काल है। इस युग में जो कहानियाँ लिखी गयी हैं उनका महत्व पिछले युग की कहानियों की तुलना में यथार्थ की दृष्टि से बहुत अधिक है। यहाँ पर प्रेमचन्द-युगीन कहानी में विभिन्न तत्वों की दृष्टि से यथार्थवाद के समावेश का जो संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है, वह इस तथ्य को भी व्यक्त करता है कि इस युग के कहानीकारों ने इनके क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक सजगता का परिचय दिया है।

**प्रेमचन्दयुगीन कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ**—प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानियों में समाविष्ट यथार्थवादी तत्वों का परिचय कथावस्तु तत्व के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से दृष्टिगत किया जा सकता है। जैसा कि पीछे उल्लेख किया जा चुका है, सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कथावस्तु कहानी का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने इसी तत्व को कहानी की रचना का आधार निर्दिष्ट किया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कथावस्तु को कहानी के निर्माण

के लिए सबसे आवश्यक तत्व बताया है क्योंकि एक सुनियोजित कथावस्तु में ही असाधारण जीवन मर्म को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। जिस कहानी में कथावस्तु को अन्य तत्वों की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है उसे घटना-प्रधान कहानी कहा जा सकता है। एक सफल कहानी में कथावस्तु के अन्तर्गत घटनात्मक सत्यता और विश्वसनीयता का होना आवश्यक है। इस दृष्टि से प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ का प्रभावशाली रूप दृष्टिगत होता है।

अपने युग के सर्वप्रमुख कहानीकार प्रेमचन्द की रचनाओं में कथावस्तुगत यथार्थ का प्रभावशाली रूप उपलब्ध होता है। प्रेमचन्द की लिखी 'कफ़न' जैसी कुछ कहानियाँ तो ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं। 'बड़े घर की बेटी', 'सौत', 'पंचपरमेश्वर', 'नमक का दारोगा', 'सवा सेर गेहूँ' तथा 'पूस की रात' इस दृष्टि से उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ कही जा सकती हैं। इसमें निम्न वर्ग की उस विडम्बना का विशुद्ध यथार्थपरक चित्रण है कि जीते जी जिस स्त्री को तन ढकने को एक चिथड़ा भी उपलब्ध नहीं हो पाता उसे भी मरने पर नया कफ़न मिलना आवश्यक समझा जाता है। माधव और घीसू इस स्थिति पर विचार करते हैं कि कफ़न तो लाश के साथ जल जाता है, पर वह उस समाज के प्रति भी आश्चर्य प्रकट करते हैं जो किसी के मरने पर पाँच रुपये चन्दा तो दे सकता है परन्तु मरने के पहले पाँच पैसे भी कोई नहीं देता जिससे उसका उपचार हो सकता। घर पर पड़ी लाश की उपेक्षा करके कफ़न के चन्दे की ताड़ी पीकर वे दोनों जिस घटनाक्रम का परिचय देते हैं वह कथावस्तुगत यथार्थ का प्रखर उदाहरण कहा जा सकता है।

कथावस्तुगत यथार्थ के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानियाँ भी उल्लेखनीय हैं। 'देशद्रोही', 'दोजख की आग', 'अछूत', 'हत्यारा समाज', 'नेता का स्थान' आदि कहानियों में कथावस्तुगत यथार्थ द्रष्टव्य है। यहाँ पर उनकी लिखी हुई 'उसकी माँ' शीर्षक कहानी का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जो कथावस्तु की पृष्ठभूमि में भावनात्मक स्तर पर लेखक के यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचायक है : "माँ! तू ठीक भारतमाता की सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी। उसका हिमालय उजला है, तेरे केश। हाँ, मैं नक्शे से साबित करता हूँ…तू भारतमाता है। सर तेरा हिमालय, माथे की दोनों गहरी बड़ी रेखाएँ गंगा और यमुना। यह नाक विन्ध्याचल, दाढ़ी कन्याकुमारी तथा छोटी बड़ी झुर्रियाँ रेखाएँ भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियाँ हैं। जरा पास आ मेरे। तेरे केशों को पीछे से आगे बाएँ कन्धे पर लहरा दूँ। यह वर्मा बन जायगा, बिना इसके भारत माँ का शृङ्गार शुद्ध न होगा।"[१]

---

१. 'उग्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ', श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', पृ० ७६.

उषादेवी मित्रा की कहानियों में कथावस्तु तत्वगत यथार्थ भी दृष्टिगत होता है। 'बहता फूल', 'कल्पना की देन', 'अतृप्त वासना', 'आह', 'मन की देन', 'रूप का मोह' तथा 'चम्मच भर आँसू' आदि कथावस्तु यथार्थपरक घटनाओं पर आधारित है। मित्रा जी की कुछ ऐसी भी कहानियाँ हैं जो चरित्रप्रधान होते हुए भी कथागत यथार्थ का बोध कराती हैं। इनमें मुख्यतः 'महान् की पूजा', 'सुहाग की बिन्दी', 'जीवन का एक दिन', 'ललिता की डायरी', 'कलाकार' तथा 'देश भक्त' आदि उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त 'मृत्युञ्जयी', 'पुतली जी उठी', 'रिक्ता', 'चातक', 'अफीम का फूल', 'रहस्यमयी' तथा 'जीवन ज्वाला' जैसी भाव प्रधान कहानियों में भी घटनाएँ विश्वसनीय बन गयी हैं। 'प्रथम छाया', 'अतृप्त वासना', 'जातिस्मर' तथा 'बुलबुल' आदि कहानियों में भी यथार्थपरक घटनाओं की प्रधानता है।[1] इनकी कहानियों में घटनाओं का विकास सहज गति से हुआ है। उषादेवी मित्रा की विचार-प्रधान कहानियों में विशेष गम्भीरता मिलती है। वस्तु-विन्यास तथा कथात्मक अनुकूलता की दृष्टि से इनकी कहानियाँ अपनी सानी नहीं रखती हैं। आधुनिक युग में नारी के पारिवारिक, सामाजिक और वैवाहिक जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को इन्होंने अपनी कहानियों की कथावस्तु में गूँथा है, जिससे उनके प्रभाव में वृद्धि हुई है।

प्रेमचन्दयुगीन कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ के अन्य भी अनेक उदाहरण विभिन्न लेखकों की रचनाओं में मिल जाते हैं। परन्तु यहाँ पर जो उद्धरण दिए गये हैं उनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस युग के कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में जो कथावस्तु प्रस्तुत की है वह जीवन के यथार्थ पहलुओं से सम्बन्धित है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है हिन्दी कहानी के विकास काल में लिखी गयी अधिकांश कहानियाँ कल्पनाप्रधान थीं और उनकी कथावस्तु का वास्तविक जीवन से बहुत कम सम्बन्ध था। इस युग तक आते-आते हिन्दी कहानी की कथावस्तु में यथार्थ का आग्रह धीरे-धीरे बढ़ता गया। प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा उषादेवी मित्रा की कहानियों में नियोजित कथावस्तु का अध्ययन करने पर इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

**प्रेमचन्द युगीन कहानियों में पात्रगत यथार्थ**—प्रेमचन्द युगीन कहानियों में विभिन्न लेखकों का यथार्थ के विविध रूपात्मक चित्रण के प्रति जो आग्रह मिलता है, उसके फलस्वरूप पात्र योजना अथवा चरित्रचित्रणगत यथार्थ भी द्रष्टव्य है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इस युग में लिखे गये कहानी-साहित्य में

---

१. द्रष्टव्य : 'रागिनी', श्रीमती उषादेवी मित्रा, पृ० ८५.

यथार्थपरक कथासूत्रों के नियमन के लिए यथार्थपरक पात्रों की भी आयोजना की गयी है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से यदि कहानी के पात्रों में यथार्थता नहीं होती है तब उनकी स्वाभाविकता और सजीवता भी नष्ट हो जाती है। प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में चरित्र-चित्रण का जो उत्कृष्ट रूप मिलता है उसका एक कारण चरित्रांकन की यथार्थता भी है। प्रेमचन्द', 'प्रसाद', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', चतुरसेन शास्त्री, तथा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि कहानीकारों की रचनाओं में पात्रगत उत्कृष्टता के अनेक कलात्मक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'कफन' कहानी में घीसू, 'सवा सेर-गेहूँ' में शंकर, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' की सुपर्णा, 'सुदर्शन' लिखित 'हार की जीत' में बाबा भारती आदि पात्र यथार्थपरक विशेषताओं के कारण ही जीवन्त बन पड़े हैं।

प्रेमचन्द की रचनाओं में पात्रगत यथार्थ का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप 'कफन' शीर्षक कहानी में दृष्टिगत होता है। इस कहानी में लेखक ने माधव और घीसू के रूप में जिन पात्रों की सृष्टि की है वे युगीन यथार्थ का मूर्तिमान चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस कहानी के आरम्भ में एक चमार स्त्री की प्रसव पीड़ा से मृत्यु की घटना की जो प्रतिक्रिया उसके पति माधव और श्वसुर घीसू पर दिखाई गई है वह यथार्थ का अत्यन्त तीक्ष्ण रूप है। वे दोनों बुधिया की मृत्यु के उपरान्त कृत्रिम हाय-हाय करते हैं परन्तु शीघ्र ही अपने इस नाटक से कफन के लिए पाँच रुपये चन्दे में प्राप्त कर लेते हैं। जलाने के लिए लकड़ी भी मुफ्त मिल जाती है। वे दोनों कफन के रुपये खर्च नहीं करते और एक दूसरे के मन की बात ताड़ते हुए अन्ततोगत्वा देशी शराब के ठेके पर पहुँच जाते हैं। फिर वे दोनों नशे में आने के पश्चात् जो वार्तालाप करते हैं वह युग जीवन के यथार्थ पर कठोर व्यंग्य है।

उषादेवी मित्रा की कहानियाँ चरित्र-चित्रणगत यथार्थ का विशेष महत्व रखती हैं। इनकी कहानियों में चरित्र-चित्रण के माध्यम से मानव जीवन की विविध रूपों में व्याख्या हुई है। इनके यथार्थवादी चरित्र समाज की वास्तविक परिस्थितियों की उपज है। 'सिरीराम', 'परमा', 'पुष्प' तथा 'सुनहली' आदि ऐसे ही चरित्र हैं जो यथार्थ जीवन के रूपों का बोध कराते हैं। इनकी वर्णनप्रधान कहानियों में चरित्र-चित्रण यथार्थ की दृष्टि से 'द्रोपदी', 'वसन्तिका', 'ललिता', 'सुनील' तथा 'सविता' आदि पात्र उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार से इनकी घटनाप्रधान कहानियों में चरित्र-चित्रणगत यथार्थ की दृष्टि से 'क्लाइव', 'माधोराव', 'रामावतार', 'अमीर अली', 'कृष्ण', 'सियाराम', 'धीरराज' तथा 'चन्दन राव' आदि पात्र उल्लेखनीय हैं। 'वसन्तिका', 'दीपमालिका', 'पत्र लेखा' आदि पात्र आदर्शवादी तथा

परम्परावादी श्रेणी के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। 'माधोराव' ऐतिहासिक आदर्श चरित्र का प्रतिनिधित्व करता है। 'जीवन का एक दिन'[1] शीर्षक कहानी के प्रमुख पात्र विनय का चरित्र संकेतात्मक प्रणाली द्वारा स्पष्ट किया गया है। विनय राजनीतिक नेता है। वह परमा को अपने जाल में फँसा लेता है तथा साथ ही अपने कामजनित इच्छा की पूर्ति के लिए वेश्या प्रथा को प्रोत्साहन भी देता है। सुनहली, कलाकार, दीपमालिका आदि मनोवैज्ञानिक चरित्र हैं। इस प्रकार से उषादेवी मित्रा ने पात्रों की मानसिक स्थिति, स्वभाव, मनःस्थिति आदि का सूक्ष्म विश्लेषण किया है और उन्हें यथार्थपरक बनाने की कोशिश की है। श्रीमती उषादेवी मित्रा की कहानियों में मुख्य रूप से आदर्शवादी पात्रों की ही योजना हुई है परन्तु फिर भी 'रूप का मोह' जैसी कहानियाँ पात्रगत यथार्थता का प्रभावशाली रूप उपस्थित करती हैं। इस प्रकार की कहानियों में लेखिका ने विभिन्न पात्रों के चित्रांकन से यह संकेत किया है कि आधुनिक समाज में शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति का एक विकृत रूप भी मिलता है जिसका उदाहरण इस कहानी का हृदयहीन नायक है। उदाहरणार्थ : "कहा चलाओ मोटर। कहा कौन दरिद्र मरा या जिया इससे उसका क्या सम्बन्ध। उसे तो ठीक छः बजे पार्टी में जाना था। ऊँचे समाज में रहता है, मस्तिष्क शिक्षा ज्ञान का भंडार बन चुका है। उस शिक्षा की, समाज की देन भी तो उसे देना है न। दरिद्र की बात समझे वही अशिक्षित और दरिद्र। वह तो एक पढ़ा लिखा शिक्षित व्यक्ति है।"[2]

प्रेमचन्दयुगीन कहानियों में पात्र योजना तथा चरित्र-चित्रणगत यथार्थ का जो का जो रूप उपलब्ध होता है उनके कुछ उदाहरण ऊपर प्रस्तुत किए गये हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इस काल में हिन्दी कहानीकारों के यथार्थ के प्रति बढ़ते हुए आग्रह के कारण सभी तत्वों के क्षेत्र में विकास हुआ है। इस युग के कहानीकारों में प्रेमचन्द, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर 'प्रसाद', डा० वृन्दावनलाल वर्मा, यमुनादत्त वैष्णव, उषादेवी मित्रा, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', तथा श्रीराम शर्मा आदि की कहानियों में जो पात्र मिलते हैं वे किसी कल्पना लोक की उपज न होकर समाज के विभिन्न वर्गों से लिये गये जीते-जागते चरित्र हैं। प्रेमचन्द, 'सुदर्शन', भगवतीप्रसाद वाजपेयी, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह तथा विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानियों में आयोजित पात्रों में आदर्शवाद के प्रति भी झुकाव दिखाई देता है परन्तु फिर भी वे स्वयं यथार्थ जीवन के ही प्रतिनिधि पात्र मालूम पड़ते हैं। भिन्न-भिन्न विषयों

---

१. द्रष्टव्य : 'रागिनी', श्रीमती उषादेवी मित्रा, पृ० ३५.
२. 'मेघ मल्लार', श्रीमती उषादेवी मित्रा, पृ० ८८.

की कहानियों के अनुसार ये पात्र भी जीवन के अनेक वर्गों से लिये गये हैं। इसीलिए उनके द्वारा पाठक के जीवन का सच्चा परिचय मिल जाता है।

**प्रेमचन्दयुगीन कहानी में कथोपकथनगत यथार्थ**—प्रेमचन्दयुगीन कहानी में कहानी के विभिन्न सैद्धान्तिक उपकरणों में कथोपकथनगत यथार्थ का भी उल्लेखनीय स्वरूप दृष्टिगत होता है। सामान्यतः कथोपकथन का सम्बन्ध कहानी के अन्य सभी उपकरणों से होता है। यदि किसी कहानी में कथावस्तु और पात्र योजना यथार्थ पृष्ठभूमि पर आधारित होती है तो कथोपकथन भी विश्वसनीय और यथार्थ होता है। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने कहानी में कथोपकथन की अनिवार्यता बताते हुए उसकी यथार्थता की ओर भी संकेत किया है। उनके विचार से "यदि देश-काल और संस्कृति विशेष का कोई प्राणी किसी से किसी प्रकार की बातचीत करता है, तो उसकी बातचीत की प्रांजलता और विदग्धता, शब्द और वाक्य के प्रयोग, भाषा और पदावली से हमें प्रत्यक्ष मालूम होता है कि व्यक्ति किस कोटि, वर्ग, देश और काल का है। संवाद से अन्य सभी तत्वों का सीधा सम्बन्ध होता है। जहाँ एक ओर कथा के प्रसार का मुख्य साधन होता है, वहीं चरित्रोद्घाटन का भी, साथ ही देश काल का भी पर्याप्त बोध करा देता है।"[1]

प्रेमचन्द की कहानियों में यथार्थपरक कथोपकथन का विविधतापूर्ण स्वरूप उपलब्ध होता है। 'मन्त्र', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'शान्ति', 'नमक का दरोगा', 'कफन', 'बड़े घर की बेटी', 'सुजान भगत', 'आत्माराम', 'रानी सारन्धा' आदि कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। यहां पर प्रेमचन्द की लिखी हुई 'शान्ति' शीर्षक कहानी से एक संवाद उद्धृत किया जा रहा है जो पात्रों की मनःस्थिति और उनकी सामाजिक पारिवारिक पृष्ठभूमि का भी स्पष्ट परिचय देता है···मैंने करुण स्वर में पूछा···क्या तुम बीमार थी गोपा?

गोपा ने आँसू पीकर कहा······नहीं तो, मुझे तो कभी सिर दर्द भी नहीं हुआ।

तो तुम्हारी यह क्या दशा है? बिल्कुल बूढ़ी हो गयी हो।

तो अब जवानी लेकर करना ही क्या है? मेरी उम्र भी तो पैंतीस के ऊपर हो गयी।

पैंतीस की उम्र तो बहुत नहीं होती।

हाँ उनके लिए जो बहुत दिन जीना चाहते हैं। मैं तो चाहती हूँ जितनी जल्द

---

१. 'कहानी का रचना विधान', डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पृ० १२१.

हो सके जीवन का अन्त हो जाय। बस, मुन्नी के ब्याह की चिन्ता है। इससे छुट्टी पाऊँ मुझे जिन्दगी की परवाह न रहेगी।'[1]

आधुनिक युग में राजनैतिक गतिविधियों के क्षेत्र में तीव्रता आ जाने के कारण प्रायः संदिग्ध प्रकार के व्यक्ति पुलिस और अधिकारियों की दृष्टि में एक रहस्य बने रहते हैं। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'उसकी माँ' शीर्षक कहानी से इसी प्रकार का एक संवाद यहाँ उद्धृत किया जा रहा है जो सामान्यतः उपर्युक्त परिस्थितियों में पात्रों की मनोवृत्ति का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत करता है। 'उन्होंने पाकेट से डायरी निकाली, डायरी में एक तस्वीर'''देखिए इसे, जरा बताइए तो, आप पहचानते हैं इसको ?'

'हाँ पहचानता हूँ', जरा सहमते हुए मैंने बताया।

'इसके बारे में मुझे कुछ पूछना है।'

'पूछिए।'

'इसका नाम क्या है ?'

'लाल।' मैं इसी नाम से इसे बचपन से पुकारता आ रहा हूँ। मगर यह पुकारने का नाम है। एक नाम कोई और है, सो मुझे स्मरण नहीं।'

'कहाँ रहता है यह ?' सुपरिंटेन्डेन्ट ने पुलिस वाली धूर्त दृष्टि से मेरी ओर देख कर पूछा।

'मेरे बंगले के ठीक सामने एक दो मंजिला, कच्चा पक्का घर है, उसी में वह रहता है। वह है और उसकी बूढ़ी माँ।''[2]

कथोपकथनगत यथार्थ की दृष्टि से श्रीमती उषादेवी मित्रा की कहानियाँ भी विशेष महत्व रखती हैं। इनकी कहानियों में कथोपकथन के समस्त भेद विद्यमान रहते हैं। वास्तविक जीवन की पृष्ठभूमि में भावात्मक कथन श्रीमती उषादेवी मित्रा की कहानियों की प्रमुख विशेषता है। नाटकीय, सांकेतिक, व्यंग्यात्मक, मनोवैज्ञानिक और उद्देश्यपूर्ण कथन भी इनकी कहानियां में प्रयुक्त हुए हैं। सामाजिक कथावस्तु पर आधारित इनकी कहानियों में कथोपकथन सजीव, अनुकूल, स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट बन पड़े हैं। 'सुहाग की बिन्दी', 'देश भक्त' आदि कहानियाँ कथोपकथन की दृष्टि से विशेष महत्व रखती हैं। 'उन्नीस सौ पैंतीस', 'प्रथम छाया', 'जीवन ज्वाला', 'बुलबुल', 'महान की पूजा', 'चम्मच भर आँसू', 'रिक्ता', 'जीवन का एक दिन', 'अतृप्त वासना', 'अफीम का फूल' तथा 'बहता फूल'

---

१. 'उग्र की श्रेष्ठ कहानियाँ', श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', पृ० १०.
२. 'मानसरोवर', मुन्शी प्रेमचन्द, भाग १, पृ० १०१.

आदि कहानियाँ कथोपकथन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।[१] पूर्व युग में लिखी गई कहानियों की भाँति श्रीमती उषादेवी मित्रा की कहानियों में आयोजित संवाद योजना में नाटकीयता और बनावटीपन नहीं है बल्कि स्वाभाविकता और सरलता मिलती है ।

प्रेमचन्दयुगीन कहानी में पात्र योजना अथवा कथोपकथनगत यथार्थ के जो उदाहरण ऊपर प्रस्तुत किये गये हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि इस युग के ज्यादातर कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में विश्वसनीय और स्वाभाविक संवादों की योजना की है । जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, ये संवाद कई दृष्टियों से सार्थकता रखते हैं । सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से संवाद योजना के माध्यम से कहानी में कथावस्तु का विकास, पात्रों के चरित्र का उद्घाटन, देश-काल और वातावरण का परिचय तथा लेखक के उद्देश्य का स्पष्टीकरण भी किया जाता है । इस युग में जहाँ एक ओर चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जैसे लेखकों ने मुख्य रूप से विशुद्ध यथार्थपरक संवादों की आयोजना की है, वहाँ दूसरी ओर प्रेमचन्द, 'सुदर्शन', भगवतीप्रसाद वाजपेयी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', 'जयशंकर 'प्रसाद', उषादेवी मित्रा तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के संवादों में आदर्श का आग्रह भी यथार्थ के साथ दिखाई देता है ।

**प्रेमचन्दयुगीन कहानी में भाषा-तत्त्वगत यथार्थ**—भाषा-तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से प्रेमचन्दयुगीन कहानी साहित्य का विशेष महत्व है क्योंकि यह युग भाषागत रूपात्मकता की दृष्टि से अत्यन्त प्रशस्त है । सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भाषा भावाभिव्यक्ति का एक माध्यम है । इसलिए सरल, सहज और मुहावरों तथा कहावतों से युक्त भाषा विश्वसनीयता, स्वाभाविकता और यथार्थता की दृष्टि से कृत्रिम, आडम्बरपूर्ण और दुरूह भाषा की तुलना में अधिक प्रभावशाली होती है । इस दृष्टिकोण से इस युग के कहानी साहित्य में पूर्व-युगीन कहानी साहित्य के भाषागत दोष नहीं मिलते हैं । इस युग के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने भी भाषा की इस विकासशीलता की ओर संकेत करते हुए बताया है कि "भाषा साधन है, साध्य नहीं, अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा से आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माण-कार्य आरम्भ किया गया था, वह क्योंकर पूरा हो । वही भाषा, जिसमें आरम्भ में 'बागोबहार' और 'बैताल पचीसी' रचना हो सबसे बड़ी साहित्य सेवा थी, अब इस योग्य हो गयी है कि उसमें शास्त्र और विज्ञान के प्रश्नों की भी विवेचना की जा सके ।"[2]

---

१. द्रष्टव्य : 'मेघ मल्लार', श्रीमती उषादेवी मित्रा, पृ० ११.

२. 'साहित्य का उद्देश्य', मुंशी प्रेमचन्द, पृ० २.

'सुदर्शन' की लिखी हुई कहानियों में भी प्रेमचन्द की भाँति भाषा का व्यावहारिक रूप बहुलता से व्यक्त हुआ है। इनकी भाषा उर्दू प्रधान नहीं है परन्तु व्यावहारिक प्रयोग में आने वाले हिन्दी, अँग्रेजी और संस्कृत के शब्दों की दृष्टि से यथार्थपरक अवश्य है। इसी कारण से न केवल इसमें यथार्थता आ गयी है वरन् स्वाभाविकता व प्रभावपूर्णता की दृष्टि से भी इसका महत्व है। यहाँ पर सुदर्शन की लिखी हुई 'कवि' शीर्षक कहानी से व्यावहारिक भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है : "लाला अमरनाथ विद्यारसिक पुरुष थे, पूरे अपटुडेट। उनसे और कवि से अतिशय मेल-मिलाप था। कवि निर्धन था, और साथ ही यह कि ब्याह भी कर चुका था। उसके एक लड़का था, दो लड़कियाँ। प्रायः चिन्तित रहता था। परन्तु जीवन की बहुत-सी आवश्यकताओं के होने पर भी उसे कोई काम करना इष्ट न था। वह इसमें अपनी मानहानि समझता था। प्रायः कहा करता, लोग कैसे मूर्ख हैं, थर्मामीटर से हल का काम लेना चाहते हैं। लाला अमरनाथ उसकी कविता पर लट्टू थे। कभी उसकी कविता का एक पद भी सुन लेते तो मस्त होकर झूमने लगते। धनाढ्य पुरुष थे, रुपये पैसे की कुछ परवाह न थी। वे उदारता से कवि की सहायता किया करते थे। इसमें उन्हें हार्दिक आनन्द प्राप्त होता था।"[1]

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की भाषा भी यथार्थता की दृष्टि से इस युग के कहानीकारों में विशेष महत्व की है। उनकी कहानियों में आयोजित विभिन्न कथासूत्रों के सन्दर्भ में विभिन्न पात्रों का जो वार्तालाप है वह तो भाषा की स्वाभाविकता से युक्त है ही, परन्तु जहाँ लेखक की ओर से विभिन्न वर्णन मिलते हैं, वहाँ पर भी भाषा विशुद्ध लोकप्रचलित रूप से युक्त है। 'उग्र' की लिखी हुई 'कुंड गोलक' शीर्षक कहानी से भाषागत यथार्थ का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है : "ब्राह्मणों ने कभी ईश्वर को छोड़ा नहीं था। इन लौंडों ने पहले उन्हीं का बायकाट किया। वे मर्यादा में रहते थे, सीमा में ये अमर्यादित, असीम। उन्होंने सच देखा, उन्होंने झूठ सुना। उन्होंने आदमीयत की इज्जत रखी। उन्होंने सारे शहर की उघाड़ कर रख दी। सिगरेट पीते थे, भंग और मदिरा पीते थे, जुआ तो ये सदा खेलते। ये अपने से बड़ा किसी को मानते ही नहीं। सारे कस्बे का नाकों दम, पर ये कालेज पढ़े तरु बे···गम। चारों ओर से नीति का 'रोम' जलने लगा तो ये 'हाँपने' लगे। देश में जब-जब गाँधी जी की दया दूधधारा लहरायी तब जानवर भी मजबूत बन गए। सघई-मघई दोनों भाई पेचकपुर के जननायक, भाग्य विधायक, न्याय निर्णायक बन गए, 'आल इण्डिया फ्रेम' के कांग्रेसी लीडर।"[2]

---

१. 'सुदर्शन सुधा', श्री 'सुदर्शन', सन १९२६, पृ० ३.

२. 'उग्र की श्रेष्ठ कहानियाँ', श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', १९६१, पृ० ३७.

चतुरसेन शास्त्री की सामाजिक कहानियों में उर्दू अँग्रेजी के साथ संस्कृत और हिन्दी के शब्दों का जो संयोजन मिलता है, वह भी आलोच्य युगीन कहानी साहित्य की भाषातत्वगत यथार्थता का द्योतक है। यद्यपि ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कहानियों में चतुरसेन शास्त्री की भाषा यथार्थपरक है परन्तु राजनैतिक और सामाजिक कहानियों में तो इसका अपेक्षाकृत प्रतिनिधि रूप दृष्टिगत होता है। ऐसा उदाहरण उनकी लिखी हुई 'कहानी खत्म हो गई' शीर्षक रचना से यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है : "पर इस बार की बात जुदा थी। मैं घर कोई डेढ़ साल में आया था। पिछली गर्मी की छुट्टियों में यूनिवर्सिटी की टीम कश्मीर चली गयी थी। मैं भी उसमें चला गया था, अतः छुट्टियों में घर नहीं आया था। घर में दशहरे की सफाई सजावट की धूम-धाम थी। भाभियाँ घर सजाने में व्यस्त थीं और वह उनकी सहायता कर रही थी। अब उसके बाल बिखरे न थे। ठीक-ठीक बालों की माँग निकली थी, कपड़े सलीके के शहरी ढंग के बारीक और बढ़िया थे। स्वस्थ तारुण्य उसकी एड़ियों में झाँक रहा था। जीवन की ताज़गी से वह लहलहा रही थी। जीवन में पहली ही बार किसी लड़की को मैंने ऐसी रुचि से नहीं देखा था। उसका चेहरा गुलाब के समान रंगीन और आँखें तारों के समान चमकीली थीं। वह हँसती नहीं थी, फूल बिखेरती थी, चलती न थी, धरती को डगमग करती थी। मैं क्या कहूँ ? मुझे एक ही क्षण में ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे दस पाँच अँगोठियाँ मेरे अंग में धधक रही हैं और तप कर लाल हो रहा हूँ। आग की लपटें मेरी आँखों से निकलने लगीं और मैं वहाँ से लड़खड़ाता हुआ ऊपर कमरे में आकर औंधे मुँह पलंग पर पड़ रहा। मैंने समझा, बुखार चढ़ गया है।"[1]

आलोच्य युगीन कहानीकारों में भाषा-तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से श्रीमती उषादेवी मित्रा का नाम भी उल्लेखनीय है। भाषा तत्व की दृष्टि से उनकी कहानियों में विशेष सहजता और स्वाभाविकता मिलती है। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्होंने अपनी कहानियों में सहज और स्वाभाविक पारिवारिक जीवन के चित्र प्रस्तुत किये हैं। दिन-प्रतिदिन के जीवन में प्रयोग में आने वाले लोक-प्रचलित शब्दों के समावेश के कारण उनकी कहानियों में भाषागत बनावटीपन नहीं मिलता है। 'मन का यौवन', 'प्रथम छाया', 'रूप का मोह' मृत्युञ्जयी'[2] आदि कहानियों में इनकी भाषा के जो विभिन्न रूप मिलते हैं वे स्वाभाविकता, व्यंग्यात्मकता और व्यावहारिकता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार से प्रेमचन्दयुगीन कहानी में भाषा तत्वगत यथार्थ का प्रभावशाली रूप दिखाई देता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, कहानी के तमाम तत्वों में भाषा का विशेष महत्व है। हिन्दी की सब से

---

१. 'कहानी खत्म हो गयी', आचार्य चतुरसेन शास्त्री, १९७० पृ० १२.

२. द्रष्टव्य : 'मेघ मल्लार', श्रीमती उषादेवी मित्रा, पृ० २३.

पहली कहानी इन्शाअल्ला खाँ की लिखी हुई 'रानी केतकी की कहानी' ही खड़ीबोली की कथात्मक सामर्थ्य का परिचय देने के लिए लिखी गयी। भारतेन्दु युग में भी भाषा का नमूना प्रस्तुत करने के मकसद से कुछ रचनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। प्रेमचन्द युग में तमाम लेखक हिन्दी और उर्दू पर समान रूप से अधिकार रखते थे। इसलिए इनकी भाषा में विविधता दिखाई पड़ती है। इस युग के खास-खास कहानी लेखकों में मुंशी प्रेमचन्द, 'सुदर्शन', जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', कमलाकान्त वर्मा, रायकृष्णदास, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, विश्वम्भरनाथ वर्मा 'कौशिक', डा० वृन्दावनलाल वर्मा, श्रीराम शर्मा, उषादेवी मित्रा, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने इस काल में अपनी जो कहानियाँ प्रस्तुत कीं, उनमें संस्कृत-प्रधान भाषा के साथ-साथ सरल स्वाभाविक और बोल-चाल की भाषा भी प्रयोग किया जो यथार्थता की दृष्टि में महत्व रखती हैं।

प्रेमचन्दयुगीन कहानी में शैली तत्वगत यथार्थ—आधुनिक कहानी में शैली तत्व का महत्व अपेक्षाकृत अधिक स्वीकार किया जाता है यद्यपि प्रेमचन्द की पूर्ववर्ती हिन्दी कहानी में इस तत्व की उपेक्षा मिलती है। आधुनिक युग के अनेक आलोचकों ने शैली की महत्ता अनेक रूपों में बताई है। पाश्चात्य विचारक एस० ओ० फाउलेन ने कहानी के शिल्प रूप का सम्बन्ध उसकी संपूर्ण घटनात्मक संरचना से सिद्ध किया है।[1] डा० गुलाबराय ने भी शैली का समग्र स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है कि उसका सम्बन्ध कहानी के सभी तत्वों से होता है और वह कहानी की प्रभावात्मकता का मूल आधार है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द युग तक जो शैली रूप मिलते थे उनमें नाटकीयता और चमत्कारिकता अधिक थी। परन्तु प्रेमचन्द युग से यथार्थपरक शैली का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिकता से होने लगा।

शैलीगत यथार्थ का प्रारम्भिक स्वरूप प्रेमचन्द युग में स्वयं मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में ही उपलब्ध होता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में यथार्थपरक शैली का प्रयोग करते हुए उसे विशेष परिपक्वता प्रदान की है। सहजता, स्वाभाविकता तथा प्रवाहपूर्णता के साथ वर्ण्य विषय की यथार्थता के कारण इस प्रकार की शैली उनकी कहानियों में विशेष सफल कही जा सकती है। 'शंखनाद' शीर्षक कहानी से उनकी यथार्थपरक शैली का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—'बाँका गुमान अपनी कोठरी के द्वार पर बैठा हुआ यह कौतुक बड़े ध्यान से देख रहा था। वह इस बच्चे को बहुत चाहता था। इस वक्त के थप्पड़ उसके हृदय में तेज भाले के समान लगे और चुभ गये। शायद उसका अभिप्राय भी यही था। धुनिया रूई को धुनकने के

---

१. 'दि शार्ट स्टोरी', एस० ओ० फाउलेन, भूमिका, पृ० १२.

लिए ताँत पर चोट लगाता है। जिस तरह पत्थर और पानी में आग छिपी रहती है, उसी तरह मनुष्य के हृदय में भी चाहे वह कैसा ही क्रूर और कठोर क्यों न हो— उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते हैं। गुमान की आँखें भर आयीं, आँसू की बूंदें बहुधा हमारे हृदय की मलिनता को उज्ज्वल कर देती हैं। गुमान सचेत हो गया। उसने जाकर बच्चे को उठा लिया और अपनी पत्नी से करुणोत्पादक स्वर में बोला... बच्चे पर इतना क्रोध क्यों करती हो ? तुम्हारा दोषी मैं हूँ, मुझको जो दंड चाहे दो। परमात्मा ने चाहा तो कल से लोग इस घर में मेरा और मेरे बाल बच्चों का भी आदर करेंगे, तुमने आज मुझे सदा के लिए इस तरह जगा दिया, मानों मेरे कानों में शंख-नाद कर मुझे कर्मपथ में प्रवेश करने का उपदेश दिया हो।"[1]

प्रेमचन्द युग में डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने जो कहानियाँ शिकारी जीवन से सम्बन्धित लिखी हैं, उनमें विषय वस्तु की मौलिकता और नवीनता के साथ-साथ शैलीगत यथार्थ भी परिलक्षित होती है। यह सभी कहानियाँ यथार्थ घटनाओं पर आधारित होने के कारण भी विभिन्न तत्वों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं। यहाँ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना असंगत न होगा कि पूर्व-प्रेमचन्द काल में भी कुछ कहानियाँ शिकारी जीवन की यथार्थपरक घटनाओं पर आधारित हैं और इसी परम्परा का प्रसार इस युग में वृन्दावनलाल वर्मा ने किया। 'दबे पाँव' शीर्षक कहानी संग्रह से यहाँ पर एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है : 'तेंदुये पानी पर आये। मेरे और उनके बीच में केवल ढाई तीन हाथ का अन्तर था। मैंने सोचा आज लिखा गया नाम पक्के शिकारियों में। यह नहीं जानता था कि बन्दूक के चलते ही वे दोनों सिर पर सवार होते और कच्चे शिकारियों की सूची तक में नाम लिखे जाने की नौबत न आती। मैंने चलाने के लिए बन्दूक उठाई थी कि मेरे साथी ने कड़कड़ाहट के साथ भटे चबाने मुराने शुरू कर दिये। तेंदुओं ने सुन लिया। उनकी तेज आँखों ने मेरे साथी के डीलडौल को भी देख लिया और वे छलाँग मार कर भाग गये। मैं बच गया और मेरे साथी पकड़े गये। वे इतनी तेज और ओज के साथ भटे चबाये चले जा रहे थे कि हंसी के मारे नाकों दम आ गया। थोड़ी देर में खाना भी आ गया।"[2]

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की लिखी हुई 'मूर्खा', 'खुदाराम', 'जल्लाद', 'नेता का स्थान' जैसी कहानियों में सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों का यथार्थपरक शैली में चित्रण किया गया है। 'उग्र' की यह शैली इस युग की प्रतिनिधि शैली है जो यथार्थवादी कहानीकारों द्वारा प्रयुक्त हुई है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा

---

१. 'प्रेम द्वादशी', मुंशी प्रेमचन्द, पृ० १५६-१६०.

२. दबे पांव', डा० वृन्दावनलाल वर्मा, १९६२, पृ० ४४.

चुका है, राजनैतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि में समाज में होने वाले परिवर्तनों का सच्चा लेखा जोखा प्रस्तुत करने के कारण यह शैली प्रभावपूर्ण बन गयी हैं : 'उस देश में मुट्ठी भर आदमियों ने सबके पाप-पुन्य, धर्म-अधर्म, सुख-दुख, जीवन-मरण आदि को अपने काबू में कर रखा था। वे मुट्ठी भर आदमी विदेशी नहीं, थे। 'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं ?' प्रायः ऐसा देखा जाता है कि अधिकार पा जाने पर स्वदेशी विदेशी दोनों प्रकार के निरंकुश शासकों का रूप एक ही प्रकार का हो जाता है। कभी-कभी तो स्वदेशी शासक विदेशियों के भी कान काटते हैं। उस देश की भी यही आस्था थी। स्वदेशी स्वेच्छाचार का बाजार गर्म था। राजा अपने पीछे विचार के चापलूस सहायकों से जो कुछ सुनता, उसी को ध्रुव वाक्य की तरह पकड़ कर बैठ जाता। जगह जगह से धीरे धीरे, पर गम्भीर आवाज आने लगी। निरंकुशों ने सोचा, 'रियाया का विरोध करने का क्या हक है ? उन्हें गिड़गिड़ाना, हाथ पैर जोड़ना चाहिए। हम शक्तिशाली हैं। जो हमारी बात काटेगा, हम उसका सिर काट लेंगे। उन्होंने किया भी ऐसा ही। जिस प्रदेश से, जिस नगर से या जिस मुहल्ले से विद्रोह सूचक समाचार आये, सच्चे या झूठे, वह नष्ट कर दिया गया, उड़ा दिया गया। उस स्थान विशेष के बूढ़े, जवान, बच्चे, स्त्रियाँ, अपराधी, निरापराधी सभी पीस डाले गए। शासकों के और शासन के विरुद्ध बोलना मजाक नहीं था।'[1]

चतुरसेन शास्त्री की लिखी हुई 'प्रतिशोध', 'अभाव', 'क्रान्तिकारिणी', 'राजधर्म', 'मास्टर साहब' तथा 'ग्यारहवीं मई' जैसी कहानियों में शैलीगत यथार्थ का प्रभावशाली रूप उपलब्ध होता है। आधुनिक युग में नारी समाज में जो जागरण हो रहा है और अपने अधिकारों के लिए वह जिस रूप में संघर्ष कर रही है, यह समाज के तीव्रगति से होने वाले परिवर्तन का द्योतक है। चतुरसेन शास्त्री लिखित 'मास्टर साहब' शीर्षक कहानी में नारी जीवन की इस पृष्ठभूमि में यथार्थपरक शैली का जो रूप मिलता है उसका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। 'भामा प्रायः नित्य हो महिला संघ में जाने लगी। उन्मुक्त वायु में स्वच्छन्द साँस लेने लगी, पढ़ी लिखी उन्नतिशील कहाने वाली, लेडियों महिलाओं के संपर्क में आई, जितना पढ़ सकती थी, पुस्तकों पत्र पत्रिकाओं को पढ़ने लगी। उसने सुना—उन महामहिम महिलाओं में, जो सभाओं और जलसों में ठाटदार साड़ी धारण करके सभानेत्रियों के आसन को सुशोभित करती हैं, चारों और स्त्री पुरुष जिनका आदर करते है, जिन्हें प्रणाम करते है, हँस हँसकर; झुककर जिनका सम्मान करते हैं, उनमें कोई घर को त्याग चुकी हैं, कोई पति को त्याग चुकी हैं, उनका गृहस्थ जीवन नष्ट हो चुका है, वे स्वच्छंद हैं, उन्मुक्त हैं, बाधाहीन हैं, वे कुछ घन्टों

---

१. 'उग्र की श्रेष्ठ कहानियां', श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', सन् १९६१, पृ० ९२.

ही के लिए नहीं प्रत्युत महीनों चाहे जहाँ रहें और चाहे जहाँ जा सकती हैं, उन्हें कोई रोकने वाला, उनकी इच्छा में वाधा डालने वाला नहीं है। उसे लगा, यही तो स्त्री का सच्चा जीवन है। वे गुलामी की बेड़ियों को तोड़ चुकी हैं, वे नारियाँ धन्य हैं।'[1]

आलोच्य युग के अन्य कहानीकारों में श्रीमती उषा देवी मित्रा की कुछ कहानियाँ भी शैलीगत यथार्थ की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'अतृप्त वासना', 'जीवन ज्वाला', 'बुलबुल', 'ललिता की डायरी', 'जातिस्मार', 'प्रथम छाया', 'मृत्युञ्जयी', 'चातक' तथा 'महान की पूजा'[2] आदि कहानियाँ इस दृष्टि से विशेष महत्व रखती हैं। 'अतृप्त वासना' शीर्षक कहानी में विश्लेषणात्मक शैली प्रयुक्त हुई है और 'ललिता की डायरी' आत्मकथात्मक शैली का अच्छा उदाहरण है। जैसा कि इस कहानी के शीर्षक से ही ज्ञात हो जाता है, इसमें डायरी शैली का भी प्रयोग हुआ है। 'प्रथम छाया' संवेदनात्मक एवं नाटकीय शैली का प्रयोग यथार्थपरक पृष्ठभूमि में हुआ है। 'मृत्युञ्जयी' कहानी स्मृतिपरक शैली का अच्छा उदाहरण है। मनोविश्लेषणात्मक शैली 'चातक' कहानी में देखने को मिलती है। 'महान की पूजा' शीर्षक कहानी में संस्मरणात्मक शैली मिलती है। इस प्रकार से शैली की दृष्टि से उषादेवी मित्रा एक सफल कहानीकार हैं। कहानी की विषयवस्तु में आयोजित घटना के अनुरूप शैली का प्रयोग श्रीमती उषादेवी मित्रा की रचनाओं की प्रमुख विशेषता है।

यहाँ पर प्रेमचन्द युगीन कहानी में शैली तत्वगत यथार्थ के जो उदाहरण दिए गए हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के कहानीकारों की शैली ही यथार्थता के दृष्टिकोण से अधिक कलापूर्ण बन पड़ी है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, पूर्व-प्रेमचन्द युग तक शैली का जो विकास हिन्दी कहानी के क्षेत्र में हुआ था वह लेखकों के भावात्मक और कल्पनात्मक दृष्टिकोण का सूचक था। उनकी कहानियों में नाटकीयता और चामत्कारिता अधिक होने का भी यही कारण था। प्रेमचन्द युग के कहानीकारों ने जीवन के यथार्थ पहलुओं से सम्बन्धित कहानियाँ ही अधिक लिखी हैं। इसीलिए उन्होंने मनोवैज्ञानिकता और स्वाभाविकता भी अधिक है जो शैलीगत यथार्थ का मूल आधार है। इस काल के प्रमुख लेखकों में मुन्शी प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, उषा देवी मित्रा तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अपनी कहानी शैली में यथार्थ के साथ-साथ आदर्श का भी समावेश किया है जबकि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा पांडेय बेचन

---

१. 'कहानी खत्म हो गई', आचार्य चतुरसेन शास्त्री, सन् १९७०, पृ० १२१.
२. 'मेघ मल्लार', श्रीमती उषादेवी मित्रा, पृ० १२.

शर्मा 'उग्र' जैसे कहानीकारों ने मनोवैज्ञानिक आधार पर विशुद्ध यथार्थपरक शैली का प्रयोग किया है।

**प्रेमचन्दयुगीन कहानी में वातावरणगत यथार्थ**—प्रेमचन्द युगीन कहानी में देशकाल अथवा वातावरण-तत्वगत यथार्थ का भी पिछले युग की तुलना में प्रभावशाली रूप उपलब्ध होता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से देशकाल अथवा वातावरण कहानी का सातवाँ मूल तत्व है जिसकी आयोजना कहानी को यथार्थपरक पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए की जाती है। इसीलिए इसके अन्तर्गत कहानी की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ विभिन्न परम्पराओं, रहन-सहन, आचार-विचार और रीति-रिवाज का चित्रण किया जाता है। कहानी की आकारगत सीमा के कारण उसमें विस्तृत वातावरणगत चित्रण की सम्भावना नहीं रहती, परन्तु फिर भी उसकी आयोजना से कहानी प्रभावशाली बन जाती है। डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने बताया है कि कहानी में वातावरण चित्रण का प्रमुख उद्देश्य होता है। सम्पूर्ण कथानक के भीतर आयी हुई क्रियाओं और परिणामों का तर्कसंगत क्रमन्यास। यथार्थता को कल्पना की सीढ़ियों से ऐसा सजाना चाहिए कि किसी घटना अथवा कर्म के पूर्व की समस्त परिस्थितियाँ कड़ी के रूप में संगठित मालूम पड़े। पाठक को यह विदित होना चाहिए कि अमुक कार्य के पहले उसके मूलभूल कारण किस रूप में उपस्थित थे। परिस्थितियों की सीढ़ी चढ़कर ही कोई परिणाम शिखर पर पहुँचता है और चमत्कृत हो सकता है।'[१]

प्रेमचन्द युग में स्वयं मुंशी प्रेमचन्द की हां कहानियों में वातावरण के विभिन्न रूप अपनी यथार्थपरक पृष्ठभूमि के विभिन्न रूप पर अपनी यथार्थपरक पृष्ठभूमि में उपलब्ध होते हैं। 'शतरंज के खिलाड़ी', 'रानी सारन्धा', 'मर्यादा की वेदी' तथा 'राजा हरदौल' जैसी कहानियों में उन्होंने जहाँ एक ओर ऐतिहासिक और सांस्कृतिक वातावरण का प्रभावशाली चित्र उपस्थित किया है, वहाँ दूसरी ओर 'पूस की रात', 'डिग्री के रुपये', 'सवा सेर गेहूँ' तथा 'कफन' आदि कहानियों में सामाजिक वातावरक्ष का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। स्थूल रूप से प्रेमचन्द के साहित्य में प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध का मध्यवर्ती भारतवर्ष चित्रित हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बीसवीं शताब्दी के इस काल खंड का विशेष महत्व इसीलिए हैं क्योंकि इसमें भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए अनेक आन्दोलन आयोजित किये गये थे। इन्होंने देश के जन-जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित करते हुए विभिन्न वर्गों के राष्ट्रीय चेतना का जागरण किया था।

---

१. 'कहानी का रचना विधान', डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, सन् १९५१ पृ० १८९.

प्रेमचन्द की कहानियों में वातावरण का यथार्थस्वरूप ग्रामीण अंचलों की पृष्ठभूमि में चित्रात्मक रूप में उपलब्ध होता है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसके माध्यम से प्रकृति का जो स्वरूप अंकित किया जाता है वह सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियों को भी विश्वसनीय स्वरूप प्रदान करता है। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'नागपूजा' शीर्षक कहानी से यथार्थपरक प्राकृतिक वातावरण का एक चित्र यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। 'प्रातःकाल था। अषाढ़ का पहला दौंगड़ा निकल आया था। कीट पतंग चारों तरफ रेंगते दिखाई देते थे। तिलोत्तमा ने वाटिका की ओर देखा तो वृक्ष और पौधे ऐसे निखर गये थे जैसे साबुन से मैले से मैले कपड़े निखर जाते हैं। उन पर एक विचित्र आध्यात्मिक शोभा छायी हुई थी, मानों योगीवर आनन्द में मग्न पड़े हैं। चिड़ियों में असाधारण चंचलता थी। डाल डाल, पात पात चहकती फिरती थीं। तिलोत्तमा बाग में निकल आयी। वह भी उन्हीं पक्षियों की भाँति चंचल हो गयी थी। कभी किसी पौधे को देखती, कभी किसी फूल पर पड़ी हुई जल को बूँदों को हिलाकर अपने मुँह पर उनके शीतल छींटे डालती। लाल बीरबहूटियाँ रेंग रही थीं। वह उन्हें चुनकर हथेली पर रखने लगी।'[1]

आधुनिक युग में अर्थ-प्रधान मूल्यों के प्रसार के कारण जन जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के विरूपताओं का समावेश हो गया है। धन की शक्ति को वे लोग सर्वोपरि समझने लगे हैं जो गैरकानूनी तरीकों से पूँजी एकत्र करते हैं। और फिर उस पूँजी से गैरकानूनी कार्य करते हैं। 'नमक का दरोगा' शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द ने उपर्युक्त पृष्ठभूमि में ही रात्रिकालीन वातावरण का जो यथार्थपरक चित्रण किया है उसका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है। 'जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त पड़े थे। मुन्शी बंशीधर को यहाँ आये अभी छः महीने से अधिक न हुए थे। आचरण से अफसरों को मोहित कर लिया था। अफसर लोग उन पर बहुत विश्वास करने लगे। नमक के दफ्तर से एक मील पूरब की ओर जमुना बहती थी। उस पर एक बम्बों का पुल बना हुआ था। दरोगाजी किवाड़ बन्द किए मीठी नींद सोते थे। अचानक आँख खुली तो नींद के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनाई दिया। उठ बैठे, इतनी रात गए गाड़ियाँ क्यों नदी के पार जाती हैं? अवश्य कुछ न कुछ गोलमाल है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वर्दी पहनी, तमंचा जेब में लिया और बात की बात में घोड़ा बढ़ाये पुल पार आ पहुँचे। गाड़ियों की एक लम्बी कतार पुल से पार जाती देखी। डाँट कर

१. 'मानसरोवर', मुन्शी प्रेमचन्द, भाग ७, पृ० २८६.

पूछा, किसकी गाड़ियाँ हैं ? थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियों में कानाफूसी हुई, तब आगे वाले गाड़ीवान ने कहा, पंडित अलोपीदीन की।'[१]

जयशंकर 'प्रसाद' की कहानियों में प्राकृतिक वातावरण का जो चित्रण मिलता है, वह कथावस्तु और पात्रों की मन:स्थिति में सामंजस्य रखने के कारण विशेष प्रभावशाली प्रतीत होता है। प्रकृति-चित्रों से सम्बन्धित वातावरण पात्रों के मानसिक भावों के सन्दर्भ में विशेष सार्थक प्रतीत होता है। जयशंकर 'प्रसाद' की लिखी हुई एक कहानी से यहाँ पर इस प्रकार का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है : 'गोधूली थी और वही उदास रमला झील। साजन थका हुआ बैठा था। आज उसके मन में, आँखों में न जाने कहाँ का स्नेह उमड़ा पड़ता था। प्रशान्त रमला में एक चमकीला फूल हिलने लगा। साजन ने आँख उठाकर देखा···पहाड़ी की चोटी पर एक तारिका रमला के उदास भाल पर सौभाग्य चिह्न सी चमक उठी थी। देखते देखते रमला का वक्ष नक्षत्रों के हार से सुशोभित हो उठा। साजन ने पुकार···रानी।'[२]

प्रेमचन्द युग के एक अन्य उल्लेखनीय कहानीकार 'सुदर्शन' ने अपनी कहानियों में जहाँ एक ओर सामाजिक वातावरण के प्रभावशाली रूप अंकित किये हैं, वहाँ दूसरी ओर ऐतिहासिक वातावरण के भी सांस्कृतिक चित्र यथार्थपरक रूप में प्रस्तुत किये हैं। यहाँ पर 'सुदर्शन' की लिखी हुई 'फररून का प्रेम' शीर्षक कहानी से इस प्रकार के वातावरण का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है : "दोपहर का समय था। सौ दरवाजों के पुराने मिस्री शहर खीवा पर सूरज की गर्मी के कारण बेहोशी और बेसुधी-सी छाई हुई थी। बाजारों में, गलियों में और आबादी से बाहर श्मशान का सा सन्नाटा छाया हुआ था। कोई आवाज सुनाई न देती थी। कोई शक्ल दिखाई न देती थी और यह वह समय था जब इस रंग-रूप और भोगविलास की संगीतमय नगरी पर किसी ने मौत का जादू कर दिया था।···मगर इस हत्यारी गर्मी में भी तलखत फरकन अमनस का अर्थमंत्री शाही खजाने के नए भवन में इधर से उधर और उधर से इधर फिर रहा था और हब्शी गुलामों को काम जल्दी समाप्त करने के तगादे कर रहा था।"[३]

जंगल की पृष्ठभूमि में वातावरण का यथार्थपरक चित्रण आलोच्य युग के कहानीकारों में डा० वृन्दावनलाल वर्मा की रचनाओं में विशेष रूप से दृष्टव्य है। डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने शिकार से सम्बन्धित जो कहानियाँ लिखी हैं उनमें इस प्रकार के वातावरण के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। यहाँ पर 'दबेपाँव' शीर्षक

---

१. 'सप्त सरोज', मुन्शी प्रेमचन्द, पृ० ६३.
२. 'आकाशदीप', श्री जयशकर 'प्रसाद', पृ० १८४.
३. 'चार कहानियां', श्री सुदर्शन, पृ० १७१.

रचना से मध्य प्रदेश के वन खंडों से सम्बन्धित प्राकृतिक वातावरण का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जो पाठक के समक्ष अभीष्ट दृश्य को मूर्तिमान कर देता है : "गर्मियों के दिन थे। नदी का किनारा। किनारे से लगे हुए भरके और छोटे-छोटे नाले। इसमें करौंदी का जंगल था। करौंदी फूलों से लदी हुई थी और वायु उसकी महक से लदी जान पड़ती थी। नदी के पानी के पास चकवा-चकवी बोल रहे थे। वे अलग न थे। रात को भी साथ ही रहते थे। पुराने कवियों के भ्रम ने ही उनको अलग किया है। पानी में मछलियाँ उछल-उछल कर डूब रही थीं। पतोखियाँ और टिटहरियाँ बोल-बोल जाती थीं। रात बिल्कुल अँधेरी थी, परन्तु तारे निकल आये थे और झिलमिला रहे थे नीले आकाश में टके हुए से।"[१] पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' इस युग के विशिष्ट यथार्थवादी कहानीकार है जिनकी लिखी हुई 'जल्लाद', 'नेता का स्थान', 'दोजख की आग', 'खुदाराम' तथा 'दिल्ली की बात' आदि कहानियाँ वातावरण की यथार्थता की दृष्टि से उल्लेखनीय है। 'उग्र' ने अपनी कहानियों में सामन्तवादी जीवन की पृष्ठभूमि में जो वातावरण प्रस्तुत किया है वह इस क्षेत्र में उनकी दृष्टि की सूक्ष्मता का परिचायक है। यहाँ पर 'उग्र' की एक महत्वपूर्ण यथार्थवादी कहानी 'चाँदनी' से इस सन्दर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है : "शारदी पूर्णिमा को शराब, सुराही और गिलास लिए, चौबीस सुन्दरियों के आगे तथा मिस मिनी के पीछे, जब चाँदनी महाराजाधिराज के सामने आयी, उस समय उस उद्यान में चारों ओर सुफेदी ही सुफेदी छाई हुई थी। उद्यान में चौबीस चुने हुए हिन्दू मुसलमान, समवयस्क सरदारों के बीच में हमारे भानुकुल भूषण और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी महोदय सुफेद मारबल के चौकोर चबूतरे पर बैठे सुरा सुन्दरी का सेवन कर रहे थे। उसी समय तो मिस मिनी के आदेशानुसार वे पच्चीस पंचदशियाँ न जाने कौन-सा पीने और ढालने का गाना गा-गा कर वह अद्भुत पश्चिमी नाच नाचने लगीं। उनमें सबसे आगे, जोगिया दुपट्टा ओढ़े, लंका की वह मुसलमान लड़की 'सात घूंघट वाला' परम मोहक और उन्मादक नाच नाच रही थी।"[२]

प्रेमचन्दयुगीन कहानी में देशकाल अथवा वातावरणगत यथार्थ के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, उनके अतिरिक्त भी अन्य बहुत से उदाहरण ऐसे दृष्टिगत होते हैं जो वातावरण के अन्य भेदों की दृष्टि से महत्व रखते हैं। अनावश्यक विस्तार के भय से उनके उदाहरण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, प्रेमचन्दयुगीन कहानी में पिछले काल की तरह नाटकीय और कल्पित

---

१. 'दबे पाँव', डा० वृन्दावनलाल वर्मा, सन् १९६२, पृ० ५२.
२. 'उग्र की श्रेष्ठ कहानियाँ', श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', सन् १९६१, पृ० १२४-२५.

वातावरण ही नहीं मिलता है, बल्कि सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक वातावरण के साथ-साथ भौगोलिक और आँचलिक वातावरण के भी यथार्थ चित्र मिलते हैं। मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, कमलाकान्त वर्मा, रायकृष्णदास, शिवपूजन सहाय, डा० वृन्दावनलाल वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', श्रीराम शर्मा, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, उषादेवी मित्रा तथा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानियाँ वातावरण-तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण कही जा सकती हैं।

**प्रेमचन्दयुगीन कहानी में उद्देश्य-तत्वगत यथार्थ**—प्रेमचन्दयुगीन कहानी में उद्देश्य-तत्वगत यथार्थ का भी प्रभावशाली रूप उपलब्ध होता है। पूर्ववर्ती कहानी में मुख्यतः मनोरंजन का उद्देश्य निहित रहता था परन्तु प्रेमचन्दयुगीन कहानी का क्षेत्र इस तत्व की दृष्टि से प्रशस्त हुआ। इसका कारण यह है कि उसका आधार कल्पना से पृथक् यथार्थ पृष्ठिभूमि हो गई। हिन्दी के विशिष्ट आलोचकों में एक डा० गुलाब राय ने भी कहानी के उद्देश्य-तत्वगत परिवर्तन और विकासशीलता को स्वीकार किया है। उन्होंने लिखा है कि "प्रत्येक कहानी में कोई उद्देश्य या लक्ष्य अवश्य रहता है। कहानी का ध्येय केवल मनोरंजन या लम्बी रातों को काटकर छोटा करना नहीं है, वरन् जीवन सम्बन्धी कुछ तथ्य देना या मानव मन का निकट परिचय कराना है। किन्तु यह उद्देश्य या तथ्य हितोपदेश या ईसप की कहानियों की भाँति व्यक्त नहीं किया जाता है। वह अधिकांश में व्यंजित ही रहता है। कहानी के अध्ययन में उसका उद्देश्य समझना एक आवश्यक बात होती है।"[1] पाश्चात्य साहित्यालोचकों ने भी आधुनिक कहानी में उद्देश्य-तत्वगत यथार्थता पर बल दिया है। ए० एम० सी० क्लार्क ने इस सम्बन्ध में यह संकेत किया है कि कहानी में जीवन का जो रूप प्रस्तुत किया जाता है उसमें यथार्थ के साथ समन्वित उद्देश्य का भी तत्व होता है।[2] हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने भी कहानी में उद्देश्य तत्वगत यथार्थ पर बल देते हुए लिखा है कि "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है। इतना ही नहीं बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं।"[3]

प्रेमचन्द युग में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उद्देश्य-तत्वगत विकासशीलता लक्षित होती है। इस युग के सर्वप्रमुख कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने स्वयं अपनी

---

१. 'काव्य के रूप', डा० गुलाब राय, पृ० २२४.
२. 'ए मैनुअल आफ शार्ट स्टोरी', ए०एम०सी० क्लार्क, पृ०. ११८.
३. 'कुछ विचार', मुंशी प्रेमचन्द, पृ० ३२.

कहानियों में उद्देश्यगत यथार्थता का परिचय दिया। उन्होंने जहाँ एक ओर समाज के विभिन्न वर्गों में व्याप्त रूढ़िवादिता का तीव्र विरोध किया है वहाँ दूसरी ओर आर्थिक विषमता को वर्ग संघर्ष का मूल कारण बताया है। 'आत्माराम', 'बड़े घर की बेटी', 'पंचपरमेश्वर', 'सवा सेर गेहूँ', 'कफन', 'मंत्र', 'नमक का दरोगा', 'डिग्री के रुपये', 'आभूषण', 'दो बहनें', 'लांछन', 'प्रेम का उन्माद' तथा 'दो सखियां' आदि कहानियों में उद्देश्यगत यथार्थ की प्रधानता है। प्रेमचन्द ने उद्देश्यगत यथार्थ पर बल देते हुए एक स्थान पर लिखा भी है कि "जिस साहित्य में हमारे जीवन की समस्याएँ न हों, हमारी आत्मा को स्पर्श करने की शक्ति न हो, जो केवल जिसी भावों में गुदगुदी पैदा करने के लिए या भाषा-चातुरी दिखाने के लिए रचा गया हो, वह निर्जीव साहित्य है, सत्यहीन, प्राणहीन...वह साहित्य जो हमें विलासिता के नशे में डुबा दे, जो हमें वैराग्य, पस्तहिम्मती, निराशावाद की ओर ले जाय, जिसके नजदीक संसार दुख का घर है और उससे निकल भागने में हमारा कल्याण है, जो केवल लिप्सा और भावुकता में डूबी हुई कथाएँ लिखकर कामुकता को भड़काएँ निर्जीव है।"[1]

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने 'मणिमाला' तथा 'चित्रशाला' आदि संग्रहों में प्रकाशित आदि कहानियों में भी सुधारपरक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जो कहानी के उद्देश्य-तत्वगत यथार्थता का सूचक है। भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में व्याप्त शोषण की प्रथाओं, नारी जीवन की समस्याओं, पारिवारिक और गार्हस्थ जीवन आदि से सम्बन्धित समस्याओं के विश्लेषण के सन्दर्भ में उन्होंने उद्देश्यगत यथार्थता का परिचय दिया है। 'अशिक्षित का हृदय' वैसी कहानियों में कौशिक जी ने यह संकेत किया है कि आज की जिन्दगी में इन्सान इतना स्वार्थी हो गया है कि कभी कभी सरल हृदय वाले व्यक्ति दुनियाँ में मनुष्य से ज्यादा वृक्षों को आत्मीय समझते हैं। दुर्भाग्यवश जब इनका विछोह किसी ऐसे ही वृक्ष से होने लगता है जिसको वह अपने प्राणों से अधिक चाहता है तो एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है। लेखक ने इस कहानी में यह संदेश दिया है कि आपसी भाईचारे से तमाम समस्याओं को सुलझाया जा सकता है। इस प्रकार से इसमें मानवतावादी विचारधारा का समावेश हुआ है।

जयशंकर 'प्रसाद' की रचनाओं में 'ममता', 'अशोक', 'सिकन्दर की शपथ', 'मधुआ', 'देवदासी', 'प्रतिध्वनि', 'करुणा की विजय', 'आकाशदीप' तथा 'इन्द्रजाल' आदि में ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पक्षों से सम्बन्धित जो यथार्थपरक समस्याओं का विवेचन है वह लेखक के कहानी रचना के उद्देश्यगत

---

१. 'साहित्य का उद्देश्य', मुंशी प्रेमचन्द, पृ० १६६.

यथार्थपरक दृष्टिकोण का परिचायक है। जयशंकर 'प्रसाद' की लिखी हुई 'आकाश-दीप' तथा 'पुरस्कार' जैसी कहानियाँ प्रभावशाली होते हुए भी कहीं-कहीं पर आदर्श-परक हो गयी हैं परन्तु 'गुन्डा' जैसी कहानियों में उनका उद्देश्य सर्वथा यथार्थपरक रहा है। इन सभी कहानियों में प्रसाद ने यह संदेश दिया है कि इन्सान की जिन्दगी में अक्सर ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जब उसके मन में भावना और बुद्धि का संघर्ष होता है। भावना-प्रधान व्यक्ति अपने कर्तव्य की उपेक्षा कर सकता है, लेकिन बुद्धि-प्रधान व्यक्ति अपने कर्तव्य को सबसे ऊपर स्थान देता है और यहाँ तक कि उसके लिए अपनी जिन्दगी भी कुर्बान कर देता है। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' तथा 'गुन्डा' आदि कहानियों को उद्देश्यगत यथार्थ की दृष्टि से जयशंकर 'प्रसाद' की प्रति-निधि रचनाओं में रखा जा सकता है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की रचनाओं में 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 'देवी', 'ज्योतिर्मयी', 'चतुरी चमार' तथा 'दो दाने' आदि कहानियाँ उद्देश्यगत यथार्थ की दृष्टि से उल्लिखित की जा सकती हैं। इन कहानियों में 'निराला' ने सामा-जिक जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित अनेक ऐसे चित्र प्रस्तुत किये हैं जो इनके समाजसुधार विषयक दृष्टिकोण का परिचय देने के साथ-साथ उनकी कहानियों में निहित उद्देश्यगत यथार्थ का बोध कराने में भी समर्थ हैं। 'निराला' की कहानियों में मुख्य उद्देश्य शोषण के उन्मूलन का है। ऊपर इनकी लिखी हुई जिन कहानियों का उल्लेख किया गया है उनमें से अधिकांश में उन्होंने शोषण का ही विरोध किया है। 'निराला' की यह धारणा है कि समाज के कुछ वर्गों द्वारा अन्य वर्गों का जो शोषण किया जाता है वह समाप्त होना चाहिये।

चतुरसेन शास्त्री की लिखी हुई 'मृत्यु चुंबन', 'कलकत्ते में एक रात', 'क्रांतिकारिणी', 'ककड़ी की कीमत', 'मास्टर साहब', 'भाई की विदाई', 'कलिंग दुर्ग', 'कहानी खत्म हो गई' तथा 'अभाव' आदि कहानियाँ मानव जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित यथार्थ चित्रों का प्रस्तुतीकरण करती हैं। इनके अतिरिक्त 'अम्बपालिका', 'सिंहगढ़ विजय', 'हठी हम्मीर', 'विधवा आश्रम', 'पतिता', 'प्रणय पत्र', 'मुखबिर' तथा 'वारन्ट' आदि कहानियों में लेखक ने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, ऐति-हासिक और सांस्कृतिक विषयों से सम्बन्धित यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत किए हैं। इनमें लेखक का सुधारवादी दृष्टिकोण स्पष्टतः लक्षित किया जा सकता है जिसकी पृष्ठ-भूमि में समाज की रूढ़िवादिता और परम्परानुगामिता से सम्बन्धित समस्याएँ हैं। चतुरसेन शास्त्री ने अपनी अनेक कहानियों में नारी जीवन के शोषित स्वरूप का चित्रण करते हुए आज की नारी को शिक्षित और स्वावलम्बी बनने का सन्देश दिया है।

उद्देश्य-तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से श्रीमती उषादेवी मित्रा की कहानियों का भी उल्लेख किया जा सकता है। उनकी लिखी हुई 'अतृप्त वासना', 'चातक', 'मन का यौवन', 'उन्नीस सौ पैंतीस', 'रिक्ता' तथा 'मृत्युंजयी' आदि कहानियाँ इस दृष्टि

से उल्लेखनीय हैं। 'अतृप्त वासना' में आत्मा की अमरता पर बल दिया गया है। 'चातक' कहानी में नारी शोषण को दृष्टिगत कराया गया है। 'पत्रलेखा' में नारी समाज की विडम्बना, निराधार जीवन तथा परिस्थितिगत बाध्यता का बोध हुआ है। 'उन्नीस सो पैंतीस' कहानी का उद्देश्य समाज सुधार है। नारी जीवन की विवशता एक बाल विधवा के वेदनामय जीवन के माध्यम से प्रस्तुत की गई है जो अन्त में पतिता बन जाती है।[1] 'बहता फूल' में लेखिका ने उच्च व निम्न वर्ग की नैतिकता का सापेक्षिक अन्तर दिखाया है। भूरा नामक पात्र एक बहते हुए मुर्दा स्त्री को जिला कर अपने पुत्र सिरीराम का विवाह करना चाहता है पर वह पत्नी बनना स्वीकार नहीं करती। हरिसिंह उसे अपने घर ले आता है और उसे रखैल बनाने को तैयार होता है, पत्नी बनाने को नहीं। यह अभिजात वर्ग की खोखली नैतिकता का स्वरूप है। सिरीराम पुनः उस व्यक्ति की पिटाई कर वहाँ से चला जाता है। इसमें लेखिका ने यह संकेत किया है कि अभिजात्य वर्ग की नैतिकता सदैव स्वार्थमय होती है। 'अफीम का फूल' कहानी भी उद्देश्य तत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें भी लेखिका ने आडम्बर का विरोध और मानवतावादी धर्म के प्रसार का संदेश दिया है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनी कहानियों में धर्म की ओट में होने वाले शोषण और अनाचार का विरोध किया है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, 'उग्र' का दृष्टिकोण कहीं-कहीं पर अतियथार्थवादी हो गया है। इसका कारण यह है कि उन्होंने स्पष्ट रूप से समाज के घृणित पक्षों का यथार्थ चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। इस दृष्टि से उग्र की कहानियाँ चतुरसेन शास्त्री और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कहानियों से पर्याप्त साम्य रखती हैं। 'और तब महाराज राजकुमार को नींद आई' जैसी कहानियों में 'उग्र' ने यह संकेत किया है कि आज के जीवन में सबसे अधिक शोषण उन पराधीन और परावलम्बी स्त्रियों का होता है जो अशिक्षित होने के कारण पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों से ग्रस्त हैं। 'उग्र' का विचार है कि जब तक अशिक्षा और अज्ञान का पूरी तरह निवारण नहीं होगा तब तक इसी प्रकार से शोषण का क्रम जारी रहेगा। संक्षेप में प्रेमचन्द युग के प्रमुख कहानीकारों में उद्देश्यगत यथार्थ की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सजगता प्रतीत होती है। पिछले युग की भाँति इस काल की कहानियाँ केवल मनोरंजन के लिए नहीं लिखी गयी हैं वरन् उनमें गम्भीर उद्देश्य के प्रति जागरूकता लक्षित होती है।

### (ब) प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद : सिंहावलोकन

हिन्दी कहानी के इतिहास में प्रेमचन्द युग दूसरा विकास काल है। इस काल के प्रतिनिधि कहानीकारों ने जहाँ एक ओर पिछले युग की सभी कहानी प्रवृत्तियों के

---

१. 'मेघ मल्लार', श्रीमती उषादेवी मित्रा पृ० १००.

विकास में योग दिया, वहाँ दूसरी ओर कुछ नई प्रवृत्तियों को भी जन्म दिया। मुंशी प्रेमचन्द, राहुल सांकृत्यायन, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, सूर्यकान्त 'निराला', डा० वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उषादेवी मित्रा तथा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि इस काल के प्रतिनिधि कहानीकार कहे जा सकते हैं। इन कहानीकारों में से अधिकांश की रचनाओं में यथार्थ के प्रति स्पष्ट आग्रह मिलता है। इस युग में जो आदर्शवादी कहानीकार हुए हैं उनके दृष्टिकोण में भी यथार्थ के प्रति झुकाव दिखाई देता है।

प्रेमचन्द युग के अधिकांश कहानीकारों में उपर्युक्त घटनाओं के फलस्वरूप सजगता दिखाई देती है। अपने युग के सर्वप्रमुख और सर्वश्रेष्ठ कहानीकार प्रेमचन्द की 'सप्त सरोज', 'नवनिधि', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम प्रसून', 'प्रेम द्वादशी', 'सप्त सुमन', 'समर यात्रा', आदि कहानी संग्रहों में जो रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं उनमें इस युग का राष्ट्रीय जीवन प्रतिबिम्बित होता है। प्रेमचन्द ने जहाँ एक ओर हिन्दी कहानी को कल्पना जगत से हटा कर यथार्थ की वस्तु बनाया वहाँ दूसरी ओर उन्होंने देश की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों को भी समझा और उनसे सम्बन्धित समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया। उन्होंने समाज में वर्गगत विषमता और रूढ़िवादिता का विरोध किया है। देश के नागरिक और ग्रामीण समाज में फैले हुए अनेक अन्धविश्वासों और कुरीतियों का विरोध करते हुए उन्होंने अशिक्षा और अज्ञान की समाप्ति के लिए भी प्रयत्न किया। 'पूस की रात', 'कफन', 'डिग्री के रुपये', 'बलिदान', 'सवा सेर गेहूँ', 'नेउर', 'मर्यादा की वेदी', 'नरक का मार्ग' तथा 'सदगति' आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने महाजनी व्यवस्था, अन्धविश्वास मिथ्याडम्बर, रूढ़िवादिता, अछूत समस्या, आर्थिक शोषण की समस्या, नारी के विभिन्न रूपों में शोषण की समस्या, संयुक्त परिवार की समस्या, राजनैतिक क्रान्ति की समस्या तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता आदि से सम्बन्धित समस्याओं का चित्रण करते हुए यह संकेत किया है कि जब तक ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षा और अज्ञान को नहीं दूर किया जायगा, नागरिक क्षेत्रों में कुण्ठाओं और विकृतियों का अन्त नहीं होगा तथा राष्ट्रीय स्तर पर मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास नहीं होगा तब तक देश उन्नति नहीं कर सकता है। नारी समाज के लिए भी शिक्षा का प्रसार और नवीन चेतना का जागरण प्रेमचन्द ने आवश्यक बताया है।

इस युग के अन्य कहानीकारों ने भी जमींदार वर्ग, कृषक वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग की दशा का चित्रण करते हुए यह बताने की चेष्टा की है कि किन-किन स्वार्थों के कारण इन वर्गों में पारस्परिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। प्रेमचन्द की ही भाँति इन कहानीकारों ने सामाजिक और

धार्मिक रूढ़ियों का विरोध किया। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, पर्दा प्रथा, स्त्री शिक्षा, पारिवारिक विघटन, राजनैतिक क्रान्ति, आर्थिक विषमता तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर इन लेखकों ने विचार किया है। भगवतीप्रसाद बाजपेयी, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह तथा उषा देवी मित्रा आदि ने जहाँ इन समस्याओं के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है वहाँ दूसरी ओर जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जैसे लेखकों ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'रक्षा बन्धन' तथा 'ताई', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार', 'गुण्डा', 'रूप की छाया' तथा 'मधुआ', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'लिली', 'चतुरी चमार', 'सखी', 'सुकुल की बीबी' तथा 'दो दाने', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'नवाब ननकू', 'विधवा आश्रम', 'पतिता', 'मुखबिर', 'वारन्ट' तथा 'क्रान्तकारिणी', पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'इन्द्रधनुष', 'दोजख की आग', 'रेशमी काल कोठरी' तथा 'निर्लज्ज' आदि कहानियों में उपर्युक्त पृष्ठभूमि में लेखकों का यथार्थ को स्वीकार करने का आग्रह स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है।

प्रेमचन्द युगीन कहानी में यथार्थवादी तत्वों के विश्लेषण के संदर्भ में यहाँ पर यह संकेत करना आवश्यक है कि इनमें ऐतिहासिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के रूप विद्यमान हैं। और ऐतिहासिक यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द लिखित 'रानी सारन्धा', 'शतरंज के खिलाड़ी' तथा 'राजा हरदौल', जयशंकर प्रसाद लिखित 'गुण्डा' तथा 'पुरस्कार', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'वीर वधू' तथा 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', शिवपूजन सहाय लिखित 'मुण्डमाल',' सुदर्शन' लिखित 'दो मित्र' तथा पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'देशद्रोह' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। सामाजिक, यथार्थवाद की दृष्टि से प्रेमचन्द लिखित 'सवा सेर गेहूँ' तथा 'कफन', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'मधुआ', उषादेवी मित्रा लिखित 'जीवन का एक दिन', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'सखी' तथा पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'रेशमी' आदि कहानियाँ उल्लिखित की जा सकती हैं। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की दृष्टि से प्रेमचन्द लिखित 'मनोवृत्ति' तथा 'कफन', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'चूड़ीवाली', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'रक्षा बन्धन', 'सुदर्शन' लिखित 'हार की जीत', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'पत्थर में अंकुर' तथा पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'चाँदनी' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की दृष्टि से प्रेमचन्द लिखित 'बड़े घर की बेटी' तथा 'नमक का दरोगा', 'सुदर्शन' लिखित 'संन्यासी', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'प्रबुद्ध' तथा विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'ताई' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्द युगीन कहानी में यथार्थवाद के उपकरणगत अध्ययन से यह ज्ञान होता है कि इस युग के कहानीकारों ने कथावस्तु के जिन प्रकारों का उपयोग अपनी कहानियों में किया है वे कल्पित न होकर जीवन के यथार्थ पहलुओं से सम्बन्धित हैं। उनका आधार सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक तथा धार्मिक सूत्र है जो लेखकों के यथार्थपरक दृष्टिकोण का सूचक है। पात्रगत यथार्थ की दृष्टि से भी इस युग के कहानी साहित्य का महत्व है क्योंकि इनमें आयोजित पात्र कल्पनालोक की उपज न होकर समाज के विभिन्न वर्गों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। कथोपकथन की दृष्टि से इस युग की कहानियों में व्यावहारिकता अपेक्षाकृत अधिक दिखाई देती है। भाषा की दृष्टि से भी ये कहानियाँ जनजीवन के निकट प्रतीत होती हैं और इनमें दिन प्रतिदिन के प्रयोग में आने वाली बोलचाल की स्वाभाविक भाषा का प्रयोग हुआ है। शैली तत्व की दृष्टि से भी नाटकीयता और बनावटीपन इस युग की कहानियों में कम मिलता है। इनके स्थान पर मनोवैज्ञानिकता और स्वाभाविकता दृष्टिगत होती है। इस युग की कहानियों में पिछले काल की भाँति नाटकीय और कल्पित वातावरण न होकर सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और धार्मिक तथा आँचलिक वातावरण के यथार्थ चित्र भी मिलते हैं। इस युग के कहानीकारों में कहानी के उद्देश्य तत्व की दृष्टि से भी अपेक्षाकृत अधिक सजगता लक्षित होती है। उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन न होकर मानव जीवन की व्याख्या करना है। इस प्रकार से प्रेमचन्द युग में लिखी गई हिन्दी कहानी में विगत युग की तुलना में यथार्थ के प्रति लेखकों का बढ़ता हुआ आग्रह स्पष्टतः दृष्टिगत होता है जो इस युग को हिन्दी कहानी में यथार्थवाद की परम्परा की एक आधारभूत कड़ी सिद्ध करता है।

———

अध्याय ४

# प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद

## ( क ) युगीन पृष्ठभूमि

हिन्दी कहानी के इतिहास का तीसरा विकास-काल प्रेमचन्दोत्तर युग है। इसकी अवधि प्रेमचन्द युग की समाप्ति से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह काल-खंड भी हमारे देश के इतिहास में विशेष महत्व रखता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए किये गये अनेक आन्दोलनों के साथ ही इस युग में बंगाल का दुर्भिक्ष भी पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध इस युग की सबसे प्रमुख घटना है। इस काल में हिन्दी कहानी साहित्य के क्षेत्र में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्तियों का विकास हुआ। इन प्रवृत्तियों के साथ ही साथ बौद्धिक प्रवृत्ति का विकास भी इसी युग की देन है। द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न समस्याओं से देश में सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना उत्पन्न हुई। स्वतन्त्रता के लिए क्रान्ति तथा सामाजिक जीवन में नवीन परिवर्तन इस युग की कहानियों में परिलक्षित होते हैं। इस रूप में प्रेमचन्दोत्तर युग का कहानी साहित्य विषय-वैविध्य की दृष्टि से विस्तारयुक्त है। सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, मनोविश्लेषणात्मक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक आदि विषयों पर कहानी रचना करते हुए इस काल के कहानीकारों ने जीवन के सभी पक्षों से सम्बन्धित समस्याओं का समावेश अपनी कृतियों में किया है। इस युग में जहाँ एक ओर कुछ कहानीकारों ने प्रेमचन्दयुगीन आदर्शवादी परम्परा का अनुमोदन किया वहाँ दूसरी ओर अनेक लेखकों ने सामाजिक यथार्थ के कटु रूपों का चित्रण किया। सांस्कृतिक क्षेत्र में भी इस युग में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, क्योंकि वैज्ञानिक उन्नति और पाश्चात्य प्रभाव ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को व्यापक रूप से प्रभावित किया। सामाजिक क्षेत्र में रूढ़िवादिता के राष्ट्रीय स्तर पर विरोध के साथ ही अन्य अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। मध्यवर्गीय समाज में नवीन सामाजिक चेतना का जागरण हुआ। समाज के कुछ वर्गों में अब भी अन्धविश्वास, अशिक्षा, अज्ञान और आडम्बरप्रियता बनी रही। नारी समाज में आधुनिक जीवन के प्रति स्वीकृति की भावना जन्मी। उसमें धीरे-धीरे पर्दे की प्रथा भी समाप्त हुई और वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के कंधे से कंधा भिड़ा कर आगे बढ़ी। औद्योगिक क्रान्ति और पूँजीवादी

व्यवस्था के फलस्वरूप श्रमिक वर्ग का शोषण इस युग में भी होता रहा। यद्यपि उसमें संगठन की शक्ति भी आई। राजनैतिक क्षेत्र में सबसे अधिक गतिशीलता रही और लोग किसी भी कीमत पर आजादी को हासिल करने के लिए कटिबद्ध हो गये। नेताजी द्वारा आजाद हिंद फौज का संगठन भी इसी दिशा में किया गया एक महत्वपूर्ण प्रयत्न था। साहित्यिक क्षेत्र में इन सभी परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। राष्ट्र-निर्माण के इस यज्ञ में साहित्यकार भी पीछे नहीं रहे और उन्होंने जनता की सोई हुई भावनाओं को जगाया। यहाँ पर इस युग की इसी पृष्ठभूमि का विविध क्षेत्रीय परिचय संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

**सांस्कृतिक पृष्ठभूमि**—आलोच्य युग में सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक नये परिवर्तन होने के साथ-साथ संस्कृति विषयक जनता की धारणा भी बदली। अँग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप संस्कृति का एक नया रूप भी जन्मा। इसके साथ ही प्रेमचन्दोत्तर युग में राजनैतिक आन्दोलन भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन ब्रिटिश सत्ता के लिए चुनौती थी। आजाद हिन्द फौज तथा नाविक विद्रोह आदि राष्ट्र की मुक्ति के लिए कटिबद्ध थे। इनके फलस्वरूप १५ अगस्त १९४७ को देश स्वतन्त्र हो गया। आधुनिक भारत की संस्कृति के निर्माण में इस राष्ट्रीय भावना ने महत्वपूर्ण योग दिया। सामान्यतः सांस्कृतिक जागृति से ही राष्ट्रीय जागृति होती है। इसके लिए सांस्कृतिक जागरण भी आवश्यक है। जब तक जनता में अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान की भावना नहीं होगी, तब तक अपने राष्ट्र को दूसरों से स्वाधीन कराने की भी प्रबल इच्छा नहीं हो सकती। इस दृष्टिकोण से राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए सांस्कृतिक चेतना का जागरण भी आवश्यक है। परतन्त्र देश की संस्कृति सदैव मृतक के समान दबी पड़ी रहती है। वहाँ राष्ट्र, समाज, संस्कृति आदि सभी दासता के सूत्र में बंधे हुए रहते हैं। यही कारण है कि भारत पहले योरोपीय संस्कृति का प्रतीक बनता जा रहा था परन्तु जैसे-जैसे राष्ट्रीय आन्दोलन बढ़े वैसे ही वैसे योरोपीय संस्कृति के प्रति तिरस्कार का भाव भी तीव्र गति से बढ़ा और अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति आदर का भाव बढ़ने लगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत केवल प्राचीन संस्कृति के प्रति मोह ही नहीं बल्कि वह विश्व संस्कृति के निर्माण के सपने भी देखने लगा।

आधुनिक भारतीय संस्कृति की रचना में विज्ञान का महत्वपूर्ण योग रहा है। इसने न केवल भौतिक सभ्यता के उपकरणों का निर्माण किया वरन् चिन्तन पद्धति में भी परिवर्तन ला दिया। मध्य युग में अन्धविश्वास ही सर्वोपरि था। इस युग तक आते आते तर्क बुद्धि का सहारा लिया जाने लगा। वैज्ञानिक चिन्तन पद्धति के होने से रूढ़ियों, अन्धविश्वासों पर से मानव का विश्वास हटा तथा उसने धर्म को स्वस्थ व बुद्धिग्राह्य बनाया। इसका परिणाम यह हुआ कि

सती प्रथा तथा बाल हत्या आदि क्रूरताओं का अन्त हुआ और मानववादी दृष्टिकोण का प्रचार हुआ। बर्टेन्ड रसेल जैसे चिन्तकों का विचार है कि वैज्ञानिक युग के शुरू होने से पहले विश्व में ईश्वर ही सर्वशक्तिमान समझा जाता था और ईश्वर को प्रसन्न रखना ही प्राकृतिक दुर्घटनाओं से बचने का एकमात्र उपाय समझा जाता था। इसीलिए ईश्वर को प्रसन्न रखने के लिए यह आवश्यक माना जाता था कि इन्सान अपनी कमजोरियों को मन्जूर करे और ईश्वर पर पूर्ण विश्वास करे। प्राचीन युग की भाँति ही आधुनिक युग में अकाल, महामारी आदि को ईश्वर प्रदत्त न मान कर उसके लिए अंग्रेजों की शोषण नीति को जिम्मेदार माना गया है। इस दृष्टि से उस युग में मानवकृत कार्य-व्यापार को प्रधानता मिली तथा ईश्वर व धर्म को गौण माना जाने लगा।

आधुनिक भारतीय संस्कृति में विज्ञान, औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था, राष्ट्रीयता तथा जनतन्त्रीय भावनाएँ निहित हैं। वैज्ञानिक शिक्षा के फलस्वरूप मशीनों का आविष्कार भी आधुनिक युग में ही हुआ जिससे औद्योगिक व्यवस्था में वृद्धि हुई तथा फिर इसी व्यवस्था ने धीरे-धीरे राष्ट्रीय आन्दोलन को जन्म दिया, क्योंकि अंग्रेजों द्वारा देश का आर्थिक शोषण किया जाता था। इस आन्दोलन में जनता का भी सक्रिय भाग रहा। इस प्रकार इस आन्दोलन का आधार जन-तन्त्रीय रहा। आगे इस आन्दोलन का विकास नहीं हो पाया। अंग्रेज अपने देश के हित के लिए हमारे राष्ट्र का बलिदान करने में भी हिचकते नहीं थे। सरकार ने अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए समय-समय पर अनेक औद्योगिक संस्थानों से समझौता अपनी इच्छानुसार किया। इस समय जनता में बेकारी की समस्या कठिन रूप धारण कर चुकी थी। विशेष रूप से मध्यवर्गीय शिक्षित समाज की दशा तो और भी शोचनीय हो गई। इसके फलस्वरूप चारों ओर अशांति और निराशा का वातावरण छा गया। मध्य वर्ग में अशांति बढ़ने का कारण क्रिस्टोफर काडवेल के अनुसार यह है कि सामान्य अशिक्षित जनता की भाँति उसका भी शोषण होने लगा। सामान्य रूप से उसका ध्येय होता है पूँजीपति वर्ग की निकटता प्राप्त करना जिसे वह कभी नहीं पा सकता। इसके विपरीत दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग के समीप होते हुए भी वह उसे घृणा की दृष्टि से देखता है और उसे अपने बराबर का स्थान देने में संकोच करता है।

**सामाजिक पृष्ठभूमि**—प्रेमचन्दोत्तर युग सामाजिक परिवर्तनशीलता की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। इस समय समाज में संगठन की भावना के कारण नई मान्यताएँ जन्म ले रही थीं। संयुक्त परिवार, सामाजिक संगठन आदि मूल रूप से सामाजिक मान्यताओं पर ही आधारित थे। उन्नीसवीं शताब्दी से इस व्यवस्था में परिवर्तन होना आरम्भ हो गया था। जैसा कि विगत अध्याय में संकेत किया जा चुका है, इस युग में अछूत प्रथा तथा नारी समस्याओं

को दूर करने के लिए विशेष प्रयत्न हुए परन्तु संयुक्त परिवार की प्रथा फिर भी बनी ही रही। सामाजिक संगठन के परिवर्तन के लिए आर्थिक परिवर्तन होना आवश्यक था। प्राचीन भारत में चार वर्ण थे लेकिन कालान्तर में अनेक कारणों से पंचम वर्ण अछूतों का हो गया जिन्हें सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा गया। शुरू में समाज में प्रत्येक व्यक्ति को जन्म और जाति के अनुसार ही कार्य करना पड़ता था। सुविधा के अनुसार शनैः शनैः जातियाँ उपजातियों में विभाजित होती गयीं और समय के अनुसार ही इस युग तक आते-आते गाँव व शहर के लोगों का संपर्क बढ़ा। युग परिवर्तन के साथ ही होटलों आदि में भोजन की व्यवस्था हुई। स्वाधीनता आन्दोलन व जनतन्त्रीय आधार पर बल देने से जाति व्यवस्था में शिथिलता आई। स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा महात्मा गांधी ने उपजातियों का विरोध किया। लेकिन इस जाति व्यवस्था का समाधान सरल कार्य नहीं था। शिक्षित मध्यम वर्ग में यह कटुता अधिक दिखाई पड़ती है। उसका मुख्य कारण इस वर्ग में बढ़ती हुई बेकारी की समस्या थी। इस आर्थिक विषमता के साथ ही साथ जाति भेद व्यवस्था भी बढ़ती गई।

यह समय स्वतन्त्र रियासतों और जमींदारों के लिए भी पर्याप्त उत्थान पतन का रहा है। स्थूल रूप से ये दोनों ही वर्ग समान हितों के कारण सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में दृष्टिकोणगत एकता रखते हैं। अंग्रेजों की गलत नीति ने जमींदार वर्ग को जन्म दिया। इस वर्ग का कार्य अन्य वर्गों का शोषण करना था। यही कारण है कि ब्रिटिश भारत की जनता की अपेक्षा रियासती जनता तथा रैय्यतवारी के किसानों की अपेक्षा जमींदारी व्यवस्था के किसान अधिक दुखी थे और उनमें नारी की दशा भी शोचनीय थी। श्री ए० आर० देसाई का मत है कि जमींदार वर्ग अधिकतर प्रगतिशील सामाजिक सुधारों का विरोध करता था। सामन्त वर्ग ने रूढ़ियों को प्रोत्साहन दिया तथा स्वाधीनता के विचारों का खण्डन किया। इसके लिए उसने उन्नीसवीं शताब्दी से ही प्रयत्न किया। यों पूँजीपति वर्ग आधुनिक आर्थिक व्यवस्था की ही देन माना जाता है। सन् १८५५ ई० के पश्चात् भारतीय पूँजीपतियों ने अंग्रेजी पूँजीपतियों से समझौता किया। इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि भारत में औद्योगीकरण राष्ट्रीय हित में कभी न हो सके और सदैव ही भारत ब्रिटिश आयात पर ही निर्भर रहे। देश में उसी वर्ग के द्वारा ही वैधानिक शिक्षा का भी आविष्कार हुआ। अतः भारत को आधुनिक बनाने में इसका पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। इस रूप में यह वर्ग एक ओर जनतन्त्रीय विचारों का समर्थक होकर भी वर्गगत स्वार्थ की भावना से प्रेरित है।

पूर्व-युगीन समाज की भाँति इस समय भी नारी की समस्या मुख्य बनी रही। हिन्दी के अनेक कहानीकारों ने नारी समस्या को उठाकर उसके अनेक

समाधान भी प्रस्तुत किये। इस युग की नारी की विचित्र स्थिति थी। एक ओर वह पूर्व की नारी थी तथा दूसरी ओर पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित थी। इसी कारण इस युग के कहानीकारों ने दो प्रकार की नारियों का चित्रण किया है। कुछ कहानीकारों की नारियाँ केवल घर की चारदीवारी में ही रहती हैं। इनका कहीं कहीं आध्यात्मिक व रूढ़िवादी दृष्टिकोण भी प्रस्तुत हुआ है। दूसरी ओर कुछ लेखकों ने पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित स्वच्छंद नारी का चित्रण किया है। इस युग में मध्य वर्ग की स्थिति शोचनीय थी जो कि स्वेच्छापूर्वक कुछ नहीं कर सकने में असमर्थ था। सामाजिक दोषों का निवारण करने के लिए सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हो चुकी थी तथा रूढ़ियाँ मिटती जा रही थीं। साथ ही इस समय राष्ट्रीय आन्दोलन व राजनीतिक स्वाधीनता के साथ-साथ सामाजिक जनतन्त्र की भावना भी बलवती होती जा रही थी। नारी से सम्बन्धित समस्याओं में वैश्या समस्या, दहेज प्रथा तथा शिक्षा आदि समस्याओं को प्राय: प्रत्येक कहानीकार ने अपनी रचनाओं में उठाया है। सामाजिक समस्याओं के प्रति इस युग के कहानीकार सजग दिखाई पड़ते हैं। इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि यद्यपि विगत युग से सामाजिक चेतना का जागरण हो चुका था, परन्तु इस युग में वह और भी व्यापक हो गई।

आर्थिक पृष्ठभूमि—प्रेमचन्दोत्तर युग की कालावधि में देश में आर्थिक क्षेत्रों में अनिश्चितता तथा अस्थिरता परिलक्षित होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण उत्पादन कम हो गया। इसके फलस्वरूप कृषकों की दयनीय दशा हो गई। वह अब महाजन वर्ग पर मूलतः निर्भर रहने लगा। आगे चलकर इसी कारण से कृषक मजदूर बने और महाजन स्वामी बने। दूसरी ओर जमींदार भी जनता के प्रति अपने दायित्व को भूले हुए थे। उनके कारिन्दे जनता पर अत्याचार करते और जनता इस दोहरे शोषण से पिसती गयी। इसके फलस्वरूप उत्पादन शक्ति कम होने लगी। अब भारत खाद्यान्न के लिए भी विदेशों पर निर्भर रहने लगा। जैसा कि पूर्व अध्याय में संकेत किया जा चुका है, भारतवर्ष कृषि प्रधान देश होने के कारण यहाँ की अधिकतर जनता कृषि पर ही आश्रित रहती थी। इस युग में भी कृषकों की दयनीय दशा ही रही। साहूकार वर्ग के कर्ज, जमींदार वर्ग के भारी लगान, आवश्यक वस्तुओं पर सरकारी कर में वृद्धि तथा इसके अतिरिक्त निरन्तर अकाल पड़ने से उसकी दशा बराबर गिरती गई। अंग्रेजी शासन काल में किसान अकालों का भी शिकार रहा। सन् १९४३ ई० में बङ्गाल में भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा। द्वितीय विश्व महायुद्ध में बर्मा पर जापान का आधिपत्य होने से चावल का आयात भारत में बन्द हो गया। भारत में पचास लाख व्यक्ति उपर्युक्त कारणों से मृत्यु के ग्रास बने। सन् १९४३ का अकाल भी अंग्रेजी सरकार की आर्थिक नीति का ही परिणाम था। राष्ट्रीय सरकार ने स्वतन्त्रता प्राप्ति

के पश्चात् जमीदारी का अन्त कर दिया जो किसानों की हीन दशा में सुधार की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कदम था।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, प्रेमचन्दोत्तर काल में आर्थिक क्षेत्र में देशव्यापी अस्थिरता बनी रही। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों तथा राष्ट्रीय समस्याओं के फलस्वरूप किसी भी क्षेत्र में विशेष सुधार न हो सका। जनता के प्रत्येक वर्ग में असंतोष बढ़ता गया। द्वितीय विश्व युद्ध के कारण आर्थिक व्यवस्था सन्तुलित न रह सकी और भारत के प्रधान जन व्यवसाय कृषि तक के क्षेत्र में संकट उत्पन्न हो गया। जमींदारी शोषण, सरकारी कर व्यवस्था तथा दैवी प्रकोप के कारण जो दुर्भिक्ष आदि पड़े, उनसे स्थिति और भी शोचनीय हो गयी। उद्योग धन्धों के क्षेत्र में पूँजीपति नीति की प्रधानता होने के कारण श्रमिकों का शोषण होता रहा और मध्य वर्ग के सामने बेरोजगारी की समस्या बनी रही। इस युग के प्रमुख कहानीकारों ने इस शोचनीय आर्थिक स्थिति के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं का अपनी रचनाओं में विस्तार से विश्लेषण किया है, जिनका उल्लेख आगे यथास्थान किया जायगा।

राजनैतिक पृष्ठभूमि—प्रेमचन्दोत्तर युग की राजनीतिक परिस्थितियाँ देश के लिए विशेष महत्व रखती हैं। सन् १६३५ का भारतीय विधान, सन् १६४० का अगस्त प्रस्ताव, सन् १६४२ में क्रिप्स मिशन तथा सन् १६४५ का कैबिनट मिशन आदि के रूप में ब्रिटिश कूटनीति जारी रही। भारतीय नेताओं ने इन सन्धियों का स्पष्टीकरण करते हुए बताया है कि इन सन्धि-पत्रों की पहली धारा में पूर्ण स्वतन्त्रता को स्वीकार किया गया है और अगली धाराओं में उस पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। इस समय एक ओर स्वायत्त शासन प्रान्तों को प्राप्त हुआ तो दूसरी ओर गवर्नर को वीटो अधिकार भी प्राप्त हुए। ब्रिटिश सरकार राष्ट्रीय कांग्रेस बनने के पक्ष में नहीं थी, यद्यपि द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटेन तथा अमेरिका अटलांटिक चार्टर की घोषणा थी कि प्रत्येक देश स्वतंत्र सरकार चुन सकता है।

प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेजों ने अपनी कुटिल नीति से भारत को भी सम्मिलित कर लिया था जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली थी। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध तक भारत स्वयं जागरूक हो गया था। उसने ब्रिटिश सरकार के सामने कुछ शर्तें रखीं जैसे युद्ध की स्थिति में भी भारत स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य चलाए तभी भारत ब्रिटेन की सहायता करेगा। इस माँग से सरकार असन्तुष्ट हो गयी तथा सभी अधिकार भारत की प्रान्तीय सरकारों से छीन कर ग्यारह मिनट में ही वाइसराय को दे दिए गए। पंडित जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गान्धी तथा सुभाषचन्द्र बोस आदि ने इस दिशा में अवश्य सक्रिय कदम उठाए। सन् १६४२ में गान्धी जी

के नेतृत्व में एक प्रस्ताव हुआ। डा० पट्टाभि सीतारमैया के शब्दों में 'इस शासन का स्थायित्व भारत की प्रतिष्ठा को घटाता तथा दुर्बल बनाता है और अपनी रक्षा करने तथा विश्व स्वतन्त्र्य के आदर्श की पूर्ति में सहयोग देने की उसकी शक्ति में क्रमिक ह्रास उत्पन्न करता है।'[1] इस प्रस्ताव में अन्य एशियाई देशों की स्वतन्त्रता की माँग की गयी थी। इस प्रस्ताव के पारित होने से गाँधी जी आदि नेतागण जेल गये। इससे जनता क्षुब्ध हो उठी तथा आन्दोलन हुए। यह आन्दोलन स्वतन्त्रता आन्दोलन की सबसे बड़ी जनक्रान्ति थी। भारत व पाकिस्तान के विभाजन की समस्या भी इसी समय उत्पन्न हुई। इसका कारण अल्पसंख्यकों की स्वतन्त्रता बताया गया परन्तु वास्तव में सम्पूर्ण भारत में ही मुस्लिम बसे थे जो अल्पसंख्यक थे। इसलिए विभाजन का आधार गलत था। इस युग में केवल राजनीतिज्ञ ही सजग नहीं थे, वरन् साहित्यकार भी बहुत सजग थे। इस युग की कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें महत्वपूर्ण राजनैतिक समस्या के साथ ही साहित्यकारों ने समाज-सुधार विषयक आन्दोलनों का भी चित्रण किया है। सामाजिक प्रश्नों, विशेष रूप से नारी समस्या, अछूत समस्या, साम्प्रदायिक समस्या तथा राष्ट्रीय समस्याओं आदि पर विस्तार से विचार हुआ है। यह युग साम्राज्यवादी शासन व राष्ट्रीय आन्दोलन के संघर्ष का युग है। जमींदार व किसानों का संघर्ष, पूँजीपति एवं मजदूर वर्ग का संघर्ष आदि भी होता रहा।

साहित्यिक पृष्ठभूमि—प्रेमचन्दोत्तर काल में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक जागरूकता लक्षित होती है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह युग राष्ट्रीय जागरण का समय था और इसमें भारत की स्वन्त्रता प्राप्ति के लिए किये जाने वाले आन्दोलनों में तीव्रता आ गयी थी। इसी काल में द्वितीय विश्व युद्ध तथा बंगाल का दुर्भिक्ष आदि घटनाएँ भी हुई थीं जिन्होंने साहित्यिक रचना के स्वरूप को प्रभावित किया था। हिन्दी काव्य के क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', गोपालसिंह नेपाली, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आदि कवियों ने राष्ट्रीय चेतना का आवाहन करते हुए काव्य रचना की। इस काल के कवियों ने देश की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए अनेक क्रान्तिकारी भावना-प्रधान रचनाएँ की हैं। उनकी कविताओं में मानवतावादी विचारधारा का पोषण मिलता है।

राष्ट्रीय चेतना प्रधान काव्य की प्रवृत्ति के समानान्तर ही प्रेमचन्दोत्तर युग में छायावादी कवि भी क्रियाशील रहें। एक विद्रोह और प्रतिक्रिया के फलस्वरूप छायावाद का आविर्भाव हुआ था। छायावाद के प्रमुख पोषकों में

---

१ 'कांग्रेस का इतिहास', डा० पट्टाभि सीतारमैया, पृ० ५०४

जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा ने प्रेम भावना, प्रकृति चित्रण, अध्यात्मपरक और यथार्थ के आग्रह से युक्त काव्य की सृष्टि की। भावनात्मकता, वैयक्तिकता, वेदना निराशा आदि के चित्रण भी उनकी रचनाओं में हुआ। लगभग उसी काल में प्रगतिवादी विचारधारा का आविर्भाव व विकास भी हुआ। स्वयं सुमित्रानन्दन पन्त ने इस विचाधारा को युग के यथार्थ की माँग बताया। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि 'इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार ग्रहण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा आकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा और काव्य की स्वप्न जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गयी हैं। अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।.......'[1]

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रगतिवाद का आविर्भाव सुयोजित रूप से सन् १६३६ में प्रगतिवाद लेखक संघ के सर्वप्रथम अधिवेशन से माना जाता है जब मुन्शी प्रेमचन्द ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कला और साहित्य की सामाजिक उपयोगिता पर बल दिया था। लगभग इसी समय श्री शिवदान सिंह चौहान ने भी भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता बताई।[2] प्रगतिशील विचारकों में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, डा० रांगेय राघव, डा० शिवमंगलसिंह 'सुमन', रामधारीसिंह 'दिनकर', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' तथा डा० महेन्द्र भटनागर आदि का सहयोग प्राप्त हुआ। इन कवियों ने समकालीन सामाजिक, राजनैतिक, और धार्मिक सम्बन्धी विषयों पर साहित्यिक रचना करके उममें जन-भावना का चित्रण किया।

प्रेमचन्दोत्तर साहित्य में काव्य क्षेत्रीय पृष्ठभूमि में प्रयोगवाद का भी उल्लेख किया जा सकता है। इसका आविर्भाव द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हुआ। इस अवधारणा के कवियों ने विषय वस्तु के अतिरिक्त प्रतीक योजना, छन्द विधान आदि से सम्बन्धित नवीन प्रयोग किए। इस विचारधारा के प्रथम काव्य संग्रह 'तार सप्तक' में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', गिरिजाकुमार माथुर, डा० रामविलास शर्मा, नेमिचन्द्र जैन, गजानन्द माधव मुक्तिबोध, डा० प्रभाकर माचवे तथा भारतभूषण अग्रवाल आदि कवियों की रचनाएँ संग्रहीत हैं।

---

१. 'रूपाभ' सम्पादकीय, श्री सुमित्रानन्दन पन्त, प्रवेशांक, सन १६३८.

२. द्रष्टव्य : 'विशाल भारत', मार्च सन १६३७, श्री शिवदान सिंह चौहान लिखित 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' शीर्षक निबन्ध।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन अन्य काव्य प्रवृत्तियों में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जानकी वल्लभ शास्त्री, डा० शम्भूनाथ सिंह, डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण', डा० नामवर सिंह, डा० जगदीश गुप्त तथा डा० रामसिंह आदि के नाम उल्लिखित किए जा सकते हैं।

गद्य साहित्य के क्षेत्र में उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी तथा निबन्ध आदि का प्रेमचन्दोत्तर काल में समुचित विकास हुआ था। उषा देवी मित्रा, उदयशंकर भट्ट, इलाचन्द जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्र कुमार तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि ने ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक, सामाजिक, पौराणिक और धार्मिक विषयों पर उपन्यास तथा कहानियों की रचना की। निबन्ध साहित्य के क्षेत्र में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, शान्तिप्रिय द्विवेदी, डा० नगेन्द्र, डा० सत्येन्द्र, डा० रामविलास शर्मा, डा० विनयमोहन शर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, डा० भगवत शरण उपाध्याय, आदि ने रचनात्मक क्रियाशीलता का परिचय दिया है। समीक्षा के क्षेत्र में भी आधुनिक समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। नाटक एवं एकांकी के क्षेत्र में हरिकृष्ण 'प्रेमी', गोविन्दबल्लभ पन्त, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', जगदीशचन्द्र माथुर, सेठ गोविन्ददास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार से, प्रेमचन्दोत्तर युग के गद्य और पद्य साहित्य का प्रसार इस युग के लेखकों की चतुर्मुखी जागरूकता का परिचायक है।

## (ख) प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रमुख कहानीकार

हिन्दी कहानी के इतिहास में तीसरे विकास काल के रूप में प्रेमचन्दोत्तर युग का महत्व है। इस काल में इलाचन्द जोशी, होमवती देवी, भगवतीचरण वर्मा, विनोद शंकर व्यास, यशपाल, जैनेन्द्रकुमार, विश्वम्भरनाथ त्रिज्जा, वाचस्पति पाठक, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, रामवृक्ष बेनीपुरी, रघुबीर सिंह, कमलादेवी चौधरी, मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', महादेवी वर्मा, चंडीप्रसाद 'हृदयेश', गोविन्द बल्लभ पन्त तथा रामप्रसाद घिल्डयाल 'पहाड़ी' आदि लेखकों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कहानीकारों ने इस युग की प्रमुख कहानी प्रवृत्तियों के विकास में योग दिया है। इनमें से कुछ ने पूर्वयुगीन विचारधारा का अनुगमन किया है तथा कुछ ने नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इनकी कहानियाँ वैचारिकता तथा कलात्मकता की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण हैं ही, साथ ही यथार्थ-परकता की दृष्टि से भी इनका महत्व है। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक कहानी प्रवृत्तियों में इसे

स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यहाँ पर प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रतिनिधि कहानीकारों और उनकी प्रमुख कृतियों से सम्बन्धित संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

**इलाचन्द जोशी**—श्री इलाचन्द जोशी का जन्म सन् १९०२ में हुआ था। इनकी प्रतिभा का परिचय कहानी के अतिरिक्त उपन्यास, निबन्ध तथा आलोचना के क्षेत्रों में भी मिलता है। इसके अतिरिक्त पत्रकारिता के क्षेत्र में भी इन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया है। जोशी जी का नाम मनोविश्लेषणात्मक कहानीकारों में विशेष महत्वपूर्ण है। सन् १९३८ में प्रकाशित 'धूमरेखा', सन् १९४२ में प्रकाशित 'दीवाली और होली', सन् १९४३ में प्रकाशित 'रोमान्टिक छाया', सन् १९४५ में प्रकाशित 'आहुति', सन् १९४८ में प्रकाशित 'खंडहर की आत्माएँ', सन् १९५१ में प्रकाशित 'डायरी के नीरस पृष्ठ' तथा सन् १९५७ में प्रकाशित 'कटीले फूल लजीले कांटे' आदि इनके उल्लेखनीय कहानी-संग्रह हैं। इनकी कहानियों में मध्यवर्गीय समाज की ह्रासोन्मुखी स्थिति का चित्रण हुआ है। इनकी कहानियों में मानव के अहं, कुण्ठाओं और मानसिक विकृतियों का भी चित्रण हुआ है। 'प्रेम और घृणा', 'रोमान्टिक छाया', 'क्रय विक्रय', 'आत्महत्या का खून', 'खंडहर की आत्माएँ', 'पागल की सफाई', 'अनाश्रित' तथा 'चिट्ठी पत्री' जैसी कहानियों में मनुष्य के मनोवेगों व मानसिक कार्यकलाप का चित्रण हुआ है। 'एकांकी', 'मैं', 'क्रान्तिकारिणी महिला', 'होली और दीवाली', 'परित्यक्ता', 'यज्ञ की आहुति', 'विद्रोह' तथा 'डायरी के नीरस पृष्ठ' जैसी कहानियों में लेखक के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

**भगवतीचरण वर्मा**—श्री भगवतीचरण वर्मा का जन्म सन् १९०३ में हुआ था। इन्होंने अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय कहानी के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक, कविता आदि के क्षेत्रों में भी दिया है। इनके प्रतिनिधि कहानी संग्रहों में 'इन्स्टालमेंट', 'दो बाँके', 'राख और चिनगारी' तथा 'खिलते फूल' आदि प्रमुख हैं। वर्मा जी ने इस ओर संकेत किया है कि समाज में व्याप्त रूढ़िवादी भावना और मिथ्या अहं भावना, समाज के स्वस्थ विकास के लिए बाधक हैं। इसके लिए स्वस्थ चेतना का जागरण आवश्यक है। लेखक ने मनोवैज्ञानिक आधार पर यह बताया है कि अहं भावना एक ऐसी अज्ञात शक्ति है जो मानव की चेतना व जागरण में विशेष रूप से क्रियाशील रहती है। इसीलिए उनकी कहनियों में सामाजिक व नैतिक मान्यताओं के प्रति विद्रोहात्मक भावना निहित दृष्टिगत होती है। इन्होंने इस ओर संकेत किया है कि जब तक सामाजिक रूढ़ियाँ, कुरीतियाँ, अन्धविश्वास, मिथ्या प्रदर्शन आदि दोष दूर नहीं होंगे तब तक समाज का सुधार नहीं हो सकता है। इन्होंने नारी जीवन से सम्बन्धित कहानियों में भी सामाजिक उद्बोधन के संकेत दिये हैं। 'प्रायश्चित', 'विवशता', 'राख और चिनगारी', 'दो बाँके', 'दो पहलू', 'पराजय', 'कायरता' आदि

प्रमुख कहानियाँ हैं। इनमें लेखक का समाज सुधारवादी दृष्टिकोण व्यंग्यात्मक रूप में दृष्टिगत होता है।

यशपाल—श्री यशपाल का जन्म सन् १६०३ में हुआ था। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास तथा निबन्ध आदि के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने मासिक पत्रिका 'विप्लव' का संपादन कार्य भी किया। सन् १६४३ में प्रकाशित 'ज्ञानदान' तथा 'अभिशप्त' सन् १६४५ में प्रकाशित 'तर्क का तूफान', सन् १६४६ में प्रकाशित 'भस्मावृत्त चिनगारी', सन् १६४८ में प्रकाशित 'वह दुनियाँ', सन् १६५१ में प्रकाशित 'फूलों का कुर्ता', सन् १६५० में प्रकाशित 'धर्मयुद्ध', सन् १६५१ में प्रकाशित 'उत्तराधिकारी' तथा 'चित्र का शीर्षक', सन् १६५४ में 'प्रकाशित' तुम ने क्यों कहा मैं सुन्दर हूँ, तथा सन् १६५५ में प्रकाशित 'उत्तमी की माँ' आदि प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। लेखक ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया था। इस कारण इनकी कहानियों में भी सशस्त्र क्रान्ति की समस्याएँ दृष्टिगत होती हैं। 'पर्दा', 'दुःख', 'वैष्णवी', 'काले का कार्यवाही', 'सोमा का साहस', 'फलित ज्योतिष' तथा 'चन्दन महाशय' आदि कहानियों में मानव जीवन के विविधपक्षीय चित्रण का उद्घाटन हुआ है। 'निर्वासिता' जैसी कहानी में सामाजिक नैतिकता का चित्रण हुआ है। 'पाँव तले की डाल', तथा 'कुल की चोरी' आदि सोद्देश्य सामाजिक कहानियाँ हैं। 'कर्म फल', 'अभिशप्त', 'चार आने' आदि कहानियों में आर्थिक विषमता के दोषों की अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार 'आदमी का बच्चा' शीर्षक कहानी में आर्थिक विषमता कटुता के साथ परिलक्षित हुई है। 'पराया सुख', 'धर्म रक्षा' तथा 'प्रतिष्ठा का बोझ' कहानी में यथार्थता के साथ अश्लीलता की झांकी भी प्रस्तुत होती है। इनकी अधिकांश कहानियों में सामाजिक विषमता की झांकी प्रस्तुत हुई है।

जैनेन्द्र कुमार—श्री जैनेन्द्रकुमार का जन्म सन् १६०५ में हुआ था। इनकी प्रतिभा का परिचय कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास साहित्य में मिलता है। सन् १६२६ में प्रकाशित 'फांसी', सन् १६३० में प्रकाशित 'वातायन', सन् १६३३ में प्रकाशित 'नीलम देश की राजकन्या', सन् १६३४ में प्रकाशित 'एक रात', सन् १६३५ में प्रकाशित 'दो चिड़िया', सन् १६४१ में प्रकाशित 'पाजेब' तथा सन् १६४६ में प्रकाशित 'जयसन्धि' आदि इनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त अन्य समस्त कहानियाँ 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' शीर्षक से पृथक् रूप में अनेक भागों में भी प्रकाशित हुई हैं। इनकी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन, मनोवैज्ञानिक समस्याओं, राजनैतिक क्षेत्रीय समस्याओं तथा सामाजिक विडम्बनाओं से सम्बन्धित विषयों का विश्लेषण हुआ है। जैनेन्द्र की कहानियों में जहाँ एक ओर बौद्धिकता, दार्शनिकता, निराशा तथा कुन्ठा दृष्टिगत होती है, वहाँ दूसरी ओर मनोवैज्ञानिकता भी निहित रहती है। इनकी कहानियों में विविध पक्षीय चित्रण हुआ है।

**चन्द्रगुप्त विद्यालंकार**—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का जन्म सन् १६०६ में हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त निबन्ध तथा नाटक आदि के क्षेत्रों में भी इन्होंने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'वापसी' तथा 'चन्द्रकला' नामक दो प्रमुख कहानी-संग्रह इनके प्रकाशित हुए हैं। इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ-'तांगे वाला', 'डाकू', 'एक सप्ताह', 'चौबीस घंटे', 'क ख ग' तथा 'काम काज' आदि हैं। 'काम काज' कहानी में जीवन की अत्यन्त सामान्य घटनाओं को लेकर कथावस्तु का निर्माण हुआ है। चन्द्रगुप्त विधालंकार को अन्य कहानियों में कहीं-कहीं भावात्मकता को प्रधानता रहते हुए भी यथार्थ की उपेक्षा नहीं हुई है। इनकी कुछ कहानियाँ कलात्मकता को दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती हैं। आधुनिक जीवन के यथार्थ के कटु रूपों का प्रभावशालो चित्रण चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानियाँ की प्रमुख विशेषता है

**मन्मथनाथ गुप्त**—श्री मन्मथनाथ गुप्त का जन्म सन् १६०८ में हुआ था। इन्होंने साहित्य के क्षेत्र में कहानी साहित्र के अतिरिक्त उपन्यास, निबन्ध, आलोचना आदि क्षेत्र में कार्य करने के साथ पत्रकारिता के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। 'आँखें' तथा 'मेरी प्रिय कहानियाँ' नामक संग्रहों में इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ संगृहीत हैं। इनकी अधिकांश कहानियों में विभिन्न वर्गों के सामाजिक वैषम्य का चित्रण हुआ हैं। सामाजिक विषयों के अतिरिक्त इन्होंने राजनैतिक विषयों पर भी कहानियाँ लिखी हैं। 'सोख्ते का टुकड़ा', 'प्रतिक्रिया', 'आशा निराशा', 'महात्मा के भक्त' आदि कहानियों में नव चेतना के जागरण का सन्देश निहित है। लेखक ने अपनी कहानियों में समाज में व्याप्त मिथ्याडम्बर का दिग्दर्शन कराया है।

**उपेन्द्रनाथ 'अश्क'**—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का जन्म सन् १६१० में हुआ था। इनकी प्रतिभा का परिचय कहानी साहित्य के अतिरिक्त नाटक, एकांकी, उपन्यास, कविता, 'संस्मरण, निबन्ध, डायरी तथा अनुवाद-आदि क्षेत्रों में भी मिलता है। 'अंकुर', 'चट्टान', 'डाची', 'पिंजरा', 'गोखरू', 'बैंगन का पौधा', 'मेमन', 'दातिये', 'काले साहब', 'बच्चे', 'उबाल' तथा 'कैप्टन रसीद' आदि प्रतिनिधि संग्रहों में इनकी प्रमुख कहानियाँ संग्रहीत हैं। हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू भाषा में भी 'नौरतन' तथा 'औरत' शीर्षक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनके नवीन कहानी संग्रहों में 'छींटे', 'जुदाई की शाम का गीत', 'दो धारा', 'कहानी लेखिका' और 'झेलम के सात पुल' तथा 'सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ' आदि उल्लेखनीय हैं। 'काकड़ा का तेली', 'घिसा हुआ पत्ता', 'तीन सौ चौबीस', 'चारा काटने की मशीन', 'वह मेरी मंगेतर थी' आदि जैसी कहानियों में व्याप्त नैतिक मूल्यों की धैर्यहीनता की ओर संकेत मिलता है। 'गोखरू', 'अंकुर', 'चट्टान', 'पिंजरा' आदि कहानियों में रूढ़िवादी विचारों और परम्परागत संस्कारों की ओर संकेत किया है। लेखक ने अपनी कहानियों में विभिन्न वर्गीय सामाजिक यथार्थ के प्रति व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण का आश्रय लिया है। इनके पात्र मानवीयता की आधारभूमि पर चित्रित हुए हैं।

**सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'**—श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म सन् १६११ में हुआ था। इनका योगदान कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास, काव्य, निबन्ध तथा आलोचना के क्षेत्रों में भी रहा है। 'सैनिक', 'विशाल भारत', 'बिजली', 'प्रतीक' तथा 'वाक्' आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी 'अज्ञेय' ने किया है। इसके प्रतिनिधि कहानी-संग्रहों में सन् १६४५ में प्रकाशित 'कोठरी की बात', सन् १६४६ में प्रकाशित 'शरणार्थी' तथा सन् १६५१ में प्रकाशित 'जयदोल आदि हैं। 'इनकी प्रमुख कहानिय,' 'विपथगा', 'रोज', 'नई कहानी का प्लाट', 'सभ्यता का एक दिन', 'अकलंक', 'पुरुष के भाग्य', 'चिड़िया घर', 'पुलिस की सीटी', 'पठार का धीरज', पैगोडा वृक्ष', 'ये दूसरे' तथा 'एकांकी' आदि हैं। 'विपयगा' जैसी कहानियों में राष्ट्रीय आन्दोलन, कारावास जीवन तथा राष्ट्रीय चेतना मिलती है। 'अकलंक' जैसी कहानियों में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के साथ राष्ट्रीय भावना भी व्यक्त हुई है। 'पठार का धीरज', 'पैगोडा वृक्ष', 'विपयगा', 'वे दूसरे' तथा 'एकाकी' आदि में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश हुआ है। इनकी अन्य कहानियों में सामाजिक व्यवस्था के विकृत रूप का चित्रण हुआ है। आधुनिक जीवन के यथार्थ पहलुओं का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से चित्रण इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है।

**विष्णुप्रभाकर**—श्री विष्णुप्रभाकर का जन्म २१ जून, १६१२ ई० को हुआ था। साहित्य में इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, स्केच और रिपोर्ताज आदि क्षेत्रों में दिया है। समकालीन कहानियों की भाँति विष्णु प्रभाकर समस्या का यथार्थ चित्रण तो करते हैं परन्तु नैतिकता का मोह भी बना रहता है। इनकी कहानियाँ संवेदनशील हैं। इनके प्रतिनिधि कहानी संग्रह 'आदि और अन्त' तथा 'संघर्ष के बाद' आदि हैं। कहानी साहित्य के क्षेत्र में विष्णु प्रभाकर के 'रहमान का बेटा', 'जिन्दगी के थपेड़े', 'संघर्ष के बाद', 'सप्तदशमी', 'अब दीदी भूत बनी', 'खंडित पूजा', 'मेरी तैंतीस कहानियाँ', 'आदि और अन्त' 'धरती अब भी घूम रही है' आदि संग्रह उपलब्ध होते हैं। इनमें विष्णु प्रभाकर की लिखी हुई सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक तथा नीति प्रधान बालोपयोगी कहानियाँ संग्रहीत हैं। ये कहानियाँ विविध विषयक हैं तथा इन्हें समस्या प्रधान, भाव प्रधान, आदर्शपरक, यथार्थपरक, अतियथार्थवादी तथा प्रगतिशील कहा जा सकता है। इन कहानियों में विष्णु प्रभाकर ने आधुनिक जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण विस्तार से किया है।

**रामप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी'**—श्री रामप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' का जन्म सन् १६१३ में हुआ था। इनके प्रमुख कहानी संग्रहों में 'सफर', 'छाया में', 'यथार्थवादी रोमांस', 'अधूरा चित्र', 'सड़क पर', 'मौसी', 'नया रास्ता', 'बया का

घोंसला' तथा 'हिरन की बातें' आदि उल्लेखनीय हैं। सामाजिक, दार्शनिक, साहित्यिक तथा वैज्ञानिक विषयों पर इन्होंने अपनी कहानियाँ प्रस्तुत की हैं। इनकी प्रतिनिधि कहानियों में 'भद्दी दुनियाँ', 'हिरन की आँखें', 'केवल प्रेम ही', 'जीवन का रहस्य', 'मोम की मूर्ति', 'जीवन का रहस्य', 'रज्जो', 'आखिरी स्केच', 'मकड़ी का जाला', 'मनोवैज्ञानिक पहलू', 'चित्रकार और शिल्पी', 'लाक्षणिक पुरुष', 'उस महा युद्ध में', 'मुरीला', 'फ्रांस के मैदान', 'सभ्यता की ओर' तथा 'समस्या' आदि प्रमुख हैं। इनका कहानी साहित्य सामाजिक यथार्थ पर आधारित है। इनकी कहानियों के पात्र निम्न वर्ग के अधिक हैं जिनका मनोविश्लेषणात्मक निरूपण प्रभावशाली रूप में हुआ है।

अन्य कहानीकार—प्रेमचन्दोत्तरयुगीन हिन्दी कहानी के विकास में योग देने वाले जिन लेखकों का परिचय ऊपर दिया गया है, उनके अतिरिक्त भी एक बड़ी संख्या ऐसे लेखकों की है जिन्होंने इस युग में कहानी रचना के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। उनमें 'डाली' के लेखक अनन्तगोपाल शेवड़े, 'परित्यक्ता' के लेखक अक्षयकुमार जैन, 'छात्राभिनय' के लेखक गुरुदयाल सिंह, 'अधूरा आविष्कार' के लेखक डा० नवलविहारी मिश्र, 'रंगे सियार' के लेखक मंगल देव शर्मा, 'हीरा मोती' के लेखक मनहर सिंह चौहान, 'ब्रजघोष' के लेखक राजबहादुर सिंह, 'फुर फुर' के लेखक लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, 'खंडित प्रतिमा' के लेखक लक्ष्मीप्रसाद मित्र, 'उंगली का घाव' के लेखक वीरेश्वर सिंह, 'बीथिगा' के लेखक श्री गोपाल नेवटिया तथा 'एक मिनट' के लेखक सियाप्रसाद अस्थाना आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिन्होंने इस युग में विविध विषयक कहानियों की रचना की है। इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तर काल में हिन्दी कहानी का जो विकास हुआ है, उसका श्रेय उपर्युक्त कहानीकारों को ही है। यहाँ पर जिन कहानी लेखकों का परिचय दिया गया है, वे इस युग के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। इनकी रचनाओं में इस युग की सभी कहानी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। इनके अतिरिक्त इस युग में अन्य भी अनेक कहानीकार हुए हैं जिन्होंने विविध विषयक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इसका अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि इस युग का कहानी साहित्य भी पिछले युग की भाँति इस साहित्यिक विधा के क्षेत्र में निरन्तर विकासशीलता का परिचय देता है।

## (ग) समकालीन कहानी क्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ और यथार्थवाद

प्रेमचन्दोत्तर युगीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र में पूर्व युग की सभी प्रवृत्तियाँ विकासशील मिलती हैं। बिगत युग की भाँति ही इस काल में भी सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति मुख्य रूप से विकसित हुई। इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने विभिन्न सामाजिक समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण किया। ऐतिहासिक कहानी की

प्रवृत्ति के अन्तर्गत जैनेन्द्र कुमार, भगवतीचरण वर्मा तथा यशपाल के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने मुख्यतः मुगल और ब्रिटिश कालीन इतिहास से सम्बन्धित कहानियाँ लिखीं। धार्मिक और पौराणिक कहानियों के सन्दर्भ में मन्मथनाथ गुप्त, जैनेन्द्र कुमार तथा यशपाल ने विशेष कार्य किया। इन्होंने धर्म के आडम्बरपूर्ण रूप का विरोध किया। राजनैतिक कहानियों के अन्तर्गत यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा 'अज्ञेय' आदि कहानीकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी भावना प्रधान कहानियाँ लिखीं। मनोवैज्ञानिक कहानी के क्षेत्र में इलाचन्द जोशी, जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, वाचस्पति, पाठक, भगवतीचरण वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार तथा 'अज्ञेय' आदि का योगदान विशेष महत्व का है। यहाँ पर प्रेमचन्दोत्तर युग की प्रमुख कहानी प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में यथार्थवाद का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

**सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—पूर्व युगों की भाँति प्रेमचन्दोत्तर काल में भी सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति मुख्य रूप से विकसित हुई। इस काल के प्रमुख लेखकों में इलाचन्द जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्र-कुमार, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने सामाजिक जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित कहानी की रचना की। जैनेन्द्र कुमार ने 'अपना पराया', 'सजा'; 'अपना अपना भाग्य', 'पायजेब'; 'वह चेहरा' तथा 'एक गऊ' आदि कहानियों में सामाजिक जीवन की विडम्बनाओं का चित्रण किया है। आधुनिक समाज में रूढ़िवादिता की समस्या; अन्तर्जातीय विवाह की समस्या; बेरोजगारी की समस्या; भिक्षावृत्ति की समस्या, मध्यवर्गीय आडम्बरप्रियता की समस्या; धार्मिक क्षेत्रीय कुरीतियों की समस्या आदि जैनेन्द्र की कहानियों में विस्तार से चित्रित हुई हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युगीन कहानी की सामाजिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत यशपाल का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यशपाल ने 'आतिथ्य', 'खुदा की मदद', 'धर्म रक्षा'; 'जिम्मेवारी'; 'वर्दी', 'सबकी इज्जत'; 'सामन्ती कृपा', 'महाराजा का इलाज'; तथा 'देवी की कृपा' आदि कहानियों में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का चित्रण किया है। सामाजिक नैतिकता के खोखलेपन का चित्रण करते हुए यशपाल ने यह बताया है कि नीति सम्बन्धी मानदंड आज के युग में निरर्थक हो गये हैं। समाज में व्याप्त धार्मिक विषमता का चित्रण यशपाल ने प्रमुख रूप से किया है क्योंकि उनके विचार से समाज में व्याप्त अधिकांश विकृतियों के मूल में धार्मिक विषमता ही विद्यमान है। सामाजिक यथार्थ के विभिन्न रूप भी उनकी कहानियों में मिलते हैं, जिनका चित्रण यशपाल ने मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में किया है। इस सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करते हुए यशपाल ने एक स्थान पर लिखते है : "मेरे लिए यह विश्वास करवाना कठिन है कि आज का समाज अतीत की सभी मान्यताओं में भाषा-त्मक और रागात्मक सौन्दर्य की अनुभूति कर सकता है। मैं आज पति के वियोग में

पत्नी के विचारारोहण में सौन्दर्य नहीं विभीषिका ही अनुभव करता हूँ। मैं उस आदर्श को सुन्दर बनाने का यत्न नहीं कर सकता। मैं अतीत में भी किसी पति को पत्नी के वियोग में चिता पर चढ़ने के लिए व्याकुल होने के उदाहरण नहीं देख पाता तो स्त्री पुरुषों की समता के विचार में इस युग में मुझे पति के सती होने के आदर्श के प्रति रागात्मक सहानुभूति उत्पन्न करना भीषण अन्याय ही जान पड़ता है। मैं राजा हरिश्चन्द्र द्वारा ऋण शोध के लिए पत्नी को बाजार में बेच डालने की कर्तव्यपरायणता के लिए भी अनुभूति उत्पन्न नहीं कर सकता, उसे धर्म नहीं समझ सकता। आज की परिस्थितियों में स्वामिभक्ति के लिए आदर उत्पन्न करना मुझे मानव की समता का अपमान और अन्याय को प्रतिष्ठा देने का यत्न ही जान पड़ता है।"[1]

सामाजिक कहानियों की प्रवृत्ति के अन्तर्गत इस युग के अन्य कहानीकारों में इलाचन्द्र जोशी का नाम भी उल्लेखनीय है। जोशी जी की कहानियाँ मूलतः मनोवैज्ञानिक होते हुए भी सामाजिक जीवन का बहुपक्षीय चित्रण उपस्थित करती हैं। 'परिणीता', 'बदला', 'विद्रोही', 'उद्धार', 'पागल की सफाई', कापालिक तथा 'रात्रिघर' आदि कहानियाँ इस दृष्टि से जोशी जी की प्रतिनिधि कहानियाँ कही जा सकती हैं। इसमें लेखक ने यह संकेत किया है कि समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियाँ और सीमाएँ वैयक्तिक स्तर पर मनुष्य को कुंठित कर देती हैं। लेखक का दृष्टिकोण इस विषय में यह रहा है कि समाज विरोधी तत्वों का सुधार बुद्धि कौशल से किया जा सकता है, दंड नीति से नहीं। अपनी एक रचना में उन्होंने इस विषय में लिखा है कि अपराधी व्यक्ति बड़े दार्शनिक भी होते हैं...हालांकि उनका जीवन दर्शन किसी भी मान्य दार्शनिक मान से मेल नहीं खाता। संसार के प्रति उन लोगों के मन में प्रतिहिंसा का भाव अवश्य वर्तमान रहता है। पर उसका कारण केवल यह है कि वे संसार को अपने प्रति अविश्वासी पाते हैं। जिन सांसारिक असुविधाओं के बीच में उनका जन्म और पालन-पोषण होता है उनके प्रति संसार विशेषकर बुर्जवा संसार एकदम उदासीन रहता है। अपनी हीन सांसारिक परिस्थितियों के कारण जो मानसिक प्रतिक्रिया स्वाभाविक नियम से उनके भीतर होती है उसके प्रति बुर्जवा संसार तनिक सहानुभूतिशील नहीं होता, और जब अपनी इन्हीं विवश परिस्थितियों और मानसिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप उनका व्यवहार कुछ संदेहात्मक हो उठता है तो उन्हें संसार कतई क्षमा योग्य नही मानता। उन्हें दंडित करने के बड़े से बड़े विधान बनाए जाते हैं और सरकार और जनता दोनों की कड़ी आँखें सब समय उनके ऊपर रहती हैं। इसका फल यह होता है कि वे सुधरने के बजाय प्रतिहिंसात्मक हो उठते हैं और विशेषकर सभी सामाजिक विधानों से सुरक्षित बुर्जुवा वर्ग के प्रति उनकी वह प्रतिहिंसा अत्यन्त कटु और कुटिल रूप धारण कर लेती है।

---

१. ओ भैरवी', श्री यशपाल, सन १९५८, भूमिका, पृ० ६.

प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रमुख कहानीकारों में जैनेन्द्रकुमार का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैनेन्द्रकुमार ने विविध विषयों पर अनेक कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें सामाजिक विषय वस्तु पर आधारित रचनाओं में 'वह क्षण', 'निस्तार', 'भावी', 'ब्याह', 'विस्मृति', 'अन्धे का भेद', 'विराग', 'निराकरण', 'मास्टर जी' तथा 'प्रत्यावर्तन' आदि में उनका सामाजिक दृष्टिकोण स्पष्टतः लक्षित किया जा सकता है। जैनेन्द्र की यह धारणा है कि समाज का विकास यदि वैज्ञानिक विकास के समानान्तर नहीं होता तो सामाजिक व्यवस्था दोषपूर्ण हो जाती है। जैनेन्द्र ने समाज में बढ़ती हुई आडम्बर-प्रियता एवं समाज सुधार की मिथ्या धारणाओं का चित्रण करते हुए यह संकेत किया है कि आज आर्थिक मूल ही प्रधान है। अनेक प्रकार के अभावों से ग्रस्त समाज ईश्वरवादी हो जाता है और सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष न करके अपने दुर्भाग्य के लिए ईश्वर को दोषी कहता है। उनके दृष्टिकोण में व्यक्तिवाद की प्रधानता भी है, क्योंकि वह व्यक्ति को समाज से भिन्न नहीं मानते। उनका विचार है कि मनुष्य जिस समाज में जन्म लेता और जिस समाज में जीवन व्यतीत करता है उससे पृथक् उसका व्यक्तित्व अकल्पनीय है। उन्होंने बताया है कि "आदमी सचमुच समाज से अलग नहीं है, समाज का भाग है, समाज से अभिन्न है। बेशक विकार पूरी तौर पर मैं की परिभाषा में न समझ सकेगा। जरूर उसमें 'पर' को भी आना पड़ता है। विकार स्वभाव नहीं है। इसलिए समाज को संस्कार देते रहने का प्रश्न अत्यन्त संगत है। उधर से उदासी होने की कल्पना भी मुझे नहीं है। फिर मेरा आग्रह इतना ही है कि समाज जब आदमी के व्यवहार का क्षेत्र है तब अन्तःप्रेरणा ही असल में उसकी कार्य विधि का मूल है। मैं कभी यह नहीं कहना चाहता कि जिसकी वह अन्तःप्रेरणा कहे कि वह बिल्कुल उसकी अपनी है और सामाजिक अवस्था का उस पर उसका प्रभाव नहीं है, पर व्यक्ति को यदि व्यर्थ न ठहरा कर हम उसे समाज रचना में सचेष्ट भागीदार समझते हैं तो व्यक्ति की उस प्रेरणा का कहीं भी मान लेते हैं...."[1]

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन सामाजिक कहानियों की प्रवृत्ति के विकास में योग देने वाले अन्य कहानीकारों में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का भी नाम उल्लेखनीय है। 'रश्क' की सामाजिक कहानियाँ बड़ी संख्या में प्रकाशित हुई हैं और इनमें सामाजिक जीवन के सभी पक्षों का चित्रण हुआ है। 'अंकुर', 'आर्टिस्ट', 'उबाल', 'खिलौने', 'गोखरू', 'चपत', 'झटके', 'डाची', 'दलदल', 'नासूर', 'बच्चे मेमनें' तथा 'सपने' आदि कहानियाँ विषय क्षेत्रगत विस्तार का परिचय देती हैं। ये सभी कहानियाँ सामाजिक जीवन के वास्तविक रूप का चित्रण करती है क्योंकि 'अश्क' का साहित्यिक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से यथार्थोंमुख है। 'सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ' नामक अपने बृहत कहानी संकलन

---

१. 'प्रस्तुत प्रश्न', श्री जैनेन्द्र कुमार, पृ० २३-२४.

में 'मेरे कहानी लेखन के बत्तीस वर्ष, शीर्षक भूमिका के अन्तर्गत उन्होंने इस विषय में स्वयं अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए लिखा है : "मेरे कहानीकार बनने के पीछे एक अनजाने विद्रोह की भावना काम करती थी । मैं जिस परिवार और वातावरण में पल रहा था, उसकी असंगतियों और कुन्ठाओं ने मुझे कवि और कथाकार बना दिया था । इसलिए बहुत देर तक अपने वातावरण और समाज को भूलकर काल्पनिक कहानियाँ बुनना मेरे लिए सम्भव न था । इस दौर की कुछ रोमानी कहानियों.... 'निशानियाँ', 'नरक का चुनाव', वह मेरी मंगेतर थी' 'वह भी अनजाने ही इस विद्रोह का झीना सा स्वर आ गया है । कल्पना से उद्भूत होने के बावजूद इनमें से कुछ में मेरे जीवन की कुछ अनुभूतियाँ अपने आप शामिल हो गयी हैं और फिर ज्यों ज्यों मेरा जीवन संघर्ष बढ़ता गया, थोड़ा बहुत मनोविज्ञान का समावेश भी मेरी कहानियों में होता गया, यहाँ तक कि १९३५-३६ में जीवन की वास्तविकताओं से मेरा सीधा संघर्ष हुआ और परिस्थितियों की पहली ही चोट ने मेरी आँखों पर छाया हुआ कल्पना का रोमानी पर्दा तार-तार कर दिया, जिन्दगी अपने वास्तविक रूप में मुझे दिखाई देने लगी, 'अख्यात पत्रकार' द्वारा सुनी हुई कहानियाँ एकदम पोच लगने लगीं, वैसी कहानियाँ लिखना बेकार मालूम होने लगा, 'अख्यात पत्रकार' का जादू एकदम टूट गया और मैं फिर अपनी पहली रविश की ओर पलटा ।"

आलोच्ययुगीन सामाजिक कहानीकारों में मन्मथनाथ गुप्त का नाम भी उल्लेखनीय है । इनकी रचनाओं में समाज के बहुपक्षीय चित्रण के सन्दर्भ में जो कथासूत्र नियोजित किये गये हैं उनका सम्बन्ध जीवन की समस्याओं, सामाजिक रूढ़ियों, युद्ध की विभीषिकाओं, पारिवारिक समस्याओं तथा सामाजिक विरूपताओं से हैं । 'देशभक्त का अन्त', 'राजनीति'; 'महान् अमीर ने अखबार निकाला', 'तीसरा बीवी', 'सोख्ते का टुकड़ा', 'महायुद्ध का देव', 'वाइसराय का मैडल' तथा 'मन्त्र का मूल्य' आदि रचनाओं में उपर्युक्त विषयों से सम्बन्धित कथासूत्र प्रस्तुत किये गये हैं । श्री मन्मथनाथ की यह धारणा है कि आधुनिक सामाजिक संरचना का स्वरूप इतना विकृत हो गया है कि सामान्य गति से उसका सुधार करना असम्भव है । समाज में व्याप्त अधिकांश विकृतियों का मूल कारण आधुनिक युग की युद्धवादी, 'पूँजीवादी और औद्योगिकतावादी नीतियाँ हैं जो वास्तव में समाज, सभ्यता, और संस्कृति के लिए अभिशाप सिद्ध हो रही हैं ।

स्वातन्त्र्योत्तर युग के अन्य कहानीकारों ने सामाजिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत जो रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, उनमें सामाजिक यथार्थ के विभिन्न रूप दृष्टिगत होते हैं । जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, स्वातन्त्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी विषय क्षेत्र की दृष्टि से बहुत विस्तृत है । इस युग में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण करने वाले कहानीकारों में विष्णु प्रभाकर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

विष्णु प्रभाकर ने अपनी कहानियों में सामाजिक पृष्ठभूमि में यथार्थ के चित्रण पर दिया है। उन्होंने अपने एक कहानी संग्रह की भूमिका में इस विषय पर लिखा भी है कि "मैं यथार्थ को स्वीकार करता हूँ। समाज सापेक्ष होकर उससे बचा नहीं जा सकता। आदर्शों का बोझ मुझ पर है लेकिन रूढ़ियों की स्थापना या उनमें विश्वास भरना आदर्श का पर्याय नहीं है। आदर्श मेरे लिए इतना ही है कि मैं जो कुछ चाहता हूँ उसको रूप दे सकूँ। मृत्यु कभी-कभी मुझे परेशान करती है लेकिन जीने में मेरा अटूट विश्वास है...कुन्ठा और अकेलेपन के चित्रण अपराध नहीं हैं। अपराध है उनका स्वीकार। इसी तरह अमूर्त की खोज मुझे आनन्द दे सकती है लेकिन वह मेरा आदर्श नहीं बन सकती।"[1]

विष्णु प्रभाकर की सामाजिक कहानियों में समाज के विभिन्न वर्गों के संघर्षों का व्यापक चित्रण मिलता है। समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के अन्तर्गत व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों और अन्धविश्वासों का भी चित्रण उनकी सामाजिक कहानियों में हुआ है। 'धरती अब भी घूम रही है' जैसी कहानियों में सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण है। 'रहमान का बेटा' में निम्न वर्गीय समाज का यथार्थपरक चित्रण है, इसी प्रकार से 'गृहस्थी' शीर्षक कहानी में मध्यवर्गीय समाज का प्रतिनिधि चित्र उपस्थित किया गया है। 'जिन्दगी के थपेड़े' जैसी कहानियों में आधुनिक समाज की दुर्दशा और उसकी पृष्ठभूमि में बढ़ती हुई अपराध भावना का चित्रण है। इसी प्रसंग में नारी जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर भी विचार किया गया है जिनमें स्वच्छन्द प्रेम की समस्या और वैवाहिक प्रेम की समस्या प्रमुख है।

**ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति ऐतिहासिक विषय वस्तु पर आधारित है। इसके विकास में इस काल के अनेक प्रमुख प्रतिनिधि कहानीकारों ने योग दिया है। जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा तथा विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यशपाल ने मानव समाज के सन्दर्भ में उसकी विभिन्न परिस्थितियों का महत्व बताते हुए ऐतिहासिक कहानी विषयक अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है। अपने 'ओ भैरवी !' नामक कहानी संग्रह की भूमिका में उन्होंने इस विषय में लिखा है : "परन्तु मानव प्राणी अमर नहीं है न मनुष्य के विचारों और प्रयत्नों द्वारा उपन्न विचार और वस्तुएँ ही शाश्वत और स्थिर हैं। कल्पना कीजिये, यदि मानव जाति की अतीत की पीढ़ियाँ अमर होतीं और मानव समाज की जीवन-नौका के दिशा दर्शन के लिए डाँड उन्हीं पीढ़ियों के हाथ में रहता तो मानव समाज आज भी किस अवस्था में होता ? मानव समाज का विकास इसीलिए सम्भव हो सका है कि मानव व्यक्ति अमर नहीं है और उसके जीवन की परिस्थितियाँ भी अमर और

१. 'सत्तर श्रेष्ठ कहानियां', श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', पृ० २५-२६.

शाश्वत नहीं, परिवर्तनशील रही हैं। मनुष्य व्यक्ति और उसके समाज की रुचि और सौन्दर्य की भावना भी शाश्वत, स्थिर और अपरिवर्तनशील नहीं है। परिस्थितियों के परिवर्तन के अनुकूल नयी मान्यताओं, रुचियों और सौन्दर्यों का उत्पन्न होना आवश्यक होता है और आज भी है।"[1]

प्रेमचन्दयुगीन ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत जैनेन्द्रकुमार का नाम भी उल्लिखित किया जा सकता है। जैनेन्द्रकुमार की ऐतिहासिक कहानियों में 'गदर के बाद', 'फांसी'; 'एक कैदी'; 'जनार्दन की रानी' तथा 'रानी महामाया' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये कहानियाँ भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों से सम्बन्धित हैं। इनमें ऐतिहासिक तत्वों पर अपेक्षाकृत कम बल दिया गया और कल्पनात्मकता का अधिकता से समावेश हुआ है। उदाहरण के लिए 'जय सन्धि' शीर्षक कहानी सामन्तवादी युग पर आधारित है। इसकी प्रामाणिकता ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही संदिग्ध हो, परन्तु इसमें जो दृष्टिकोण है वह आधुनिक संदर्भ में महत्व रखता है। इस कहानी का नायक सामन्त यशोविजय है जो महाराष्ट्र की एकता को चाहता है। इसके लिए हिंसा और अहिंसा दोनों को अपनाता है। उसकी नीति थी कि छोटे-छोटे राज्यों को एकता के सूत्र में बाँध दे। इस कहानी के पात्र ऐतिहासिक हैं तथा वातावरण में भी ऐतिहासिकता दृष्टिगत होती है। 'रानी महामाया' ऐतिहासिक कहानी है इसमें रानी महामाया का शासन प्रबन्ध विस्तृत रूप से हुआ है। 'जनार्दन की रानी' में लोकतन्त्र की स्थापना से सम्बन्धित दृष्टिकोण निहित है।

आलोच्य युग के कहानीकारों में भगवतीचरण वर्मा ने भी ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति में विकासगत योगदान किया है। वर्मा जी की अधिकांश कहानियाँ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हैं परन्तु फिर भी उनमें कतिपय ऐतिहासिक सन्दर्भ व्यंग्यात्मक रूप में उपलब्ध होते हैं। इस दृष्टि से यहाँ पर वर्मा जी की लिखी हुई 'जब मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' जैसी कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। यह कहानी इतिहास के उस महत्वपूर्ण युग की ओर संकेत करती है जब मुगल बादशाह के दरबार में कुछ अँग्रेज सौदागर व्यापार करने के लिए इजाजत माँगने आए थे और धीरे-धीरे उन्होंने अपनी व्यापारिक संस्था को राजनैतिक संस्था का रूप दे दिया था। आगे चलकर उन्होंने अपनी कूट नीति से सारे देश पर कब्जा कर लिया था। इतिहास के इसी सत्य को वर्माजी ने अपनी इस कहानी में व्यंग्यात्मक रूप में व्यक्त करते हुए यह संकेत किया है कि मुगल बादशाह अँग्रेजों की कूटिनीति को भली प्रकार से समझ गये थे और उन्हें सजा दे सकते थे। परन्तु फिर भी केवल अपने एक वचन की रक्षा के लिए उन्होंने अँग्रेजों को सारी सल्तनत बख्श दी। इस रूप में यह कहानी ऐतिहासिक यथार्थ के प्रति व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

---

१. 'ओ भैरवी', श्री यशपाल, सन १६५८, भूमिका, पृ० ६.

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की कुछ रचनाएँ भी प्रेमचन्दोत्तरयुगीन ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत उल्लेखनीय हैं। 'मानव या दानव', 'राजकुमार', 'चैन का अभिलाषी' तथा 'डाकू' आदि कहानियाँ उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के ऐतिहासिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करती हैं। इनमें से 'चैन का अभिलाषी' शीर्षक कहानी में लेखक ने हास्य व्यंग्य पूर्ण शैली में यह संकेत किया है कि इतिहास के अनेक युगों में ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब महान् शासक दिन भर जनता को निष्पक्ष न्याय देते थे और रात्रि के समय अपना वेष बदल कर अपनी प्रजा की असली हालत का पता लगाते थे। इस प्रकार की कहानियों में 'अश्क' ने यह भी बताया है कि सच्चा सुख आत्मसंतोष में है और इतिहास से हमें यही शिक्षा भी मिलती है। इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तर काल में ऐतिहासिक कहानी के क्षेत्र में जो रचनाएँ प्रस्तुत की गईं उनका सम्बन्ध निकट अतीत के ऐतिहासिक सत्य से है, वे कल्पित इतिहास पर आधारित नहीं है।

**प्रेमचन्दोत्तरयुगीन धार्मिक पौराणिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—प्रेमचन्दोत्तरयुगीन धार्मिक पौराणिक क्षेत्र के अन्तर्गत जिन लेखकों की रचनाएँ विशेष महत्व की हैं उनमें इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, जैनेन्द्रकुमार, मन्मथनाथ गुप्त तथा भगवतीचरण वर्मा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों ने धार्मिक और पौराणिक कथा सूत्रों एवं विभिन्न देवी देवताओं को आधार बनाकर जहाँ एक ओर इस प्रवृत्ति की कहानियाँ प्रस्तुत कीं, वहाँ दूसरी ओर धार्मिक आडम्बर का भी विरोध किया है। इस दृष्टि से प्रेमचन्दोत्तर युगीन धार्मिक पौराणिक कहानी की प्रवृत्ति के क्षेत्र में इलाचन्द्र जोशी की भी कुछ रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। उदाहरण के लिए उनकी लिखी हुई 'कापालिक' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। यह कहानी मनोवैज्ञानिक होते हुए भी लेखक के धर्म विषयक दृष्टिकोण का परिचय देने में समर्थ है। इसमें लेखक ने यह संकेत किया है कि हिन्दू समाज में मृत्यु से सम्बन्धित धार्मिक संस्कारों और भावनाओं में अनेक प्रकार के तंत्र मंत्र सिद्ध करते हैं और बहुधा सहज और धार्मिक वृत्ति वाले व्यक्तियों का शोषण भी करते हैं। इस कहानी में कापालिक और औघड़ आदि पात्रों को चित्रित करते हुए उनके रहस्यमय जीवन का चित्रण किया गया है। मृत व्यक्तियों के शरीर का माँस खा चुकने वाला व्यक्ति इस कहानी के अन्त में सार रूप में कहता है "अब मैंने ज्ञान के दूसरे पहलू का भी अध्ययन किया है, ओर कापालिकों के दूसरे...अत्यन्त व्यापक और पहलू... रूप का भी थोड़ा बहुत परिचय प्राप्त हुआ है। मैं अब समझ गया हूँ कि नर मुंडों से निर्मम रूप से खेलने वाली कपालिनी सृष्टि और स्थिति के बीच में अपने मंगलमय, करुणामय, क्षमा और प्रेममय रूप में विश्व के कण-कण में घुली-मिली रहती है।"[१]

---

१. खंडहर की आत्माएँ', श्री इलाचन्द्र जोशी, पृ० ११०.

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन धार्मिक, पौराणिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत यशपाल का नाम भी उल्लेखनीय है। यशपाल ने अपनी कहानियों में धार्मिक दृष्टि का स्पष्टीकरण करते हुए यह संकेत किया है कि धार्मिक पौराणिक पात्र भी मुख्यत: नायक-नायिका के रूप में मानव समाज के ही अनुरूप व्यवहार करते हैं क्योंकि उनकी सार्थकता मानव समाज के सन्दर्भ में ही होती है। इस विषय में उन्होंने अपने एक कहानी संग्रह की भूमिका में लिखा है "कहानी देवताओं और पशुओं को नायक अथवा पात्र बनाकर भी गढ़ी जाती है। ऐसी कहानी में देवता अथवा पशु मनुष्य के गुण स्वभाव का प्रतिनिधित्व करते हैं और अपने समय के मानव समाज के लक्ष्यों, आदर्शों और सद्व्यवहारों को चरितार्थ करने का यत्न करते दिखाई देते हैं। कुमारसंभव, मेघदूत, पंचतंत्र, ईसप की कहानियाँ और दादी नानी द्वारा बच्चों को सुनाई जाने वाली सभी कहानियाँ यही प्रमाणित करती हैं। यदि कभी किसी भूभाग, पर्वत, वृक्ष अथवा जीवन विशेष की कहानी लिखी जाती है तो भी कहानी का आधार मनुष्य का प्रसंग ही होता है।"[1]

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन धार्मिक पौराणिक कहानी के विकास में योग देने वाले कहानीकारों में जैनेन्द्रकुमार का नाम भी उल्लेखनीय है। जैनेन्द्रकुमार ने जो धार्मिक और पौराणिक कहानियाँ लिखी हैं वे मुख्यत: नीतिपरक हैं। इनकी संख्या यद्यपि अधिक नहीं परन्तु फिर भी पौराणिक सत्य की निहिति और व्यंग्यात्मकता के कारण यह विशिष्ट कही जा सकती हैं। जैनेन्द्रकुमार की धार्मिक, पौराणिक, कहानियों में 'देवी देवता', 'लाल सरोवर', 'बाहुबली', 'भद्रबाहु', 'कामना पूर्ति', 'गुरु कात्यायन', 'ऊर्ध्वबाहु' आदि प्रतिनिधि कही जा सकती हैं। जैनेन्द्रकुमार की धारणा है कि मनुष्य के जीवन का धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध उसके जन्म से लेकर मृत्युकाल तक बना रहता है। यद्यपि आधुनिक युग में धर्म का स्वरूप परिवर्तित हो गया है और नास्तिकता की भावनाओं का विकास हो रहा है परन्तु फिर भी धर्म-निष्ठता आज भी विद्यमान है। जैनेन्द्रकुमार स्वयं जैन धर्म के अनुयायी हैं और आस्तिकतावादी दृष्टिकोण में विश्वास रखते हैं। आधुनिक युग में धर्म के अन्तर्गत जो पाखंड आ गया है और उसके फलस्वरूप धर्म जनता के शोषण का एक माध्यम बन गया है इसका जैनेन्द्रकुमार ने विरोध किया है। अपने धर्म विषयक दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करते हुए एक स्थान पर जैनेन्द्र ने लिखा है कि "धर्म आज संगठित मतवाद और पूँजीवाद का नाम बन गया है लेकिन अनिवार्य है कि कुछ ही वहाँ से हमारे हृदय की और भावनाओं को पोषण मिले उस दृष्टि से धर्म सदा उपयोगी रहा है और रहेगा। अपने जैसे अस्तित्व वाले व्यक्ति या पदार्थ के साथ हम समझ या बुद्धि का सम्बन्ध बिठाकर व्यवहार चला देते हैं पर अन्दर कुछ अधिक की भूख रहती

---

१. 'ओ भैरवी', श्री यशपाल, सन १९५८, भूमिका, पृ० ५.

है और अतर्क है। व्यवहार जिस बुद्धि की शक्ति से चलता है, उसका उत्स मूल की इस भावनात्मक भूमिका से अभिन्न है। धर्म उसी तत्व की अभिव्यक्ति से अधा जायँगे, जिसके लक्षण प्रकट हैं और जो अनिवार्य है, तो धर्म की सम्भावनाओं की ओर हम मुड़ेंगे।"[१]

जैनेन्द्रकुमार ने अपनी धार्मिक पौराणिक कहानियों में आधुनिक जीवन की समस्याओं के सन्दर्भ में व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण व्यक्त किया है। उदाहरण के लिए 'देवी देवता' शीर्षक कहानी में उन्होंने आधुनिक विवाह प्रणाली की असफलता पर व्यंग्य किया है। 'बाहुबली' शीर्षक कहानी में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रधान हो गया है।[२] 'लाल सरोवर' शीर्षक कहानी में जैनेन्द्रकुमार ने सेवा भावना की सामाजिक उपयोगिता की ओर संकेत किया है। 'कामना पूर्ति' में धार्मिक पाखंड और अन्ध-विश्वास का खंडन करते हुए विशुद्ध सेवा-भाव को ही धर्म का वास्तविक रूप बताया गया है। 'भद्रबाहु' शीर्षक कहानी में भी यही भावना मिलती है। उसमें नारद के द्वारा लेखक ने इन्द्र से यही बात कहलाई है—"बुद्धि तुझ में कहाँ है, मूढ़ तो है ही, रे निर्बुद्धः यह कैसी बात करता है। सन्त को अजेय समझता है। यही तो मेरे इन्द्रत्व की मर्यादा है। निस्पृह को भी स्पृहा है रे पगला जा सन्त को सेवा से जीत। अभिमान करके किसी-किसी का नाम तोड़ा जा सकता है, रे। पर जिसके पास मान नहीं है, वहाँ आँसू लेकर जायगा। सच की स्पृहा को तू नहीं जानता रे मूढ़। त्रिभुवन का दर्प उसे शून्यवत होता है। और गलित मान की एक बूंद भी डूब जाता है। यह नहीं जानता है रे, असावधान ऊपर बैठकर अपने नीचे इन्द्रासन का रक्षा तू नहीं कर सकेगा।"[३]

प्रेमचन्दोत्तर युग में धार्मिक पौराणिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत श्री मन्मथनाथ गुप्त लिखित भी कुछ कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। इन कहानियों में लेखक ने सामाजिक जीवन के विविध पक्षों के संदर्भ में धार्मिक समस्याओं पर विचार किया है। श्री मन्मथनाथ गुप्त का धर्म विषयक दृष्टिकोण आधुनिक युग के अन्य कहानीकारों की भाँति सुधारवादी है। वह धर्म के रूढ़ और आडम्बर-प्रिय स्वरूप का विरोध करते हैं। अपनी लिखी हुई 'पन्द्रह रुपये बारह आने' शीर्षक कहानी में उन्होंने धार्मिक मठों के महन्तों तथा साधुओं के अनाचारों का यथार्थपरक चित्रण किया है। महन्त गोकुलदास हरद्वार के पास के एक प्रसिद्ध मठ के महन्त थे। जमींदारी से तो उन्हें लाखों की आमदनी थी ही, पर धार्मिक आमदनी भी खूब थी। महन्त जी और साधुओं की रीति के अनुसार गेरुए रंग के कपड़े पहनते थे। यहाँ तक कि उनकी

---

१. 'साहित्य का श्रेय और प्रेय', श्री जैनेन्द्र कुमार, पृ० ५०-५१.
२. 'जैनेन्द्र की कहानियां', श्री जैनेन्द्र कुमार, तीसरा भाग, पृ० २५.
३. 'जैनेन्द्र की कहानियां', श्री जैनेन्द्र कुमार, तीसरा भाग, पृ० ७०-७१.

मसहरी और छाता भी गेरुए रंग के थे । पर उनके सभी वस्त्र बढ़िया से बढ़िया रेशम के होते थे । शरीर से वे तगड़े थे, चौड़ा सीना, तगड़ा भुजदंड, मस्त चाल । उनको देखने से पता लगता था कि वे सुख में पले थे और सुख के अभ्यस्त थे । क्यों न हो, वे हजारों के ऐहिक तथा पारलौकिक भाग्यविधाता जो ठहरे । और महन्तों की तरह गोकुल-दास की भी बदनामी थी । पर धनियों का बदनामी से बिगड़ता ही क्या है ? वे जब तक हरद्वार में रहते थे, तब तक अपने मठ में ही रहते थे । मठ कई बीघे जमीन में बसा था । उसमें चेलों के रूप में कोई पचास जवान रहते थे । सभी गेरुवा वस्त्रधारी, और सभी मुस्टंड । बीस पचीस गायें और कुछ भैंसे भी थीं । चेले इनका दूध पीते, दंड-बैठक लगाते, और दोनों वक्त झांझ बजाकर बड़े जोर से ठाकुर जी की आरती करते ।···प्रत्येक चेले का काम बँधा हुआ था । कोई गाय भैंसों की देखभाल करता, कोई लगान वसूल करता, कोई सौदा सुल्फ लाता ।...नित्य सवेरे महन्त जी का दरबार लगता था । आज भी जब जनतन्त्र में रियासतें और राज्य समाप्त हो गये हैं तब भी महन्तों की निश्चित आय है । इस कहानी में एक मठ का महन्त सरल हृदय ग्रामीणों से ठाकुर जी के नाम पर कर वसूल करता था और किसी भी स्थिति में उसका कर माफ नहीं करता था । कभी-कभी तो ऐसा भी होता था कि किसी-किसी व्यक्ति का पूरा परिवार तक शोषण और अत्चार की बलि चढ़ जाता था । लेखक का यह संकेत है कि जब तक जनता में अशिक्षा और अज्ञान का प्रचलन रहेगा तब तक इसी प्रकार का शोषण धर्म के नाम पर रहेगा ।

**प्रेमचन्दोत्तर युगीन राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—प्रेमचन्दोत्तर काल में राजनैतिक प्रवृत्ति का भी समुचित रूप में विकास हुआ है । जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, यह युग राजनैतिक दृष्टि से अनेक प्रकार की हलचलो से भरा है । इसमें जहाँ एक ओर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए 'भारत छोड़ो' जैसे क्रान्तिकारी आन्दोलन हुए और उनका कठोरता से दमन दिया गया वहाँ दूसरी ओर द्वितीय विश्वयुद्ध तथा बंगाल का दुर्भिक्ष जैसी घटनाओं ने भी जनता में राजनैतिक चेतना जाग्रत की । प्रेमचन्दोत्तर युगीन राजनैतिक और राष्ट्रीय भावना प्रधान कहा-नियों की प्रवृत्ति के विकास में इलाचन्द्र जोशी का योग भी उल्लेखनीय है । जोशी जी की कहानियों में यद्यपि मनोवैज्ञानिक तत्वों की ही प्रधानता है परन्तु उनमें राजनैतिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में राजनैतिक चेतना के संकेत मिलते हैं । उदाहरण के लिए 'बदला' शीर्षक कहानी में जोशी जी ने यह संकेत किया है कि प्रथम विश्वयुद्ध के काल में सामान्य वर्गों के भी कितने व्यक्ति सेना में भर्ती हो गये थे और उनके क्रिया-कलाप का जन-जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा था । इसी प्रकार से 'विद्रोही' शीर्षक कहानी में जोशी जी ने यह बताया है कि सन् १९३० में भारतीय राजनीति पर महात्मा गांधी के व्यक्तित्व के प्रभावस्वरूप जो सत्याग्रह आरम्भ हुआ था देश के

कोने-कोने में फैल गया और स्वतन्त्रता की भावना प्रत्येक भारतीय के हृदय में एक अदम्य आकांक्षा बन-कर रह गयी।

अपनी अनेक राजनैतिक कहानियों में यशपाल ने स्वतन्त्रता की प्राप्ति के उपरान्त भारतीय समाज की असन्तोषजनक स्थिति का चित्रण किया है। उनकी यह धारणा है कि स्वतन्त्रता का आन्दोलन एक राजनैतिक आँधी के समान आया था। विभिन्न देशीय शोषण का मुख्य प्रभाव मध्यवर्ग पर पड़ा था। 'जन सेवक' शीर्षक कहानी में उन्होंने इसी स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है : "काँग्रेस के राज में दर दिहात में रहने वाले गरीब बेजबान किसानों को क्या-क्या नियामतें मिलीं, उनके साथ क्या भलाई हुई, इन सब बातों से शहर की रहने वाली मध्यम श्रेणी की शिक्षित जनता को बहुत कम वास्ता रहा। तकफीफलगान : लगान में कमी:, इल्तबए अदायगी कर्ज : कर्ज की अदायगी का स्थगित करना:, मौरूसी हकूक और आबिदाना यह सब लफ्ज शहर में रहने वाली मध्यम श्रेणी की राजनैतिक रूप से जागृत जनता की दृष्टि में 'पश्तो' है।...उनके लिए काँग्रेस राज की बरकत थी कि धोती कुरता पहने, चप्पल चटकारते असेम्बली हाल में धँसे चले जाते। जब चाहते कलक्टर और बड़े-बड़े साहिब अफसरों की राह रोक कर बात कर लेते। वर्दियों में सजे साहिबों के अर्दली देखते रह जाते। 'चूँ' करने की हिम्मत उन्हें न होती। जान पड़ता था, नौकरशाही की हदबन्दियाँ टूट गईं। बड़े-बड़े अफसर अपने आप को जन सेवक बताने लगे। एक चिट भेज कर जो चाहता उनके सिर पर जा धमकता। काँग्रेस मन्त्री तो मानो जन्माष्टमी के मन्दिर का सिंगार थे, महज देख आने के लिये ही लोग उनके यहाँ हो आते।"[1]

प्रेमचन्दोत्तर युगीन राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में योग देने वाले कहानीकारों में जैनेन्द्रकुमार का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैनेन्द्रकुमार स्वयं भी क्रान्तिकारी आन्दोलनों में भाग लेते रहे हैं। जैनेन्द्रकुमार की राष्ट्रीय, भावनाएँ उनकी राजनैतिक कहानियों में व्यक्त हुई हैं। यहाँ पर इस तथ्य की ओर उल्लेख करना असंगत न होगा कि जैनेन्द्र ने अपनी सबसे पहली कहानी भी कारागार में लिखी थी। उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने की प्रेरणा महात्मा गाँधी से मिली थी। गाँधीवादी सिद्धान्तों में उनकी आस्था भी थी। सन् १९३३ में प्रकाशित जैनेन्द्र कुमार के सर्वप्रथम कहानी संग्रह 'फाँसी' में संगृहीत अधिकांश कहानियाँ राजनैतिक भावना प्रधान है। इसके अतिरिक्त 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' के विभिन्न भागों में भी राजनैतिक और राष्ट्रीय कहानियाँ संगृहीत हैं। इनमें 'फाँसी', 'स्पर्धा', 'गदर के बाद', जय सन्धि', 'क्रान्ति कर्म' आदि कहानियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'जय

---

१. 'तर्क का तूफान', श्री यशपाल, सन १९४५, पृ० ५३.

सन्धि'[1] में सन्धि द्वारा ही महाराष्ट्र की एकता की बात सोची जाती है। 'फाँसी'[2] शीर्षक कहानी में सर्वोदय आन्दोलन का आरम्भ डाकू शमसीर सिंह करता है। इस कहानी का नायक शमसीर संसार की दृष्टि में एक डाकू है परन्तु वास्तव में वह साधारण मानव से ऊपर है। शमसीर डकैती दुखी गरीब लोगों की सहायता के लिए करता है। लेकिन उनकी यही दयालुता कानून की दृष्टि में जघन्य अपराध है। जैनेन्द्रकुमार ने इस कहानी में यह संकेत किया है कि प्रायः दयालुता की भावना से प्रेरित होकर कोई आदमी डाकू बन जाता है और यही दयालुता उसे मानवता से ऊपर उठा देती है। जब उसका देवत्व जाग उठता है तब इस कहानी का नायक अपने मित्र की आर्थिक सहायता करने के उद्देश्य से स्वयं को पुलिस के हवाले कर देता है। इसमें डाकू के हृदय परिवर्तन की घटना में जैनेन्द्रकुमार की राजनैतिक विचारधारा पर गाँधीवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस कहानी के अन्त में डाकू शमसीर के निम्नलिखित उद्गार भी इसी धारणा की पुष्टि करते हैं : "दुख मत मानो। मैंने बहुत सोचा है और राह नहीं है। पाप की चेतना दूर करो। मत समझो, मित्र घात कर रहे हो। समझो मित्र की इच्छा पूरी कर रहे हो। वह इच्छा पूरी कर रहे हो जिसके बाद इच्छा अशेष हो जायगी। सोचते हो मैं क्यों मौत चाहता हूँ।"[3]

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन राजनैतिक कहानियों की प्रवृत्ति के अन्तर्गत मन्मथनाथ गुप्त का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी अधिकांश कहानियों में राजनैतिक चेतना का चित्रण हुआ। 'राजनीति' शीर्षक कहानी में उन्होंने यह संकेत किया है कि विश्व युद्ध ने जहाँ एक ओर भयानक विनाश किया वहाँ दूसरी ओर कालाबाजारी करने वाले अनेक सेठों ने अतुल धनराशि अर्जित कर ली : "सेठ रमानाथ बैठ कर हुक्के का धुआँ छोड़ते जाते थे, और सोचते जाते थे। उन्होंने लड़ाई के जमाने में करोड़ों नहीं, तो एक करोड़ रुपये जरूर कमाये थे। लड़ाई भले ही और किसी के लिए कष्ट का कारण बन गई हो, पर सेठजी के लिए तो कामधेनु ही साबित हुई थी। पहले दिल्ली के वे एक मामूली सेठ थे। अधिक से अधिक बीस हजार के मालिक थे। कपड़े की एक दुकान थी, पर थी वह बड़े मार्के की जगह पर, फतहपुरी और घंटा घर के बीच में यह दूकान थी।...लड़ाई के पहले कुछ दिन तो कुछ विशेष फायदा नहीं हुआ, पर जब कन्ट्रोल चला, तो सेठजी ने सप्लाई विभाग के अपने एक रिश्तेदार की सलाह से यह दिखला दिया कि वे कई दुकानों के मालिक हैं, जिनमें कई तरह की चीजें बिकती हैं। फिर क्या था, उन्हें लायसेंस मिल गये। जहाँ जरा दिक्कत हुई, उन्होंने चाँदी की मार से काम लिया। बस, फौरन मुश्किलें आसान होती गईं।"[4]

---

१. 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', पहला भाग, श्री जैनेन्द्र कुमार, पृ० १५०.
२. वही, पृ० २१.
३. वही, पृ० ३२-३३.
४. 'दूर की कौड़ी', श्री मन्मथनाथ गुप्त, पृ० १.

उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा, वाचस्पति पाठक, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि लेखकों ने भी इस प्रवृत्ति का समावेश अपनी रचनाओं में किया है। इनमें से 'अज्ञेय ने 'अकलंक' जैसी कहानियों में यह संकेत किया है कि राष्ट्र की स्वतन्त्रता की रक्षा किसी भी देश सेवक का सबसे बड़ा धर्म है और उसके लिए उसे अपना सर्वस्व बलिदान करने को सदा प्रस्तुत रहना चाहिए। इसके साथ ही राष्ट्र सेवकों की पारस्परिक विश्वास की भावना भी अखंड रूप में होनी चाहिए। इसी प्रकार से उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की 'चारा काटने की मशीन', 'ज्ञानी' तथा 'खामोश शहीद' आदि राजनैतिक कहानियों में पंजाब के विभाजन, साम्प्रदायिक दंगों और लूटपाट का विस्तार से चित्रण हुआ है। अन्य कहानीकारों ने भी प्रायः राजनैतिक स्वतन्त्रता और राजनैतिक आन्दोलनों को आधार बना कर राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक चेतना के जागरण और एकता की भावना का चित्रण किया है।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद—प्रेमचन्दोत्तर-युग में मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति का विशेष रूप से विकास हुआ है। इस युग में मनोविज्ञान का आधार लेकर लेखकों ने अनेक मानसिक कुंठाओं का चित्रण किया, जो इस युग की अपनी विशेषता है। इलाचन्द्र जोशी जैसे मनोवैज्ञानिक कहानीकारों ने इस सत्य का अनुभव करते हुए यह बताया है कि मनुष्य की व्यक्तिगत कुंठा आधुनिक सभ्यता की देन है और इसका मूल कारण यह है कि आज का जीवन सभ्यता के आचरण में सहज और सरल नहीं रह गया है बल्कि उसमें ऊपरी दिखावा और बनावटीपन आ गया है। आज इन्सान को अपनी असली इच्छा को छिपा कर अपने अन्दर ही उसे संघर्ष करना पड़ता है जिसके कारण उसके मन में अनेक प्रकार की कुंठाएँ बढ़ती चली जाती हैं। अपने 'देखा परखा' नामक निबन्ध संग्रह में 'साहित्य में वैयक्तिक कुंठा' शीर्षक निबन्ध में जोशी जी ने लिखा है: "वैयक्तिक कुंठा की प्रतिक्रिया मोटे तौर पर दो रूपों में होती है। एक तो यह कि कुंठित व्यक्ति जीवन से हारकर भीतर के और बाहर के संघर्ष से कतराकर इस हद तक जड़ बन जाय कि उस स्थिति से उबरने की कोई प्रवृत्ति ही उसमें शेष न रहे। दूसरा यह कि कुंठित भावनाएँ विद्रोह का रूप धारण कर लें। यह विद्रोह भी दो रूपों में अपने को व्यक्त कर सकता है...एक तो भीतर की और बाहर की परिस्थितियों के प्रति सचेष्ट विद्रोह और कुंठित मनःस्थिति से उबरने और ऊपर उठने का सक्रिय प्रयत्न, दूसरा आत्म-विद्रोह जो विद्रोह का विकृततम रूप है। कहना न होगा कि इनमें जड़ता अथवा पलायन वाली प्रतिक्रिया निकृष्ट है। आत्म-विद्रोह का क्रम इसके बाद आता है। सक्रिय और सचेष्ट विद्रोह वाली प्रतिक्रिया ही इन तीनों में स्वस्थ, स्वाभाविक और सर्वोत्तम है। यही विद्रोह जीवन को गति देता है, जड़ से जड़ परिस्थितियों में

विस्फोट पैदा करता है और विकृतियों को धोकर जीवन में निरन्तर परिष्कार लाता रहता है।"[1]

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन मनोवैज्ञानिक कहानियों की प्रवृत्ति के विकास में योग देने वाले कहानीकारों में इलाचन्द्र जोशी का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। जोशी जी की प्रतिनिधि मनोवैज्ञानिक कहानियों में 'रात्रि चर'; 'परिणीता', 'उद्धार', 'पायल की सफाई', 'वदला', 'विद्रोही', 'मिस एल्किन्स' आदि हैं। उनमें से 'परिणीता' शीर्षक कहानी उन्नीसवीं शताब्दी के सामन्ती युग के वैभव विलास से पूर्ण भवनों की परम्परा में एक दासी के चरित्र को आधार बनाकर लिखी गयी है। लेखक ने इस कहानी में उसके जीवन की विडम्बनात्मक परिणति का मार्मिक चित्रण किया है। इसी प्रकार से 'बदला' शीर्षक कहानी में एक सामन्त वर्ग के युवक की मानसिक स्थिति का विभिन्न परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में चित्रण करते हुए लेखक ने जीवन की अनेक विरूपताओं का परिचय दिया है। इसमें दमित इच्छाओं और कुंठाओं के सन्दर्भ में सफल चरित्रांकन प्रस्तुत किया गया है। 'मिस एल्किन्स' जैसी कहानियों में लेखक ने अंग्रेजी शासन काल में एक सरकारी कार्यालय में कार्य करने वाली एक स्टेनोग्राफर मिस एल्किन्स के जीवन की कथा का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। मिस एल्किन्स के जीवन के विविध रूपात्मक चित्र प्रस्तुत करते हुए लेखक ने यह संकेत किया है कि सामान्य शिष्टाचार भी विविध बौद्धिक और सामाजिक स्तर के व्यक्तियों में किस प्रकार के भ्रम उत्पन्न कर सकता है।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में जैनेन्द्र कुमार का भी विशेष योगदान है। जैनेन्द्रकुमार ने अपनी अधिकांश कहानियों में विभिन्न मनोवैज्ञानिक समस्याओं का चित्रण किया। 'एक रात' शीर्षक कहानी में लेखक ने कथानायक जयराज के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि देश सेवा में संलग्न रहकर वह अपनी मानसिक ग्रन्थियों से ग्रस्त रहता है। उसका अन्तर्द्वन्द्व उसके मन में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न कर देता है। वास्तव में उसके हृदय में सुदर्शन नामक एक नारी के प्रति अदम्य आकर्षण है, यद्यपि वह बाह्य रूप से मिथ्या सदाचार के आवरण में इसे स्वीकार नहीं करता और निरन्तर अर्थहीन नारे लगाता रहता है। वह अपने को भुलाने का प्रयत्न करता हुआ भाँति-भाँति के तर्क-वितर्क करता है: "ठहरो, मुझे साफ-साफ देखने दो। मैं क्या हूँ। मैं एक उद्देश्य पर समर्पित व्यक्ति हूँ। मेरा निजत्व क्या? कुछ नहीं है। मेरा स्वार्थ क्या है? कुछ नहीं है। क्या मेरे लिए परामर्श भी कुछ है? कुछ नहीं है। मेरे लिए एक ही वस्तु है। वही मेरा स्वार्थ, वही मेरा परामर्श, वही मेरा निजत्व वही मेरा लक्ष्य। जब मैं समर्पित हूँ तब मैं किसी भी और अन्य विचार के लिए खाली नहीं हूँ। बचा नहीं हूँ। जीवित

---

१. 'देखा परखा', श्री इलाचन्द्र जोशी, सन १९५७, पृ० ६५.

नहीं हूँ। मेरी देह और मेरा मन, मेरी बुद्धि में कहीं भी कुछ और के लिए अवकाश कैसे हो, सिवाय उसके जिसके लिए मैं न्यौछावर हूँ। राष्ट्र के लिए। राज्य के स्वराज्य के लिए राष्ट्र क्या ? वह राष्ट्र कहाँ है। मेरे हृदय में वह राष्ट्र कहाँ है ? मेरे क्या अमुक और अमुक भौगोलिक परिस्थितियों में परिमित भारतवर्ष नामक भूखंड का चित्र मेरे भीतर गहरा उत्तर सदा जाग्रत रहता है ? क्या वहीं माँ जी की धड़कन में सदा स्पन्दन करता रहता है ? नहीं स्पन्दन करता हृदय है राष्ट्र की भावना के बिना भी वह स्पन्दन करता है। ज्ञान शेष और विश्वात्मा का निर्देश है तब तक वह स्पन्दन रुकेगा नहीं, होता ही रहेगा। तब राष्ट्र क्या है ?...लेकिन ठहरो में शंकिताचित नहीं बहूँगा।...संशयात्मा विनश्यति यह प्रश्नातीत रहे कि राष्ट्र है। मैं राष्ट्र सेवक हूँ। और कुछ भी नहीं हूँ। जयराज मात्र नाम है। जयराज का कोई पार्थक्य नहीं, कोई व्यक्तित्व नहीं है। जयराज राष्ट्र सेवक है एक निरा बस...।"[1] इसी प्रकार 'नादिरा' शीर्षक कहानी में नायक एक पहाड़ी गाँव में जाता है। नायिका के मधुर स्वर को सुन कर वह स्तम्भित रह जाता है, पूछने पर वह नादिरा नाम बताती है। वह अविवाहित प्रेम की संतान थी। उसका चाचा उसको सदैव मारता तथा बकरियाँ चरवाता है नायक सोच करता और चाचा को रुपये देकर उसके दो दिन घर न लौटने पर ढूँढ़वाता है। अन्त में जब वह उससे मिलता है तो वह पलंग पर लेटी होती है, बताने पर ज्ञात हुआ कि चाचा ने मारा, रुपये क्यों नहीं देती। इस पर नायक कुछ ध्यान नहीं देता, क्योंकि वह चाहता है कि उसका चाचा आगे कुछ न कहे और नायक सौ रुपये देकर विदा लेता है।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में योग देने वाले कहानीकारों में यशपाल का नाम भी उल्लेखनीय है। 'तर्क का फल', 'राजा', 'परदा', 'औरत', 'भापा', 'कानून', 'जादू के चावल', 'सोमा का साहस', 'होली नहीं खेलता', 'डायन', 'उतरा नशा', 'अपनी करनी', 'निर्वासिता', 'जर्दी', 'महाराजा का इलाज', 'देखा सुना आदमी' तथा 'सामन्ती कृपा' आदि मनोवैज्ञानिक कहानियों में यशपाल ने विभिन्न परिस्थितियों में मानव चरित्र की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का निर्देशन किया है। इनमें से 'निर्वासिता' शीर्षक कहानी में लेखक ने इन्दु के रूप में एक ऐसी नारी का चित्रण किया है जो अपनी कुरूपता के कारण किसी भी पुरुष को आकृष्ट करने में असफल रहती है। धीरे-धीरे उसके हृदय में सुप्त प्रणय की आकांक्षा एक गहरी कुन्ठा का रूप धारण कर लेती है। ऊँची प्रतिभा से सम्पन्न होने पर भी वह प्रणय की प्यास को नहीं बुझा पाती। पुरुष की खोज उसे अनेक प्रकार के विचारों में ग्रस्त रखती है। उसका मनोविश्लेषण करते हुए यशपाल ने लिखा है : "वह सभी कुछ करने को तैयार है...परन्तु वह कर क्या सकती है ? उसकी विद्वत्ता,

१. 'जैनेन्द्र की कहानियां', पांचवां भाग, श्री जैनेन्द्र कुमार, पृ० २०-२१.

उसके भारी ट्रंक के खानों में भरे हुए नोट, वह कुछ भी नहीं कर सकती। स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बन कर भी जीवन निराश्रय हो रहा था। जीवन के क्रम का, कल्ले फूटने के सिलसिले का अवलम्ब पुरुष...। पुरुष से पाये बिना वह कुछ पा नहीं सकती। जीवन का वह सिलसिला पुरुष से ही पाया जा सकता है जो उसके मुर्झा कर गिर जाने पर भी उसके जीवन के क्रम को जारी रख सकेगा। पुरुष के बिना वह असहाय है। उसे अपना सिलसिला जारी रखना है। वह पुरुष को करना होगा। पुरुष यह करेगा क्यों नहीं ? वह है किस लिये। दारुण निराशा और खिन्नता से बल खा, अनेक करवटें ले वह उठ खड़ी हुई।"[1]

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में योग देने वाले कहानीकारों में मन्मथनाथ गुप्त का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। इस दृष्टि से उनकी प्रतिनिधि कहानियों में 'सोख्ते का टुकड़ा', 'पन्द्रह रुपये बारह आने', 'महायुद्ध की देन', 'राजनीति', 'यन्त्र का मूल्य', 'महान् अमीर ने अखबार निकाला', 'तीसरी बीबी', 'देशभक्त का अन्त', आदि हैं। इनमें 'राजनीति' शीर्षक कहानी में लेखक ने एक ऐसे व्यवसायी का मनोवैज्ञानिक चित्रांकन किया है, जो युद्धकालीन परिस्थितियों से लाभ उठाकर काला धन एकत्र करता है और सभी राजनैतिक दलों को चन्दा देकर प्रकट रूप में उनका समर्थक बना रहता है। 'सोख्ते का टुकड़ा' शीर्षक कहानी मन्मथनाथ गुप्त की प्रतिनिधि मनोवैज्ञानिक रचना है। इसमें लेखक ने यह संकेत किया है कि एक सुखमय गृहस्थी की शान्ति किस प्रकार से एक आशंका के द्वारा नष्ट हो जाती है जो अन्ततोगत्वा एक कुन्ठा और विकृति बन जाती है। 'सोख्ते के एक मोटे टुकड़े में लिखे गये 'प्यारी नीला' दो शब्दों को पढ़ कर रेखा अपने पति के चरित्र पर सन्देह करती है और उसके मन में अनेक प्रकार की आशंकाएँ उपजने लगती हैं। कहानी में रेखा की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ बड़े प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुई हैं। कहानी के अन्त में यह ज्ञात होता है कि यह शब्द छोटे बच्चे ने लिखे थे और इनका उसके पति से कोई सम्बन्ध नहीं था। तीव्र ज्वर से ग्रस्त रेखा को जब इस तथ्य का बोध होता है तो उनका बुखार उतर जाता है और वह तेजी अच्छी होने लगती है। इस कहानी में लेखक का यह संकेत है कि बहुधा मानसिक कुन्ठाएँ शारीरिक रोगों को जन्म देती हैं और उन्हें दुस्साध्य बना देती हैं।

### (ख) प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद के विविध रूपों का विश्लेषण

प्रेमचन्द-युग की भाँति ही प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में भी यथार्थवाद के सभी प्रमुख रूप उपलब्ध होते हैं। ऐतिहासिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समावेश इस युग के प्रायः सभी कहानीकारों की रचनाओं में मिलता है। जैनेन्द्रकुमार, यशपाल, विष्णु प्रभाकर,

---

१. 'तर्क का तूफान', श्री यशपाल, सन १९४५, पृ० १७.

मन्मथनाथ गुप्त तथा भगवतीचरण वर्मा आदि कहानीकारों ने इतिहास के विभिन्न युगों के आधार पर जो रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, उनमें मुख्य रूप से मुगल तथा ब्रिटिश कालीन इतिहास से ही कथासूत्र ग्रहण किये गये हैं। सामाजिक यथार्थ का विशेष रूप से प्रभावशाली चित्रण इस काल के कहानीकारों ने किया है क्योंकि यह युग परिवर्तनशील मूल्यों का है। इसमें जहाँ एक ओर नवीन मान्यताएँ स्थापित हो रही थीं, वहाँ दूसरी ओर रूढ़िवादी दृष्टिकोण भी समाज में विद्यमान था। मनोवैज्ञानिक यथार्थ के चित्रण में भी इस युग के प्रमुख कहानीकारों ने योग दिया है और मानव की कुन्ठाओं की यथार्थपरक विश्लेषण किया है। प्रेमचन्द युग की आदर्शोन्मुखवादी परम्परा में इस काल के कहानीकारों में जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी, वाचस्पति पाठक, यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त, भगवतीचरण वर्मा तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहाँ पर इस युग के इन्हीं प्रतिनिधि कहानीकारों की रचनाओं के सन्दर्भ में यथार्थवाद के प्रमुख रूपों का संक्षेप में विवेचन किया जा रहा है।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद का स्वरूप—प्रेमचन्दोत्तर युग में भी प्रमुख कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में ऐतिहासिक यथार्थवाद का चित्रण किया है। जैनेन्द्रकुमार ने मध्ययुगीन इतिहास से सम्बन्धित अपनी रचनाओं में उन तथ्यों को प्रस्तुत किया है जिनका सम्बन्ध देश की अखंडता और राष्ट्रीय चेतना से है। इस युग में जैनेन्द्रकुमार की कहानियों में ऐतिहासिक यथार्थवाद का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है वह इतिहास विषयक लेखक के दृष्टिकोण का भी परिचायक है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, जैनेन्द्रकुमार की ऐतिहासिक कहानियाँ संख्या में कम होते हुए भी दृष्टिकोणगत महत्त्व से युक्त हैं। उदाहरण के लिए 'जयसन्धि' शीर्षक कहानी में लेखक ने ऐतिहासिक तथ्यों के प्रस्तुतीकरण पर बल नहीं दिया है वरन् उन मनोभावनाओं का यथार्थपरक चित्रण किया है जिन्होंने इतिहास की दिशा निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस कहानी की एक महत्वपूर्ण पात्री यशस्तिलका यशोविजय की महत्वाकांक्षा को जाग्रत करती हुई उसे अदम्य प्रेरणा देती है और किसी भी मूल्य पर उसे सम्राट बनाना चाहती थी। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं जब महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर अनेक असाधारण घटनाएँ घटित हुई हैं। यशस्तिलका कहती है "मेरे प्रिय, तुम जानते हो जगत में एक मेरे ही पक्ष में तुम कमजोर हो। मैं इसे नहीं सहूँगी। मैं तुम्हें रंचमात्र भी कमजोर नहीं होने दूँगी। मैं न होती तो क्या तुम जयवीर के विचार तनिक भी अटकते ? मैं हूँ तो भी नहीं अटकने पाओगे। यशोविजय, मेरे राजा' तुम राजा बने हो' यह काफी नहीं है। तुम्हें सम्राट बनना होगा, रास्ते में तुम्हारी यश विधवा बने, या कि मरे, तुम्हें रुकना नहीं होगा। और यह भी समझ रखो कि उस

राह में यश कितनी कम आयेगी, उतनी यथार्थ में वह सिद्ध होगी। उसे भावुकता समझ तुम उड़ा देना चाहते हो, तो तुम जानो, पर दूसरा अभीष्ट नहीं है।"[1]

यशपाल की कुछ कहानियों में बुद्ध कालीन ऐतिहासिक यथार्थवाद का स्वरूप भी दृष्टिगत होता है। अपनी 'ओ भैरवी' शीर्षक कहानी में उन्होंने यह संकेत किया है कि बुद्ध धर्म के उत्कर्ष काल में जनमानस में धार्मिक भावनाओं और धार्मिक आस्था को जाग्रत करने के लिए अध्यात्मवादी सिद्धान्तों का किस रूप में प्रचार किया जाता था। बहुधा भावात्मक आवेग में अनेक युवक-युवतियाँ बौद्ध धर्म स्वीकार कर भिक्षु और भिक्षुणी बन जाते थे परन्तु वासनाओं और लालसाओं का दबाव उन्हें इस पथ से विमुख कर देता था। कभी-कभी धर्म ही कन्या विक्रय और कन्या अर्पण भी होता था। "भगवान तथागत की अजस्र करुणा के प्रभाव से राजगृह और उसके समीपवर्ती प्रदेशों के जनसमुदाय में परिग्रह की प्रवृत्ति क्षीण होकर निर्वाण की कामना कर रही थी। निर्वाण की कामना से जनगण की भी भावना वैराग्य की ओर हो रही थी। नगर के चैत्य के समीप बने विहार में अनेक भिक्षु निवास कर रहे थे। नगर से पाँच योजन दूर नालंदा महाविहार से भी अनेक भिक्षु आकर नागरिकों को अभिधर्म के मार्ग से दुख के कारणों और दुख से त्राण की प्रणाली का उपदेश देते रहते थे।"[2]

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन ऐतिहासिक कहानी के अन्तर्गत विष्णु प्रभाकर का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने जो ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं उनमें 'जीवन दीप' जैसी रचनाओं का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। इस प्रकार की रचनाओं में लेखक का इतिहास विषयक दृष्टिकोण प्रकट होता है। उदाहरण के लिए 'जीवन दीप' शीर्षक कहानी में लेखक ने सम्राट अशोक की कलिंग विजय के पश्चात् उनके द्वारा बन्दी बनाये गये कलिंग के युवराज कुमार और राजकुमारी संघमित्रा के प्रेम का चित्रण करते हुए युद्ध के अभिशाप पर विचार किया गया है। इसमें लेखक ने अपने दृष्टिकोण को ही प्रधान रखा है जिसके कारण उसमें काल्पनिकता अधिक है। ऐतिहासिक तथ्यों का निर्वाह इसमें हुआ है। कहीं-कहीं पर इसमें विभिन्न संवादों के माध्यम से लेखक ने कहानी के पात्रों की चारित्रिक अभिव्यंजना की है। उदाहरण के लिए इसमें एक स्थान पर कथानायक कहता है "कलिंग कुमार प्रणय से नहीं डरता, नारी से नहीं डरता, संघमित्रा, यदि तुमने मुझसे प्रेम किया है तो समझ लो तुम्हारा प्रियतम कलिंग के रक्त यज्ञ में अपने रक्त की पूर्णाहुति देकर उसे संपूर्ण करना चाहता है। यदि तुम मुझसे प्रेम करती हो तो मैं तुम्हें निमन्त्रण देता हूँ, तुम भी इस यज्ञ में आहुति दो। अपने प्रणय का बलिदान करो। कलिंग नारियों के रोदन में अपना

---

१. 'जैनेन्द्र की कहानियां', श्री जैनेन्द्र कुमार, पहला भाग, पृ० १५३.
२. 'ओ भैरवी', श्री यशपाल, पृ० ६.

रोदन मिला दो जिससे धरती, अम्बर काँप उठे, महानाश पूर्ण हो और महती निशा के बाद उषा का उदय हो।"[१]

ब्रिटिश इतिहास कालीन भारतवर्ष में परतन्त्रता के प्रतीक अँग्रेजी सम्मानों को प्राप्त करने के लिए जनता किस प्रकार से प्रयत्नशील रहती थी और अयोग्य प्रशासकीय कर्मचारियों को किस प्रकार से सम्मानित किया जाता था, इसका एक व्यंग्यपूर्ण चित्र मन्मथनाथ गुप्त लिखित 'वाइसराय का मैडल' शीर्षक कहानी में यथार्थ रूप में उपलब्ध होता है : "बड़े दरोगा के लिए अलग खाना पक रहा था और छोटे दरोगा के लिए अलग। छोटा दरोगा टहलने के लिए गया। फिर खा पीकर एक पेग चढ़ा कर सोने के लिए तैयार हुआ। चौकीदार को सामने पाकर बोला—'क्यों बे, मेरे सोने के सब ढंग हो गये ?'

'हाँ, हुजूर, बिस्तरा बिछा तैयार है।'

दरोगा थोड़ी देर चुप रहा, मानों सोच रहा है। फिर बोला—'और, तो यह देख रहा हूँ, पर क्या मैं अकेला ही सोऊँ ?'

चौकीदार उसकी बातों का निगूढ़ अर्थ नहीं समझ पाया—'बोला नहीं हुजूर, अकेले क्यों ? मैं किवाड़े के पास लाठी लेकर जागता रहूँगा। फिर लालटेन जलेगी ? मजाल क्या कि कोई फटके।'

सुलतान सिंह पर धीरे-धीरे शराब का नशा चढ़ रहा था। बोला, 'तू लाठी लेकर खड़ा रहेगा तो मेरे तो पितर तर जायँगे। अजीब उजबक है। कुछ बात नहीं समझता है। कहता हूँ, गाँव में कोई बढ़िया छोकरी नहीं है ?'

'ना हुजूर इस गाँव में कोई पतुरिया नहीं है।'

'पतुरिया नहीं है ? ऐसे ही सारी दुनियाँ का काम चल रहा है ? क्यों बे और यह सच हो कि यहाँ कोई तवायफ नहीं है तो मैं सच कहूँगा कि इस गाँव की सभी औरतें पेशा करती हैं फिर अगर तवायफ नहीं हो तो दूसरी औरतें तो हैं।"[२]

आलोच्यकालीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद का स्वरूप मन्मथनाथ गुप्त लिखित कुछ अन्य रचनाओं में भी दृष्टिगत होता है। उन्होंने अपने 'महायुद्ध की देन' जैसी कहानियों में अँग्रेजी शासन कालीन भारत का विविध रूपात्मक चित्रण किया है। इस कहानी में उन्होंने यह संकेत किया है कि अँग्रेजों की कूटनीतिक चाल के फलस्वरूप न केवल भारतवर्ष को विश्व युद्धों में आत्म बलिदान करना पड़ा वरन् इसी अवसर का लाभ उठाकर उन्होंने ईसाई धर्म का प्रचार भी किया। इतिहास के इसी सत्य का परिचय इस कहानी में द्रष्टव्य है : "अमेरिकन पादरी आये तो थे अमेरिकन सैनिकों की रक्षा करने, पर लगे हाथ वे भारतीयों की आत्मा की भी भलाई करने के

---

१. 'संघर्ष के बाद', श्री विष्णु प्रभाकर, पृ० ७७.

२. 'दूर की कौड़ी', श्री मन्मथनाथ गुप्त, सन १९५०, पृ० ६६-६७.

चूकने वाले नहीं थे। जगन्नाथ महतो के दोनों बच्चे इन्हीं के पंजे में पड़ गये। वह पादरी भी इन्हीं में था। यह नहीं कि इन पादरियों को यह मालूम नहीं हुआ कि इन बच्चों की माँ तथा बहिन कहाँ गयी थीं, पर ईश्वर के इन अनन्य सेवकों को इन सांसारिक बातों से सम्बन्ध ही क्या था। वे तो केवल पारलौकिक बातों से ही सम्बन्ध रखते थे। बाकायदा दोनों बच्चे महापुरुष ईसा की शरण में लाये गये। जो पादरी बच्चों को रुपया दिया करता था, उसी ने मिठाई देकर उन्हें ईसाई बनाया।"[1]

उपर्युक्त कहानीकारों के अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की रचनाओं में भी ऐतिहासिक यथार्थवाद के संकेत मिलते हैं। भगवतीचरण वर्मा ने 'जब मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' जैसी कहानियों में यह बताया है कि वस्तुतः अँग्रेज व्यापारी मुगल बादशाह के दरबार में केवल व्यापार करने की इजाजत लेने आए थे लेकिन अपनी कूटनीति से उन्होंने एक राजनैनिक शक्ति बन कर सारे देश पर अधिकार कर लिया। वर्मा जी ने इसी तथ्य को व्यंग्यात्मक रूप से प्रस्तुत करते हुए बताया है कि अगर मुगल बादशाह चाहते तो अपनी सल्तनत को बचा सकते थे लेकिन उन्होंने अपने बचन की रक्षा के लिए इतनी बड़ी कुर्बानी कर दी। इसी युग में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने 'चैन का अभिलाषी', 'राजकुमार', 'डाकू' तथा 'मानव और दानव' जैसी कहानियों में यह संकेत किया है कि इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब राजा अपनी प्रजा के सुख के लिए वेश बदल कर रात्रि में भ्रमण करता था। परोक्ष रूप से लेखक का यह संकेत है कि इतिहास से यह स्पष्ट उपदेश मिलता है कि वास्तविक सुख आत्म-संतोष में है। इस रूप में इस काल के कहानीकारों ने इतिहास के विभिन्न युगों की घटनाओं को यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

**प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में सामाजिक यथार्थवाद का स्वरूप**—प्रेमचन्दोत्तर युग में सामाजिक यथार्थ का चित्रण प्रायः सभी प्रतिनिधि कहानीकारों ने किया है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है कि यह युग क्रान्तिकारी परिवर्तनों का समय था जिसमें सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गतिशीलता व्याप्त थी। प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानीकारों में सामाजिक यथार्थ का समस्त रूप में चित्रण करने वाले कहानीकारों में भगवतीचरण वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में आधुनिक युग में धर्मप्रधान सामाजिक मूल्यों के प्रति कटु व्यंग्य की भावना व्यक्त की है। उनका मन्तव्य है कि आधुनिक समाज में केवल अर्थप्रधान मूल्य ही प्रचलित हैं। यही कारण है कि समाज में कोई भी परम्परागत मर्यादा नहीं रह गयी है। मानवतावादी मूल्य के ह्रास का भी यही कारण है। अर्थप्रधान मूल्य की मान्यता और उसके सामाजिक अभिशाप का चित्रण करते हुए 'रुपया तुम्हें खा गया' शीर्षक कहानी में उन्होंने लिखा है : "उफ ! ममता, प्रेम और सहानुभूति। इन्हें

---

१. 'दूर की कौड़ी', श्री मन्मथनाथ गुप्त, पृ० ८६.

मैंने उसी दिन तिलांजलि दे दी थी, जिस दिन मैंने अमीर बनने की सोची थी। मुझे याद है...मेरे बच्चे मुझसे बात करने को तरस जाते थे और मैं रुपया पैदा करने में व्यस्त था। मैं लखपती बनना चाहता था, मैं करोड़पती बन रहा था। और धीरे-धीरे वैभव के सर्वग्राही पिशाच...नहीं, नहीं...लक्ष्मी ने मेरे घर में प्रवेश किया। वे सब कमजोरियाँ, जिन्हें लोग दया, त्याग, प्रेम, सहानुभूति के नाम से पुकारते हैं मेरे घर से निकल गयीं। मेरी पत्नी, मेरे बच्चे...ये सबके सब उतने ही कठोर बन गये जितना मैं था। सामर्थ्य और शक्ति के हम स्वामी हो गये, हम कर्ता हो गये।"[१]

इलाचन्द्र जोशी ने अपनी कहानियों में आधुनिक महानारियों के जीवन का प्रभावशाली चित्रण करते हुए यह संकेत किया है कि उनमें समाज का एक ऐसा रूप देखने में आ रहा है जो रूढ़िवादी परम्पराओं के सर्वथा विपरीत है। इस समाज का यथार्थ मनुष्य का वह जीवन है जो आधुनिक यांत्रिक और औद्योगिक युग की क्रूरता के द्वारा सर्वथा पददलित होकर लज्जाविहीन हो उठा उसमें किसी प्रकार की कोई प्रदर्शन अथवा संकोच की भावना नहीं है। यह समाज निर्धनता और अभावों से ग्रस्त है और शरीर की भूख शमन के लिए ही आजीवन संघर्ष करता रहता है। 'मैं' शीर्षक कहानी में इसी का यथार्थपरक चित्रण है : "कलकत्ता आये मुझे पूरे अड़तालीस महीने हो चुके। यहाँ के विपुल जन संघात के संघर्ष से जीवन संग्राम में निरन्तर इतने दिनों से पिसते रहने पर भी अकेला का अकेला ही हूँ। केला बागान की मुसलमान तथा हरिजन बस्ती की झोंपड़ी के बीच एक मारवाड़ी भाई के भाड़े वाले मकान में एक कमरा मैंने लिया है। इस बस्ती में मुसलमान मजूर, कुली कबाड़ी, बीड़ी के दूकानदार तथा अन्यान्य प्रोलातेरियन तथा हरिजन श्रेणी के लोग रहा करते हैं। कानों में दिन रात मुसलमान स्त्रियों की गाली गलौज, मियाँ भाइयों का नग्न अश्लीलता से भरा वार्तालाप, फेरी वालों के कर्कश कण्ठ का कर्णवेधी चीत्कार तथा इसी प्रकार के अन्यान्य शब्दों का झंकार मुखरित होता है। यहाँ नित्य दंगा फसाद, चोरी, डकैती और खून खराबी का हाहाकार मचा रहता है।"[२]

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में सामाजिक यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से यशपाल का भी उल्लेखनीय स्थान है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त भारतीय समाज में जहाँ एक ओर चतुर्मुखी विकासशीलता लक्षित होती है वहाँ दूसरी ओर एक विवशतापूर्ण स्थिति भी है। आज के समाज में समानता के स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में योग्य व्यक्तियों के लिए विकास के पंथ अवरुद्ध हैं। अँग्रेजी शासन काल से ही पक्षपात

---

१. **'राख और चिनगारी'**, श्री भगवतीचरण वर्मा, पृ० ६१.

२. **'दीवाली और होली'**, श्री इलाचन्द्र जोशी, पृ० २३.

पूर्ण जिस नीति की व्याप्ति समाज में हो गयी थी उसकी जड़ें आज भी उतनी ही गहरी जमी हुई हैं। इसका चित्रण 'उतरा नशा' कहानी में द्रष्टव्य है। "एक संसार है जिसमें हम रहते हैं, यथार्थ संसार। यहाँ बेबसी की सीमायें हैं, कदम-कदम पर रुकावटें हैं, सुहावने फूल है, लुभावने अंगूरों के गुच्छे हैं, प्यास बुझाने को मोती उछालते झरने हैं। है सब कुछ लेकिन मजबूरी की ऊँची दीवारें और असफलता के कांटेदार तारों की बाड़ों ने उन्हें घेर रखा है। दूसरा है काल्पनिक संसार, स्वप्न और आशा का। हाथ में कुछ न पाकर भी वहाँ आशा और कल्पना से ही मनुष्य सुखी हो जाता है। हमारे जीवन की सब साध और कोशिशें, आशा और कल्पना की दुनियाँ के चित्रों को वास्तविक की दुनियाँ के परदे पर उतारने के लिए ही होती हैं। इस प्रयत्न में जितनी सफलता हो जाय वही जीवन की सार्थकता और उद्देश्य है। परन्तु कितने हैं ऐसे भाग्यवान जो इस कोशिश में कामयाब हो पाते हैं?"[1]

भारतीय समाज में एक बिडम्बनाजनक स्थिति यह दृष्टिगत होती है कि स्वार्थवश लोग अपनी अकर्मण्यता और दुर्दशा के लिए भाग्य को उत्तरदायी ठहराते हैं। जैनेन्द्रकुमार ने इस स्थिति का प्रभावशाली चित्रण 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक कहानी में प्रस्तुत किया है, उन्होंने यह संकेत किया है कि समाज के विभिन्न वर्गों में विशेष रूप से उच्च वर्ग में यह भावना इतनी अधिक व्याप्त हो गयी है कि वह निम्न वर्ग के व्यक्तियों को पशु तुल्य समझता है और उसके प्राणों का उसकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं रह गया है। इस कहानी में यही वर्ग सशक्त रूप में उभरा है: "दूसरे दिन नैनीताल स्वर्ग के किसी काले गुलाम पशु के दुलार का यह बेटा...वह बालक, निश्चित समय पर हमारे होटल डि पब में नहीं आया। हम अपनी नैनीताल सैर खुशी-खुशी खतम कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाते बैठ रहने की जरूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही थे कि यह समाचार मिला...पिछली रात एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे ठिठुर कर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, यही दस वर्ष की उम्र और वही काले चिथड़ों की क़मीज मिली। आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुँह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर बरफ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी। मानो दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबन्ध कर दिया था।

सब सुना और सोचा...अपना-अपना भाग्य।"[2]

---

१. 'तर्क का तूफान', श्री यशपाल, सन १९४५, पृ० ६६.

२. 'जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियां', श्री जैनेन्द्र कुमार, सन १९६०, पृ० ४१-४२.

प्रेमचन्दोत्तर युग में 'अज्ञेय' ने अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थवाद का जो रूप प्रस्तुत किया है उसकी पृष्ठभूमि में आधुनिक समाज में बढ़ती हुई यांत्रिकता और औद्योगिकता के फलस्वरूप मानव जीवन में उपजने वाली कुन्ठाओं एवं असंतोष का चित्रण किया है। इस दृष्टि से यहाँ पर 'अज्ञेय' की लिखी हुई 'अमर वल्लरी' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें उन्होंने कथानायक के अध्ययन-शील हृदय में गहरी समा गई असंतोष और अशांति की भावना का प्रभावशाली चित्रण किया है : "पर उसी समय मेरे हृदय में भाव उठता है कि यह दुखड़ा रोने का कोई अधिकार नहीं है। मैंने जीवन में सब कुछ नहीं पाया। बहुत अनुभूतियों से मैं वंचित रह गया पर जीवन की सार्थकता के लिए जो कुछ पाया है वह पर्याप्त है। न जाने कितनी बार मैंने वसन्त की हँसी देखी है, पक्षियों का रव सुना है, न जाने कितनी बार मैंने मानवों की पूजा पायी है, न जाने कितनी सरलताओं की श्रद्धापूर्ण अंजलि प्राप्त की है और इन सबसे अधिक न जाने कितनी बार मुझे इस अमरवल्ली के स्पर्श में एक साथ ही वसन्त के उल्लास का, ग्रीष्म के ताप का, पावस की सरलता का, शरद की स्निग्धता का, हेमन्त की शुभ्रता का और शैतल्य का अनुभव हुआ है, न जाने कितनी बार उसके बन्धनों में बँध कर और पीड़ित होकर मुझे अपने स्वातंत्र्य का ज्ञान हुआ है। एक व्यथा, एक जलन, मेरे अन्तस्थल में रमती गयी है कि मैं मूक ही रह गया, मेरी प्रार्थना अव्यक्त ही रह गयी पर मुझे इस ध्यान में सान्त्वना मिलती है कि मैं ही नहीं, सारा संसार मूक है...जब मुझे अपनी विवशता का ध्यान होता है, तो मैं मानव की विवशता देखता हूँ, जब भावना होती है कि विश्वकर्मा ने मेरी प्रार्थना की उपेक्षा कर मेरे प्रति अन्याय किया है तब मुझे याद आ जाता है कि मैं स्वयं भी तो इस सहिष्णु पृथ्वी की मूक प्रार्थना का, इसकी अभिव्यक्ति ...चेष्टा का, नीरव स्फुटन ही हूँ।"[१]

वाचस्पति पाठक ने आधुनिक समाज की एक ज्वलन्त यथार्थता बेरोजगारी की समस्या के अनेक पक्षों पर विचार किया है। अपनी लिखी हुई 'यात्रा' शीर्षक कहानी में दो नवयुवकों के चरित्रों की पृष्ठभूमि में उन्होंने यह संकेत किया है कि बेकारी की समस्या न केवल समाज के लिए एक आर्थिक अभिशाप है वरन् वह नवयुवकों की बुद्धि को भी कुन्ठित कर देता है। उदाहरणार्थ : "हम दोनों भूले हुए बटोही की तरह आज मिलकर एक दूसरे के दुख सुख को भीतर ही भीतर जान लेना चाहते थे। पूछ-पूछकर उसका इतिहास तैयार करना हमारे संकोची हृदय को सह्य न था। केदार ने थोड़े में पहले ही पूछ लिया... मजे में तो कट रही है? मैंने उत्साह से कहा... हाँ जी खूब। पर एक लज्जा से मेरा मन जैसे सिहर गया। मेरा मित्र इस

---

१. **'अमरवल्लरी तथा अन्य कहानियां', श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', पृ० २८.**

पर कहाँ तक विश्वास करेगा। जीवन भर दूसरों की कार्य-कुशलता पर जीने वाला मैं...मुझको वह नहीं जानता। और फिर केवल अपने सुख का सुखी यह मनुष्य मेरे सुख को कितना तुच्छ समझता होगा। एक दिन आपस में तर्क में जिसने नौकरी की निन्दा करके कहा...मैं सच कहता हूँ, नौकरी अभिशाप है। जीवन को इससे दूर रखना सबका कर्तव्य है। और जब मैं इसे आज समझता हूँ, तो मैं कल से नौकरी नहीं करूँगा....वह मेरी जैसी समझ वालों की दृष्टि में अपने सम्पूर्ण भविष्य को एक फूँक में धूल की तरह उड़ा कर इस पहाड़ी देश में लौट आया.....।"[1]

प्रेमचन्दोत्तर काल के अनेक कहानीकारों ने द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में समाज पर युद्ध के प्रभाव का भी विस्तार से चित्रण किया है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने अपनी लिखी हुई 'कबूतर' शीर्षक कहानी में कथानायक के माध्यम से युद्ध-क्षेत्र के अनुभवों का जो वर्णन किया है वह युद्ध के सामाजिक पक्ष का परिचायक है। युद्ध-क्षेत्र से जो व्यक्ति जीवित लौट आते हैं वे मृत्यु से कितने आक्रान्त हो चुके होते हैं कि उनके सामाजिक दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हो चुका होता है। इस कहानी का निम्नलिखित अंश इसी तथ्य का परिचायक है: "हाँ, मैंने नरक देखा है। वह भी थोड़े समय के लिए नहीं, पूरे सत्ताइस दिनों के लिए.....चार सप्ताह से एक दिन कम। एक बियावान चट्टानी प्रदेश में हम लोग शत्रु से अचानक घिर गये थे। मैं अपनी टुकड़ी का असिस्टेंट कमांडर था। शत्रु से मोरचा लेते-लेते हम लोग सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहे थे। बड़ी-बड़ी चट्टानों, टेढ़े-मेढ़े नालों और पहाड़ी खंडों की बदौलत इस सुनसान इलाके में बड़े टैंकों को ले जाना सम्भव नहीं था। ऊपर हमारे हवाई जहाज थे और नीचे ब्रेन गनें हाथ लिए हमारे सिपाही। वह भी हम लोग सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहे थे।"[2]

प्रेमचन्दोत्तर-युग में राजनैनिक परिस्थितियों में जो परिवर्तनशीलता आयी उसने देश की सामाजिक दशा पर भी उल्लेखनीय प्रभाव डाला। मन्मथनाथ गुप्त की अनेक कहानियों में सामाजिक यथार्थ के चित्रण के सन्दर्भ में यह संकेत किया गया है कि राजनैतिक अस्थिरता से इस युग में सामाजिक दृष्टिकोण भी व्यापक रूप से परिवर्तित हो गया और जहाँ एक ओर जनता में सामाजिक चेतना का जागरण हुआ वहाँ दूसरी ओर व्यापारों और पूँजीपति वर्गों में शोषण की प्रवृत्ति का भी विकास हुआ। 'राजनीति' शीर्षक कहानी में गुप्त जी ने इसी सत्य का चित्रण किया है: "इससे मैं एकाएक कांग्रेस और सरकार के बीच समझौते की बातचीत शुरू हुई। कई बार बातचीत खतम हुई, तो खुश हुए। पर फिर शुरू हुई। ऐसा मालूम होता था कि कुछ होकर रहेगा। सेठ रामनाथ बहुत घबराये, क्योंकि पंडित

---

१. 'प्रदीप', श्री वाचस्पति पाठक, पृ० ७५.

२. 'तीन दिन', श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पृ० १३७.

जवाहरलाल ने अब की बार छूटते ही कहा था, चोरबाजारियों को फाँसी दे देनी चाहिए। यद्यपि सेठ रामनाथ अपनी समझ में चोरबाजारी नहीं थे, पर वे डरते थे कि कहीं गेहूँ के साथ घुन भी न पिस जाय। फिर इन कांग्रेसियों का क्या ठिकाना ? ये लोग जब देखो, तब किसान मजदूर राज्य की बात करते थे। यह बात उन्हें बहुत बुरी लगती थी, बहुत ही बुरी। वे डरते थे, कि पसीने की गाढ़ी कमाई से कहीं हाथ न धोना पड़े।"[1]

उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की रचनाओं में भी सामाजिक यथार्थ का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। इस दृष्टि से उनकी लिखी हुई 'सपने', 'चट्टान', 'अंकुर', 'पहेली', 'निशानियाँ' तथा 'जुदाई की शाम का गीत' आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी यह एक विशेषता यह भी है कि इसमें लेखक ने अपने दृष्टिकोण को अति यथार्थवादी होने से बचा लिया है और अनेक स्थलों पर प्रतीकात्मक चित्रण किया है। 'अमर खोज', 'माया', 'तार बाबू', 'निशानियाँ' तथा 'नासूर' जैसी कहानियों में 'अश्क' ने सामाजिक कुरीतियों और विकृतियों का चित्रण किया है। 'पिंजरा', 'पाषाण', 'मोती' तथा 'खिलौने' आदि कहानियों में नारी समाज की विभिन्न समस्याओं का चित्रण हुआ है। इस युग के अन्य लेखकों ने भी आधुनिक समाज में व्याप्त धन लोलुपता, नारी शिवा, पारिवारिक विश्रृङ्खलता, नैतिक ह्रास, धार्मिक कुरीतियों तथा समस्याओं से सम्बन्धित रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जो समकालीन सामाजिक जीवन का यथार्थ पाठक के सामने प्रस्तुत करती हैं।

**प्रेमचन्दोत्तर कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का स्वरूप**—प्रेमचन्दोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का चित्रण इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्रकुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कहानियों में विस्तार से मिलता है। यशपाल ने जनजीवन के सहज और सामान्य रूपों को आधार बना कर मनोवैज्ञानिक यथार्थ का चित्रण किया है। आधुनिक युग में मध्य वर्ग का जीवन इतना दयनीय हो गया है कि साइकिल जैसी साधारण उपयोग की परन्तु आवश्यक वस्तु को क्रय करने के लिए छोटे-मोटे बाबुओं को बचत की लम्बी चौड़ी योजनाएँ बनानी पड़ती हैं और फिर भी उन्हें सफलता नहीं मिलती है। यहाँ तक कि कभी-कभी स्त्री कुसुरक्षा और सम्मान के प्रति गहनों तक को बेचने की स्थिति आ जाती है। मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बना के चित्रण की दृष्टि से यशपाल की एक कहानी से यहाँ पर उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है : "देवीलाल आठवें दसवें घर में कमला से साइकिल खरीदने के सम्बन्ध में बात करता था। कमला सान्त्वना देती थी...'घबराते क्यों हो, रुपये हो ही जायँगे।'

---

१. **'दूर की कौड़ी', श्री मन्मथनाथ गुप्त, सन १९६०, पृ० ५.**

कमला कभी साइकिल खरीदने के लिए अपना लाकेट या सोने की दो चूड़ियाँ बेच देने की इच्छा भी प्रकट कर देती, कहती 'बस का किराया बचेगा तो फिर बनवा लेंगे ।'

कमला के मन में पति को साइकिल पर सवार घर से जाते और लौटते देखने की बड़ी साध थी । पड़ोस में दो बाबुओं के पास साइकिलें थीं । उनका रोब मालूम होता था । कमला मन ही मन सोचती उसका पति दफ्तर से साइकिल पर लौटकर घंटी बजाकर अपने आने का संकेत करेगा । वह झट से किवाड़ खोल कर मुस्करा देगी । कभी छुट्टी के दिन वह साइकिल पर पति के पीछे बैठ कर नई दिल्ली चली जाया करेगी । दूसरी कई स्त्रियाँ भी तो जाती हैं । इसमें शरम क्या ? यह दिल्ली है, कोई गाँव देहात थोड़े ही है परन्तु देवीलाल को साइकिल के लिए पत्नी का गहना बेचना पसन्द न था ।"[1]

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का कहानी साहित्य में चित्रण करने की दृष्टि से जैनेन्द्रकुमार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । जैनेन्द्रकुमार ने अपनी बहुसंख्यक कहानियों में मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों को आधार बनाकर मानव मन की कुण्ठाओं और विकृतियों का चित्रण किया है । आधुनिक युग में जो सामाजिक विषमता विभिन्न वर्गों में दृष्टिगत होती है वह सरल स्वभाव वाले व्यक्ति सहसा स्वीकार नहीं कर पाते । अपनी एक कहानी में जैनेन्द्रकुमार ने उसी स्थिति को मनोवैज्ञानिक पृष्ठिभूमि में प्रस्तुत किया है "मुझे कभी-कभी खेद होता है कि क्यों यह मेरा मित्र विद्याधर वहाँ है, जहाँ है । क्यों मुझे उसे समाज में उसके योग्य स्थान पर पहुँचाने नहीं देता । पर मैं उसे इतनी-सी छोटी बात समझाने में असमर्थ हो जाता हूँ कि गली का झम्मन भंगी सम्राट जार्ज से छोटा है । मैं बहुत कहता हूँ, तो वह तनिक हँस पड़ता है । वह कम्बख्त क्यों नहीं समझता दुनियाँ में छोटा बड़ा है, फिर है एक से लाख बड़ा है और हमेशा रहेगा, और उसे बड़ा बनना ही चाहिए, छोटा नहीं चाहिए और मुझे खीज होती है कि मैं क्यों वहीं उसे बड़ा बनने को राजी नहीं कर सकता । जब वह छोटा है, तो मैं ही क्यों दुनिया में बड़ा बना खड़ा हूँ ।"[2]

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने भी इस युग में मनोवैज्ञानिक यथार्थ का प्रभावशाली रूप अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है । पीछे संकेत किया जा चुका है कि इस युग में भारतीय नारी समाज में चतुर्मुखी जागरूकता लक्षित हो रही थी । जन जीवन के सभी क्षेत्रों में वह अपने विकारों के प्रति सजगता अनुभव कर रही थी परन्तु फिर भी यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि संस्कारी के बन्धन में

---

१. 'ओ भैरवी', श्री यशपाल, सन १९५८, पृ० ५०.

२. जैनेन्द्र की कहानियां, छठवां भाग, श्री जैनेन्द्र कुमार, पृ० १६६.

बँधी हुई नारी कभी भी उस स्वतन्त्रता और अभिमान का दावा नहीं कर सकती जिसके नारे लगाए जाते हैं। 'अज्ञेय' ने इसी मनोवैज्ञानिक सत्य को अपनी विभिन्न कहानियों में प्रभावशाली रूप में व्यंजित किया है इसका एक उदाहरण इस प्रकार है : "अभिमान। स्त्री का क्या अभिमान? और अगर करे ही तो कनिष्ठा करे जो उत्तराधिकारिणी होती है। वह तो सबसे बड़ी थी, केवल उत्तरदायिनी। होली के ओंठ एक विद्रूप की हँसी से कुटिल हो गये। युद्ध की अशांति के इन तीन चार वर्ष में कितने ही अपरिचित चेहरे देखे थे, अनोखे रूप, उल्लसित उच्छ्वसित, लोलुप, गर्वित याचक, पाप संकुचित, दर्प स्फोत मुद्राएँ और वह जाती थी कि इन चेहरों और मुद्राओं के साथ उसके गाँव की कई स्त्रियों के सुख-दुख तृप्ति और अशांति, वासना और वेदना, आकांक्षा और संताप उलझ गए। यहाँ तक कि वहाँ के वातावरण में एक पराया और दूषित तनाव आ गया था।"[1]

मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी अनेक कहानियों में प्रेमचन्दोत्तर युगीन भारतीय जन जीवन की पृष्ठभूमि के अनेक मनोवैज्ञानिक रूपों का चित्रण किया है। इस युग की औद्योगिकता और यांत्रिकता के फलस्वरूप मनुष्य के जीवन के प्रति दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हो गया है। ऐसी परिस्थिति में प्रबुद्ध और भावनाशून्य व्यक्ति तो सफलतापूर्वक निर्वाह कर लेते हैं परन्तु जो व्यक्ति रूढ़िवादी हैं और प्राचीन संस्कारों के अनुगामी हैं उन्हें कठिनाई होती है। परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि चाहे अथवा अनचाहे इस युग में मशीनें हमारे जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गयी हैं। उनके अभाव में जीवन की गतिशीलता सर्वथा रुद्ध हो जाती है। मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी अनेक कहानियों में इस मनोवैज्ञानिक सत्य का चित्रण किया है। 'यंत्र का मूल्य' शीर्षक कहानी से एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है : "नये साहब अकसर वर्कशाप में भी चले जाते थे और वहाँ यह देखते थे कि किस प्रकार इंजन आदि की मरम्मत तथा रक्षा की जाती है। वे इस बात पर गौर देते कि हर एक कल पुर्जा साफ तथा सक्रिय रखा जाय। ऐसे दौरों के समय मिस्टर सेठी कभी-कभी छोटा-मोटा भाषण भी देते थे। एक बार उन्होंने इसी प्रकार भाषण देते हुए कहा....'हमारा देश अभी-अभी स्वतन्त्र हुआ है। आज हमारे देश को जिस बात की सब से अधिक जरूरत है, वह है मशीन। हमारी द्रुत उन्नति में यदि कोई बात बाधक है, तो वह है मशीनों की कमी। इसलिए मामूली क्लीनर से लेकर इंजन चलाने वाले तक सबका कर्तव्य यह है कि उनके हाथ में जो मशीन आवे, उससे इस प्रकार काम लें कि वह अधिक से अधिक दिनों तक चले। हमारे यहाँ आदमियों की कमी नहीं है, पर मशीनों की कमी है, इसलिए लोगों को चाहिए कि मशीनों को अपनी जान से भी प्यारी समझें।"[2]

---

१. द्रष्टव्य 'अज्ञेय' लिखित 'हीलीबोन की बत्तखें', शीर्षक कहानी.
२. दूर की कौड़ी', श्री मन्मथनाथ गुप्त, सन १९५०, पृ० ५१.

आलोच्य युग में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के हिन्दी कहानी में समावेश की दृष्टि से विष्णु प्रभाकर की कतिपय रचनाओं का भी उल्लेख किया जा सकता है। विष्णु प्रभाकर ने अपनी कहानियों में मानव मन के विभिन्न सूत्रों का विश्लेषण करते हुए उसकी यथार्थपरक परिणति की व्याख्या की है। विष्णु प्रभाकर की अनेक मनोवैज्ञानिक कहानियों में आधुनिक युग की एक प्रमुख समस्या स्वच्छंद प्रेम की समस्या का विवेचन है। 'जीवन दीप', 'भाई साहब', 'वे दोनों' और 'गर्विता' शीर्षक कहानी में प्रेम भावना के विभिन्न रूपों का ही चित्रण है। 'धरती अब भी घूम रही है' शीर्षक कहानी में लेखक ने यह संकेत किया है कि माता के आश्रय से रहित दो भाई बहनों के मन में किस प्रकार की कुण्ठाएँ पनपने लगती हैं। 'आश्रिता' शीर्षक कहानी में एक विधवा स्त्री की समाज द्वारा वर्जित भावनाओं का चित्रण है। 'नागफास' और 'शरीर से परे' जैसी कहानियों में नारी मनोविज्ञान का विश्लेषण है। 'संवत' शीर्षक कहानी एक कुण्ठित पति की अदम्य प्रेम भावना का निरूपण करती है। 'संघर्ष के बाद', 'स्वप्नमयी', 'एक औरत एक माँ', 'मैं जिन्दा रहूँगा', 'दूसरा घर' तथा 'छाती के भीतर' आदि कहानियों में लेखक ने मनोवैज्ञानिक यथार्थ के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तर युग के अधिकांश कहानीकारों ने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को आधार बनाकर मानव मन की उन भावनाओं का चित्रण किया है, जो समाज के नैतिक नियमों के विरुद्ध होने के कारण धीरे-धीरे कुण्ठाओं का रूप धारण कर लेती है और उनके फलस्वरूप जीवन में अनेक विडम्बनायें सामने आती हैं।

**प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का स्वरूप**—प्रेमचन्दोत्तर कालीन कहानी साहित्य में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समावेश भी विस्तार से हुआ है। जैसा कि पिछले अध्याय में किया जा चुका है, प्रेमचन्द युग के अधिकांश कहानीकारों ने मानव जीवन का यथार्थपरक चित्रण करते हुए उनका आदर्शपरक हल प्रस्तुत किया और इस दृष्टिकोण को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की संज्ञा दी गयी। प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रमुख मनोवैज्ञानिक कहानीकार इलाचन्द्र जोशी ने जहाँ एक ओर अपनी रचनाओं में विभिन्न यथार्थपरक समस्याओं का प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत किया है वहाँ दूसरी ओर अनेक आदर्शपरक मान्यताएँ भी व्यक्त की हैं। उनका विश्वास है कि आधुनिक समाज में विभिन्न कारणों से अनेक व्यक्ति विविध प्रकार की कुण्ठाओं से ग्रस्त हैं परन्तु कोई भी ऐसा स्त्री और पुरुष नहीं हो सकता जो सत् प्रेरणा मिलने पर अपने चरित्र और जीवन को आदर्श न बना सके। इलाचन्द्र जोशी का यह मन्तव्य है कि यह हृदय परिवर्तन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तो सत्य है ही व्यावहारिक जीवन के आदर्श की दृष्टि से भी सर्वथा स्वाभाविक है। उन्होंने अपनी लिखी हुई एक कहानी 'मिस एल्किन्स' में इसी आदर्श का चित्रण किया है : "दूसरे दिन मैंने सहसा अपने प्रति मिस एल्किन्स के भाव में बहुत परिवर्तन

पाया । वह भरसक जैसे मुझ से कतरा कर चलने लगी । यदि कभी सहसा दोनों एक दूसरे के निकट आमने-सामने हो जाते तो वह मेरे अभिवादन का उत्तर तक न देती और साफ कतरा कर निकल आती । ऐसा आकस्मिक आमूल भाव परिवर्तन जीवन में कम देखने में आता है । मैंने समझा, शायद मेरे किसी व्यवहार से असंतुष्ट है, जल्दी ही फिर अपने पुराने ढंग पर आ जायगी । पर दिन बीतते चले गये और उसके नये रूप में कण मात्र का अन्तर न आया । मैं दंग रह गया...।"[१]

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानीकारों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की दृष्टि से जैनेन्द्र-कुमार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने सामाजिक और पारिवारिक जीवन की पृष्ठभूमि में विभिन्न चित्र उपस्थित किये हैं। जैनेन्द्रकुमार की धारणा है कि यद्यपि आधुनिक जीवन इतना जटिल और विषम है कि उसमें दाम्पत्य जीवन बहुत दुरूह और तनावपूर्ण हो गया है परन्तु फिर भी सभ्य और सुसंस्कृत पति पत्नी प्रायः पारस्परिक विवाद को हँसी-खुशी में ही निपटा लेते हैं। यदि कभी कोई क्लेशजनक स्थिति उत्पन्न हो जाती है और पर्याप्त कटुता भी आ जाती है, तब भी संयत स्वभाव और धैर्यपूर्ण व्यवहार से समस्या सुधर जाती है। जैनेन्द्रकुमार ने अपनी 'मौत और' शीर्षक कहानी में इसी यथार्थ स्थिति का आदर्शपरक चित्रण प्रस्तुत किया है : "पति फिर टहलने लगे। दिन खुलता आता था। टहलते-टहलते रुक कर पति मुस्कराये बोले—'उठो, कोई आता होगा।'

पति के उस चेहरे की मुस्कराहट देखकर वह भीतर नहीं आई। लेकिन उसी तरह फर्श पर टिकी रही।

पति पास आये। दोनों हाथ आगे बढ़ाकर चाहा कि कोई उन्हें थामे और उनके सहारे उठता चला आए।

पत्नी ने ऊपर देखा, पर उन आगे बढ़े और नीचे झुके हाथों को उसने थामा नहीं, सिर्फ हल्के मुस्करा दी।

पति को जाने क्या हुआ और मुस्कराकर उन्होंने हाथ पीछे कर लिये और वेग से वह दरवाजे की ओर बढ़े।

पत्नी धन्य हो आई। बोली, 'हैं हैं ! देखते नहीं दिन निकल आया है।'

लेकिन पति बढ़ते चले जा रहे थे। पत्नी इस पर झपट के उठी और पति के द्वार बन्द करने को उठी हुई बाँह को दोनों हाथों से अपनी ओर खींच कर हँसते हुए बोली, 'हटो हटो, सबेरे ही सबेरे...।'[२]

प्रेमचन्दोत्तर-युग के विशिष्ट यथार्थवादी कहानीकार यशपाल ने कहीं-कहीं आदर्शपरक चित्र प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किये हैं। यशपाल की यह धारणा है कि

---

१. **'खंडहर की आत्माएं', श्री इलाचन्द्र जोशी, पृ० ५३.**

२. **'जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियां', श्री जैनेन्द्र कुमार, सन १९६०, पृ० ७१.**

आधुनिक जीवन में यांत्रिकता और वैज्ञानिकता का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया है कि धर्म क्षेत्रीय रूढ़िवादी मान्यताएँ अधिक धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही हैं। इतना होने पर भी समाज में एक बहुत बड़ा वर्ग उन व्यक्तियों का है जिनकी धार्मिक मान्यताएँ आज भी उसी प्रकार बनी हुई हैं। यशपाल इस स्थिति पर विचार करते हुए इस तथ्य की ओर विचार किया है कि इस प्रकार के धार्मिक विश्वास बहुधा सरल हृदय वाले भोले भक्तों को आत्म बल प्रदान करते हैं। उदाहरणार्थ : 'मन की पुकार' शीर्षक कहानी का एक अंश यहाँ प्रस्तुत है : 'सरोला स्टेशन से माता का मन्दिर नौ मील है। स्टेशन से मन्दिर तक सड़क धीमे-धीमे पठार पर चढ़ती जाती है। पहाड़ी की नींव से मन्दिर तक भक्तों ने सीढ़ियाँ बनवा दी हैं। इन सीढ़ियों की संख्या तीन सौ तैंतीस है। अनेक भक्त सरोला स्टेशन से मन्दिर तक नौ मील का पूरा मार्ग ही दण्डवत करते हुए अर्थात मार्ग को अपने शरीर की लम्बाई से नापते हुए मन्दिर तक पहुँचते हैं और फिर प्रत्येक सीढ़ी पर दंडवत करते हुए मन्दिर तक पहुँचते हैं। देवी को प्रसन्न करने के लिए ऐसी विराट साधना करने वालों के सगे सम्बन्धी सहायता के लिए लोटे में जल और हाथ में पंखा लिए साथ-साथ चलते हैं। यह साधना पूर्ण करने में कभी लोगों का पूरा एक पक्ष स्टेशन से मन्दिर की ड्योढ़ी तक पहुँचने में लग जाता है। ऐसे तो अनेक हैं जो प्रत्येक सीढ़ी पर माथा टेक कर देवी को नमस्कार करते हुए तीन सौ तैंतीस सीढ़ियाँ पूरी करते हैं। देवी की कठिन भक्ति करने के पश्चात भक्त स्त्री-पुरुष देवी के सम्मुख कभी सन्तान के लिए, कभी व्यापार में सफलता के लिए, कभी बेटी के वर के लिए और कभी अनेक बार अदालत में मुकदमा जीतने के लिए वरदान की भिक्षा माँगते हैं...।'[१]

आलोच्य युग में आदर्शोन्मुखवादी विचारधारा के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से विष्णु प्रभाकर की कुछ रचनाओं का भी उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। विष्णु प्रभाकर ने यहाँ अपनी लिखी हुई 'गृहस्थी' शीर्षक कहानी में आधुनिक पारिवारिक एक सुयोग्य गृहस्थ नारी के आदर्श जीवन का रूप प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार से उसकी लिखी हुई 'आश्रिता' तथा 'हिमालय की बेटी' नामक कहानियों में भी आधुनिक युग में नारी जागरण के सन्दर्भ में नारी के आदर्श रूप को प्रस्तुत किया गया है। 'हजरत उमर' शीर्षक कहानी में महान खलीफा की जीवन गाथा की पृष्ठभूमि में लेखक ने यह संकेत किया है कि जीवन का सबसे बड़ा आदर्श सेवा भावना ही है। इसी प्रकार से 'हारूँ अल रशीद' भी सेवा, त्याग और आदर्श को प्रस्तुत करती है। 'जीवन दीप' जैसी कहानियों में विष्णु प्रभाकर ने पुरुष जीवन के आदर्श को प्रस्तुत किया है। अपने कई कहानी संग्रहों में आधुनिक जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित

---

२. 'ओ भैरवी', श्री यशपाल, सन १९५८, पृ० १०५.

समस्याओं और कुरीतियों, विधवा विवाह, स्वच्छन्द प्रेम तथा नैतिक समस्याओं आदि से सम्बन्धित आदर्शपरक निदान प्रस्तुत किये हैं।

प्रेमचन्दोत्तर-युग के अन्य कहानीकारों में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की रचनाएँ भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के चित्रण की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'अश्क' ने 'भाई', 'मोसी', 'मानव या दानव' तथा 'ठहराव' आदि कहानियों में यह संकेत किया है कि आधुनिक युग में शरीर की भूख मनुष्य को ऐसी परिस्थितियों में डाल देती है जहाँ से उसका उद्धार तभी हो सकता है जब वह किसी भावनात्मक आदर्श को सामने रखे। 'अश्क' की धारणा है कि आज के समाज में जो कटु यथार्थ दिखाई देता है उसके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याएँ सामने आती हैं। अनेक तीव्र भावनाएँ असन्तोष के कारण कुंठा का रूप धारण कर लेती हैं, जिनका एकमात्र निदान आदर्श-परक ही हो सकता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, आदर्शोन्मुख यथार्थ-वादी कहानियों में विभिन्न पात्रों के चरित्र परिवर्तन के जो संकेत मिलते हैं, वे कहानीकारों पर गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव सूचित करते हैं जो अपने मूल रूप में एक आदर्शपरक विचारधारा ही है।

### (ङ) प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद का उपकरणगत विवेचन

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में भी पूर्व युग की भाँति विभिन्न तत्वों के क्षेत्र में यथार्थ का बढ़ता हुआ आग्रह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कथावस्तु, पात्र योजना अथवा चरित्र-चित्रण, संवाद योजना अथवा कथोपकथन, भाषा, शैली, देश-काल अथवा वातावरण तथा उद्देश्य तत्वों के अन्तर्गत क्रमशः यथार्थ का समावेश अधिक होता गया है। इस युग के प्रमुख कहानीकारों में इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्रकुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि की कहानियों में यथार्थपरकता के विकास को स्पष्टतः देखा जा सकता है। इन कहानीकारों ने जो कथावस्तु प्रस्तुत की है उसका आधार वास्तविक समाज है। उनके पात्र इस समाज के सच्चे प्रतिनिधि हैं। उनकी भाषा, संवाद और शैली में स्वाभाविकता है। उनका वातावरण युग जीवन का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है। उनका उद्देश्य भी जीवन के यथार्थ स्वरूप में सुधार करना है कोई कल्पित आदर्श प्रस्तुत करना नहीं। यहाँ पर प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में विभिन्न तत्वगत यथार्थ का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

**प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ**—प्रेमचन्दोत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में समाविष्ट यथार्थवादी तत्वों का परिचय कथावस्तु तत्व के अन्तर्गत अपेक्षाकृत स्पष्टता के साथ दृष्टिगत होता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है कि इस युग तक आते-आते हिन्दी कहानी सर्वथा प्रौढ़ रूप ग्रहण कर चुकी थी अब उसमें यथार्थवाद का समावेश सांकेतिक अथवा आंशिक रूप में न होकर एक विशिष्ट

विचारधारा के रूप में होने लगा था। कथावस्तु के संदर्भ में यहाँ पर इस तथ्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि सामान्य रूप से इसकी पृष्ठभूमि अनेक परिवर्तनशील रूपों से युक्त है। इस युग की काल सीमा सन् १९३६ से लेकर सन् १९४७ तक निर्धारित की गई है। यह समय अनेक राजनैतिक आन्दोलनों और सामाजिक परिवर्तनों का था इसलिए इसमें युग के प्रतिनिधि कहानीकारों ने जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। इलाचन्द्र जोशी ने अपनी विभिन्न कहानियों में जो कथावस्तु प्रस्तुत की है उसका सम्बन्ध समाज के उस यथार्थ पक्ष से है जो प्राचीन और नवीन रूढ़ियों और परम्पराओं के द्वन्द्व से ग्रस्त हैं। 'धूम रेखा', 'दीवाली और होली', 'रोमांटिक छाया', 'आहुति', 'खंडहर की आत्माएँ', 'डायरी के नीरस पृष्ठ', तथा 'लचीले फूल कटीले काँटे' आदि कहानी-संग्रहों में इन्होंने उन विकृतियों और कुण्ठाओं को अपनी कहानियों की कथावस्तु में स्थान दिया है जिनका सम्बन्ध समाज में अस्वस्थ पक्षों से है।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ का स्वरूप भगवतीचरण वर्मा की रचनाओं में भी द्रष्टव्य है। वर्मा जी ने आधुनिक युग में निर्धनता की व्याप्ति और उससे मध्य वर्ग के शोषित होने का मुख्य कारण यह है कि इस समाज में या तो स्त्रियों की शिक्षा का प्रचलन नहीं है या शिक्षित स्त्रियों के नौकरी करने को अच्छा नहीं समझा जाता है। वर्मा जी ने अपनी कहानियों की कथावस्तु में इन दोनों बातों का विरोध किया है। उनकी अनेक कहानियों में शिक्षित स्त्रियाँ नौकरी करती हैं और इसे अनुचित भी नहीं समझती हैं। इसके विपरीत वे स्पष्टतः इसकी आवश्यकता और अनिवार्यता की घोषणा भी करती हैं: "रमेश! मैं घर की बड़ी गरीब हूँ। मैं दफ्तर में काम इसलिए नहीं करती कि काम करने का शौक है, मैं काम इसलिए करती हूँ कि काम करने के लिए मैं मजबूर हूँ। लोग आश्चर्य करते हैं कि मैं इतनी एकान्तप्रिय क्यों हूँ, मैं बनाव सिंगार क्यों नहीं करती, मैं सभा सोसाइटियों में क्यों नहीं सम्मिलित होती, मैं खेल तमाशे क्यों नहीं देखती। इन सबका एकमात्र कारण है मेरी गरीबी। और यहाँ तुम पूछ सकते हो गर मैं इतनी गरीब हूँ तो मैंने विश्वविद्यालय की शिक्षा कैसे प्राप्त की।"[१]

यशपाल ने अपनी कहानियों में वैज्ञानिकता और यांत्रिकता के वर्तमान युग में भी जनता के रूढ़िवादी और अन्धविश्वासी दृष्टिकोण को कथावस्तु का आधार बनाया है। कुछ वर्ष पूर्व यह समाचार बहुत तीव्रता से जनता के प्रत्येक वर्ग में व्याप्त हो गया था कि अनेक युगों के बाद अब अष्टग्रह योग आया है और संसार से मानवता का विनाश हो जायगा। इस प्रकार की रूढ़िवादी मान्यताओं से किसी भी समाज या

---

१. **'राख और चिनगारी', श्री भगवतीचरण वर्मा, पृ० ४-५.**

देश का हित नहीं होता वरन् इसके फलस्वरूप कुछ स्वार्थी वर्ग अपना हित साधन कर लेते हैं । यशपाल ने अपनी 'फलित ज्योतिष' शीर्षक कहानी में यह संकेत किया है कि अष्टग्रह योग का लाभ उठा कर धर्मभीरु लोगों को किस प्रकार से शोषित किया गया और पाखन्डियों ने किस प्रकार से अपना स्वार्थ सिद्ध किया : "ज्योतिषियों ने अभूतपूर्व देवी-प्रकोपों और भयंकर घटनाओं से व्यापक संहार की भविष्यवाणी की थी । फरवरी के प्रथम सप्ताह में आठ परस्पर विरोधी ग्रह एक रेखा में आ रहे हैं । उनके प्रभाव से प्रकृति के तत्व और महामतियों के मस्तिष्क भी विचलित हो जायँगे । विश्वासभीरु लोग काँप रहे थे : क्या नहीं हो जायगा ?"

कारोबार के लिए दूर-दूर तक बिखरे परिवारों के लोग आशंका और भय से एकत्र हो गये थे । सर्वनाश के समय कम से कम एक साथ तो रहेंगे ।

नगर में हमारे ममिया ससुर की बहुत बड़ी तिमंजिली हवेली है, उन्होंने भूकम्पों से परिवार दबकर समाप्त हो जाने की आशंका से अपनी देहात की जमीन में काम चलाऊँ झोंपड़ियाँ बनवा ली थीं । अष्टग्रह के एक दिन पहले ही देहात चले जाने की तैयार कर ली थी । हमें भी साथ चलने के लिए समझाने आये थे ।

पिता जी के मित्र मुंशी सन्ध्या समय अमीनाबाद से चौक लौटते हैं । गली के सामने से गुजरते हुए चाय के समय का अनुमान कर हालचाल पूछने के लिए पुकार लेते हैं । उस दिन भी आ गये थे । मुंशी जी को फलित ज्योतिष में हमारे मामा जी से भी अधिक विश्वास है । वह बोल पड़े 'विधि का लिखा को मेटन हारा' भाग्य से कोई बच सका है ? आपने देहात में झोंपड़ियाँ बनवा ली हैं, भाग्य क्या वहाँ साथ नहीं निकल आया था । धरती फट कर झील बन जाए । बिहार के भूकम्प में धरती फट कर जल नहीं निकल आया था ? गाँव डूब गये थे ?' उन्होंने तर्जनी से ऊपर की ओर संकेत किया, 'हम तो कहते हैं, उसे बचाना है, तो बचाएगा ही ।'"[1]

जैनेन्द्रकुमार ने अपनी 'रुकिया बुढ़िया' शीर्षक कहानी में उन व्यक्तियों का चित्रण किया है जो बिना किसी लक्ष्य के जीवन को जीते रहते हैं । ऐसे व्यक्ति एक ओर तो दरिद्रता के अभिशाप से ग्रस्त रहते हैं और दूसरी ओर सभ्य समाज के नाम पर कलंक भी होते हैं परन्तु सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि आज का व्यक्ति भाग्य-वादी बनकर अपने प्रत्येक कष्ट के लिए दुर्भाग्य को ही उत्तरदायी ठहराता है । 'रुकिया बुढ़िया' जैसी कहानियों में जैनेन्द्रकुमार ने जो कथावस्तु दी है वह जीवन के इसी पक्ष का परिचय देती है : "इस कोठरी में, जिसमें दिन में रात में रहती है, और रात में जिसमें उस बुढ़िया और उन चूहों के अतिरिक्त शायद केवल नरक ही रह सकता है....उस कोठरी में कैसे पता चलाती है कि तीन बज गए, समय हो गया, अब चल पड़ना होगा । पर इसमें चूक नहीं होती । फूल लेकर, कोई नहीं पहुँचता,

---

१ 'सारिका', अगस्त १९६२, पृ० १५.

तभी जमनाजी पहुँच जाती है, और सड़क के मोड़ पर बैठ जाती है। बैठी-बैठी डलिया सामने लिये वह सोचती है...नहीं, सोचती नहीं है। सोचने को उसके पास है क्या ? सब ठीक ही ठीक है...सो उसके मन में मालिक के लिए धन्यवाद ही है। और कुछ निर्माल्य के आँसू भी हैं....नहीं, सोचती नहीं है,...ठिठुरी बस बैठी रहती है।... नहीं जी, ठिठुरी भी कहाँ बैठी रहती है ..बस, तभी जमना वालों का आना-जाना लग जाता है। उस समय वह काम से भर उठती है। जल्दी-जल्दी फूल परशाद के दोने लगाने लगती है। कहती, 'भाई जी, फूल परशाद ले जाओ।"[1]

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपनी अनेक कहानियों में कथावस्तुगत यथार्थ का जो चित्रण किया है उसका आधार आधुनिक युग में प्रचलित नीतिपरक मान्यताओं की विषमता है। 'अज्ञेय' ने प्रमुख स्तर पर प्रेम को एक ऐसी आवश्यकता बताया है जो व्यक्ति को अन्य क्षुधाओं की भाँति ही एक स्थिति में ला देती है। शिष्टाचार और मर्यादा के आचरण के कारण प्रायः मनुष्य इसे स्वीकार नहीं कर पाता परन्तु जब इसका आवेग इतना बढ़ जाता है कि असह्य हो जाय तब उसे स्वीकारोक्ति करनी पड़ती है। निम्नलिखित उद्धरण में इसी प्रकार की एक स्वीकारोक्ति है : "और एक विस्मय में महेश सोचता है, मंसो ने इतनी गहरी अनुभूति, इतनी सर्वग्रही विदग्धता कहाँ पाई जो उसकी चितवन में व्यक्त हो रही है। उसमें इतनी संवेदना, इतनी सहानुभूति, इतना विस्तीर्ण और संपूर्ण भावैक्य है, महेश के साथ....महेश को ऐसा लगता है, उसका अस्तित्व ही मिट गया है, वह मंसो के भाव संसार का एक अंश हो गया है, मंसो के किसी एक स्वप्न का परदा.... उस मंसो के जो स्वयं आज तक उसके स्वप्न का एक परदा थी। उसकी अनुभूति, उसकी चेतना, उसका अस्तित्व मात्र, मानों कुचल कर उसमें से निष्कासित कर लिया जाता है, और वह मंसो से एक संपूर्ण एकान्त, आत्यन्तिक एकत्व प्राप्त कर लेता है, कैवल्य....।"[2]

इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तर युग के अधिकांश कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में कथावस्तु का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है वह समाज के यथार्थ पहलुओं से सम्बन्धित है। समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्गों के जीवन को आधार बनाकर अनेक प्रकार की विडम्बनाओं, कुरीतियों और रूढ़ियों का चित्रण हुआ है। आज के युग में सभ्यता और संस्कृति का जिस रूप में विकास हुआ है उसके कारण कभी-कभी व्यक्ति को अपनी भावनाओं को शिष्टाचार के आवरण में दबाए रखना पड़ता है। समाज के मूल्य भी उनकी पूर्ति में बाधक होते हैं। अशिक्षा, अज्ञान और निर्धनता

---

१. 'जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियां', श्री जैनेन्द्रकुमार, सन १९६०, पृ० ८१.
२. 'परम्परा', श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', पृ० ९०,

इस युग के सबसे बड़े अभिशाप हैं जो पोषण का आधार हैं। प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानियों में आयोजित कथावस्तु समाज की इन्हीं यथार्थताओं की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत की गयी है।

**प्रेमचन्दोत्तर युगीन कहानी में पात्रगत यथार्थ**—प्रेमचन्दोत्तर युग के कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में जो पात्र आयोजित किये हैं, वे समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्गों का सही प्रतिनिधित्व करते हैं। ये पात्र कल्पना की उपज नहीं हैं, इसीलिए इनकी प्रतिक्रियाएँ स्वाभाविक हैं। इस युग के प्रमुख लेखकों में यशपाल ने अपनी कहानियों में समाज के सभी वर्गों के प्रतिनिधि चरित्र चित्रित किये है। ये चरित्र जीवन की विविध क्षेत्रीय यथार्थताओं के बोधक हैं। पुलिस विभाग के कतिपय ऐसे चरित्र उन्होंने मान लिए हैं जो पाठक के सामने न केवल पात्र विशेष का यथार्थ चित्र उपस्थित कर देते हैं वरन् उससे सम्बन्धित पूरे विभाग की चारित्रिक मनोवृत्ति की विवृत्ति करने में समर्थ है। यहाँ पर यशपाल की लिखी हुई 'वर्दी' शीर्षक कहानी से पात्रगत यथार्थ का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है: "बड़े जमादार अनेक वर्ष से विधुर थे परन्तु खाना बनाने या कोठरी में झाड़ू बुहारी के लिए उन्हें कोई परेशानी नहीं थी। सब चपरासी, दरबान सरदार जी की सेवा के लिए अपने पिता की सेवा से भी अधिक तत्पर रहते थे। एक दरबान समीप के नल से नहाने के लिए पानी की बाल्टी ले आता, दूसरा सुबह ही चूल्हे में आग जला कर उनके लिए छोटी बाल्टी भर चाय तैयार कर देता। सन्ध्या जमादार दफ्तर से लौटते तो दो आदमी उन्हें क्वार्टर तक छोड़ने आते। जब तक जमादार जरा दम लेकर वर्दी उतारते तब तक आदमी चूल्हा सुलगाकर चाय के लिए पानी चढ़ा देता। दूसरा उनके खुली हवा में बैठने के लिए आँगन में खाट निकाल कर बिछा देता। ऐसे ही समय पर खाना, झाड़ू बुहारी सब हो जाता। बुढ़ापे में जमादार के घुटने गठिया वाय से दरद करने लगे थे। घुटनों पर गरम तेल की मालिश भी हो जाती। उन्हें कभी पीने के लिए, घड़े से लोटे या गिलास में पानी भी उड़ेलना न पड़ता।"[१]

भगवतीचरण वर्मा ने 'काश कि मैं कह सकता' शीर्षक कहानी में एक ऐसे पात्र का चरित्र चित्रण किया है जो अपने हृदय में छिपे हुए रहस्यों के भार से सदैव दबा रहता है और कभी भी अपनी कथा को किसी दूसरे पर व्यक्त नहीं करता। वर्मा जी की धारणा है कि आधुनिक समाज में व्यक्ति का जीवन इतना विषमतापूर्ण हो गया है कि उसे परस्पर विरोधी नीतियों से बहुत अधिक संघर्ष करना पड़ता है और उसके मन में इस प्रकार की भावना स्वभावतः उठती है: "काश कि मैं कह

---

१. **'ओ भैरवी', श्री यशपाल, सन १९५८, पृ० २५.**

सकता । लेकिन नहीं, यह सम्भव नहीं । कौन कह सकता है और कौन कह सकेगा ? इन रहस्यों को सुलझाने का एक अविकल-विफल प्रयत्न अनादि काल से होता रहा है और अनन्त काल तक होता रहेगा, पर एक भयानक उलझन से भरी हुई जिन्दगी को लेकर आने वाले और अन्त में जिन्दगी की उलझनों को दूसरों के कन्धों पर और भी विकृत रूप करके डालकर चले जाने वाले मनुष्य के अधिकार के बाहर की बात है कि वह रहस्यों को सुलझा सके । पर फिर भी इन रहस्यों के प्रति उदासीन हो सकना भी तो मेरी ताकत में नहीं है । यह जानते हुए कि पत्थर पर सिर पटकने से सर ही फूटता है, पत्थर नहीं, मैं पत्थर पर सर पटक रहा हूँ ।"[१]

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने प्रेमचन्दोत्तर युग में जो कहानियाँ लिखी हैं, उनमें पात्र-योजना अथवा चरित्र-चित्रणगत यथार्थ के अनेक उदाहरण दृष्टिगत होते हैं । 'अश्क' की धारणा है कि आज के समाज में यहाँ प्रत्येक व्यक्ति जीवन संघर्षों में पूर्णता लिप्त है वहाँ दूसरी ओर कुछ व्यक्ति इससे इतने तटस्थ हैं कि उनके लिए, सारा संसार एक तमाशा अथवा माया है ऐसे व्यक्ति जीवन के किसी भी सुख-दुख और रागरंग से अप्रभावित रहते हैं । 'तमाशा' शीर्षक कहानी में 'अश्क' ने ऐसे ही एक पात्र का चरित्र प्रस्तुत किया है जो इस वर्ग का प्रतिनिधि उदाहरण कहा जा सकता है । इस कहानी का एक अंश यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है : 'बैजनाथ उन लोगों में से है, जो इस जीवन को महज तमाशा समझते हैं । अपने आप को साधु सन्यासी समझ कर इस तमाशे से मुँह नहीं मोड़ते, न ही दार्शनिकों की भाँति निर्लिप्त भाव से इसे देखते हैं बल्कि तमाशाई बनकर रस लेते हैं । बैजनाथ का यह दोष समझिए कि उसे भलाई-बुराई से मतलब नहीं, तमाशे से मतलब है । दुखद से दुखद स्थिति में ही वह रस ले लेता है ।"[२]

मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी कहानियों में समाज के ऐसे वर्गों से पात्र चयन किया है जो आधुनिक जीवन के यथार्थ पक्षों से सम्बन्धित है । आज के समाज में ऐसे बहुत से परिवार हैं जहाँ बाह्य रूप से सारा सुख और वैभव उपलब्ध होने पर भी आन्तरिक रूप से शान्ति नहीं है । 'सोख्ते का टुकड़ा' जैसी कहानियों में मन्मथनाथ गुप्त ने यह संकेत किया है कि शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के समस्त संस्कारों के होते हुए भी व्यक्ति के मन में जब कोई कुण्ठा समा जाती है तब वह किसी भी सीमा का अतिक्रमण कर जाती है : "रेखा की उम्र तीस से अधिक हो चुकी थी । दो बच्चों की माँ थी । अपनी जान में सुखी थी । पति काफी पैदा करते थे । गहने थे । निजी

---

१. **'दो बांके', 'श्री भगवतीचरण वर्मा, पृ० ३१.**

२. **'छींटे', श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', पृ० २४१.**

मकान था । जवानी थी अपनी तथा पति की । बच्चे स्वस्थ थे । बड़ा बच्चा, विन्धया, स्कूल जाता था । छोटा बच्चा, हिम, अभी घर ही में पढ़ता था । रेखा की तरह उच्चाकांक्षा से शून्य साधारण स्त्री के सुखी रहने के लिए और किस बात की जरूरत थी ?....तो वह बहुत सुखी थी । पर उसका यह सारा सुख एक दिन एक मुहूर्त के अन्दर काफूर हो गया । उसके पैर के नीचे से जमीन खिसक गई । सारा जगत उसके सामने अन्धकार पूर्ण हो गया ।"[१]

इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानीकारों में अधिकांश ने अपनी रचनाओं में समाज के विभिन्न वर्गों के यथार्थ चरित्र प्रस्तुत किये हैं । जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, हिन्दी कहानी के विकास क्रम में धीरे-धीरे चरित्र प्रधान कहानियाँ अधिक लिखी गयी हैं । इलाचन्द जोशी, भगवतीचरण वर्मा, विनोदशंकर व्यास, रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल तथा भगवतीचरण वर्मा आदि की कहानियाँ भी इसी वर्ग की हैं । इनमें आयोजित पात्र सामाजिक जीवन के विभिन्न वर्गों की मनोवृत्ति, भावनाओं और कुण्ठाओं का यथार्थ परिचय प्रस्तुत करते हैं ।

**प्रेमचन्दोत्तर कहानी में कथोपकथनगत यथार्थ**—कहानी के विभिन्न तत्वों में कथोपकथन के अन्तर्गत भी यथार्थ के बढ़ते हुए आग्रह को प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानीकारों की रचनाओं में देखा जा सकता है । इस युग के प्रमुख कहानीकार इलाचन्द्र जोशी की मनोवैज्ञानिक कहानियों की पृष्ठभूमि में जो कथोपकथन प्रस्तुत किये गये हैं वे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से तो अर्थपूर्ण हैं ही, साथ ही स्वाभाविकता और यथार्थता की दृष्टि से भी उल्लेखनीय हैं । इस दृष्टिकोण से जोशी जी की कहानियों में एक प्रतिनिधि रचना 'क्रान्तिकारिणी महिला' का उल्लेख करना यहाँ असंगत न होगा । इन कहानी में उन्होंने जो कथोपकथन प्रस्तुत किये हैं, वे यथार्थपरक पृष्ठभूमि के कारण महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं । इस कहानी से संवाद योजना का एक अंश यहाँ पर उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है : "अचानक वह बोल उठी—आप टकटकी बाँधे मेरी ओर क्यों देख रहे हैं ? आप क्या यह भी नहीं जानते कि किसी स्त्री को इस प्रकार घूरना शिष्टता के विरुद्ध है ?" उसके होठों पर व्यंग्य की कुटिल हँसी झलक रही थी । घूरना शिष्टता के विरुद्ध है ?

मैंने घबराकर कहा—नहीं, नहीं, मेरा इरादा वैसा नहीं था....।

'कैसा नहीं था ? आप बड़े भोले हैं ।' वह अधिक देर तक हँसी को दबा न सकने के कारण जोर से खिलखिला पड़ी । लज्जा से मेरा मुँह लाल हो आया । पर मैंने तत्काल अपने को संभाल कर इस व्यंग्य का बदला लेने के लिए कहा—'माफ

---

१. **'दूर की कौड़ी'**, श्री मन्मथनाथ गुप्त, सन १९५०, पृ० १३.

कीजिए बहन जी, पर एक बात मैं आप से कहना चाहता हूँ। वह यह कि आप साधारण स्त्री नहीं हैं।'

'साधारण स्त्री नहीं हैं।' इस बार उसने वास्तव में आश्चर्य का भाव प्रकट किया। मैं उठ खड़ा हुआ। बोला—'इस समय देर हो रही है, जाता हूँ, पर आज की रात मुझे सदा याद रहेगी, और आप को मैं कभी नहीं भूलूँगा।'[1]

भगवतीचरण वर्मा की कहानियों में कथोपकथन का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है वह मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में आधुनिक जीवन की उन विडम्बनाओं का चित्रण करते हैं जिन पर मनुष्य का कोई वश नहीं है क्योंकि वह अपनी मनोभावना के वशीभूत होकर संघर्षपूर्ण स्थिति में पड़ जाता है। इस प्रकार के कथोपकथन का उदाहरण वर्मा जी की लिखी हुई 'वह फिर नहीं आई' शीर्षक कहानी में दृष्टिगत होता है। इस कहानी में लेखक ने आधुनिक युग में अर्थप्रधान मूल्यों से ग्रस्त समाज के कटु सत्य का प्रभावशाली चित्रण कथोपकथन के माध्यम से किया है: ''आप का रुपया...वह है कहाँ आपके पास? ज्ञानचन्द्र जी, मेरे ऊपर रहम कीजिए, अगर जीवनराम को कुछ हो गया, तो मैं जिन्दा न रहूँगा।'

मैंने एक व्यंग भरी मुस्कराट के साथ कहा, श्यामला, मेरे रुपयों को जाल-साजी निकालने में तुम लोगों ने मेरे ऊपर कब रहम किया?'

'वह मजबूर हो गया था ज्ञानचन्द्रजी, उसने जो कुछ किया, वह अपनी मर्जी के खिलाफ।'

'अपनी मर्जी के खिलाफ। क्यों एक ओर झूठ बोल रही हो?'

'मैं जानती हूँ कि आप को मेरी बात पर यकीन होगा, लेकिन मैं आप से सौगंध से कहती हूँ और सौगंध अपने जीवनराम की। आप मेरी बात सुन लीजिए।'[2]

यशपाल ने अपनी कहानियों में कथोपकथन का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है वह कहीं-कहीं पर अति यथार्थवादी अथवा प्रकृतिवादी हो गया है। इस प्रकार के स्थल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भले हों औचित्यपूर्ण हों परन्तु परम्परागत भावनाओं के विरोधी होने के कारण अधिक ग्राह्य नहीं हो सकते। उदाहरण के लिए यशपाल की लिखी हुयी 'धर्म रक्षा' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी के कथोपकथन अति यथार्थपरक अथवा प्रकृतिवादी अवश्य हैं परन्तु इनके मूल में धर्म की रूढ़ मान्यताओं के प्रति कटु व्यंग्य की भावना प्रधान है। यही इनका औचित्य है इस कहानी से ऐसा ही एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है: 'मोतीराम लौट आया। ज्ञानवती ने दुखी स्वर में उसे कमला की अवस्था सुनाई। गैया अब भी व्याकुलता से

---

१. 'दीवाली और होली', श्री इलाचन्द्र जोशी, पृ० १६१.

२. 'आग और चिनगारी', श्री भगवतीचरण वर्मा, पृ० ३२.

रस्सी तुड़ा रही थी । मोती राम ने गैया देखी और बेपरवाही से बोला 'गैया बाहर जायगी' बीबी जी रुपये दो ।'

'कहाँ ?' ज्ञानवती ने चिन्ता से पूँछा, 'पशु-अस्पताल ?'

'सांड के पास जायगी' मोतीराम ज्ञानवती के अज्ञान पर हंस दिया ।

'हाय क्यों ?' ज्ञानवती ने आग्रह किया । यह समस्या गुरुकुल में कभी उसके सामने न आयी थी । पुस्तक में इस विषय में कुछ पढ़ा नहीं था ।

'आप रुपये दीजिये ।'

प्रो० महाशय मोतीराम से पैसे-पैसे का हिसाब पूछते थे । ज्ञानवती ने भी पूछा—'रुपये का क्या होगा ?'

'सांड़वाला लेता है ।'

'किसलिये । '

'गैया नयी होगी, ठीक हो जायगी ।'

'कैसे ?' फिर ज्ञानवती ने आग्रह किया ।

'लौट कर बताऊँगा ।'[१]

जैनेन्द्रकुमार की कहानियों में भी कथोपकथन का यथार्थ रूप उपलब्ध होता है । उनकी कहानियों में संवाद-योजना की दृष्टि से एक उल्लेखनीय विशिष्टता यह मिलती है कि उन्होने अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं की पृष्ठभूमि में विभिन्न क्षेत्रीय विरूपताओं का चित्रण किया है । उदाहरण के लिए बाल और किशोर वर्ग में चोरी की जो आदत पड़ जाती है उसके कारण अनेक अस्वस्थ परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं । उसका स्वाभाविक चित्रण करते हुए उन्होंने कथोपकथन रचना के यथार्थपरक उदाहरण अपनी 'पाजेब' शीर्षक कहानी में प्रस्तुत किये हैं : अन्त में हार कर मैंने कहा कि—'वह कहीं तो होगी । अच्छा तुमने कहाँ से उठाई थी ?'

'पड़ी मिली थी ।'

'और फिर नीचे जाकर वह तुमने छुन्नू को दिखायी ?'

'हाँ ।'

'फिर उसी से कहा कि इसे बेचेंगे ?'

'हाँ ।'

'कहाँ बेचने को कहा ?'

'कहा, मिठाई लायेंगे ।'

'अच्छा नहीं, पतंग लायेंगे ।'

'अच्छा, पतंग को कहा ?'

'हाँ ।'

---

१. 'फूलों का कुरता', श्री यशपाल, पृ० १००-१०१.

'सो पाजेब छुन्नू के पास रह गई ?'

'हाँ ।'

'तो उसी के पास होनी चाहिए न या पतंग वाले के पास होगी । जाओ बेटा, उससे ले आओ । कहना हमारे बाबूजी तुम्हें इनाम देंगे ।'[१]

प्रेमचन्दोत्तर काल की एक प्रमुख कहानी लेखिका सुश्री कमलादेवी चौधरी की रचनाओं में कथोपकथनगत यथार्थ का प्रभावशाली रूप दृष्टिगत होता है । उनकी कहानियों में संवाद की एक विशेषता यह है कि उनमें बहुधा निम्न दलित और उपेक्षित वर्गों के पात्रों के माध्यम से ठेठ आंचलित और ग्रामीण बोलियों की शब्दावली प्रयोग हुई है । उसका परिणाम यह हुआ है कि उनमें न केवल स्वाभाविकता और यथार्थता छा गयी है वरन् उनकी अभिव्यंजनात्मक सामर्थ्य भी बढ़ गयी है । कमलादेवी चौधरी की लिखी हुई 'भिखमंगे की बेटी' शीर्षक कहानी में आयोजित वार्तालाप उस दृष्टि से उल्लेखनीय है । उसी कहानी से संवाद-योजना का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है : "एक दायं रोटी को बहिनी हमहु का बनाय केर खवावो ।"

'रोटी तो भैया, हियां मालकिन बनाने न देहैं । भैया तुमका आम खवाउब ।'

'...हियन आम कहाँ पइहौ, बहिनी ।'

'भइया, मंडी से चुराय लाउब । हम बहुत दायं लाहन हन ।'[2]

प्रेमचन्द्रोत्तर युग के कतिपय आदर्शपरक कहानीकारों की रचनाओं में भी कुछ स्थलों पर यथार्थपरक संवाद-योजना दृष्टिगत होती है । उदाहरण के लिए यहाँ पर राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का नाम भी उल्लिखित किया जा सकता है । उन्होंने अपनी अनेक कहानियों में स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक कथोपकथन यथार्थपरक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है । यहाँ पर उनकी एक प्रतिनिधि कहानी से इसी प्रकार के कथोपकथन का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जो इस दृष्टि से उल्लेखनीय है : "पदमा ! तुम यहाँ कैसे । उन्होंने छूटते ही पूछा । वह बड़े मीठे स्वर में हँस कर बोली—'वाह ! आप भूल गये अपनी बात । दिल का दर्द ही न दिल की दौलत है । आदमी के साथ आदमी का बर्ताव न रखा तो फिर हम आदमी रहे...'

'मियाँ की जूती मियाँ के सर ।' मिश्र जी पानी पानी हो गये । बोले—'भोला, मुझसे बड़ी भूल हुई...माफ करो ।'[3]

---

१ 'जैनेन्द्र की कहानियां', दूसरा भाग श्री जैनेन्द्रकुमार, सन १६६०, पृ० ५४-५५.

२. 'उन्माद', सुश्री कमलादेवी चौधरी, पृ० ६६.

३. 'गांधी टोपी', श्री राधिकारमण प्रसाद सिंह, पृ० ४१.

इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानीकारों की रचनाओं में आयोजित वार्तालाप बनावटीपन और नाटकीयता से युक्त हैं। उनमें कुत्रिम भावावेश का समावेश करके चमत्कारिकता नहीं उत्पन्न की गयी है। इसके विपरीत उनमें मनोवैज्ञानिकता और यथार्थता दृष्टिगत होती है। यहाँ पर प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानो में संवाद-योजना अथवा कथोपकथन तत्वगत यथार्थ के जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं उनमें यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस काल की कहानी में नियोजित समस्याएँ वास्तविक जीवन से सम्बन्धित हैं और इसीलिए पात्रों में आयोजित वार्तालाप भी स्वाभाविक और यथार्थ हैं।

प्रेमचन्दोत्तर कहानी में भाषा तत्वगत यथार्थ का स्वरूप—प्रेमचन्दोत्तर-युगीन कहानी में भाषा तत्व के क्षेत्र में भी यथार्थता का आग्रह बराबर बढ़ता रहा है। इस काल के कहानीकारों ने वास्तविक जीवन के जो चित्र प्रस्तुत किये हैं, उनके चित्रण में स्वाभाविक और बोलचाल की भाषा ने भी योग दिया है। इस युग के कहानीकारों में जैनेन्द्र कुमार की कहानियों में भाषा तत्व यथार्थ की दृष्टि से भाषा का अटपटापन ही व्यावहारिकता की दृष्टि से स्वाभाविक प्रतीत होता है। उन्होंने बोलचाल की भाषा का प्रयोग कहानी में वर्णित सामान्य परिस्थितियों के लिए किया है। इस प्रकार की रचनाओं में उनकी एक प्रतिनिधि कहानी 'पूर्व वृत्त' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा चुका है। इस कहानी में आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है। इसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ पर उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही हैं: "अदालत में आज बड़ी भीड़ है। अखबारों में इनकी खूब चर्चा है। मामला यह है कि प्रशान्त का कहना है कि शान्ति उसकी विवाहिता है। और शान्ति का दावा है कि यह सब उसके पिता से पैसा ऐंठने का उपाय है। उसने अखबार में यह छपा कर कि मेरा उससे विवाह हुआ है, मुझे बदनाम करने की कोशिश की है।...दावा शान्ति की ओर से है। प्रशान्त के साथ दूसरा अभियुक्त अखबार का सम्पादक है, जिसने यह खबर छापी है।"[1]

प्रेमचन्दोत्तर कहानी में भाषा तत्वगत यथार्थ का स्वरूप उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की कहानियों में भी दृष्टव्य है। 'अश्क' की भाषा की विशेषता यह है कि उसमें प्रादेशिक और स्थानीय शब्दों के प्रयोग के साथ बोलचाल के शब्दों की ऐसी योजना रहती है जो कहानी की प्रभावात्मकता और यथार्थात्मकता में वृद्धि कर देती है। उदाहरण के लिए 'अश्क' की लिखी हुई 'गोखरू' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें प्रादेशिक विशेषताओं के माध्यम से भाषा को यथार्थपरक बनाने का

१. 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', चौथा भाग, श्री जैनेन्द्र कुमार, पृ० १२७.

प्रयत्न किया गया है। 'अश्क' की इसी कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है : "फिटकरी, शोरे और नमक के पानी में घुले, कमरे के अंधेरे में जगमगाते, पीले सुनहरे गोखरू देखते-देखते मालवीय की आँखों में आँसू भर आए। निमित्त मात्र के लिए उसके सामने एक चित्र घूम गया.... उसका अपना ही चित्र उन दिनों का, जब जीवन में सब कुछ अच्छा लगता था। भाई से झगड़ा, पिता का क्रोध से झुंझलाकर गालियाँ देना और खीझ कर माँ का पीट बैठना, सब कुछ भला मालूम होता था। बसन्त की अपेक्षाकृत लम्बी दुपहरी अब अपनी स्निग्ध, सुनहरी धूप से सपनों का संसार बसा देती थी और अपने बड़े खुले आंगन में त्रिजन के गीत गाते-गाते वह किसी ऐसे सपनों की दुनिया में खो जाती थी।"[1]

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने अपनी कहानियों में पंजाबी, उर्दू, संस्कृत और हिन्दी के मिलेजुले शब्दों का जो प्रयोग किया है उससे भाषा में पर्याप्त यथार्थता और प्रभावात्मकता आ गयी है। यह भाषा उन स्थलों पर अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है, जहाँ पर लेखक ने विभिन्न वर्णनात्मक प्रसंग प्रस्तुत किये हैं। उदाहरण के लिए चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की लिखी हुई 'गुलाब' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी में लेखक ने कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया है। इस कहानी से भाषा के यथार्थ स्वरूप का एक उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है : "श्रीनगर से जो सड़क शाही चश्मे की तरफ गयी है, वह टेढ़ी-मेढ़ी होकर एक सुन्दर पहाड़ी के दामन में इस तरह लेटी हुई है जैसे महादेव की जटा में सांप लिपटा हुआ हो। सड़क के आस-पास ज्यादा आबादी नहीं है। सिर्फ चिनार और सफेद्रे के घने वृक्षों की छाया में कहीं-कहीं कश्मीरी किसानों के पाँच-पाँच, सात-सात लकड़ी के दुमंजिले मकान हैं। सड़क रात के समय बिल्कुल सुनसान पड़ी रहती है। दिन में मौके-बे-मौके भोंपों-भोंपों करती हुई मोटर या लारी तेजी से इस सड़क से निकल जाती है। किसी-किसी समय लकड़ी के भारी पहियों की सुस्त चुरमुराहट के साथ मस्त और बेफिक्र आवाज में गाते हुए गाड़ीवानों की आवाज भी इस मार्ग के सन्नाटे को भंग करती है।"[2]

इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानीकारों की भाषा धीरे-धीरे नये संस्कारों को ग्रहण करती प्रतीत होती है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है कि इस युग में सामाजिक परिवर्तन जितनी तीव्र गति से हो रहे थे, जनता की भाषा का स्वरूपगत विकास भी उतनी ही ज्यादा तेजी से होता जा रहा था। शिक्षा के प्रसार

१. 'अश्क की सर्वश्रेष्ठ कहानियां', श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', पृ० २०.
२. 'तीन दिन', श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पृ० ४४.

और सांस्कृतिक विकास के कारण भाषा में जहाँ एक ओर बहुरूपता आ रही थी, वहाँ दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता के लिये किये गये प्रयत्नों के फलस्वरूप हिन्दी में दूसरी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग बढ़ रहा था। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैसे लेखक उर्दू से हिन्दी में आये थे और उन्होंने धीरे-धीरे इन भाषाओं का समन्वय किया था। इसके अतिरिक्त इस काल का साहित्य भी जनता के अधिक निकट होने से जनभाषा में लिखा गया था जो इस युग की प्रतिनिधि भाषा का उदाहरण कही जा सकती है।

प्रेमचन्दोत्तर कहानी में शैली तत्वगत यथार्थ—प्रेमचन्दोत्तर युग के कहानी साहित्य में एक विशेषता उसका शैली तत्वगत यथार्थ भी है। उस काल के कहानीकारों ने जहाँ एक ओर शैली के क्षेत्र में नये प्रयोग किये वहाँ दूसरी ओर इस बात का भी ध्यान रखा कि उनकी शैली में यथासम्भव नाटकीयता और बनावटीपन न आये और वह अधिक से अधिक स्वाभाविक बन सके। अवध प्रदेश के नवाबी इतिहास को अपनी रचनाओं में साकार कर देने वाले कहानीकार भगवतीचरण वर्मा की रचनायें शैलीगत यथार्थ की दृष्टि से विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। उनकी लिखी हुई एक प्रसिद्ध कहानी 'दो बाँके' का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है जो अनेक दृष्टियों से एक महत्वपूर्ण रचना है। इस कहानी में लेखक ने अवध की प्राचीन राजधानी में नवाबी युग के अवशिष्ट रूपों का व्यंग्यात्मक रूप में चित्रण किया है। इसी कहानी से यहाँ पर एक संक्षिप्त उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जो शैलीगत यथार्थता और स्वाभाविकता की दृष्टि से उल्लेखनीय है : "शायद ही कोई ऐसा अभागा हो जिसने लखनऊ का नाम न सुना हो और युक्त प्रान्त में ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तान में और मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि सारी दुनिया में लखनऊ की शोहरत है। लखनऊ के सफेदा आम, लखनऊ के खरबूजे, लखनऊ की रेवड़ियाँ, ये सब ऐसी चीजें हैं, जिन्हें लखनऊ से लौटते समय लोग सौगात की तौर पर साथ ले जाया करते हैं, लेकिन कुछ ऐसी भी चीजें हैं, जो साथ नहीं ले जाई जा सकतीं, उनमें लखनऊ की जिन्दादिली और लखनऊ की नफासत विशेष रूप से आती है।"[1]

जैनेन्द्रकुमार की कहानियों में शैली तत्व का जो रूप उपलब्ध होता है वह परम्परागत नाटकीय शैली से भिन्न है और उसमें पर्याप्त स्वाभाविकता साबित होती है। सामान्य रूप से मनोवैज्ञानिक कहानियों में भावात्मक शैली का प्रयोग नहीं किया जाता क्योंकि उसमें कृत्रिमता आ जाती है परन्तु जैनेन्द्रकुमार ने उसी शैली का प्रयोग किया है और उसमें पर्याप्त सजीवता आ-गयी है। जैनेन्द्रकुमार की लिखी हुई "रुकिया बुढ़िया" शीर्षक कहानी से इस प्रकार की शैली का एक उदाहरण यहाँ पर

१. 'दो बांके', श्री भगवतीचरण वर्मा, पृ० ११०.

प्रस्तुत किया जा रहा है : "और दीना ! दीना उतावला है, इससे जल्दी अंधा जाने वाला है। उसे अतृप्ति चाहिए। तृप्ति झेलने की उसमें सामर्थ्य नहीं। इसी से तृप्ति की भूख उसमें लपटें मारती रहती हैं। और यहाँ अब वह बहुत सिर पटक चुका है। उसे रोजी के लिये कोई काम भी नहीं मिल सका है। वह असंतुष्ट है। असंतोष भीतरी है, इससे सब ओर फैल रहा है और आसपास जो है, उन सभी पर अपने फन पटकता है। ऐसे समय उसे चाहिए नशा। ऐसे समय उसे चाहिए थपकी नहीं, चोट। विहित, युक्त, गम्भीर, मीठा प्रेम नहीं, धुआँधार, उन्मत्त, चरपरा, चुटीला, सकटाक्ष, निशिद्ध प्रेम, जो डंक मार-मार कर उसे चेताए रखे। नहीं तो वह जड़ होता जा रहा हो।"[1]

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानियों में मध्ययुगीन सामन्ती जीवन को प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया गया है। इस परम्परा के वर्तमान क्रम में आज के छोटे-बड़े जमीन्दार पशु-पक्षियों की लड़ाई का आयोजन कर मनोरंजन करते हैं। चन्द्रगुप्त विद्यालंकर की लिखी हुई 'गौरा' शीर्षक कहानी में बैलों की लड़ाई से सम्बन्धित घटना का वर्णन सहज और स्वाभाविक शैली में किया गया है जिसमें कृत्रिमता का अभाव है। इस कहानी में लेखक ने इसी रोचक प्रसंग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है : "इधर लोगों का यकीन था कि जमींदार के बैल का गौरा से कोई मुकाबला ही नहीं है। यदि दोनों बैलों को भिड़ा दिया जाय तो गौरा एक ही बार में जमींदार के बैल को दूर पटक दे। इस कारण लोग जीवन भर इस वीर को प्रदर्शन में सम्मिलित होने के लिये जोर डाल रहे थे। मगर एक इंकार करता था। मगर यार लोग कब मानने वाले थे।··· आखिर लोगों ने इस वर्ष की प्रदर्शनी में सम्मिलित होने के लिए जीवन को तैयार कर ही लिया।"[2]

मन्मथनाथ गुप्त की कहानियाँ मुख्य रूप से सामाजिक और राजनैतिक पृष्ठभूमि पर लिखी गयी हैं। उनमें जीवन के विभिन्न पक्षों का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। उदाहरण के लिये यहाँ पर शैलीगत यथार्थ की दृष्टि से मन्मथनाथ गुप्त की लिखी हुई 'तीसरी बीवी' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी में लेखक ने एक रोचक कथा-सूत्र का प्रस्तुतीकरण प्रभावशाली शैली में किया है, जो यथार्थता और स्वाभाविकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी कहानी से इस प्रकार की शैली का एक उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुतः किया जा रहा। "अब हम घनश्याम बादशाह का भी कुछ परिचय दे। इकहरा बदन, लम्बाई पाँच फीट आठ इंच, रंग

---

१. 'जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियां', श्री जैनेन्द्र कुमार, सन १९६०, पृ० ७८.
२. 'चन्द्रकला', श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकर, पृ० ८२.

गंदुमी, आँख के नीचे मोटी कारिख, आँखें बड़ी-बड़ी, इतनी बड़ी कि निकली आ रही थीं। घनश्याम के चौदह पुरखों में कोई भी बादशाह, राजा यहाँ तक कि राय साहब भी नहीं था, फिर भी मित्रों ने जो देखा कि आवारगी में नम्बर मार ले गये हैं तो नाम के साथ बादशाह जोड़ दिया। इस प्रकार यह बादशाह शब्द घनश्याम की डिग्री की तरह था। गांजा और चरस पीने में घनश्याम ने संसार-त्यागी साधुओं को भी हरा दिया था। सब तरह की दुष्टता तथा बदमाशी में उसके बराबर यहाँ तक कि शिष्य होने के उपयुक्त इस इलाके में कोई नहीं था। लोग चिन्तित थे कि इसके मरने के बाद उसकी जगह बादशाह कौन होगा? अस्तु।"[1]

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की कहानियों में शैली-तत्वगत यथार्थता का आधार उसकी व्यावहारिकता और यथार्थता है। छोटी-छोटी घटनाओं और स्थितियों को लेकर उन्होंने सरल चित्र उपस्थित किये हैं। इनमें कहीं-कहीं शिष्टाचार और शालीनता का अतिक्रमण अवश्य हो गया है परन्तु यथार्थता की दृष्टि से यह अवश्य उल्लेखनीय है। उदाहरण के लिए उनकी लिखी हुई एक कहानी का कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है: 'एक ही हरामी है साब। दारू पियत है और जुआ खेलत है....हंसली मांगत रहा गिरवी रखने को। हमने इनकार किया तो उसने हंसली पर हाथ रखा। हम खाना पकावत रहे, चुल्हे से जलती लकड़ी हमने खींच ली कि हाथ हटाय ले नहीं बाँह तोड़ देंगे। तब लगा बाँह छोड़कर गरियाने। हम तो साब सब पैसा पत्ता अम्मा के रख दिया है....साब, अपने भाग में जब सुख नहीं तो कहाँ मिली। हमारी जात में सब दारू पियत हैं, गरियावत हैं और मेहरारुन का पीटत हैं। आप साब, हमें छुट्टी दिलाय दें तो हम आप लोगन की खिदमत करें।'[2]

इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में शैली तत्त्व के अन्तर्गत अनेक प्रयोग किये गये हैं। इस काल के प्रमुख कहानी लेखकों में इलाचन्द्र जोशी, भगवती-चरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि ने जहाँ एक ओर शैली के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किये, वहाँ दूसरी ओर उसे मनोवैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करके अधिक से अधिक यथार्थवादी बनाने की भी चेष्टा की। ऊपर इस युग के प्रतिनिधि कहानीकारों की रचनाओं से शैलीगत यथार्थ के जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये वे इस कथन की पुष्टि करते हैं।

---

१. **'दूर की कौड़ी', श्री मन्मथनाथ गुप्त, सन १९५०, पृ० ५६.**

२. **'पलंग', श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', पृ० ५१.**

**प्रेमचन्दोत्तर कहानी में वातावरणगत यथार्थ**—प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में देशकाल अथवा वातावरण तत्त्वगत यथार्थ का भी प्रभावशाली रूप मिलता है। जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ में संकेत किया जा चुका है, यह युग राजनैतिक और सामाजिक क्रान्तियों का समय था। इस युग के कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में वातावरण के इन्हीं परिवर्तनशील रूपों का चित्रण किया है। प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में राजनैतिक वातावरण के चित्रण में यथार्थपरकता की दृष्टि से यशपाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यशपाल ने द्वितीय विश्वयुद्ध कालीन भारत का चित्रण करते हुए अपनी कहानियों में राजनैतिक क्रान्ति और राजनैतिक आन्दोलनों का भी परिचय दिया है। इस प्रकार के विवरण जहाँ एक ओर लेखक की विचारधारा और दृष्टिकोण के परिचायक होते हैं वहाँ दूसरी ओर उनके समकालीन वातावरण का भी परिचय मिलता है। यशपाल की लिखी हुई 'खुदा की मदद' जैसी कहानियों में इस प्रकार के वातावरण के अनेक चित्र उपलब्ध होते हैं। यहाँ पर इसी कहानी का वातावरणगत यथार्थ का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें लेखक ने यह संकेत किया था कि राष्ट्रीय आन्दोलनों और सरकार की दमन नीति के फलस्वरूप समाज में किस प्रकार का वातावरण था : "सरकार चाहती थी कि हड़ताल किसी तरह न हो, इसलिए शहर में दफा १४४ लगी हुई थी। हुक्म था कि जलसा न हो, जुलूस न निकले। काँग्रेस के नेता डा० साहब की इजाजत से सब कुछ कर सकते थे। मनाही थी सिर्फ मजदूरों को भड़काने वाले लोगों के लिए, जिनसे सरकार को हड़ताल और शान्ति भंग का आदेश था। फिर भी बस्तियों में, पुरवों में, मकानों की दीवारों पर, सड़कों पर चूने से, कोयले से और गेरु से मजदूरों के नारे लिखे दिखाई देते....'चोर बाजारी बन्द करो। मुनाफाखोरों को फाँसी दो। मजदूरों को महँगाई भत्ता दो। रोजी रोटी दो। बिजली पानी दो। जालिम कानून हटाओ। मजदूर नेताओं को छोड़ो।"[1]

जैनेन्द्र कुमार की कहानियों में पर्वत प्रदेश के प्राकृतिक वातावरण का प्रभावशाली रूप उपलब्ध होता है। उन्होंने अपनी विविध विषयक कहानी में प्रकृति वातावरण के जो चित्र प्रस्तुत किये हैं वे किसी काल्पनिक स्थान अथवा भावुक कल्पना की उपज नहीं हैं वरन् वास्तविक स्थानों का यथार्थ चित्र उपस्थित करते हैं। उदाहरण के लिए यहाँ पर जैनेन्द्र की लिखी हुई 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी में जैनेन्द्र कुमार ने नैनीताल प्रदेश के प्राकृतिक वातावरण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है : "नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से, भाप के बादल हमारे सिरों को छू छूकर बेरोक घूम रहे थे। हल्के से प्रकाश और अँधियारी से रंग कर कभी वे नीले दीखते, कभी

---

१. 'फूलों का कुरता', श्री यशपाल, पृ० ५५. ५६.

सफेद और फिर जरा देर में अरुण पड़ जाते। वे वैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।...पीछे हमारे पोलो वाला मैदान फैला था। सामने अँग्रेजों का एक प्रमोद गृह था, जहाँ सुहावना, रसीला, बाजा बज रहा था, और पार्श्व में थी वही सुरम्य अनुपम नैनीताल।...ताल में किश्तियाँ अपने सफेद पाल उड़ाती हुई एक-दो अँग्रेज यात्रियों को लेकर इधर से उधर खेल रही थीं और वहीं कुछ अँग्रेज एक-एक देवी सामने प्रतिस्थापित कर अपनी सुई-सी शक्ल की डोंगियों को मानों शर्त बाँध सरपट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी वंशी पानी में डाले संघर्ष, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली चिन्तन कर रहे थे।"[१]

विष्णु प्रभाकर की कहानियां में वातावरण का जो चित्रण मिलता है उसकी एक उल्लेखनीय विशेपता यह है कि उसमें कहीं-कहीं पर प्रवृत्ति के किसी खास रूप से कहानी के किसी पात्र की मानसिक स्थिति का सामंजस्य किया गया है। इस दृष्टि से विष्णु प्रभाकर का लिखा हुआ 'जिन्दगी के थपेड़े' शीर्षक कहानी संग्रह उल्लेखनीय है। इस कहानी संग्रह की प्रमुख कहानी 'जिन्दगी के थपेड़े' है, जिसके नाम पर इस कहानी संग्रह का शीर्षक रखा गया है। इस कहानी में लेखक ने वातावरण का जो रूप चित्रित किया है वह यथार्थता और मनोवैज्ञानिकता दोनों ही दृष्टियों से महत्व रखती है। इसका एक अंश यहाँ पर उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है: "....उसके सामने कलकल, छलछल करती हुई पहाड़ो नदी थी, जिसका जल पत्थरों से टकराता, शोर मचाता और नाचता हुआ आगे बढ़ रहा था। उसी नदी के किनारे पर धर्मशाला थी। उसके ठीक सामने पुल पार करके सहस्रधारा की काली गुफा दिखाई दे रही थी, जिसकी छाती को चीर कर पानी की असंख्य बूंदें टपक रही थीं, मानों कोई शापग्रस्त वरुण वहाँ आ बसा है और य क्षके समान अपनी प्रियतमा के विरह में रुदन कर रहा है। यह विधाता का वैचित्र्य है कि देवता का रुदन आदमी के रुदन को शान्त करता है। और यही नहीं, अनजाने ही उन अनन्त वर्षों में शापग्रस्त देवता के आँसुओं ने उन बेजान पत्थरों को कला के अनेक रूपों में पलट दिया था।"[२]

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की कहानियों में विभिन्न क्षेत्रीय वातावरण के यथार्थपरक चित्र उपलब्ध होते हैं। उनमें ग्रामीण और नागरिक जीवन की पृष्ठभूमि में विभिन्न मुहल्लों, कूचों, गलियों, सड़कों, गाँवों और नगरों का वातावरण चित्रित हुआ है।

---

१. 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', दूसरा भाग, श्री जैनेन्द्रकुमार, पृ० ६२-६३.

२. 'जिन्दगी के थपेड़े', श्री विष्णु प्रभाकर, पृ० ३४.

प्रकृति के अनेक चित्र भी उनकी रचनाओं में मिलते हैं जो काल्पनिक और भावात्मक न हो स्वाभाविक और यथार्थ हैं। उदाहरण के लिए 'अश्क' की लिखी हुई 'कैप्टेन रशीद' शीर्षक कहानी में प्रकृति का एक ऐसा ही चित्र उपस्थित किया जा रहा है : "सर्दियों के दिन थे और यद्यपि आठ बज चुके थे किन्तु धूप जैसे इस शीत में जागते हुए डर रही थी और इर्द-गिर्द की कोठियों के वासियों की भाँति कहीं पूरब की सेज पर लिहाफ ओढ़े सो रही थी। आकाश की निद्रालस आँखों में अभी रात की खुमारी थी। किन्तु धरती जाग चुकी थी। दोनों ओर की कोठियों में यूकलिप्टस, जामुन, शिरीष, आम, नीम के वृहत् पेड़ों की अपेक्षाकृत नंगी डालियाँ आकाश की निंदासी आँखों को चूम रही थीं। ठंडी हवा चल रही थी और पेड़ों के पत्ते सड़क और फुटपाथों पर उड़ रहे थे।"[1]

इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी साहित्य में प्रतिनिधि लेखकों में वातावरण के प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किये हैं। उनमें जहाँ एक ओर विभिन्न प्राकृतिक स्थानों की पृष्ठभूमि में प्राकृतिक वातावरण में यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, वहाँ दूसरी ओर राजनैतिक और सामाजिक वातावरण के यथार्थ चित्र भो प्रस्तुत किये गये हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान देश में जो आन्दोलन हुए थे और उनका जनता के विभिन्न वर्गों पर जो प्रभाव पड़ा था, उसका भी चित्रण इन कहानिकारों ने किया है। इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस युग की कहानी में ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, भौगोलिक, प्राकृतिक और आंचलिक वातावरण के यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं।

**प्रेमचन्दोत्तर कहानी में उद्देश्य तत्वगत यथार्थ**—प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में उद्देश्य तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से यहाँ पर इस तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक है कि इस युग के कहानीकारों में केवल मनोरंजन के उद्देश्य से कहानी रचना न करके अपनी रचनाओं के माध्यम से नवीन समाज का आवाहन किया है। भगवतीचरण वर्मा की कहानियों में आधुनिक जीवन में नारी की विवशता की पृष्ठभूमि में नारी जागरण के संकेत निहित हैं। वर्मा जी का विचार है कि आधुनिक युग में समस्त सुविधाओं और समानता के होते हुए भी नारी शोषित है। उसकी विवशता के अनेक कारण हैं। वर्मा जी ने अपनी 'विवशता' शीर्षक कहानी में इन कारणों का विश्लेषण किया है। उनका विचार है कि युग-युग के शोषित होने पर भी आज की नारी संस्कारों की विवशता के कारण ही ज्ञानी और शिक्षिता होने पर भी विरोध नहीं करती है। इस कहानी में इसी भाव की अभिव्यक्ति करते हुए लेखक ने बताया

---

१. 'सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ', श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', पृ० १६६.

है कि "मैं पुरुष हूँ, इसलिए कभी-कभी मैं यह विश्वास कर लेने का दम भर लेता हूँ कि मैं स्त्री के प्रति पुरुष के प्रेम को समझता हूँ, पर मैं आज तक पुरुष के प्रति स्त्री के प्रेम को नहीं समझ सका। स्त्री के प्रेम में कितना त्याग है, कितना आत्मसमर्पण है और कितनी विवशता है। मैं सच कहता हूँ कि स्त्री के इस रूप को देख कर मुझे आश्चर्य होने लगता है। मैं कभी-कभी पूछ बैठता हूँ....क्या स्त्री ने प्रेम करने के लिए ही जन्म लिया है ?"[१]

प्रेमचन्दोत्तर काल के विशिष्ट यथार्थवादी कहानीकार यशपाल ने कहानी में उद्देश्यगत यथार्थ पर गौरव देते हुए इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि आधुनिक युग में पुरातन पंथी होकर और समाज की रूढ़िवादी परम्पराओं का अनुगमन करके उसका विकास नहीं हो सकता। इसीलिए अपने एक कहानी संग्रह की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि "मेरे लिये यह विश्वास कर पाना कठिन है कि आज का समाज अतीत की सभी मान्यताओं में भावात्मक और रागात्मक सौन्दर्य की अनुभूति कर सकता है। मैं आज पति के वियोग में पत्नी के चितारोहण में सौन्दर्य नहीं विभीषका ही अनुभव करता हूँ। मैं उस आदर्श को सुन्दर बनाने का यत्न नहीं कर सकता। मैं अतीत में भी किसी पति को पत्नी के वियोग में चिता पर चढ़ने के लिए व्याकुल होने के उदाहरण नहीं देख पाता तो स्त्री पुरुषों की इस समता के विचार के इस युग में मुझे पति के सती होने के आदर्श के प्रति रागात्मक सहानुभूति उत्पन्न करना भीषण अन्याय ही जान पड़ता है। मैं राजा हरिश्चन्द्र द्वारा ऋण शोध के लिए पत्नी को बाजार में बेच डालने की कर्तव्यपरायणता के लिए भी आदर की अनुभूति उत्पन्न नहीं कर सकता, न उसे धर्म समझ सकता। आज की परिस्थितियों में स्वामी भक्ति के लिए आदर उत्पन्न करना मुझे मानव की समता का अपमान और अन्याय को प्रतिष्ठा देने का यत्न ही जान पड़ता है।"[२]

जैनेन्द्रकुमार ने अपनी कहानियों में जीवन की कर्मशीलता की भावना पर बल देते हुए पाठकों को कर्मशील रहने की प्रेरणा दी है। उनका विचार है कि आधुनिक जीवन में इतनी विरूपताएँ हैं और इतने विरोधाभास हैं कि किसी न किसी क्षेत्र में व्यक्ति की कोई न कोई इच्छा अवश्य अपूर्ण रह जाती है। इसलिए संतोष धारण करना चाहिए और अपनी अपूर्ण इच्छाओं को वश में रखना चाहिए जिसमें उसके अभाव की पीड़ा उसे न सता सके। जैनेन्द्रकुमार ने अपनी लिखी हुई 'साधु का हठ' शीर्षक कहानी में यही संदेश प्रस्तुत किया है : "साधु ने जरा मुस्करा दिया, 'हाँ, मैं

---

१. **'दो बांके', श्री भगवतीचरण वर्मा, पृ० ११७.**

२. **'ओ भैरवी', श्री यशपाल, सन १९५८, भूमिका, पृ० ६-७.**

तुम्हारे लिए दुआ मांगूगा और माफी माँगूंगा । मैं दुनिया के लिए यह मांगता हूँ ।' और उसी मुस्कराहट के साथ पूछा, 'कोई बाल बच्चा है ?'

पत्नी ने पति की ओर देखा और पति ने पत्नी की ओर । फिर झट दोनों धरती की ओर देखने लगे ।....पत्नी ने फिर दबी जबान से कहा, 'बाबा, इसके लिए भी दुआ मांगना । बरसों से हमारी साध है । तुम्हारी दुआ लग जायगी, तो जस मानेंगे ।'

साधु ने कहा, 'वह सब कुछ होगा । उससे मांगे जाओ । मन, बुद्धि और देह से जितने तुम समर्थ होगे, जितने के अधिकारी होगे और जितना तुम्हारे लिए उचित और हितकर होगा और जितनी प्रार्थना में शक्ति होगी उतना ही वरदान तुमको उससे मिलेगा । भरोसा रखो, वह सब कुछ देगा ।''[1]

उद्देश्य तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से यहाँ पर विष्णु प्रभाकर की लिखी हुई 'रहमान का बेटा' तथा 'मुक्ता' आदि कहानियों का भी उल्लेख किया ज़ा सकता है । इन कहानियों में लेखक ने राजनैतिक चेतना के जागरण और देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए किये जाने वाले बलिदानों का उल्लेख किया है । 'रहमान का बेटा' शीर्षक कहानी संग्रह में ऐसी अनेक रचनाएँ संगृहीत हैं जिनमें राजनैतिक क्रान्ति और राष्ट्रीय चेतना के विभिन्न रूपों का चित्रण है । उदाहरण के लिए इसी संग्रह की 'मुक्ता' शीर्षक कहानी में लेखक ने स्वतन्त्रता की आवश्यकता और उसके लिए किये जाने वाले बलिदानों का औचित्य सिद्ध करते हुए लिखा है ''कमल ने उसे देखा, वह समझ गया, बोला—'मुला, मुला मुन्ना कैसा है ?''

वह बोली—ठीक है । देखोगे न आओ ।

नहीं, नहीं, उसने कहा—समय कम है, केवल तुम्हें देखने आया था ।

मुला का दिल चीत्कार कर उठा । उसकी आँखें भर आयीं । उसने कहा, 'आपने यह सब क्यों किया ?'

'देश की आजादी के लिए ।'

लेकिन आजादी से इस महानाश का क्या सम्बन्ध है ?

कमल हँसा, बोला—तुम्हारी बात में बल है पर जान लो रानी, आजादी वही ले सकता है जो शक्तिशाली है और यह महानाश हमारी शक्ति का प्रदर्शन है ''[2]

इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी साहित्य में कहानी के प्रायः सभी

---

१. 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', भाग ६, श्री जैनेन्द्रकुमार, पृ० २७.
२. 'रहमान का बेटा', श्री विष्णु प्रभाकर, पृ० २१.

उपकरणों के क्षेत्र में पिछले युग की तुलना में यथार्थ का बढ़ता हुआ आग्रह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ऊपर कहानी की कथावस्तु, पात्र योजना अथवा चरित्र-चित्रण, संवाद योजना अथवा कथोपकथन, भाषा शैली, वातावरण अथवा देशकाल तथा उद्देश्य तत्वगत यथार्थ के जो उदाहरण दिये गये हैं वे यह स्पष्ट संकेत करते हैं कि इस युग के प्रतिनिधि कहानीकारों विशेष रूप से इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्रकुमार, वाचस्पति पाठक, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि की रचनाओं में यथार्थ के प्रति निरन्तर आग्रह बढ़ता रहा है।

## (च) प्रेमचन्दोत्तर कहानी में यथार्थवाद : सिंहावलोकन

प्रस्तुत अध्याय में प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद का जो विवेचन किया गया है वह इस युग की हिन्दी कहानी के स्वरूपगत वैशिष्ट्य का परिचायक है। हिन्दी कहानी के इतिहास में प्रेमचन्दोत्तर तीसरा विकास काल है। यह समय देश के इतिहास में विशेष महत्व का है। सांस्कृतिक क्षेत्र में इस काल में अनेक आन्दोलन हुए और भारत की परम्परागत संस्कृति का विकास होने के साथ साथ पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप संस्कृति का एक नया रूप सामने आया। सामाजिक क्षेत्र में इस युग में अनेक परिवर्तन हुए। वर्ण व्यवस्था के रूढ़िवादी रूप का विरोध हुआ और निम्न वर्गों में नई सामाजिक चेतना जागृत हुई। इस अवधि के दौरान द्वितीय विश्व युद्ध तथा बंगाल के दुर्भिक्ष आदि के कारण देश की आर्थिक स्थिति भी चिन्ताजनक हो गयी। कृषि के क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले संकट के कारण निम्न वर्ग श्रमिक बन गया और औद्योगिक क्रान्ति हुई, राजनीति के क्षेत्र में सबसे अधिक हलचल हुई और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जनता की आवाज को बल देते हुए राष्ट्रीय स्वतंत्रता की स्पष्ट माँग की। साहित्यिक क्षेत्र में भी गद्य और पद्य की सभी विधाओं में नवीन जागरण की अभिव्यंजना हुई और लेखकों ने अपनी जागरूकता का परिचय दिया।

प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रमुख कहानीकारों में इलाचन्द्र जोशी, श्रीमती होमवती देवी, भगवतीचरण वर्मा, विनोदशंकर व्यास, यशपाल, जैनेन्द्रकुमार, वाचस्पति पाठक, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, रामवृक्ष बेनीपुरी, रघुवीर सिंह, कमलादेवी चौधरी, मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', विष्णु प्रभाकर, रामप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी तथा मोहन सिंह सेंगर आदि हैं जिन्होंने विविध विषयक कहानियों की रचना करके प्रेमचन्दोत्तर कालीन कहानी साहित्य को समृद्धि प्रदान की है।

प्रेमचन्दोत्तर काल में पूर्व युग की कहानी की सभी प्रवृतियों का समुचित विकास दृष्टिगत होता है। सामाजिक कहानी की प्रवृति के क्षेत्र में यथार्थवादी दृष्टि का समावेश करते हुए इस काल के लेखकों ने रूढ़िवादिता की समस्या, अन्तर्जातीय विवाह की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, भिक्षावृत्ति की समस्या, धार्मिक आडम्बर, नैतिक विरूपताओं तथा अछूत आदि समस्याओं का चित्रण किया है। ऐतिहासिक कहानी की प्रवृति के क्षेत्र में यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय देते हुए इस युग के कहानीकारों ने मुख्य रूप से मुगल और ब्रिटिश कालीन इतिहास से सम्बन्धित कथासूत्र प्रस्तुत किये हैं। धार्मिक, पौराणिक प्रवृत्ति की कहानियों के क्षेत्र में लेखकों ने धर्म के आडम्बरपूर्ण रूप का विरोध करते हुए सेवा धर्म को ही सच्चा धर्म बताया है। राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति के क्षेत्र में इस युग के कहानीकारों में राष्ट्रीय भावना प्रधान रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के क्षेत्र में इस युग में विशेष विकाशीलता दिखाई देती है क्योंकि प्रमुख कहानीकारों ने मनोविज्ञान को आधार बनाकर मनुष्य की कुण्ठाओं का विश्लेषण किया है।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद के विविध रूपों के विश्लेषण के सन्दर्भ में यहाँ पर यह संकेत करना आवश्यक है कि इस युग के प्रमुख लेखकों ने ऐतिहासिक यथार्थवाद तथा आदर्शोन्मुख का समावेश अपनी रचनाओं में किया है। ऐतिहासिक यथार्थवाद का चित्रण करते हुए इस युग के प्रमुख कहानीकारों ने इतिहास के विविध युगों के उन तथ्यों को प्रस्तुत किया है जिनका सम्बन्ध देश की अखंडता, राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण से है। सामाजिक यथार्थवाद के क्षेत्र में प्रमुख कहानीकारों ने नवीन सामाजिक चेतना के जागरण का चित्रण करते हुए आधुनिक समाज में व्याप्त विभिन्नि कुरीतियाँ और समस्याओं की अभिव्यक्ति की है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के क्षेत्र में प्रमुख कहानीकारों ने उन कुंठाओं का विवेचन किया है जो व्यक्ति के जीवन को विषाक्त कर देती है और उनके फलस्वरूप अनेक विडम्बनाएँ सामने आती हैं। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के क्षेत्र में इस युग के प्रमुख कहानीकारों ने भी प्रेमचन्द युग की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा का ही प्रसार किया है।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद के उपकरणगत विवेचन के सन्दर्भ में यहाँ यह संकेत करना आवश्यक है कि इस काल के कहानीकारों ने जो कथावस्तु प्रस्तुत की है उसका आधार कल्पित घटनाएँ न होकर सामाजिक जीवन के परिवर्तनशील रूप हैं। समाज में स्त्रियों की हीन दशा, स्त्रियों की अशिक्षा और अज्ञानता, जनता के रूढ़िवादी दृष्टिकोण, बेरोजगारी, शोषण, नैतिक मूल्यों का खोखलापन, युद्ध की विभीषिका आदि समस्यायों से संबन्धित कथासूत्रों का संयोजन इस काल की हिन्दी कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ का परिचायक है।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में पात्रगत यथार्थ के सन्दर्भ में यहाँ पर यह संकेत करना आवश्यक है कि इस युग की कहानी में समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्गों का सही प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र आयोजित हुए हैं। ये पात्र कल्पना की उपज न होकर वास्तविक जीवन के सही प्रतिनिधि हैं। इसीलिए इनकी प्रतिक्रियाएँ भी स्वाभाविक हैं। इनके गुण और अवगुण दोनों ही आधुनिक समाज का चित्र प्रस्तुत करते हैं। इनकी भावनाएँ और कुण्ठाएँ इन्हें विश्वसनीय स्वरूप प्रदान करती हैं। आधुनिक समाज के परिवर्तनशील रूप और वर्ग संघर्ष का परिचय भी इन पात्रों के माध्यम से मिल जाता है। इन पात्रों की एक विशेषता यह भी है कि इनकी प्रतिक्रियाएँ विभिन्न परिस्थितियों में स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से चित्रित की गयी हैं और उनमें मिथ्या आदर्श का अनावश्यक रूप में आरोपण न होकर यथार्थ की ओर झुकाव दिखाई पड़ता है।

कहानी के विभिन्न तत्वों में कथोपकथन के अन्तर्गत भी यथार्थ का बढ़ता हुआ आग्रह प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानीकारों की रचनाओं में देखा जा सकता है। इस युग में जो मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी गयी हैं उनमें भी संवाद-योजना स्वाभाविक और विश्वसनीय बन पड़ी है। कथोपकथन के माध्यम से भगवतीचरण वर्मा जैसे कहानी-कारों ने आधुनिक समाज में व्याप्त आर्थिक मूल्यों के कतिपय स्वरूप का भी चित्रण किया है। नाटकीयता और बनावटीपन के साथ-साथ भावनात्मकता और उपदेशा-त्मकता आदि विशेषताएँ इस युग की कहानियों में प्रस्तुत किए गये कथोपकथन में नहीं मिलती हैं। इसके विपरीत उनके माध्यम से मनोवैज्ञानिकता, स्वाभाविकता, विश्वस-नीयता और यथार्थता का बोध होता है।

भाषा तत्व के क्षेत्र में भी इस युग का कहानी-साहित्य यथार्थ की ओर अग्रसर होता हुआ प्रतीत होता है। विगत युग के कुछ लेखकों की भाँति इस काल में भी उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैसे लेखक हिन्दी में कहानी रचना करने के पूर्व उर्दू में साहित्य-सृजन करते रहे थे। इसीलिए इनकी भाषा में हिन्दी के साथ-साथ उर्दू के शब्दों को भी स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त इस युग में राष्ट्रीय एकता और राजनैतिक चेतना के जाग्रत होने के कारण भी विभिन्न भाषाओं का प्रयोग करने वाले एक दूसरे के निकट आए। इसका परिणाम यह हुआ कि इस युग की कहानियों में हिन्दी के क्षेत्र में उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी तथा देशी-विदेशी अन्य भाषाओं के भी प्रचलित शब्द स्वीकार कर लिए गये। इससे हिन्दी भाषा का क्षेत्र विस्तार हुआ तथा बोलचाल की शब्दावली के प्रयोग के कारण वह जनभाषा के रूप में साहित्य में प्रतिष्ठित हुई।

शैली तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से भी प्रेमचन्दोत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में

कुछ विशेषताएँ दृष्टिगत होती है। इस युग के कहानीकारों ने जहाँ एक ओर शैली के क्षेत्र में नये प्रयोग किये वहाँ दूसरी ओर उसे यथासम्भव स्वाभाविक बनाने का भी प्रयत्न किया। इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्रकुमार, यशपाल तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि कहानीकारों ने मनोवैज्ञानिक आधार पर अपनी शैली को यथार्थपरक बनाया। इनमें यथार्थ का आग्रह कहीं-कहीं इतना अधिक बढ़ गया है कि वह अतियथार्थवाद और प्रकृतवाद की सीमा छूने लगता है।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में देश-काल अथवा वातावरणगत यथार्थ के जो रूप मिलते हैं वे इस युग को परिवर्तनशील परिस्थितियों के परिचायक हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है द्वितीय विश्वयुद्ध, बंगाल का दुर्भिक्ष तथा राष्ट्रीय आंदोलन की अधिकता के कारण इस युग की कहानियों में राजैनतिक वातावरण का यथार्थ-स्वरूप चित्रित हुआ है। इसके साथ ही समाज के बदलते हुए रूप भी अनेक कहानीकारों की रचनाओं में दृष्टिगत होते हैं। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा मन्मथनाथ गुप्त आदि ने प्रादेशिक वातावरण के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये हैं। भगवतीचरण वर्मा ने सांस्कृतिक और 'अज्ञेय' ने प्राकृतिक वातावरण के यथार्थ चित्र अपनी कहानियों में प्रस्तुत किये हैं।

उदेश्य तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से प्रेमचन्दोत्तर काल की कहानियों में विशुद्ध मनोरंजन तथा उद्देश्यात्मकता के स्थान पर गम्भीर उद्देश्य मिलते हैं। इस काल के प्रमुख कहानीकारों ने आधुनिक जीवन में अशिक्षा और अज्ञान को नारी समाज की हीन स्थिति का मूल कारण बताते हुए उसका स्वावलम्बी बनने के लिए आवाहन किया है। उन्होंने आधुनिक युग में पुरातनपंथी और रूढ़िवादी मान्यताओं का खंडन करते हुए नये समाज की रूपरेखा प्रस्तुत की है। आडम्बरपूर्ण धर्म के भ्रष्ट और घृणित रूप का विरोध करते हुए उन्होंने सेवा को ही सच्चा रूप बताया है। छुआछूत, साम्प्रदायिकता, शोषण, अशिक्षा, अज्ञान, कुण्ठा तथा रूढ़ियों का विरोध करते हुए इस युग के कहानीकारों ने मानव समाज के सर्वतोमुखी समाज पर बल दिया है।

इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तर युग में हिन्दी कहानी यथार्थवाद की दिशा में एक कदम और आगे बढ़ी हुई प्रतीत होती है। जैसा कि विगत अध्याय में भी संकेत किया जा चुका है हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि में आदर्शवादी परम्परा विद्यमान रही है। प्रथम विकास काल में उसमें यथार्थवाद का समावेश आंशिक रूप में ही मिलता है। द्वितीय विकास काल तक आते-आते वह कल्पना के धरातल को छोड़कर यथार्थ की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित हो जाती है। इस तृतीय विकास काल में लिखी गयी हिन्दी कहानी में यथार्थवाद का समावेश एक गम्भीर विचारधारा और स्पष्ट

जीवन दर्शन के रूप में हुआ है। अब यथार्थ उसके लिए एक फैशन न रहकर एक अनिवार्यता बन जाता है। प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी विषय-वस्तु की दृष्टि से जितनी विविधता लिए हुए है यथार्थ की दृष्टि से भी उतनी ही महान है। इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्रकुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कहानियों में यथार्थवाद के प्रति बढ़ता हुआ आग्रह यह स्पष्ट संकेत करता है कि आदर्श के व्यावहारिक रूप में निर्वाह के साथ-साथ इस काल की कहानी में युग जीवन के यथार्थ के प्रति सतत् जागरूकता लक्षित होती है।

---

अध्याय ५

# स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद

## ( क ) युगीन पृष्ठभूमि

स्वातंत्र्योत्तर युग में हिन्दी कहानी साहित्य के क्षेत्र में पूर्व युग की भांति ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा मनोविश्लेषणात्मक आदि प्रवृत्तियों का समुचित विकास हुआ। इस युग की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटनाएँ भारतवर्ष की स्वतन्त्रता और देश का विभाजन है। एक बहुत बड़ी संख्या में इन्हीं विषयों पर इस युग में कहानियाँ लिखी गयीं। एक स्वतन्त्र देश के रूप में शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति राजनीति तथा आर्थिक क्षेत्रों से सम्बन्धित अनेक नवीन परिस्थितियों का अविर्भाव हुआ और हिन्दी के कहानीकारों ने उन पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में वृद्धि हुई तथा विकास की नई दिशाएँ सामने आयीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयत्न विगत अनेक शताब्दियों से हो रहे थे। इसलिए इस महान् घटना की व्यापक प्रक्रिया हुई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति पाने पर देश ने सभी दृष्टियों से अपनी स्थिति सुदृढ़ करने की ओर ध्यान दिया। राजनैतिक स्तर पर अब भी अनेक आन्दोलन होते रहे परन्तु उनका उद्देश्य विदेशी दमन से मुक्ति पाना न होकर स्वतन्त्र राष्ट्रीय भावना का जागरण करना था। देश की राज-नीति में अनेक परिवर्तन आये और विभिन्न विचारधाराओं में विश्वास रखने वाली राजनैतिक संस्थाएँ सामने आयीं। महात्मा गाँधी की हत्या ने सम्पूर्ण देश को कुछ समय के लिए स्तब्ध-सा कर दिया। जब राष्ट्रीय स्तर पर का नेतृत्व पंडित जवाहर लाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, डा० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल, डा० राधाकृष्णन तथा डा० जाकिर हुसेन आदि महान् व्यक्तियों ने किया। यहाँ पर स्वातन्त्र्योत्तर युग की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए उन तत्वों की ओर संकेत किया जा रहा है जिन्होंने हिन्दी कहानी की युगीन पीठिका का निर्माण किया।

**सांस्कृतिक पृष्ठभूमि**—स्वातन्त्र्योत्तर युग में भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति और भारत विभाजन के फलस्वरूप सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए। जैसा कि पिछले अध्याय में संकेत किया जा चुका है, आधुनिक भारतीय संस्कृति के निर्माण में राष्ट्रीय भावना ने महत्वपूर्ण योग दिया है। इस युग में स्वतन्त्रता-प्राप्ति

के रूप में अनेक शताब्दियों पुराना देश का स्वप्न साकार हुआ और देश में नये सिरे से सांस्कृतिक चेतना जागृत हुई। विश्व में एक स्वाधीन राष्ट्र की हैसियत से अपना स्थान बना लेने के पश्चात् देश की संस्कृति के पुनरुत्थान पर विशेष रूप से बल दिया गया। अभी तक परतन्त्र होने के कारण देश की संस्कृति लगभग मृत थी और उसके विभिन्न प्रदेशों में किसी प्रकार की सांस्कृतिक एकता नहीं थी। देश की प्राचीन संस्कृति पिछड़ेपन की सूचक समझी जाने लगी थी और आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण नवीनता का सूचक माना जाता था। परन्तु जब देश आजाद हो गया तब जनता में अपनी संस्कृति के प्रति मोह बढ़ा और स्वाभाविक रूप में उसका ध्यान अपने देश की प्राचीन संस्कृति की ओर गया जिसे उसने राष्ट्रीय संस्कृति के रूप में मान्यता दी।

आधुनिक युग में जो भारतीय संस्कृति स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विकसित हुई है उसमें विभिन्न वर्गों का पारस्परिक अन्तर क्रमशः समाप्त होता जाता है। जो वेश-भूषा स्वतन्त्रता के पूर्व तक उच्च वर्ग की ही होती थी वही अब मध्य और निम्न वर्गों ने भी अपना ली। देश की राष्ट्रीय नीति और सांस्कृतिक एकता स्थापित होने के कारण इस प्रवृत्ति को और भी अधिक बढ़ावा मिला। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान के अन्तर्गत देश में सभी प्रदेशों, जातियों, धर्मों और वर्गों के समान अधिकारों की घोषणा की गई तथा निम्न और उच्च वर्गों का पारस्परिक अन्तर मिटाने के लिए विशेष नियम बनाये गये। अनुसूचित जातियों के विकास और कल्याण के लिए प्रत्येक क्षेत्र में उनके लिए सुरक्षित स्थान रखे गये। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण देश में एक प्रकार की सुरक्षा की भावना ने जन्म लिया और वह सांस्कृतिक एकता की दिशा में अग्रसर होने लगा।

सामाजिक पृष्ठभूमि—स्वातन्त्र्योत्तर युग में सामाजिक क्षेत्र में सबसे अधिक परिवर्तन हुए। भारत-विभाजन की दुर्घटना ने समाज के स्वरूप, पारिवारिक व्यवस्था, सामाजिक संगठन, सामाजिक नैतिकता और सामाजिक मर्यादा को व्यापक रूप से प्रभावित किया। देश के कुछ भागों के लिए भारत-विभाजन एक अभिशाप सिद्ध हुआ। उनका दृष्टिकोण व्यापक रूप से परिवर्तित हो गया। अब सारे देश में एक प्रकार की समानता की भावना ने जन्म लिया और मानवतावादी विचारधारा विकसित हुई। मंहगाई और आर्थिक संकटों की वृद्धि के कारण नारी समाज में भी नवीन चेतना जागृत हुई और वह भी पुरुष के समान स्वतन्त्र हो गयी। अब उसका उच्च शिक्षा प्राप्त करना तथा नौकरी करना आदि उचित समझा जाने लगा। समाज के सभी वर्गों में यह परिवर्तन हुए। इसलिए समाज का सम्पूर्ण रूप ही परिवर्तित हो गया।

सामाजिक परिवर्तनों में राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से कार्यशील रहा है। मध्य वर्ग सदैव की भाँति इस काल में भी सबसे अधिक पीड़ित था,

और अपनी रूढ़िवादी मान्यताओं के कारण पिछड़ा हुआ था। भारत-विभाजन के उपरान्त अभिशाप-ग्रस्त प्रदेशों से जनसंख्या का जो आदान-प्रदान हुआ उसके फल-स्वरूप एक नये समाज ने जन्म लिया जिसमें मुख्यत: मध्य वर्ग के ही लोग अधिक थे। परन्तु इस वर्ग की विशेषता यह थी कि यह रूढ़िवादी मध्य वर्ग की भाँति केवल सरकारी नौकरी करने में ही प्रतिष्ठा नहीं समझता था वरन् यह परिश्रम का मूल्य समझता था और परिश्रम करने में विश्वास रखता था। स्वातन्त्र्योत्तर युग के अनेक कहानीकारों ने देश की स्वतन्त्रता-प्राप्ति, भारत-विभाजन, सामाजिक परिवर्तन, एवं मध्य वर्ग की विभिन्न समस्याओं को आधार बनाकर रचना की है। इन कहानीकारों की रचनाओं में समाज के उन परिवर्तनशील रूपों का यथार्थपरक चित्रण हुआ है जिसका उल्लेख आगे यथास्थान किया जायगा।

आर्थिक पृष्ठभूमि—स्वातन्त्र्योत्तर युग में आर्थिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में इस तथ्य की ओर संकेत करना आवश्यक है कि पूर्व युग की भाँति इस युग में आर्थिक क्षेत्र में अनिश्चयता के स्थान पर सुदृढ़ता दृष्टिगत होती है। स्वतन्त्र भारत की नवीन आर्थिक नीति के अनुसार सबसे अधिक गौरव जन संगठनों और सहकारी संगठनों को दिया गया। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, स्वतन्त्र भारत की गणतांत्रिक सरकार ने समाजवाद की दिशा में देश को बढ़ाते हुए समानता का लक्ष्य सामने रखा। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने समस्त देशी रियासतों का भारतीय संघ में विलय किया और राजा तथा प्रजा का भेद समाप्त कर दिया। इसी प्रकार से उसने जमींदारी उन्मूलन करके कृषकों की समस्या का अन्त कर दिया। कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत की कुल आबादी को लगभग अस्सी फीसदी जनता को इससे राहत मिली और उसे समान रूप से उन्नति करने की सुविधाएँ प्राप्त हुईं।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में सहकारी आन्दोलनों के संगठन पर विशेष रूप से बल दिया गया है। देश की राष्ट्रीय सरकार की आर्थिक नीति के अनुसार सभी क्षेत्रों में उन संस्थाओं को आर्थिक संरक्षण, सहायता और अनुदान विशेष रूप से दिये गये जिनकी नींव सहकारिता पर आधारित थी। राष्ट्रीय स्तर पर सहकारी संगठनों के विकास के साथ-साथ गृह-उद्योग और हस्तकला को भी संरक्षण प्रदान किया गया। सरकार की इन दोनों नीतियों का यह प्रभाव हुआ कि जनता के उपेक्षित और शोषित वर्गों में नये सिरे से आत्मविश्वास की भावनाएँ जागीं और उसने स्वयं को देश की सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था का अंग समझ कर अपना उत्तरदायित्व निबाहा। सहकारिता और गृह-उद्योगों के विकास के साथ नवयुवक वर्ग में बेरोजगारी की समस्या का किसी सीमा तक शमन हुआ और शिक्षा आदि के भावी कार्यक्रम के लिए अनेक प्रकार की सहायता और सुविधा आदि उपलब्ध करायी गयी तथा स्वतन्त्र्योत्तर युग के अनेक कहानीकारों ने इस पक्ष से सम्बन्धित रचनाएं प्रस्तुत की हैं और आर्थिक क्षेत्र में होने वाली क्रान्ति के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया है। इन कहानीकारों ने

देश के विभिन्न वर्गों में होने वाली आर्थिक क्रान्ति का भी चित्रण स्वातन्त्र्योत्तर युग के कहानीकारों की रचनाओं में जिन रूपों में हुआ है, उसका उल्लेख आगे यथास्थान किया जायगा।

राजनैतिक पृष्ठभूमि—स्वातन्त्र्योत्तर युग राजनैतिक दृष्टि से उथल-पुथल का अवश्य है परन्तु इसका सम्बन्ध विगत युग की भाँति-स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए किये गये आन्दोलनों से न होकर देश की राजनैतिक समस्याओं से है। राजनैतिक सत्ता के प्राप्त होने पर देश के स्वतन्त्र होते ही भारती राष्ट्रीय कांग्रेस का महत्व सभी राजनैतिक दलों में सबसे अधिक हो गया। इसके साथ ही अन्य राजनैतिक दलों ने भी अपना संगठन और प्रचार कार्य तीव्र कर दिया। विभिन्न विचारधाराओं और सिद्धान्त वाले इन राजनैतिक दलों के प्रचार में तीव्रता आने पर जनता में भी राजनैतिक अधिकारों के प्रति जागरूकता आई। एक स्वतन्त्र देश के नागरिक होने के कारण उन्हें पहली बार संविधान में दिये गये अधिकारों के अनुसार मतदान का अवसर मिला। इस अधिकार के प्रदान करने में किसी भी व्यक्ति के साथ प्रदेश, धर्म, जाति अथवा वर्ग का कोई भेद नहीं रखा गया। इसलिए जनता में एक प्रकार के आत्मविश्वास का भाव पनपने लगा और वह राजनैतिक क्रिया-कलाप में अधिक रुचि लेने लगी। साम्यवादी, समाजवादी आदि विचारधाराओं में विश्वास रखने वाले दलों के साथ-साथ अन्य अनेक दक्षिणपंथी और वामपंथी राजनैतिक दलों का भी निर्माण हुआ और राष्ट्रव्यापी स्तर पर उन्हें जनता का समर्थन और सहयोग मिला। स्वातन्त्र्योत्तर युग के कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में विभिन्न राजनैतिक दलों की विचारधारा, कार्यप्रणाली तथा व्यावहारिक कार्यक्रम का परिचय देने के साथ-साथ देश की अनेक राजनैतिक समस्याओं का चित्रण करके इस क्षेत्र में अपनी जागरूकता का भी परिचय दिया है।

साहित्यिक पृष्ठभूमि—स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी साहित्य की विभिन्न रचनात्मक विधाओं के क्षेत्र में सबसे अधिक जागरूकता दिखाई पड़ती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस युग के साहित्यकारों ने अनेक शताब्दियों के पश्चात् प्रथम बार एक स्वतन्त्र देश के साहित्यकार की हैसियत से अपने उत्तरदायित्व को अनुभव और निर्वाह किया। काव्य के क्षेत्र में इस युग में रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', त्रिलोचन, नागार्जुन, सुमित्रानन्दन पंत, 'निराला', अंचल तथा डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि कविगण राष्ट्रीय भावना-प्रधान कृतियों की रचना कर रहे थे। प्रयोगवादी आन्दोलन काव्य के क्षेत्र में अब भी जारी था और सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव 'मुक्तिबोध' आदि कवि इसका प्रसार कर रहे थे। बालकृष्ण शर्मा

'नवीन', बालकृष्ण राव, जानकी वल्लभ शास्त्री, 'बच्चन' तथा सुमित्रा कुमारी सिनहा आदि कवि गीतकाव्य की प्रवृत्ति के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दे रहे थे।

हिन्दी गद्य साहित्य के क्षेत्र में भी सभी विधाओं के अन्तर्गत अनेक लेखक सृजन कर रहे थे। निबन्ध के क्षेत्र में हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, शांतिप्रिय द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, डा० भगवतशरण उपाध्याय, डा० नगेन्द्र, डा० सत्येन्द्र, डा० विनय मोहन शर्मा आदि लेखन कार्य कर रहे थे। एकांकी के क्षेत्र में डा० रामकुमार वर्मा, विष्णु प्रभाकर, जयनाथ नलिन, भारतभूषण अग्रवाल तथा चिरंजीत आदि का विशेष योगदान है। उपन्यास के क्षेत्र में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर, डा० रांगेय राघव तथा डा० देवराज आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कहानी के क्षेत्र में अमृतराय, बलवन्त सिंह, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, फणीश्वरनाथ रेणु; कमल जोशी कमलेश्वर आदि अनेक लेखकों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से अधिकांश लेखकों ने इस युग में एक जागरूक साहित्यकार के रूप में युगीन चेतना को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है।

## (ख) स्वातन्त्र्योत्तर युग के प्रमुख कहानीकार

स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी कहानी के विभिन्न रूपों का जो विकास हुआ है, उसमें अनेक जागरूक कहानीकारों का योग रहा है। अमृतलाल नागर, महादेवी वर्मा, भैरवप्रसाद गुप्त, कुलभूषण, हरिशंकर परसाई, अमरकान्त, श्रीमती शान्ति मेहरोत्रा, डा० धर्मवीर भारती, आनन्द प्रकाश जैन, बलवन्त सिंह, राजेन्द्र यादव, राजेन्द्र अवस्थी, निर्मल वर्मा, सुदर्शन चोपड़ा, श्रीमती विजय चौहान, श्रीमती मन्नू भंडारी, महीप सिंह, फणीश्वरनाथ रेणु, कमल जोशी, नरेश मेहता, मोहन राकेश, कमलेश्वर, आजम करेवी, उषा प्रियंवदा, शैलेश मटियानी तथा श्रीकांत वर्मा आदि कहानी लेखकों ने इस युग में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, पौराणिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक कहानियों के विकास में योग दिया। इस युग की हिन्दी कहानी कलात्मकता और वैचारिकता की दृष्टि से जो महत्व रखती है उसका श्रेय इन्हीं कहानीकारों को है। यहाँ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना भी असंगत न होगा कि इन कहानीकारों की रचनाओं में ऐतिहासिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद आदि का भी समावेश हुआ है। यहाँ पर इस युग के प्रमुख कहानीकारों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

**अमृतलाल नागर**—अमृतलाल नागर का जन्म १७ अगस्त सन् १९१६ को हुआ था। इनकी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास तथा पत्रकारिता आदि के क्षेत्र में भी मिलता है। इनकी प्रतिनिधि कहानियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनमें सन् १९३५ में प्रकाशित 'वाटिका', सन्

१९३८ में प्रकाशित 'अवशेष', सन् १९४१ में प्रकाशित 'तुलाराम शास्त्री', सन् १९५५ में प्रकाशित 'एटम बम', सन् १९५६ में प्रकाशित 'एक दिल हजार दास्तान' तथा सन् १९६६ में प्रकाशित 'कालदंड की चोरी' आदि हैं। नागरजी की सम्भवतः सभी कहानियों में सामाजिक यथार्थ के प्रति कटु व्यंग्य मिलता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय भावना प्रधान कहानियाँ भी इन्होंने लिखी हैं। इनकी प्रमुख कहानियाँ 'निर्धन', 'विश्वास', 'गरीब की हाय', 'गोरखधन्धा', 'कयामत का दिन', 'डाक्टरी साइनबोर्ड', 'पाप मेरा वरदान', 'जुए', 'पढ़े-लिखे बराती', 'बंगाली वैष्णव', 'मुंशी बख्तावर लाल', 'राजा-रानी और सन्तान', 'नवाबी चक्कर', 'धन के साथी', 'प्रतिफल' तथा 'प्रायश्चित' आदि हैं। इन कहानियों में समाज के विभिन्न वर्गों में व्याप्त आर्थिक वैषम्य और शोषण को चित्रित किया गया है।

भैरवप्रसाद गुप्त—भैरवप्रसाद गुप्त का जन्म ७ जुलाई सन् १९१८ को हुआ था। इन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास, एकांकी, अनुवाद तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में भी दिया है। इनकी कहानियों के प्रमुख संग्रह 'मुहब्बत की राहें', 'मंजिल', 'बिगड़े हुए दिमाग', 'फरिश्ते', 'लपटें', 'इन्सान', 'महफिल' तथा 'सपने का अन्त' आदि हैं। सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का यथार्थपरक चित्रण इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है।

कुलभूषण—कुलभूषण का जन्म ५ सितम्बर सन् १९२० को हुआ था। कहानी साहित्य के क्षेत्र में इनकी प्रथम रचना सन् १९३५ में प्रकाशित हुई थी। इन्होंने यात्रा साहित्य के क्षेत्र में भी एक पुस्तक प्रस्तुत की है तथा कुछ रचनाओं के अनुवाद भी किये हैं। कहानी साहित्य के क्षेत्र में इनकी मौलिक कृतियों में सन् १९५५ में प्रकाशित 'पगडंडी और परछाइयाँ', 'सुलेमान का खजाना' तथा सन् १९५६ में प्रकाशित 'सपनों का टुकड़ा' आदि संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'उजाला', 'आइस्क्रीम', 'यह भी क्या जिन्दगी है', 'खोटी चवन्नी', 'वापसी', 'चूल्हे चौके के बाद', 'वर की खोज में', 'महान झूठ' तथा 'फेन और समुद्र' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं जिनमें सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण हुआ है।

हरिशंकर परसाई—श्री हरिशंकर परसाई का जन्म २२ अगस्त सन् १९२४ को हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास तथा निबन्ध लेखन के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में इनका एक संग्रह 'हँसते हैं रोते हैं' शीर्षक से सन् १९५१ में प्रकाशित हुआ था। इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि उनमें सामाजिक विषमताओं, कुरीतियों और विरोधाभासों के प्रति कटु व्यंग्य की भावना दृष्टिगत होती है।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल—डा० लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म ४ मार्च सन् १९२५ को हुआ था। इन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय कहानी

साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक तथा एकांकी आदि क्षेत्रों में भी दिया है। इनकी प्रतिनिधि कहानियों के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनके शीर्षक 'सूने आँगन रस बरसे' तथा 'नये स्वर : न२ रेखाएँ' हैं।

अमरकान्त—श्री अमरकान्त का जन्म १ जुलाई सन् १९२५ को हुआ था। कहानी रचना के अतिरिक्त इन्होंने उपन्यास लेखन तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया है। इनकी कहानियों का एक संग्रह 'जिन्दगी और जोंक' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। 'डिप्टी कलेक्टरी', 'दोपहर का भोजन', 'हत्यारे', 'असमर्थ हिलता हाथ' तथा 'खलनायक' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। सामाजिक जीवन की विरूपताओं और कटु यथार्थ का चित्रण इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ कही जा सकती हैं।

शान्ति मेहरोत्रा—श्रीमती शान्ति मेहरोत्रा का जन्म ९ मार्च सन् १९२६ को हुआ था। इनकी कहानियों के दो संग्रह 'सुरखाब के पर' तथा 'खुला आकाश : मेरे पंख' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। कहानी साहित्य के अतिरिक्त कविता के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी लिखी हुई कहानियाँ अनुभूति प्रधान हैं तथा उनमें पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के यथार्थपरक चित्र मिलते हैं।

धर्मवीर भारती— डा० धर्मवीर भारती का जन्म २५ दिसम्वर सन् १९२६ को हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास, कविता तथा नाटक आदि के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'चाँद और टूटे हुए लोग' शीर्षक से इनका एक प्रतिनिधि कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ है। इन्होंने मध्य एवं निम्न वर्ग के यथार्थ पर ही अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। यह सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति कर उसमें समष्टि का चिन्तन करते हैं। प्रतिनिधि कहानियों में 'गुल की बन्नो', 'सावित्री नम्बर २', 'यह मेरे लिए नहीं', 'गली का आखिरी मकान', 'धुआँ', 'मरीज', 'नम्बर सात', 'अगला अवतार', 'हरिनाकुश का बेटा' तथा 'कुलटा' आदि हैं। इनकी कहानियों में जीवन की यथार्थता का चित्रण हुआ है।

आनन्दप्रकाश जैन—आनन्दप्रकाश जैन का जन्म १५ अगस्त सन् १९२७ में हुआ था। आप सन् १९४२ के स्वतन्त्रता संग्राम में दो वर्ष जेल में भी रहे। 'अतीत के कंपन', 'काल के पंख', 'आटे के सिपाही', 'लाल पन्ने', 'चार आँखें' तथा 'मुर्गे' आदि इनकी प्रमुख कहानी संग्रह हैं। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास रचना, जीवनी साहित्य तथा अनुवाद के क्षेत्र में भी इन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया है। इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि इन्होंने भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों से महत्वपूर्ण कथा सूत्र लेकर कहानी रचना की है।

**बलवन्त सिंह**—बलवन्त सिंह का जन्म २० मई सन् १९२८ को हुआ था। इन्होंने सन् १९४२ में स्वतन्त्रता संग्राम में भी भाग लिया तथा १९४८ में केन्द्रीय सरकार के प्रकाशन विभाग में भी कार्य किया। विशेष कर इनकी प्रतिभा का परिचय उपन्यास क्षेत्र में मिलता है। इनका 'मैं जरूर रोऊँगी' शीर्षक कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ है। इसमें प्रतिनिधि कहानियों की संरचनाएं हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक वातावरण की पृष्ठभूमि में विभिन्न मन:स्थितियों का प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत किया है। बलवन्त सिंह ने कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास रचना तथा आलोचना के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

**डा० शिवप्रसाद सिंह**—डा० शिवप्रसाद सिंह का जन्म १९ अगस्त, सन् १९२८ को हुआ था। इन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय कहानी साहित्य के अतिरिक्त निबन्ध, उपन्यास, आलोचना, शोध कार्य तथा अनुवाद के क्षेत्रों में भी दिया है। कहानी साहित्य के क्षेत्र में इनकी रचनाओं के जो संग्रह उपलब्ध होते हैं उनमें सन् १९५५ में प्रकाशित 'आर-पार की माला', सन् १९५८ में प्रकाशित 'कर्मनाशा की हार' तथा सन् १९६१ में प्रकाशित 'इन्हें भी इंतजार है' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। समाज के विभिन्न पक्षों का यथार्थ चित्रण और व्यंग्यपूर्ण शैली इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है।

**राजेन्द्र अवस्थी**—राजेन्द्र अवस्थी का जन्म २५ जनवरी सन् १९२९ को हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास लेखन के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी प्रतिनिधि कहानियों के दो संग्रह 'मकड़ी के जाले' तथा 'महुआ आम के जंगल' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में विभिन्न प्रदेशों की आंचलिक पृष्ठभूमि में सामाजिक जीवन के विविध रूपों का प्रभावशाली चित्रण किया है।

**निर्मल वर्मा**—श्री निर्मल वर्मा का जन्म ३ अप्रैल सन् १९२९ को हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास लेखन तथा अनुवाद के क्षेत्र में इन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया है। इनकी प्रतिनिधि कहानियों का एक संग्रह 'परिन्दे' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है 'कुत्ते की मौत', 'माया दर्पण', 'लन्दन की एक रात', 'दहलीज', 'सिम्बर की एक शाम', 'तीसरा गवाह', 'डायरी के खेल', 'माया का मर्म', 'अंधेरे में' तथा 'पिक्चर पोस्टकार्ड' इनकी प्रतिनिधि कहानियां हैं जिनमें देश-विदेश के सामाजिक जीवन का यथार्थपरक चित्रण हुआ है।

**राजेन्द्र यादव**—राजेन्द्र यादव का जन्म २८ अगस्त सन् १९२९ में हुआ था। इनका नाम स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानीकारों में विशेष उल्लेखनीय है। राजेन्द्र यादव ने कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास लेखन में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। आधुनिक जीवन की यथार्थपरक पृष्ठभूमि में सामाजिक विषमताओं का

प्रभावशाली चित्रण इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। इनकी कहानियों के कई एक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' तथा 'किनारे से किनारे तक' प्रकाशित संग्रहों में इनकी प्रमुख कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। राजेन्द्र यादव की कहानियों में विभिन्न वर्गों में व्याप्त कुण्ठाओं और भावनाओं का प्रभावपूर्ण चित्रण हुआ है। अनेक विरूपताओं के साथ भी मनुष्य अटूट आस्था के साथ जीवन संघर्ष में रत रहता है इसका चित्रण भी इनकी कहानियों में मिलता है।

**राजकमल चौधरी**—श्री राजकमल चौधरी का जन्म १३ दिसम्बर सन् १९२९ को हुआ था। इन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास, कविता तथा अनुवाद कार्य के क्षेत्र में भी दिया है। इनकी कहानियों का एक संग्रह 'कथा पराग' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का यथार्थपरक विश्लेषण इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। यथार्थ के प्रति कटु व्यंग्य की भावना इनकी कहानियों में मिलती है। यथार्थ के तीव्र आग्रह के कारण इनकी कुछ रचनाएँ अति यथार्थवादी तथा प्रकृतवादी भी हो गयी हैं।

**विजय चौहान**—श्रीमती विजय चौहान का जन्म ६ जनवरी सन् १९३० को हुआ था। इन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय कहानी लेखन, अनुवाद कार्य तथा उपन्यास लेखन के क्षेत्र में दिया है। इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ 'वतन', 'शहीद की माँ', 'वालों का आर्टिस्ट', 'एक बुतशिकन का जन्म', 'अफसर की बेटी', 'घुन', 'चैनल' तथा 'चाची यन्दन' आदि हैं। इनमें लेखिका ने सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का यथार्थपरक चित्रण किया है।

**मन्नू भंडार**—श्रीमती मन्नू भंडारी का जन्म सन् १९३० में हुआ था। कहानी लेखन के अतिरिक्त इन्होंने उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी कहानियों के प्रमुख सग्रहों में 'मैं हार गई', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' तथा 'एक पुरुष एक नारी' आदि हैं। इनकी प्रतिनिधि कहानियों में 'ईसा के घर इन्सान', 'एक कमजोर लड़की की कहानी', 'अभिनेता', 'तीसरा आदमी', 'कोल और कसक', 'आकाश के आइने में', 'ऊँचाई तथा दीवार' 'बच्चे और बरसात' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। नारी मन का सूक्ष्म विश्लेषण तथा सामाजिक पारिवारिक जीवन का यथार्थ चित्रण इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है।

**महीप सिंह**—श्री महीप सिंह का जन्म १५ अगस्त सन् १९३० को हुआ था। इनकी प्रतिनिधि कहानियों के दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनके शीर्षक 'सुबह के फूल' तथा 'उजाले के उल्लू' हैं। सामाजिक यथार्थ का प्रभावशाली चित्रण इनकी कहानियो की विशेषता है। 'स्वराघात', 'टकराव', 'घिरे हुए क्षण', 'पत्नियाँ',

'लकीरों वाला मकान', 'ठंडक' तथा 'पानी और पुल' इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

फणीश्वरनाथ 'रेणु'—स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानीकारों में श्री फणीश्वर-नाथ 'रेणु' का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनकी प्रतिनिधि कहानियों का एक संग्रह 'ठुमरी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। 'रस प्रिया', 'पंच लाइट', 'लाल पान की बेगम', 'टेबुल', 'अतिथि सत्कार', 'मारे गये गुलफाम', तथा 'सेवा-दिया' आदि इनकी उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। एक कहानीकार के रूप में अपनी प्रतिभा का परिचय देने के साथ ही फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने उपन्यास क्षेत्र में महत्व-पूर्ण कार्य किया है। 'रेणु' जी की कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि उनमें बिहार के पूर्णिया जिले की पृष्ठभूमि में आंचलिक चित्रण यथार्थ रूप में हुआ है। ग्रामीण जीवन, आचार-विचार, परिस्थितियाँ, रूढ़ियाँ, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक परम्पराएँ आदि इनमें प्रभावशाली रूप में चित्रित हुई हैं।

कमल जोशी—स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानीकारों में कमल जोशी का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी प्रतिनिधि कहानियों के पांच संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनके शीर्षक 'शीराजी', 'चार के चार', 'पत्थर की आँख', 'फूलों की माला' तथा 'वृक्ष और माया' हैं। 'श्रीमती अनिता बजाज', 'कल्याणी', 'नर्स', 'कस्तुरी मृग', 'ममता का बन्धन', 'बेटे का बाप' तथा 'नायक नायिका' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। इनमें सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रभावशाली चित्रण हुआ है।

नरेश मेहता—नरेश मेहता का नाम भी स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानीकारों में उल्लेखनीय है। इनका एक कहानी संग्रह 'तथापि' प्रकाशित हो चुका है। 'एक शीर्षक हीन स्थिति', 'श्रीमती मास्टन', 'कर्णफूल', 'एक इतिश्री', 'एक समर्पित महिला', 'वर्षा भीगी' आदि कहानियाँ हैं। इन्होंने सामाजिक सन्दर्भों को लेकर ही कहानी रचना नहीं की है, वरन् उसमें युग चेतना की भी अभिव्यंजना की है। 'दुर्गा', 'जिसका बेटा', 'श्रीमती मास्टन' तथा 'वह मर्द थी' आदि इनकी सामाजिक यथार्थवादी कहानियाँ हैं। नरेश मेहता की कुछ कहानियों में आत्मपरकता, कुण्ठा, पलायन एवं रोमानी दृष्टि भी मिलती है। 'एक शीर्षकहीन स्थिति' या 'दूसरे की पत्नी के पत्र' जैसी कहानियाँ इस दृष्टि से उनकी प्रतिनिधि रचनाएँ कही जा सकती हैं।

मोहन राकेश—स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानीकारों में मोहन राकेश का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। इनकी कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'इन्सान के खंडहर', 'नये बादल' तथा 'जानवर और जानवर' आदि प्रमुख हैं। कहानी के अतिरिक्त उपन्यास लेखन के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय

दिया है। इनकी लिखी हुई प्रतिनिधि कहानियों में 'मलवे का मालिक', 'मन्दी', 'परमात्मा का कुत्ता', 'उसकी रोटी', 'अपरिचित', 'सुहागिनें', 'मिस पाल' तथा 'एक और जिन्दगी' आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें आधुनिक समाज के विभिन्न वर्गों की मनोवृत्ति का यथार्थपरक चित्रण हुआ है।

कमलेश्वर—स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन साहित्य के क्षेत्र में कमलेश्वर का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके प्रमुख कहानी संग्रह 'राजा निरबंसिया', 'कस्बे का आदमी' तथा 'खोई हुई दिशाएँ' शीर्षक से प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ 'ऊपर उठता हुआ मकान', 'दु:खों के रास्ते', 'दिल्ली में एक और मौत' तथा 'मांस का दरिया' आदि हैं। कमलेश्वर ने मध्य निम्न वर्ग के यथार्थ को ही अधिक चित्रित किया है। इनके पात्र स्वयं जीवन के विविध पक्षों को वहन करते हुए चलते हैं। उनमें झूठे अभिजात्य के प्रति आग्रह नहीं मिलता है। 'मांस का दरिया', 'खोई हुई दिशाएँ', 'दिल्ली में एक और मौत', 'एक रुकी हुई जिन्दगी', 'मुर्दों की दुनियाँ', 'धूल उड़ जाती है', 'तलाश' तथा 'दु:खों के रास्ते' आदि कहानियाँ इनकी प्रतिनिधि रचनाओं के रूप में मान्य की जा सकती हैं।

उषा प्रियंवदा—स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानीकारों में उषा प्रियंवदा का नाम भी उल्लेखनीय है। 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' शीर्षक संग्रह में इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ संग्रहीत हैं। इनकी प्रतिनिधि कहानियों में 'वापसी', 'प्रश्न और उत्तर', 'मछलियाँ', 'चाँदनी में वर्फ पर', 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'एक और विदाई' तथा 'दूसरे के लिए' आदि हैं। 'वापसी' शीर्षक कहानी में आज के परिवर्तित जीवन तथा विशृङ्खलता का यथार्थ चित्रण दृष्टिगत होता है। इनकी कहानियों में समाज के यथार्थ रूप का ही प्रस्तुतीकरण हुआ है। कहीं-कहीं आधुनिक सन्दर्भ में नारी मन का सूक्ष्म विश्लेषण भी इनकी रचनाओं में दृष्टिगत होता है।

शैलेश मटियानी—स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानीकारों में शैलेश मटियानी का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी अधिकांश कहानियाँ आंचलिक प्रदेशों से सम्बन्धित हैं। 'मेरी तैंतीस कहानियाँ' नामक एक कहानी संग्रह भी इनका प्रकाशिक हो चुका है। 'एक योद्धा शत्रुघाती', 'दो दु:खों का एक सुख', 'सुहागिन', 'बढ़ती हुई खाई', 'माता', 'रुका हुआ रास्ता', 'भस्मासुर' तथा 'पोस्टमैन' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। अलमोडा के पहाड़ी जीवन से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसीलिए ग्रामीण विषयों पर लिखी गई इनकी कहानियों में कलात्मकता एवं यथार्थता है।

श्रीकान्त वर्मा—स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानीकारों में श्रीकान्त वर्मा का नाम

भी उल्लेखनीय है। इनका 'मकड़ी' नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इनकी उल्लेखनीय कहानियों में 'भाड़ी', 'ठंड', 'शवयात्रा', 'टेसो' आदि हैं। इनकी कहानियों में समाज की घुटन, पलायन, कुण्ठा आदि का चित्रण हुआ है। इन्होंने आधुनिक जीवन की विभिन्न विसंगतियों एवं विकृतियों को अपनी कहानी कृतियों में चित्रित किया है। इनकी कहानियाँ आधुनिक संचेतना के विभिन्न पक्षों को उभारती हैं।

अन्य कहानीकार—स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानी के विकास में योग देने वाले जिन कहानीकारों का परिचय ऊपर दिया गया है उनके अतिरिक्त भी एक बड़ी संख्या ऐसे लेखकों की है जिन्होंने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। इनमें 'चन्द्रावती और माधुरी' नामक कहानी संग्रह के लेखक अंशुमान शर्मा, 'विदुषी', 'धनौनी', 'मोती हीरा' तथा 'चम्पारन' के लेखक ईश्वरीप्रसाद गुप्त, 'नवतारा' के लेखक उदयराज सिंह, 'पुरस्कार' के लेखक किरणकुमार गुप्त, 'पथ की ओर' के लेखक कुंवर देश मित्र, 'टूटे सपने' के लेखक कृष्णनारायण लाल, 'मिट्टी के कंचन' के लेखक गणेशशंकर चैनपुरी, 'जीवन के पथ पर' के लेखक चिरंजीलाल माथुर, 'पंकज', 'अज्ञात', 'आग और फुहार' तथा 'जुगनू' के लेखक भब्बूलाल मुल्तानियाँ, 'सोए खंडहर' के लेखक टेकचन्द गुप्त, 'आग्नेय' तथा 'मगर इन्सानियत जिन्दा रही' के लेखक दयाल शरण, 'धुंधली तस्वीरें' तथा 'कब्र का चिराग' के लेखक नरेन्द्रनारायण लाल, 'स्वप्न की छाया' के लेखक भगवन्तशरण जौहरी, 'रश्मिराशि' के लेखक मधुर शास्त्री पुरुषोत्तम, 'इधर उधर की बातें' के लेखक रमेश, 'फूल तोड़ना मना है' के लेखक कर्तार सिंह दुग्गल, 'नये मोड़' के लेखक राजेन्द्र कुमार, 'करवट' के लेखक राजकुमार ओझा, 'अभिनव', 'पराया धन' के लेखक रामस्वार्थ चौधरी, 'जीवन और जागरण' के लेखक लक्ष्मीकान्त, 'भोर का राही' तथा 'अधजला सिगार' के लेखक ललितमोहन अवस्थी, 'प्रदीप' व 'सान्ध्य प्रदीप' के लेखक विश्वनाथ शर्मा, 'पत्नी का कन्यादान' के लेखक ब्रजकिशोर नारायण, 'गिद्ध और शेवती के फूल' की लेखिका शशि तिवारी, 'चट्टान से टक्कर' के लेखक शान्तिचन्द्र मेहता, 'आजादी की राह', 'विश्वासघात' तथा 'इंसान का दिन' के लेखक शैलेन्द्रकुमार पाठक, 'एक थकी हुई आवाज' के लेखक श्याम व्यास तथा 'शहरों के परदों में' के लेखक डा० श्यामसुन्दर लाल दीक्षित आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने विविध विषयक कहानियों की रचना की है।

### (ग) समकालीन कहानी : क्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ और यथार्थवाद

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में मुख्य रूप से सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक और मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। सामाजिक

कहानी की प्रवृत्ति के विकास में इस युग के अधिकांश कहानीकारों ने योग दिया है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् भारत विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई समस्याओं ने समाज के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण समस्याएँ उत्पन्न कर दी। बड़ी संख्या में शरणार्थियों के आगमन से समाज की व्यवस्था व्यापक रूप से प्रभावित हुई। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि परम्परागत रूढ़ियाँ धीरे-धीरे विलुप्त होती गईं। ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति के क्षेत्र में इस युग में अनेक लेखकों ने इतिहास के विभिन्न युगों का तथ्यपरक निरूपण किया। धार्मिक, पौराणिक कहानी की प्रवृत्ति के क्षेत्र में अधिकांश कहानीकारों ने आडम्बरप्रियता का विरोध किया है। राजनैतिक कहानियों में देश के विभाजन पर विभिन्न राजनैतिक दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। मनोवैज्ञानिक कहानी के क्षेत्र में विभिन्न कुण्ठाओं और विकृतियों का चित्रण किया गया है। यहाँ पर स्वातन्त्र्योत्तर-युगीन हिन्दी कहानी की इन्हीं प्रमुख प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में यथार्थवाद का संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

**सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—हिन्दी कहानी के इतिहास के पूर्व विकास युगों की भाँति स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी कहानी क्षेत्रीय विभिन्न प्रवृत्तियों में सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति ही सबसे अधिक प्रमुख रही। इस काल के प्रायः सभी लेखकों ने सामाजिक विषयों पर कहानी रचना की है। अमृतलाल नागर, मोहन राकेश, नरेश मेहता, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा, कमल जोशी, श्रीकांत वर्मा, मन्नू भण्डारी आदि लेखकों ने समाज के विविध पक्षों से सम्बन्धित विषयों को आधार बनाकर कहानियाँ लिखीं। आधुनिक समाज के विभिन्न वर्गों में रूढ़िवादिता की समस्या, अन्तर्जातीय विवाह की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, भिक्षावृत्ति की समस्या, मध्यवर्गीय खोखली नैतिकता की समस्या, धार्मिक क्षेत्रीय आडम्बरप्रियता की समस्या तथा नारी जीवन से सम्बन्धित अनेक परम्परागत विषयों पर इस युग के लेखकों ने कहानी रचना की है।

इस युग में सामाजिक कहानियों की विषय वस्तु का एक महत्वपूर्ण आधार भारत विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियाँ रहीं। जैसा कि पिछले पृष्ठों में संकेत किया जा चुका है, देश के कुछ प्रदेश विभाजन की घटना से विशेष रूप से प्रभावित हुये। उनमें जनसंख्या के सामूहिक आदान-प्रदान के कारण अनेक नवीन समस्याएँ जन्मीं। समाज का प्रत्येक वर्ग इससे प्रभावित हुआ और उनकी मान्यताओं में अन्तर आया। अनेक परिवार इसके फलस्वरूप नष्ट हो गये और अनेक नये बने। शरणार्थियों को समाज में एकाएक स्थान देना रूढ़िवादी वर्गों के लिए सम्भव न हुआ। शरणार्थी पुरुषों ने धीरे-धीरे मध्यवर्गीय बन्धनों को तोड़कर श्रम के महत्व

को समझा और भिक्षा-वृत्ति या राजकीय सहायता का आसरा छोड़ कर मेहनत और मजदूरी से जीवनयापन करना आरम्भ किया। शरणार्थी स्त्रियों ने भी पर्दे को त्याग कर जीविका कमाना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे शरणार्थी वर्ग समाज से मिलता चला गया। स्वातन्त्र्योत्तर कहानीकारों ने इन्हीं विषयों को आधार बनाकर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन सामाजिक कहानियों में रूढ़ियों और कुरीतियों के प्रति कटु व्यंग्य की भावना मिलती है। इस काल का सामाजिक कहानीकार विगत युग के सामाजिक कहानीकार की तुलना में अधिक मानवतावादी है क्योंकि वह जाति-पाँति और धर्म के बन्धनों को नहीं मानता। अमृतलाल नागर, हरिशंकर परसाई और राजेन्द्र यादव आदि लेखकों ने एक बड़ी संख्या में इन्हीं विषयों पर रचना की है। उन्होंने सामाजिक यथार्थ का चित्रण करते हुए समाज के सभी पहलुओं से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं का समावेश अपनी कहानियों में किया। इन कहानियों की एक विशेषता यह भी है कि इनमें प्रस्तुत की गई कथावस्तु का तो आधार यथार्थपरक है ही उनके चरित्र भी वास्तविक जीवन से लिये गये हैं।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, भारत-विभाजन के फलस्वरूप शरणार्थियों की समस्या बहुत महत्वपूर्ण रही है। स्वातन्त्र्योत्तर काल के अनेक कहानीकारों ने इस समस्या के तमाम पहलुओं पर विचार किया है। उत्तर भारत में पंजाब तथा सिन्ध आदि प्रदेशों से जो शरणार्थी आये उन्हें यहाँ के समाज ने धीरे-धीरे स्वीकार किया। सभ्यता और संस्कृति, भाषा तथा आचार-विचार के ऊपरी भेदों के दूर होने पर धीरे-धीरे इनमें निकटता स्थापित होने लगी। कुछ कहानीकारों ने इन विशेष प्रदेशों की सभ्यता, संस्कृति, लोक जीवन, आचार-विचार तथा संस्कारों को आधार बना कर जो कहानियाँ लिखीं वे यथार्थपरक और स्वाभाविक होने के कारण विशेष सफल हुई। बलवन्त सिंह जैसे लेखकों ने पंजाब के यथार्थ जीवन को आधार बनाकर कहानी रचना की।

स्वातंत्र्योत्तरयुगीन सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत यहाँ पर रघुवीर सहाय लिखित 'प्रेमिका' जैसी रचनाओं का भी उल्लेख किया जा रहा है। इस प्रकार की कहानियाँ कहीं-कहीं पर यथार्थवाद की सीमा का अतिक्रमण कर अतियथार्थवादी भी हो गयी हैं। इनमें लेखक ने स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण के जो चित्र प्रस्तुत किये हैं, आधुनिक समाज में शिक्षित वर्ग की काम-भावना और मनोवृत्ति के परिचायक हैं : "टैक्सी की शक्ल-सूरत एक पुरानी कामकाजी गाड़ी की तरह थी। इसी तरह की सवारी आज के लिए उपयुक्त भी थी क्योंकि मैं जानता हूँ कि एकदम नयी चमचमाती टैक्सी कुछ जबर्दस्ती के साथ हमें जरा सा अलग कर देती। हर चमचमाती चीज मेरे साथ यही करती है, खासकर जब मुझे किसी वक्त जो खाने की जरूरत मालूम हो रही हो। जरा देर में खो गया। कितनी सुन्दर थी

बह जरा सी देर। वह औरत भी सुन्दर थी। उसका ढीला उभड़ा चेहरा, उसके हल्के से उदास कंधे, मेरी जानी-पहचानी उसकी कलाइयाँ, जिन पर अब कुछ अधिक गोलाई आ गयी थी....कितने सुन्दर थे मेरे पागल प्रेम के पाने वाले उस शरीर के ये अंग। मैंने अपनी आँखें उन पर गड़ा दीं और एक-एक करके उन रास्तों से गुजर गया जो एक भरी-पूरी औरत की जिन्दगी में चले आये थे। सब यात्राएँ आकर उसके चेहरे पर खत्म होती थीं। मैं भी वहीं रुक गया। वहाँ कितना तनाव था। उसके चेहरे पर नहीं। मेरे और उसके चेहरे के बीच।''[१]

आधुनिक सामाजिक जीवन में जो आर्थिक अभाव और विरूपता मिलती है उसके कारण यह आवश्यक हो गया है कि स्त्री और पुरुष दोनों ही नौकरी करके धन अर्जित करें। शिक्षित युवक वर्ग की भाँति शिक्षित युवती वर्ग भी आज अनेक क्षेत्रों में कार्य करके जीविका का उपार्जन करता है। कमल जोशी ने अपनी लिखी हुई 'कस्तूरी मृग', 'नायक नायिका', 'ममता का बन्धन', 'बेटे का बाप', 'ब्रह्म और माया' तथा 'कल्याणी' आदि कहानियों में जहाँ एक ओर आज के जीवन का चित्रण किया है वहाँ दूसरी ओर 'नर्स' जैसी कहानियों में यह बताया है कि समाज में स्वावलम्बी होने के लिए बहुधा नारी वर्ग को कतिपय विरूपताओं को सहन करना पड़ता है। 'नर्स' का पेशा अपनाने वाली इस कहानी की नायिका वीणा के चरित्र को आधार बनाकर लेखक ने इसी ओर संकेत किया है : ''इस बीच उसने नर्सिंग का कोर्स लिया और पास हो गयी। पास होते ही किस्मत से नौकरी भी लग गयी। अठारह से पच्चीस, ये सात-आठ साल एक ही तरह से कट गये....आपरेशन टेबिल के पास नकाब पहने खड़ा रहना, घायल की आहें सुनना और नवजातक की क्रन्दन ध्वनि। 'डिसइनफेक्टेंट लोशन' की बू के अलावा रजनीगन्धा की सुगन्ध उसकी नाक में कभी नहीं गयी।...इस यथार्थ और कठिन नियमित दिनचर्या के बीच कभी-कभी वह बीमार भी पड़ी है। लेकिन मन को चंचल होने का सुयोग ही नहीं मिला। दो-चार छोकड़े डाक्टरों के आँखों के इशारे से वह जल-भुन गयी है। कुछ शौकीन और शरीफ बदमाशों ने टेलीफोन गाइड में नम्बर देखकर आधी रात को फोन पर उसे तंग किया है। दो-चार पेशेवर लफंगे रात के वक्त मोटर में आये हैं और 'नर्सेज क्वाटर' के आगे हार्न बजाकर चले गये हैं। यह सब सहन करने की आदत पड़ गयी है।''[२]

स्वातंत्र्योत्तरयुगीन सामाजिक कहानियों की प्रवृत्ति के अन्तर्गत आंचलिक

---

१. 'अकहानी', सं० श्री श्याममोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन १९६७, पृ० ९६-९७.

२. 'ब्रह्म और माया', कमल जोशी, सन १९५९, पृ० १२९-१०७.

रचनाओं का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस वर्ग की कहानियों में किसी विशेष प्रदेश के विशिष्ट ग्राम अथवा अंचल को आधार बनाकर कहानी रचना की जाती है। इसमें कहानीकार उस विशेष क्षेत्र के धर्म, संस्कृति, जनजीवन, सामाजिक रीति-रिवाज तथा अन्य क्रिया-कलाप का विस्तार से चित्रण करता है। जिसके पाठक के सामने वहाँ का सारा जीवन साकार हो उठता है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत स्वातंत्र्योत्तर युग के जिन कहानीकारों ने रचनाएँ प्रस्तुत की हैं उनमें फणीश्वरनाथ 'रेणु', राजेन्द्र अवस्थी तथा शैलेश मटियानी आदि के नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने बिहार प्रदेश के पूर्णिया जिले के अनेक गाँवों की पृष्ठभूमि में विविधि कहानियाँ लिखी हैं। राजेन्द्र अवस्थी ने मध्य प्रदेश के विभिन्न अंचलों का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। शैलेश मटियानी ने उत्तर भारत के आंचलिक जीवन का चित्रण अपनी कहानियों में किया है।

ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद—स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानी के क्षेत्र में ऐतिहासिक कथासूत्र से सम्बन्धित जो रचनाएँ की गयी हैं उनमें मुख्य रूप से मुगल और ब्रिटिश काल के इतिहास को आधार बनाया गया है। इस युग में अमृतलाल नागर ने आधुनिक सन्दर्भ में अवध के नवाबी जीवन से सम्बधित कुछ कहनियाँ लिखी हैं। इन कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें लेखक ने सम्बन्धित युगों की यथार्थ घटनाओं अथवा प्रमाणित तिथियों पर बल न देकर उन युगों के सांस्कृतिक और सामाजिक स्थितियों का रोचक वर्णन करता है। अमृतलाल नागर की विविध विषयक जो हास्य और व्यंग्य प्रधान शैली मिलती है उसे इनमें भी स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है।

अमृतलाल नागर ने विश्व युद्ध के ऐतिहासिक सूत्रों को आधार बनाकर जो कहानियाँ लिखी हैं उनमें मानवतावादी विचारधारा की प्रधानता है। इस प्रकार की रचनाओं में लेखक ने यह संकेत किया है कि किसी भी युग में शान्तिप्रिय नागरिक युद्ध नहीं चाहते परन्तु उन पर वह ऊपर से थोप दिया जाता है। अपनी लिखी हुई 'एटम बम' शीर्षक कहानी में लेखक ने युद्ध के अभिशाप से ग्रस्त एक चरित्र के माध्यम से इसी तथ्य को व्यक्त किया है: "कोवापाशी सोच रहा था, 'मैंने कौन-सा ऐसा अपराध किया था जिसकी यह सजा मुझे मिल रही है? अमीरों और अफसरों को छोड़कर कौन सा ऐसा आदमी था, जो यह लड़ाई चाहता था। दुनिया अगर दुश्मनी निकालती, तो उन लोगों से। हमने उनका क्या बिगाड़ा था? हमें क्यों मारा गया?....प्यास लग रही है। पानी न मिलेगा। ऐसी बुरी मौत मुझे क्यों मिल रही है? ईश्वर! मैंने ऐसा क्या अपराध किया था?"[1]

---

१. 'एटम बम', श्री अमृतलाल नागर, पृ० ४.

स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानीकारों में कमलेश्वर ने ऐतिहासिक विषय-वस्तु पर कुछ कहानियाँ प्रस्तुत की हैं। कमलेश्वर की इस कोटि की रचनाओं में ऐतिहासिक कथासूत्रों के साथ साथ एक प्रकार के व्यंग्य की भावना भी मिलती है। उदाहरण के लिए यहाँ पर उनके एक कहानी-संग्रह 'खोई हुई दिशाएँ' की एक रचना 'जार्ज पंचम की नाक' का उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी में लेखक ने जार्ज पंचम की भारत-यात्रा को आधार बनाकर जो कथासूत्र प्रस्तुत किया है वह इस युग के कृत्रिम जीवन का यथार्थ स्वरूप पाठक के सामने प्रस्तुत कर देता है : "यह बात उस समय की है जब इंग्लैंड की रानी ऐलिजाबेथ द्वितीय, मय अपने पति के हिन्दुस्तान पधारने वाली थीं। अखबार में उनकी चर्चा हो रही थी। रोज लंदन के अखबारों से खबरें आ रही थीं कि शाही दौरे के लिए कैसी-कैसी तैयारियाँ हो रही हैं....रानी ऐलिजाबेथ का दर्जी परेशान था कि हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, नैपाल के दौरे पर रानी कब क्या पहनेंगी ? उनका सेक्रेटरी शायद जासूस भी उनके पहले ही इस महाद्वीप का तूफानी दौरा करने वाला था। आखिर कोई मजाक तो था नहीं।....जमाना चूंकि नया था, फौज-फाटे के साथ निकलने के दिन बीत चुके थे, इसीलिए फोटोग्राफरों की फौज तैयार हो रही थी।"[1]

आनन्द प्रकाश जैन ने भी स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन ऐतिहासिक कहानियों की प्रवृत्ति के विकास में योग दिया है। उनकी लिखी हुई ऐतिहासिक कहानियाँ 'काल के पंख' तथा 'अतीत के कम्पन' नामक संग्रहों में उपलब्ध होती हैं। आनन्द प्रकाश जैन का ऐतिहासिक दृष्टिकोण मुख्यतः मुगल कालीन इतिहास के ज्वलन्त तथ्यों को प्रस्तुत करना है। इनकी प्रमुख ऐतिहासिक कहानियाँ अतीत के कम्पन तथा काल के पंख आदि संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं। इनमें लेखक ने यह संकेत किया है कि इतिहास के पिछले युगों में बहुधा ऐसे समय आये हैं जब अपनी आन पर लोगों ने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया है। इस युग में ऐतिहासिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत ऐसी रचनाएँ बड़ी संख्या में उपलब्ध होती हैं जिनका उल्लेख विगत अध्यायों में किया जा चुका है और जिन्होंने इस युग में भी कहानी लेखन परम्परा को जारी रखा है।

**स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन धार्मिक पौराणिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—स्वातन्त्र्योत्तर युग में धार्मिक पौराणिक कहानियों की प्रवृत्ति का जो रूप मिलता है वह पूर्व-युगीन कहानीकारों की तुलना में भिन्न है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, प्रेमचन्द युग से ही हिन्दी कहानी में धार्मिक आडम्बरों और अन्धविश्वासो का विरोध आरम्भ हो गया था। इस युग के कहानीकारों ने भी धार्मिक आडम्बरों का विरोध करके परम्परागत रूढ़ियों के खंडन का प्रयत्न किया। अमृतलाल नागर जैसे लेखकों ने सांसारिक जीवन के सामान्य क्रिया-कलाप की पृष्ठ–

---

१. 'खोई हुई दिशाएँ', श्री कमलेश्वर, सन १९६३, पृ० ५०.

भूमि में धार्मिक भावनाओं का चित्रण किया है। उनकी कुछ कहानियाँ उदाहरणार्थ 'भगवान के घर की एक शाम' इस दृष्टि से उल्लिखित की जा सकती हैं। इनमें धार्मिक तन्मयता के साथ जुड़ी हुई भौतिकता का प्रभावशाली चित्रण है : "कीर्तनिया जी गाते हुए तन मन की सुधि बिसार कर आनन्दविभोर हो गये। सारे वातावरण में शान्ति छा गई। शयन के दर्शन होने लगे। झांझ करताल बजने लगी।....भाव रूपी भगवान् सारे दिन का कार्यक्रम पूरा कर कीर्तनिया जी की लोरियों के पालने में ही सो गए। यह बड़ी हवेली जिसके अँधेरे में उन्हें कैद कर उनके नाम पर व्यापार और व्यवसाय किया जाता है, जहाँ उनकी प्रत्यक्ष साखी में सब तरह के पाप और अनाचार हो जाते हैं, जहाँ वे मनुष्य की स्वार्थान्धता का प्रतीक बनकर जड़ हो गये हैं वहाँ भला उन्हें क्यों कर नींद आ सकती है? वहाँ का भोग शृङ्गार भी उन्हें क्यों कर रुच सकता है?....तुलसीदल डाल कर भगवान को दूध के गिलास का भोग चढ़ाया गया, भगवान ने पिया, दूध मुखिया ले गया।"[1]

स्वातन्त्र्योत्तर युग के कुछ कहानीकारों ने अपनी यथार्थपरक रचनाओं में यह संकेत किया है कि पहले जहाँ धर्म आत्मिक शुद्धि, सदाचार और आत्मोत्थान का माध्यम माना जाता था वहाँ दूसरी ओर आज का धर्म केवल ढोंग बनकर रह गया है। इस दृष्टि से यहाँ पर उदाहरण के लिए कमल जोशी को लिखी हुई 'ब्रह्म और माया' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है, जो इसी नाम के कहानी संग्रह में प्रकाशित हुई है। इस कहानी में लेखक ने नायक रामानन्द को अत्यन्त चरित्रहीन और अनाचारी नायक के रूप में चित्रित किया है यद्यपि वह ढोंगवश नियमित पूजा पाठ करता है : "अपने हृष्ट-पुष्ट शरीर को जरा आगे की ओर झुकाते हुए रामानन्द पूजा करने बैठा।....अभी अभी सवेरा हुआ है। कड़ाके की सर्दी है। लेकिन रामानन्द सिर्फ एक पतला सा रामनामी दुपट्टा ओढ़े हुए है।.... रामानन्द के कानों में कोई आवाज नहीं पहुँचती। आध्यात्मिकता के एक शिखर से दूसरे पर वह पहुँच जाता है। उसके सामने किसी देवी-देवता की मूर्ति नहीं होती और न वह किसी मंत्र का पाठ करता है। सिर्फ आँखें बन्द किये बैठा रहता है, किसी दिन एक घंटा और कभी इससे भी ज्यादा। उस समय ऐसा लगता है, जैसे सिवा दिल की धड़कन के उसके शरीर की समस्त इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो गयी हों, उस वक्त मानों इस संसार से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता, कुछ लेना देना नहीं।"[2]

---

१. 'युग चेतना', वर्ष १, अंक १, जनवरी १९५५, पृ० १६.

२. 'ब्रह्म और माया', कमल जोशी, सन १९५६, पृ० ७३-७४.

धर्मवीर भारती की लिखी हुई 'सावित्री नम्बर दो' जैसी कहानियाँ भी आधुनिक समाज में व्याप्त धार्मिक अन्ध-विश्वास की परिचायक हैं। इस कहानी में लेखक ने यह संकेत किया है कि आज के समाज के निम्न और मध्यवर्ग के संस्कार इतने रूढ़िवादी हैं कि उनकी धर्म और ईश्वर में अखण्ड आस्था बनी हुई है। कभी-कभी जब वर्षों की पूजा साधना का भी कोई फल दिखाई नहीं देता तब जनता की दीन-हीन दशा इस धर्म और विश्वास की खिल्ली उड़ाती हुई मालूम देती है। 'सावित्री नम्बर दो' शीर्षक कहानी में इसी तथ्य का मार्मिक चित्रण हुआ है : "हर बार पूछना चाहा है, मगर बार-बार चुप रह गई।....आज जब माँ को सज-धज कर वट सावित्री की पूजा के लिए थाल में सूत और रोली, चावल रख कर जाते देखा तभी से बेहद बेचैनी है कि आज तो तुमसे यह सवाल पूछ कर रहूँगी, सत्यवान। जाते-जाते माँ की निगाह मेरी इस गन्दी छः साल से यहीं पड़ी रोग शय्या पर पड़ी और वे ठिठक गईं। फिर पूजा की थाली नीचे रख दी। मेरे पास आईं। मेरे रूखे मैल भरे बालों पर हाथ फेरकर बोलीं, 'सवितरा बेटी।' और आँसू पोंछते हुए चली गईं। सवितरा मेरे घर का नाम है...प्यार का : जब मैं प्यार के काबिल थी :... असली नाम है सावित्री और नहीं तो सिर्फ नाम से नाते ही तुमसे पूछती हूँ सत्यवान कि तुम बताओ कि मैं आखिर करूँ तो क्या करूँ ? हर ओर भटक-भटक कर रोगी जर्जर, बरसों से क्षण-क्षण धीरे-धीरे मरती हुई यह सावित्री नाम की लड़की अब बहुत थक गई। रास्ता क्या है सत्यवान ?"[1]

स्वातन्त्र्योत्तर युग के जिन कहानीकारों की रचनाओं से धार्मिक पौराणिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत यथार्थवाद के बढ़ते हुए आग्रह से सम्बन्धित उदाहरण ऊपर प्रस्तुत किये गये हैं। उनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक लेखकों ने उल्लेखनीय योग दिया है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है कि इस युग में धर्म के आडम्बरपूर्ण रूप का विरोध करते हुए लेखकों ने मानवतावादी धर्म का समर्थन किया। उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाले अनाचार और शोषण का विरोध करते हुए यह बताया कि सच्चा धर्म मनुष्य को भाई-चारे की भावना को जन्म देता है वह एक इन्सान को दूसरे इन्सान से नफरत करना नहीं सिखाता। यहाँ पर विभिन्न धर्मों के संघों द्वारा चलायी जाने वाली शिक्षण संस्थाओं के खोखलेपन का जो चित्रण किया गया है वह भी इस क्षेत्र में यथार्थ के ही आग्रह का परिणाम है।

**स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**— स्वातन्त्र्योत्तर युग में राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति का जो विकास हुआ है उसमें पिछले युग की भाँति राष्ट्रीय आन्दोलनों और स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए किये गये आन्दोलनों का समावेश न होकर उन समस्याओं को उठाया गया है, जिनका सम्बन्ध

१. 'सारिका', जून सन १९६२, पृ० १२.

स्वतन्त्र भारत की राजनीतिक समस्याओं से है। इस युग की राजनैतिक कहानियों की प्रवृत्ति उन लेखकों की रचनाओं में भी दृष्टिगत होती है जिनका सम्बन्ध हिन्दी कहानी के इतिहास के पिछले विकास युग से है और जिनका उल्लेख भी पीछे किया जा चुका है। इस युग के कहानीकारों में से जिनकी रचनाओं में राजनैतिक प्रवृत्ति मिलती है उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इस युग में भारत-विभाजन के फल-स्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों को आधार बनाकर अनेक कहानियाँ लिखी गयीं। इन कहानियों की कथावस्तु का सम्बन्ध विभाजन के पश्चात् उत्पन्न हुई परिस्थितियों से है। मोहन राकेश की लिखी हुई 'मलवे का मालिक' जैसी कहानियाँ कथावस्तुगत यथार्थ का जो रूप प्रस्तुत करती हैं उसका सम्बन्ध आधुनिक जीवन के इसी पहलू से है। इस कहानी में लेखक ने भारत-विभाजन के पश्चात् स्थान परिवर्तन के विडंबना-पूर्ण चित्र को प्रस्तुत किया है : "पूरे साढ़े सात साल के बाद वे लाहौर से अमृतसर आये थे। हाकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था, जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गये थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई न कोई टोली घूमती नजर आ जाती थी। उनकी आँखें इस आग्रह के साथ वहाँ की हर चीज को देख रही थीं, जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक खास आकर्षण केन्द्र हो।...तंग बाजारों में से गुजरते हुए वे एक दूसरे को पुरानी चीजों की याद दिला रहे थे...देख, फतहदीना मिसरी बाजार में अब मिसौरी की दूकानें पहले से कितनी कम रह गयी हैं।....उस नुक्कड़ पर भटियारिन की भट्ठी थी, जहाँ अब यह पान वाला बैठा है।....यह नमक मंडी देख लो, खान साहब। यहाँ की एक लालाइन वह नमकीन है कि बस....।[1]

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत यहाँ पर महीप सिंह लिखित 'पानी और पुल' शीर्षक कहानी का भी उल्लेख किया जा सकता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इस युग के अनेक कहानीकारों ने भारत-विभाजन के बाद की परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण किया है। इस कहानी की विशेषता यह है कि इसमें भारत के विभाजन के पूर्व ही उसकी सूचना मात्र की मार्मिक प्रतिक्रिया का चित्रण हुआ है : "उन दिनों जब पंजाब का विभाजन घोषित हो चुका था....पंजाब की पाँचों नदियों का जल उन्माद की तीखी शराब बन चुका था...माँ ने फिर पंजाब जाने का फैसला किया था। सभी ने ऐसे विरोध किया जैसे वे जलती आग में कूदने जा रही हों, और वह सचमुच आग में कूदने जैसा ही तो

---

१. 'स्वतन्त्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ कहानियां', सं० श्री विजयचन्द, सन १९६३, पृ० १०६-१०७.

था, परन्तु पिता जी सहित सब जानते थे कि माँ को अपने निश्चय से डिगाना कोई आसान नहीं है। उन्होंने सबकी बातों को हँसकर टाल दिया। बीस-बाइस दिनों में वह वापस आ गईं। गाँव के घर का बहुत-सा सामान वे बुक करा आई थीं। अपने साथ वे अपना पुराना चरखा और दही मथने की बड़ी मथानी ले आई थीं।"[1]

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन राजनैतिक प्रवृत्ति के सन्दर्भ में यहाँ पर जिन लेखकों की कहानियों से उदाहरण दिये गये हैं, वे कालक्रम की दृष्टि से इसी युग के हैं। इनमें वे लेखक सम्मिलित नहीं हैं जिनका उल्लेख पिछले युग में किया जा चुका है। यद्यपि इस युग में भी उनकी अनेक कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत इस युग में जो रचनाएँ मिलती हैं उनमें मुख्य रूप से देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनैतिक समस्याओं का चित्रण है जिनमें भारत-विभाजन की समस्या प्रमुख रही है।

**स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद**—स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी साहित्य के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति का विशेष रूप से विकास हुआ है। इस युग में प्रायः सभी कहानीकारों ने मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। जनजीवन के परिवर्तनशील रूपों का चित्रण करते हुए इन लेखकों ने सामाजिक पृष्ठभूमि में विभिन्न कुण्ठाओं का चित्रण किया है। शशि तिवारी ने अपनी अनेक कहानियों में आधुनिक सामाजिक जीवन की अनेक कुप्रथाओं का व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया है। उदाहरण के लिए यहाँ पर उनकी लिखी हुई 'जब नैपालिन आयी' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी में उन्होंने यह उल्लेख किया है कि आज भी समाज के विभिन्न वर्गों में दहेज आदि की जो प्रथाएँ प्रचलित हैं उनमें शोषण के साथ ही बहुत धोखाधड़ी होती है। इस कहानी में इसी सामाजिक प्रथा का व्यंग्यात्मक चित्रण है—"सिर से बोझ उतार प्रसन्नता में मित्र जी बाहर आये। 'लगन आ रही है' कह के बैठ गये। आरती की थाली अभी घूम ही रही थी कि पानों की रकाबी गंध की लपटें लहरा रही थी और मित्र जी मन में कलाबाजियाँ खा रहे थे। भीतर से लगन के सजे सजाये थाल चले आ रहे थे। सबसे आखिरी में आये हाथ में एक कोरा लिफाफा लिये शुक्ल जी। लोगों का अन्दाज था इसी में चेक होगा। एक लाख एक लिफाफे में बन्द है। लगन के ग्यारह थाल हैं। पाँच चाँदी के। वाह क्या तकदीर पायी है मित्र जी ने। दो लड़के हैं, दोनों के दोनों हीरा। मित्र जी ने शुक्ल को देखा तो अवाक! आदमी की शक्ल इतनी भी मिल सकती है किसी से? हुबहू शुक्ल जी। घर में न बताती कि मुनीम है तो वे तो यही समझते कि शुक्ल जी ही हैं। वाह रे भगवान! बड़ी मँहगी

---

१. वही, पृ० १४०.

पड़ी नेपालिन। सुना था आसामी जादू टोना करती है, पर इस नेपालिन ने तो खून पसीना एक कर दिया, जबकि घर में पांव नहीं पड़ा। चलो अच्छा हुआ जो नेपालिन नहीं आयी।"[1]

निर्मल वर्मा की कहानियाँ भी स्वातन्त्र्योत्तर युग में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत उल्लेखनीय हैं। निर्मल वर्मा की कहानियों की एक विशेषता यह है कि उनमें देशी-विदेशी जीवन के विभिन्न चित्र मनोवैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किये गये हैं। उदाहरण के लिए यहां पर निर्मल वर्मा की लिखी हुई 'डेढ़ इंच ऊपर' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें लेखक ने बौद्धिक वर्ग के कुछ पात्रों के आधार पर यह संकेत किया है कि वृद्धावस्था प्राप्त व्यक्तियों की रुचियों और जीवनचर्या में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कितना अधिक परिवर्तन हो जाता है: "नहीं जनाब, मैं बिल्कुल अकेला नहीं रहता। क्या आप जानते हैं, पेंशनयाफ्ता लोगों के अपने शौक होते हैं। मेरे पास एक बिल्ली है...बरसों से मेरे पास रह रही है। अब जरा देखिये, मैं यहाँ बियर पीते हुए आप से लम्बी-चौड़ी बातें कर रहा हूँ, उधर वह मेरे इन्तजार में दरवाजे पर बैठी होगी। आपके बारे में मुझे मालूम नहीं, लेकिन मुझे खयाल काफी तसल्ली देता है कि कोई मेरी इन्तजार में बाहर सड़क पर आँखें लगाये बैठा है। मैं ऐसे लोगों की कल्पना नहीं कर सकता जिनका इन्तजार कोई नहीं कर रहा हो या खुद किसी का इन्तजार नहीं कर रहे हों। जिस क्षण आप इन्तजार करना छोड़ देते हैं, उस क्षण आप जीना भी छोड़ देते हैं। बिल्लियाँ काफी देर तक और बहुत सब्र के साथ इन्तजार कर सकती हैं। इस लिहाज से वे औरतों की तरह हैं। लेकिन सिर्फ इस लिहाज से नहीं...औरतों की ही तरह उनमें अपनी तरफ खींचने और आकर्षित करने की असाधारण ताकत रहती है। डर और मोह दोनों ही...हम अकेले में उन्हें देखकर बँधे लुटे से खड़े रहते हैं।"[2]

मन्नू भंडारी ने जो मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। उनकी पृष्ठभूमि में एक नारी कहानी लेखिका का दृष्टिकोण मिलता है। आज की दुनिया में जो परिस्थितियाँ मौजूद हैं उनके प्रति स्त्री और पुरुष के दृष्टिकोण में फर्क होता है। मन्नू भंडारी ने अपने एक कहानी संग्रह की भूमिका में इस सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है। उनका विचार है कि आज का मनोवैज्ञानिक कहानीकार पुरानी परम्पराओं को नई दृष्टि से देखता है और यही उसके दृष्टिकोण की विशेषता है: "शुरू-शुरू में कहानी लिख डालना शायद इतना कठिन नहीं है जितना बाद में कहानीकार हो जाने के 'सम्मान' और 'दायित्व' को निभाना। कवयित्री की अपेक्षा नारी कहानीकार के

---

१. 'कादम्बिनी', वर्ष ५, अंक : १, सितम्बर १९६५, पृ० १११.

२. 'अकहानी', सं० श्री श्याममोहन श्रीवास्तव तथा सुरेन्द्र अरोड़ा, सन १९६७, पृ० १४-१५.

साथ यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है कि उसे बिना लाक्षणिक भाषा का सहारा लिए अधिक खुलकर सामने आना पड़ता है। वह घिसे-पिटे कथानकों और भाव धरातलों को ही लेती रहे, तब तक तो ठीक है, लेकिन जहाँ जीवन और जगत के व्यापक क्षेत्रों को छूने का साहस उसने किया कि प्रत्यक्ष और परोक्ष वर्जनाएँ उसकी ओर उँगली उठाती सामने आ खड़ी होती हैं। जगह-जगह 'निषिद्ध क्षेत्र' की तख्तियाँ उसके आस-पास मँडराती हैं। ऐसे में यह मानसिक द्वन्द्व उसके लिए एक समस्या बना रहता है कि वह कला के प्रति ईमानदारी बरते या जड़ विधि-निषेध के प्रति। शायद नये मन और पुरानी रूढ़ियों का संघर्ष ही इन कहानियों की विषयवस्तु और कहानीकार की मनःस्थिति है।[1]

उषा प्रियंवदा ने भी इस युग में मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में योग दिया है। आधुनिक युग में मनुष्य के सामने रोजी-रोटी की समस्या इतने कठिन रूप में उपस्थित है कि उसके परिणाम-स्वरूप सामाजिक और पारिवारिक जीवन की परम्परा रूप बिलकुल छिन्न-भिन्न हो गई है। अपनी लिखी हुई 'वापसी' जैसी कहानियों में उषा प्रियंवदा ने यह संकेत किया है कि ऐसी परिस्थिति में बहुधा आजीवन सम्बन्ध भी तटस्थता में बदल जाते हैं और तब व्यक्ति उनका आदी होकर जिन्दगी को ढोता चला जाता है। ऐसे ही एक व्यक्ति के जीवन का मार्मिक चित्रण उषा प्रियंवदा ने अपनी इस कहानी में किया है : "गजाधर बाबू प्रायः छोटे स्टेशनों पर रहे। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई का प्रश्न उठा था तो पत्नी बच्चों के साथ शहर में रहने लगी थीं। गजाधर बाबू बहुत ही स्नेही थे और स्नेह के आकांक्षी थे। उन्होंने यह व्यवस्था बच्चों के विचार से ही स्वीकार की थी। पर उनके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा था। उनसे घर में टिका न जाता था। जब परिवार साथ था, तो ड्यूटी से लौटकर पत्नी से हँसते बोलते, बच्चों से खेलते, उन्हें दुलारते। अब कवि प्रकृति के न होने पर भी उन्हें पत्नी और उमा की बातें याद आतीं। पत्नी दोपहर में दो बजे तक आग सुलगाए रहती और उनके लिए खाना गरम रखती। उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा सा कुछ और थाली में परस देती और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह बाहर से आते तो उनकी आहट पर वह चौके के द्वार पर निकल आती और उसकी सलज्ज आँखें मुस्करा उठतीं...। गजाधर बाबू को हर छोटी बात याद आती और वह उदास हो उठते।.... अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था, जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे....।"[2]

१. 'मैं हार गई और मन्नू भंडारी की अन्य कहानियाँ', सुश्री मन्नू भंडारी, सन १९५९, भूमिका, पृ० ९.

१. 'स्वतंत्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कहानियां', सं० विजयचन्द, सन १९६३, पृ० २०-२१.

इस प्रकार से इस युग के कहानीकारों ने मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में विशेष रूप से योग दिया है। अमृतलाल नागर, कमल जोशी, निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, फरणीश्वर नाथ 'रेणु', उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, शशि तिवारी तथा मोहन राकेश आदि कहानीकारों ने मनुष्य की विभिन्न कुण्ठाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए यह संकेत किया है कि आज के जीवन में अनेक प्रकार के विरोधाभास दिखाई देते हैं, जिनके फलस्वरूप अनेक प्रकार की विडम्बनाएँ सामने आती हैं।

## (घ) स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद के विविध रूपों का विश्लेषण

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद के जो प्रमुख रूप दृष्टिगत होते हैं उनमें ऐतिहासिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद आदि हैं। उनमें से ऐतिहासिक यथार्थवाद के क्षेत्र में अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव तथा श्रीमती स्वरूप कुमारी बख्शी ने व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। सामाजिक यथार्थवाद के क्षेत्र में मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, अमृतराय आदि ने समाज के परिवर्तनशील रूपों को चित्रित किया है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के क्षेत्र में राजेन्द्र अवस्थी, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, कमल जोशी, अमृतराय तथा मन्नू भंडारी आदि हैं। मानव मन की कुण्ठाओं के यथार्थवाद का चित्रण किया है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के क्षेत्र में इस युग में भी विभिन्न लेखकों ने जीवन की यथार्थपरक समस्याओं पर विस्तार से विचार करते हुए उनके आदर्शपरक निदान प्रस्तुत किये हैं। यहाँ पर इस काल के प्रतिनिधि कहानीकारों की प्रमुख रचनाओं के आधार पर यथार्थवाद के इन्हीं मूल रूपों का संक्षेप में विवेचन किया जाता है।

**स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद का स्वरूप—** स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद के सम्बन्ध में यहाँ पर यह संकेत करना असंगत न होगा कि इस युग के अधिकांश कहानीकारों ने मुगल और ब्रिटिश कालीन इतिहास से सम्बन्धित विभिन्न कथा-सूत्रों को व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, यहाँ पर इस प्रसंग में उन लेखकों की रचनाओं का उल्लेख नहीं किया जा रहा है जिनकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। यद्यपि उनकी कहानियाँ भी इस युग में प्रकाशित हुई हैं। अमृतलाल नागर ने नवाबी युग के इतिहास से सम्बन्धित कतिपय कथा-सूत्रों को व्यंग्यात्मक रूप में चित्रित किया है। उनसे यह संकेत मिलता है कि मुगल काल में अवध पर नवाबों का राज्य था और उसमें अकर्मण्यता चारों ओर व्याप्त थी। सांस्कृतिक और सामाजिक सूत्रों के सन्दर्भ में अमृतलाल नागर ने इनका हास्य और व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया है।

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद के सन्दर्भ में राजेन्द्र

यादव की भी कतिपय रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। उदाहरण के लिए 'तलवार पंच हजारी' शीर्षक कहानी में लेखक ने यह संकेत किया है कि आज भी हमारे समाज में ऐसे लोग मौजूद हैं जो इतिहास की कल्पना में ही जीवित हैं। मुगल काल में जो मन्सबदारी की प्रथा प्रचलित थी उसने दम्भी परिवारों में एक विचित्र सी प्रतिद्वन्द्विता की भावना उत्पन्न कर दी थी। आज भी बहुत से खानदान इस प्रकार की कल्पनाओं में भी रहे हैं जिनका सम्बन्ध उनके वंश की गुजरी हुई पीढ़ियों के इतिहास से है। इसी तथ्य का मार्मिक चित्रण करते हुए 'तलवार पंच हजारी' शीर्षक में लेखक ने लिखा है कि "पता नहीं, दर्द से मेरे दिल का तार-तार झनझना उठा या लालू के चेहरे का रेशा-रेशा ऐंठता सा लगा, मैंने ठंडी साँस ली और फिर हम लोग चुपचाप एक दूसरे से विदा हो गए।....सिर्फ एक हिम्मत बँधाती-सी मुस्कराहट का दर्द उसके होठों पर फैला था। मुझे लगा, जैसे उसने अपनी दोनों हथेलियाँ मेरे सामने खोलकर दिखाई हों—'देखो, मेरी दोनों हथेलियों में घाव हो गए हैं, वे लहुलुहान हो गई हैं, लेकिन मैंने पंचहजारी तलवार को तोड़ दिया है। तोड़ दिया है न?—मुझमें अब इतनी हिम्मत नहीं है कि लालू से फिर जाकर मिलूँ....।"[1]

स्वातन्त्र्योत्तर युगीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद के सन्दर्भ में यहाँ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना अनुचित न होगा कि पिछले युग के अनेक प्रसिद्ध कहानीकारों ने भी इस युग में महत्त्वपूर्ण कृतियाँ इस क्षेत्र में प्रस्तुत कीं, जिनकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। यहाँ पर इस सन्दर्भ में दिये गये उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के कहानीकारों ने ऐतिहासिक यथार्थ के सन्दर्भ में मुख्यतः व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

**स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में सामाजिक यथार्थवाद का स्वरूप**—स्वातन्त्र्योत्तर युगीन कहानीकारों के प्रायः सभी प्रमुख लेखकों की रचनाओं में सामाजिक यथार्थवाद के संकेत मिलते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर कहानी में सामाजिक यथार्थ का जो रूप दिखाई पड़ता है उसका एक पहलू गाँवों की जिन्दगी पर भी आधारित है। इस काल के बहुत से कहानीकारों ने ग्रामीण जीवन के तमाम पहलुओं को आधार बनाकर उनका यथार्थपरक चित्रण किया है। अनेक कहानीकारों ने इस विषय को नया और अछूता मानते हुए इसका समावेश अपनी कहानियों में किया है। इस सम्बन्ध में अमृतराय की लिखी हुई एक भूमिका के निम्नलिखित शब्द यहाँ पर उदाहरण के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं : "गाँव के नये सामाजिक सन्दर्भों को समझे और खोले बिना वास्तविक अर्थों में नयी भाव-भूमि पर पहुँचना कठिन है

१. 'स्वातंत्र्ता के बाद की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ', सं० विजयचन्द्र, सन १९६३, पृ० १५८-१५९.

क्योंकि वस्तु सत्य से हट कर भाव-भूमि का कोई अस्तित्व नहीं है। यथार्थ की गहरी पकड़ की कमी गंवई शब्दों की फुलझड़ी से भी पूरी नहीं होगी, और न कितने यत्न से साधा हुआ 'लोकल कलर' का चित्रण स्वयं एक साध्य बन सकता है क्योंकि यथार्थ-वादी कलाकार के लिए वह केवल साधन है यथार्थ के अन्तर्निहित सत्य तक पहुँचने का, उसको पहचाने का, उसके भीतर सोये हुए किसी जीवन बीज को प्रस्फुटित करने का। नये राग बोध और नयी सांकेतिकता के नाम पर बातों को उलझे-उलझे, उखड़े-उखड़े, टूटे-फूटे वाक्यांशों में कहना हो सकता है कि महान् कला हो, हो सकता है अनुभूतियों की अतल गहराई में उतरने पर इन अनोखे पनडुब्बों के पास बस इन अस्फुट शब्दों का पाथेय बच जाता हो, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि यह चीज वास्तविक जीवन की गहरी और साफ पकड़ की कमी को ढाकने के लिए एक चादर का काम भी दे सकती है।''[1]

श्रीकान्त वर्मा लिखित 'दूसरे के पैर' जैसी कहानियों में आज के समाज का एक महत्वपूर्ण पहलू चित्रित किया गया है। इसका सम्बन्ध स्वच्छन्द प्रेम की समस्या है। लेखक ने इस कहानी में यह संकेत किया है कि आज समाज में जो नैतिक मान्यताएँ प्रचलित हैं उनके विपरीत जाना प्रायः सामान्य व्यक्तियों के लिए सम्भव नहीं होता और यदि ऐसी कोई परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है तो उनका जीवन कुण्ठाग्रस्त हो जाता है : ''डाकिया सुबह को डाक फेंक गया था, जिसे देखने का उसमें उत्साह न था। उसमें पतले अक्षरों वाला वह लिफाफा भी था, जिसके न आने पर पूरा दिन अर्थहीन जान पड़ता था। अब उसे सारा मजमून अर्थहीन जान पड़ता था। वह जानता था, शशि ने क्या लिखा होगा, बल्कि वह बता सकता था कि सोमवार को शशि क्या लिखेगी, मंगल को क्या और शनिवार को क्या। कुछ मास पहले उसने अपने एक दोस्त से कहा था, हम पहले से प्रेम करते हैं, बाद में केवल उत्तरदायित्व के कारण प्रेम करते हैं। असल में हम अपने उत्तरदायित्व से प्रेम करते हैं। अब वह उत्तरदायित्व नहीं रहा। अब वह किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं, यहाँ तक कि शशि की चिट्ठियों के प्रति भी नहीं, जो मेज पर ढेर सारी अनखुली पड़ी थीं, इस भय से कि उसने उन्हें खोला तो वह एक बार फिर उसी बेवकूफी में बह निकलेगा और फिर वही प्रतीक्षा, वही अन्तहीन प्रतीक्षा। वह अब बिल्कुल ही प्रतीक्षा नहीं करना चाहता था, क्योंकि उसे लगता था कि अब जरा भी प्रतीक्षा करनी पड़ी तो वह शशि से घृणा करने लगेगा।''[2]

मन्नू भंडारी की कहानियों में सामाजिक यथार्थवाद का प्रखर रूप दृष्टिगत

---

१. 'गीली मिट्टी', भूमिका, श्री अमृतराय, सन १६५६, पृ० ८.

२. 'अकहानी', सं० श्री श्याममोहन श्रीवास्तव, तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन १६६७, पृ० ५०.

होता है। उन्होंने सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों की पृष्ठभूमि में जो यथार्थपरक कहानियाँ लिखी हैं उनमें परम्परागत रूढ़ियों का विरोध किया गया है। आधुनिक समाज में कान्वेन्ट की शिक्षा प्राप्त लड़कियाँ अपेक्षाकृत अधिक प्रबुद्ध और चेतन मानी जाती हैं। चाहे या अनचाहे मध्य वर्ग के सभी लोग अपनी लड़कियों को कान्वेन्ट में पढ़ने भेजते हैं। वहाँ के वातावरण के प्रति एक प्रकार का रहस्यपूर्ण आकर्षण छात्राओं और उनके अभिभावकों में बना रहता है। ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के प्रचार और प्रसार का परोक्ष उद्देश्य रखते हुए ये साम्प्रदायिक स्कूल कभी-कभी विचित्र समस्याएँ उत्पन्न कर देते हैं जिनका सम्बन्ध सामाजिक नैतिकता और कुण्ठा से है। मन्नू भंडारी की लिखी हुई 'ईसा के घर इन्सान' शीर्षक कहानी में इसी सामाजिक पक्ष का यथार्थ चित्रण है : "इसके तीसरे दिन ही रात में सब की आँख बचाकर, चर्च की छोटी-छोटी दीवारों को फांद कर कब और कैसे लूसी भाग गई, कोई जान नहीं पाया।....बड़ी विचित्र स्थिति थी, उस समय वहाँ की। एंजिला फादर की उस अलौकिक शक्ति को जैसे चुनौती देकर चली गई; जिसके बल पर उन्होंने कितने ही पतितों की आत्मा शुद्ध की थी। फादर इस असफलता पर आत्म-ग्लानि के मारे मरे जा रहे थे। मदर बेहद परेशान थीं। कभी फादर के पास, कभी कालेज तो कभी चर्च में दौड़ती फिर रही थीं। तभी लुसी और भाग गई। एक तो चर्च जैसी पवित्र जगह, फिर लड़कियों का कालेज, क्या असर पड़ेगा इस घटना का लड़कियों पर।....दो दिन बाद ही चर्च और कालेज के चारों ओर की दीवारें ऊँची उठने लगीं और देखते ही देखते चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारें खिंच गई।"[1]

आज के सामाजिक जीवन की एक महत्वपूर्ण समस्या नारी शिक्षा और स्वावलम्बन की है। आज समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्गों की स्त्रियाँ शिक्षित होकर स्वावलम्बी बन रही हैं। समाज के रूढ़िवादी वर्ग यद्यपि स्त्रियों का नौकरी करना अच्छा नहीं समझते परन्तु कभी-कभी विवशतापूर्वक इस स्थिति को स्वीकार करते हैं। कमल जोशी ने अपनी कुछ कहानियों में यह संकेत किया है कि कभी-कभी नौकरी करती हुई लड़कियाँ विवाह होने पर नौकरी छोड़ देती हैं। नारी स्वावलम्बन के इसी पहलू का चित्रण कमल जोशी की 'वैनिटी' शीर्षक कहानी में मिलता है। "तब ? अब नौकरी नहीं करेंगी ? यह तो अच्छी बात है। अगर आवश्यकता न हो तो फिर नौकरी करने का प्रश्न ही नहीं उठता। वैसे भी स्वाभाविक अवस्था में युवतियों को नौकरी करने की कोई जरूरत तो नहीं पड़ती। लेकिन हाँ, जरूरत होने पर करनी ही पड़ती है। फिर भी एक बात कहूँ, यदि कुछ ख्याल न करें। उम्र में आप मेरी लड़की के समान हैं। दुनिया का थोड़ा-बहुत अनुभव भी आप को है ही।

---

१. **'मैं हार गई', सुश्री मन्नू भंडारी, सन १९५९, पृ० २६.**

आपका सर्विस रिकार्ड भी बहुत अच्छा है। नेक्स्ट हायर स्केल के लिए मैंने आपका नाम रिकमेन्ड भी करा दिया है। आशा है, अवश्य हो जाएगा। ऐसी अवस्था में रिजाइन करना ठीक है? अगर बहुत ही जरूरी न हो तो छुट्टी की अर्जी दे दीजिए। एक महीने, दो महीने और नहीं तो तीन महीने की। मैं मन्जूर कर दूँगा। न हो, छुट्टी के बाद ही रिजाइन कीजिए। क्या ख्याल है? स्तीफा दे देना क्या ठीक होगा? एक बार इस पर फिर से विचार कीजिए।"[1]

इस प्रकार से स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में सामाजिक यथार्थवाद का चित्रण प्रायः सभी प्रतिनिधि कहानीकारों की रचनाओं में मिलता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इस युग के प्रमुख कहानीकारों ने ग्रामीण और नागरिक सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण करते हुए उन परिवर्तनों की ओर संकेत किया है जो आज के सामाजिक जीवन का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। इस सम्बन्ध में उन कहानीकारों की रचनाओं का उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है जिनकी कृतियाँ तो इस युग में प्रकाशित हुई हैं परन्तु काल-क्रम की दृष्टि से उनकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है।

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का स्वरूप-- स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का स्वरूप भी प्रायः सभी प्रमुख लेखकों की रचनाओं में दृष्टिगत होता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इस युग के कहानीकारों ने मानव मन की कुण्ठाओं का विवेचन करते हुए समाज के यथार्थ स्वरूप का चित्रण किया है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का जो रूप राजेन्द्र अवस्थी की कहानियों में दृष्टिगत होता है वह किसी सीमा तक अतियथार्थवादों से प्रभावित कहा जा सकता है। हिन्दी के जिन कहानीकारों ने इस काल के वातावरण और कथासूत्र पर आधारित कहानियाँ लिखी हैं, उनमें इस प्रकार के चित्रण अक्सर मिलते हैं। राजेन्द्र अवस्थी की लिखी कहानियों में से 'वह एक अकेला' शीर्षक रचना से यहाँ पर एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जो यहाँ पर इस दृष्टि से उल्लेखनीय है: "वह मेरे हाथ से पत्र छीन लेता है। यह वाक्य एक कांटे की तरह चुभता है उसे ...'बेहया....। एक जमाना था, मेरा चेहरा पकड़ कर घूमा करती थी। पिकनिक से लौट कर सांझ के अँधेरे में हम दोनों बाहें डाले घंटों एक दूसरे से लिपटे रहे हैं। पसीने से तर होने के बाद हमने एक दूसरे में मद-भरी सुगन्ध पाई है। उसके नाजुक होंठ हमेशा मेरे पास रहे हैं। वायदों का तो बयान नहीं। जिस रात लौसएंजिल्स से जा रहा था, बेहद सर्दी थी। तब भी एक फ्राक के सिवाय उसने कुछ नहीं पहना था। इसलिए कि वह एक महीन फ्राक में ही मुझे खूबसूरत

---

१. **'ब्रह्म और माया', श्री कमल जोशी, सन १९५६, पृ० ९९.**

लगी है। उसके हर उभार को मैंने उसी में देखा है। हवाई जहाज उड़ गया तब भी मुझे लगा जैसे वह उसके पंखों में ही कहीं न कहीं फँसी है। बेचारी—बेचारी बड़ी निराश हुई, मैं शादी कर लेता तो..."[1]

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की दृष्टि से कमल जोशी के कहानी-संग्रह 'ब्रह्म और माया' की कुछ रचनाएँ यहाँ पर उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में कमल जोशी ने यह संकेत किया है कि आज के युग में स्त्री पुरुष का जीवन आडम्बरपूर्ण और रूढ़िवादी नैतिक बन्धों के कारण कुण्ठाग्रस्त हो गया है। इसीलिए बहुधा बहुत से स्त्री पुरुष अपने-अपने मानसिक बहाव में ही बहते रहते हैं। उनके मन में गुजरी हुई जिन्दगी की बहुत-सी यादें ताजी बनी रहती हैं और उनके कारण उनमें एक ताजी प्रकार की स्थिरता-सी आ जाती है। कमल जोशी के 'ब्रह्म और माया' शीर्षक कहानी संग्रह से यहां 'कस्तूरी मृग' नामक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें नायिका की इसी प्रकार की मनःस्थिति का चित्रण हुआ है : 'तर्जनी के अग्र भाग से फर्श की धूल पर निर्मला ने लिखा 'प्रकाश...।'...जिस दिन प्रकाश से प्रथम परिचय हुआ था, उस दिन की याद है। उस मकान में आते ही दोपहर को प्रायः तीन चार बजे वह शांति से मिलने गई थी। ऊपर की मंजिल के किरायेदार से मेल मिलाप कर लेना ही अच्छा है। मुलाकात करने पर मालूम हुआ कि एकदम अपरिचित नहीं है। बातों ही बातों में प्रकाश का परिचय भी निकल आया। दीवार पर टंगी हुई एक तस्वीर भी निर्मला ने देखी। यह तस्वीर उसने अपनी ससुराल में भी देखी थी, फौरन याद आ गयी।"[2]

स्वातंत्र्योत्तर युग में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का अपनी कहानियों में चित्रण करने वाले रचनाकारों में श्रीमती मन्नू भंडारी का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी कहानियों की विशेषता यह है कि इनमें नारी मन का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिये यहाँ पर मन्नू भंडारी की लिखी हुई 'नैना' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। यह कहानी एक ऐसी औरत के मन की कुंठा का चित्रण प्रस्तुत करती है जो अपनी अतृप्त काम भावना को बनावटी नैतिकता से ढकने की कोशिश करती है। परन्तु उसके व्यवहार और बातचीत से उसका देवर चकित रह जाता है। जब वह उसके चरित्र के इन दोनों पहलुओं को देखता और

---

१. '१९६६ की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां' में 'वह एक अहेतुक' शीर्षक कहानी, श्री राजेन्द्र अवस्थी, पृ० ५५-५६.

२. 'ब्रह्म और माया', श्री कमल जोशी, सन १९५६, पृ० १४.

समझता है। 'उस दिन तो मेरी लज्जा का कोई ठिकाना ही नहीं रहा, जिस दिन उन्होंने अपने नौकर को इसी बात के लिए बुरी तरह डांटा कि वह क्यों धोती को मोड़ कर लंगोट की तरह कर लेता है, और कमीज के सारे बटन खोलकर, बाहें उलट कर नंगा सीना और नंगी बाहें दिखाता फिरता है : मैंने उस दिन ही भाभी को क्रोध करते देखा था। वह गुस्से से लाल होकर कांप रही थीं और चिल्लाये जा रही थी 'औरतों वाले घर में काम किया है कभी या नहीं : बत्तमीज को रहना है तो तमीज से रहो।''[1]

इस प्रकार से स्वातंत्र्योत्तर काल में लिखी गयी हिन्दी कहानी मनोवैज्ञानिक यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से विशेष महत्व की है। यहाँ पर इस युग में प्रकाशित उन मनोवैज्ञानिक कहानीकारों की रचनाओं का उल्लेख नहीं किया गया है, जिनकी रचनाएँ तो इस युग में प्रकाशित हुई हैं परन्तु जिनकी चर्चा ऐतिहासिक काल क्रम के अनुसार पिछले अध्याय में ही की जा चुकी है। इस युग के अधिकांश कहानीकारों ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यक्ति की उन कुंठावों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है जो उसकी आंतरिक भावनाओं और स्वभाव को नियंत्रित रखती हैं तथा जो उग्र रूप धारण करके अनेक विषम स्थितियाँ भी समाज में उत्पन्न कर देती हैं।

**स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थ का स्वरूप**—स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की परम्परा भी विकासशील मिलती है। इस युग के कुछ कहानीकारों ने समकालीन सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं के निदान स्वरूप आदर्शपरक संकेत प्रस्तुत किये हैं। मन्नू भंडारी की लिखी हुई 'जीती बाजी की हार' जैसी कहानियों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का प्रभावशाली रूप मिलता है। इस कहानी में लेखिका ने यह संकेत किया है कि आज के जमाने में स्त्री के लिए शिक्षा और स्वावलम्बन बहुत आवश्यक है। जब तक नारी स्वयं अपने पैरों पर नहीं खड़ी होगी तब तक वह शोषित और दलित बनी रहेगी। बहुधा कुछ स्त्रियों का यह अनुमान होता है कि स्त्री के लिए एकदम स्वतंत्र और स्वावलम्बी बनना सम्भव नहीं है परन्तु मन्नू भंडारी ने स्पष्ट रूप से यह विश्वास प्रस्तुत किया है कि ऐसा होना बिल्कुल सम्भव है। अपनी लिखी हुई 'जीती बाजी की हार' शीर्षक कहानी में दो सखियों के जीवन के द्वारा उन्होंने यही संदेश प्रस्तुत किया है : "मुरला आज भी अविवाहित थी और शिक्षा विभाग के एक ऊँचे पद पर पहुँच गयी थी। वह एक सभा का सभापतित्व करने इलाहाबाद

---

१, 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', मन्नू भंडारी, पृ० १९.

गयी कि अचानक उसकी भेंट आशा से हो गयी।' आशा उसे मय सामान के अपने घर घसीट ले गयी। दो दिन मुरला उसके यहाँ रही। उसे आशा का घर, उसके तीनों बच्चे सभी कुछ बहुत अच्छा लगा। आशा की पाँच वर्ष की छोटी बच्ची दो दिन में ही मुरला से हिल मिल गयी। इन दोनों दिनों में दुनिया भर की बातें हुईं, पर किसी ने भी उस शर्तवाली बात को नहीं चलाया। तीसरे दिन मुरला जाने वाली थी। उस दिन आशा ने कहा—'मुरला, शर्त की बात तुझे शायद याद होगी। मैं हार गयी, अब तू जो चाहे माँग ले, मैं दूँगी। सच पूछो तो अपनी इस हार में भी मुझे प्रसन्नता है।'[1]

कमलेश्वर की लिखी हुई कुछ कहानियों में भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समावेश हुआ है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है। इस युग के समाज में उच्च मध्य और निम्न वर्ग के नये परिवर्तनों के फलस्वरूप स्वावलम्बन की भावना का जन्म हो रहा था और पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों में भी स्वावलम्बन की भावना जाग रही थी। कमलेश्वर ने अपनी लिखी हुई 'देवा' शीर्षक कहानी में समाज के यथार्थ जीवन के संदर्भ में इसी आदर्श को प्रस्तुत किया है: 'उसकी माँ दरियाँ बुनती थी और वह बेकार था। दरियाँ बुनने का भी कोई ऐसा बँधा हुआ सिलसिला नहीं था, जिसे काम कहा जा सके। कभी कोई अपनी जरूरत से बुलवा लेता और कभी बेजरूरत भी उसे काम देने की नियत से देता, या बरसों का कोई गद्दा लिहाफ जब जवाब दे जाता, उपलमा और अस्तर कट जाता और बदरंग नामा भीतर से झाँकने लगता तो उसे काम में लाने का एक यही तरीका कि उसे देवी की अम्मा को दे दिया जाय और वह महीने दो महीने में दरी बुनकर दे आया। मेहनत मजूरी का दाम धीरे-धीरे पटता रहता, क्योंकि कोई धन्धा तो था नहीं कि इस हाथ ले उस हाथ दे। यही क्या कम था कि जरूरत पड़ने पर उसे कहीं न कहीं से पैसे मिल जाते थे।'[2]

श्रीमती स्वरूपकुमारी बख्शी की कहानियों में भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के संकेत दृष्टिगत होते हैं। इस दृष्टि से इनकी लिखी हुई 'लुटेरे का दान', 'टूटा हुआ चिराग' तथा 'जंगीसिंह' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इनमें से 'जंगीसिंह' शीर्षक कहानी में लेखिका ने यह संकेत किया है कि आज समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो गरीब और आवारा माने जाते हैं तथा जिनकी कोई इज्जत और आबरू नहीं है परन्तु आवश्यकता पड़ने पर ऐसे ही लोग दूसरों के लिए अपनी जिन्दगी कुर्बान कर देते हैं: "मैं लट्ठ लेकर भागा। जिसको पाया दे मारा। शाखीखाने के सामने पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि जंगी सिंह मोर्चा बनाकर खड़ा

१. 'मैं हार गयी', 'मन्नू भंडारी, सन् १९५९, पृ० ५१.

२. 'राजा निरबंसिया,' श्री कमलेश्वर, पृ० १०.

है। उधर डाकुओं का गिरोह उधर जंगी सिंह और गाँव के कुछ जवान। मेरे देखते ही चार आदमियों को उसने जमीन पर गिरा दिया। अहा हा ! क्या गजब की लाठी चलाता था कि बस यह लगा कि किशन जी सुदर्शन चक्र लेकर पहुंच गये। धांय से एक गोली लगी और जंगी सिंह की टाँग से खून उमड़ पड़ा। फिर एक गोली बाँह में और फिर उसके जिस्म के कई हिस्सों से फव्वारे फूट पड़े। सिर्फ लट्ठ के सहारे एक आदमी बन्दूक वालों का कब तक सामना कर सकता था। इतने में गाँव के लोग अपना अपना, लट्ठ, बाँस, पट्टी, पत्थर जो कुछ मिला लेकर दौड़ पड़े। यह देखिये मेरी टाँग पर गोली का निशान। डाकू भाग गये। लड़की वालों की लाज रह गई लेकिन जंगी की देह छलनी होकर जमीन पर गिर पड़ी।"[१]

इस प्रकार ये स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानियों में भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समावेश परम्परागत रूप में हुआ है। इस सम्बन्ध में यहाँ पर यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि इस युग में भी उन लेखकों की रचनाएँ बड़ी संख्या में प्रकाशित हुई हैं, जिनका आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की दृष्टि से महत्व है और जिनकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। यहाँ पर इस सम्बन्ध में केवल उन्हीं लेखकों की रचनाओं से कुछ उदाहरण दिये गये हैं जो काल-क्रम की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर युग में ही उल्लिखित किये गये हैं।

### (ङ) स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद का उपकरणगत विवेचन

स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद का जो विवेचन पीछे किया गया है उससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस युग की कहानी पिछले युग की तुलना में कहीं-कहीं अतियथार्थवादी और प्रकृतिवादी भी हो गयी है। उसमें यथार्थ-वाद के विभिन्न रूपों का समावेश तो हुआ ही है मूल तत्वों की दृष्टि से भी यथार्थ का बढ़ता हुआ आग्रह स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। कथावस्तु, पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण, संवाद योजना अथवा कथोपकथन, भाषा, शैली, वातावरण या देश काल तथा उद्देश्य तत्वों के क्षेत्र में कहानीकारों का यथार्थ की ओर स्पष्ट झुकाव है। यहाँ पर मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, मोहन राकेश अमरकान्त, गोपाल शेखरन, अमृत राय, अमृतलाल नागर, निर्मल वर्मा, फणीश्वर-नाथ 'रेणु' आदि कहानीकारों की प्रतिनिधि रचनाओं से कहानी के विभिन्न तत्वों के क्षेत्र में यथार्थवाद के बढ़ते हुए आग्रह को सूचित करने वाले उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

**स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ**—स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ का विविधपूर्ण रूप मिलता है। इस

---

**१. 'कोढ़ियों का नाच', श्रीमती स्वरूप कुमारी बख्शी, सन् १९५६, पृ० ३४.**

काल के कहानीकारों ने समाज के सभी वर्गों का यथार्थात्मक चित्रण किया है। वास्तव में स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानी में कथावस्तु के बहुत से नये रूप सामने आये हैं। आज का कहानीकार समाज, धर्म, नीति, संस्कृति, राजनीति आदि किसी भी पहलू पर बिना किसी संकोच के सरल और स्वाभाविक रूप में कहानी रचना कर सकता है। उदाहरण के लिए यहाँ पर मोहन राकेश की लिखी हुई 'जानवर और जानवर' कहानी का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें लेखक ने ईसाई पादरियों की झूठी नैतिकता और आडम्बरयुक्त धर्म भावना का चित्रण किया है। इस कहानी की कथावस्तु का सम्बन्ध भारतीय समाज की एक यथार्थ समस्या से है। गरीबी के अभिशाप से ग्रस्त वहाँ का नीचे वर्ग का इन्सान सामाजिक प्रतिष्ठा की लालसा में इसाई धर्म ग्रहण कर लेता है : "स्कूल की नई मेम का नाम अनिता मुकर्जी था और उसकी आँखें बहुत अच्छी थीं। परन्तु क्योंकि आँट सैली की जगह पर आई थी, इसीलिए पहले दिन बेचलर्स डाइनिंग रूम में किसी ने उससे खुलकर बात नहीं की।··· उसने जान से बात करने की चेष्टा की तो वह 'हूँ, हाँ' में उत्तर देकर टालता रहा। मणि नानावती को अपनी चायदानी में से चाय देने लगी तो उसने हल्का सा धन्यवाद देकर मना कर दिया। पीटर ने अपना चेहरा ऐसा गम्भीर बनाए रखा जैसे उसे बात करने की आदत ही न हो। किसी तरह लिफ्ट न मिलने पर वह भी चुप हो गई और जल्दी से खाना समाप्त करके उठ गई।··· 'अब मेरी समझ में आ रहा है कि पादरी ने सैली को क्यों निकाल दिया। 'वह चली गई तो जान ने अपनी भूखी आँखें पीटर के चेहरे पर स्थिर करके कहा। पीटर की आँखें नानावती से मिलीं। नानावती दूसरी ओर देखने लगी। वैसे उन लोगों में से कोई नहीं जानता था कि आँट सैली को फादर फिशर ने क्यों निकाल दिया। उसके जाने के दिन से ही जान मुंह ही मुंह बड़बड़ाकर अपना असन्तोष प्रकट करता रहता था। पीटर भी उसके साथ-साथ कुढ़ लेता था। 'चलकर एक दिन सब लोग पादरी से बात क्यों नहीं करते : 'एक बार हकीम ने तेज स्वर में कहा।'[१]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ के अन्तर्गत श्रीमती मन्नू भंडारी की कहानियाँ भी उल्लेखनीय हैं। मन्नू भंडारी ने अपने लिखे हुए 'मैं हार गई 'शीर्षक कहानी संग्रह में जो कहानियाँ प्रस्तुत की हैं उनकी कथा वस्तु का सम्बन्ध आधुनिक जीवन के यथार्थ पहलुओं से है। उदाहरण के लिए यहाँ पर इस कहानी संग्रह की एक रचना 'अनचाही गहराइयाँ' का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें लेखिका ने यह बताया है कि आज की दुनियां में जहाँ स्वच्छंद प्रेम की समस्या कई रूपों में जटिलता के साथ दिखाई पड़ती है वहाँ दूसरी ओर कभी-कभी सिर्फ गलतफहमी में ही बड़ी-बड़ी अनहोनी घटनाएँ घट जाती हैं। इस कहानी में इसी

---

१. **'जानवर और जानवर', श्री मोहन राकेश, पृ० १३७.**

तथ्य का चित्रण है : "अरे करने को आप और हम क्या कर सकते हैं, जो होना था सो हो गया।' एक क्षण वह रुक कर बोला—'हमारे पास वह आता था, हमारे कुछ खत बस लिख दिया करता था, नोट्स आदि उतार दिया करता था। बदले में हम उसे कुछ रुपये पैसे से मदद कर दिया करते थे। अपनी किताबें पढ़ने को दिया करते थे....चला गया बेचारा ? हाँ, मैं उसके पास अपनी किताब लेने आया हूँ। मेरी हिन्दी की किताब वह आपके पास छोड़ गया था–वैसे किताब की कोई बात नहीं, पर'''पर''''और फिर कुछ झेंपते हुए कहा–'उसमें मेरा एक पत्र गलती से रह गया था, जरा पर्सनल किस्म का था' और एक अर्थभरी मुस्कराहट उसके चेहरे पर फैल गई–'असल में मुझे वही चाहिए। बड़ा संकोच हो रहा था आपके यहाँ आने में, पर अब तो शिवनाथ भी नहीं रहा कि फिर खत लिख देता, इसी से मजबूरन आना पड़ा। कृपा कर उसे लौटा दें।'[1]

'चाँद चलता रहा' जैसी कहानियों में उषा प्रियंवदा ने जो कथावस्तु प्रस्तुत की है वह आज की जिन्दगी का एक ऐसा यथार्थरूप प्रस्तुत करती है जिसका सम्वन्ध नैतिकता से है। इस कहानी की कथावस्तु में लेखिका ने यह बताया है कि कभी-कभी कुछ ऐसी घटनाएँ आदमी की जिन्दगी में घटित हो जाती हैं जो हमेशा के लिए उसके मन और प्राण को तोड़ कर रख देती है। ऐसा व्यक्ति अपनी जिन्दगी को ढोता रहता है और दुनियाँ की नजर में वह चाहे कुछ बना रहे अपनी नजर में खुद उसकी कोई कीमत नहीं होती। उषा प्रियंवदा की लिखी हुई 'चाँद चलता रहा' शीर्षक कहानी का आधार कथा का यही सूत्र है : "तीन दिन बाद अरविन्द की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गयी। कुछ मित्रों के साथ शिकार खेलने गये थे। पर मुझे लगा कि शायद दोषी मैं थी–मैं। तो विनय रह गयी, मैं अपनी पवित्रता लिये। मेरा मन होता कि मैं भी अपने को नष्ट कर दूँ—कोशिश भी की पर बचा ली गयी, मर नहीं सकी। पर अल्टीमेटली अपने को मार डाला मैंने—हर बार मैं जब किसी की शैय्या पर सोती हूँ, मेरा एक अंश मर जाता है। मुझे मालूम है कि लोग मेरे लिए क्या कहते हैं। वह सच कहते हैं विनय—वह हीरे के टप मुझे पन्द्रह दिन शिमले रहने के बदले में ही मिले थे। इस तरह से मैं अपने से बदला लेती हूँ क्योंकि मैंने उस रात अरविन्द को 'डिनाई' किया था। मैंने केवल उन्हीं को चाहा था, केवल उन्हें।'[2]

राजकमल चौधरी की लिखी हुई 'स्टिल लाइफ' जैसी कहानियों में इस युग में कथावस्तु तत्व के अन्तर्गत यथार्थता के साथ-साथ प्रयोगात्मकता की दृष्टि से राज-कमल चौधरी ने आधुनिक समाज के विभिन्न वर्गों की यथार्थपरक पृष्ठभूमि के साधारण और स्वाभाविक चित्रों को विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार

१. 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', श्रीमती मन्नू भंडारी, पृ० ६०.

२. 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', सुश्री उषा प्रियंवदा, सन् १९६१, पृ० १२५.

की कहानियाँ घटनाप्रधान नहीं हैं, वरन् उनमें कथा का नियोजन स्फुट सूत्रों के आधार पर किया गया है : 'शीशे के सामने खड़ा एक बीमार आदमी। एक सियामी बिल्ली। एक लड़की। दीवार पर बहुत देर से फोटोग्राफ में रुकी हुई एक लड़की। मेरी माँ। मेरी पहाड़ी आया। मेरी बहन। तीन साल की मेरी नन्ही सी बच्ची। एक ऐसा सपना, जिसके होने के लिए नींद जरूरी नहीं है। एक ऐसा सपना, जिसके लिए और कोई चीज नहीं है। यह सपना मृत्यु है। आत्महत्या है। जिन्दगी इसी आत्महत्या से शुरू होती है, और इसी आत्महत्या पर खत्म होती है। साठ साल की उम्र में भोपाला का एक बूढ़ा आदमी छोटी सी लड़की की मुस्कराहट याद करता है, उस क्षण की मुस्कराहट जब वह खुद भी एक नन्हा सा लड़का ही था। नन्हा सा लड़का। अबोध अनजान। और, मैं ही वह लड़का हूँ जो अचानक इस अपरिचित वातावरण में आकर साठ साल का बूढ़ा बन गया हूँ। उम्र नहीं होती है। आदमी की कभी कोई अपनी उम्र नहीं होती है।'[1]

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में कथावस्तु तत्व के अन्तर्गत श्रीकान्त वर्मा लिखित 'दूसरे के पैर' जैसी कहानियों का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस प्रकार की रचनाएँ जहाँ एक ओर यथार्थता की दृष्टि के उल्लेखनीय हैं वहाँ दूसरी ओर प्रयोगात्मकता की दृष्टि से भी उल्लेखनीय कही जा सकती हैं। इस कहानी में श्रीकान्त वर्मा ने कथावस्तु को उन घटनाओं के आधार पर प्रस्तुत किया है जो आधुनिक जीवन की यथार्थता से सम्बन्धित हैं और जो पात्रों की मनःस्थिति से भी अनुकूल हैं : "रुको ! उसने कोट की जेब में हाथ डाला। वह कुछ भूल रहा है। उसे याद आया कि अविनाश के नाम चिट्ठी पोस्ट करना भूल गया था। ट्रेन में ही पोस्ट करने वह चढ़ गया। लिफाफा, क्षण भर को रुका, और फिर विन्डो में हाथ डाल दिया और जैसे पस्त हो गया है।....उसे लगा उसने अपने स्वभाव के विरुद्ध एक बड़ा भारी जुर्म कर डाला है और अब उस जुर्म की गम्भीरता से अकड़ गया है। उसका सब कुछ इस क्षण उससे छूट कर अलग हो गया है और वह एक भयानक शून्य में तड़फड़ा रहा है। उसने विक्षिप्त की तरह विन्डो में व्यर्थ ही हाथ डालकर लिफाफा वापस निकालने की कोशिश की।....उसने देखा, उसका कुली चिल्ला रहा था। साहब जल्दी कीजिये। गाड़ी छूट रही है। मगर उसके पैर जैसे जमीन से चिपक गए थे और वह खाली-खाली हाथों से प्लेटफार्म पर सरकती हुई ट्रेन को देख रहा था। उसे लगा वह सैकड़ों वर्षों से इसी तरह यहाँ खड़ा है और हमेशा ही ट्रेन छोड़ता रहा है। उसके पैर कभी भी नहीं उठ सके हैं।....प्लेटफार्म सूना हो गया था और

---

१. 'अकहानी', सं० श्री श्याममोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन् १९६७, पृ० ७३.

वह जैसे अपनी जगह से चिपका हुआ खड़ा था। उसने अनुभव किया वह बिल्कुल अकेला है और वह जिन्दगी में पहली बार सचमुच रो रहा था।"[१]

इस प्रकार से स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में कथावस्तु तत्व के अन्तर्गत यथार्थवाद का प्रभावशाली रूप दृष्टिगत होता है। यहाँ पर स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन उन कहानीकारों की रचनाओं से इस विषय में प्रतिनिधि उदाहरण दिये गये हैं जो ऐतिहासिक काल-क्रम की दृष्टि से इसी युग में आते हैं तथा उन लेखकों का उल्लेख नहीं किया गया जिनकी कृतियाँ तो इस युग में प्रकाशित हुईं परन्तु आविर्भाव की दृष्टि से जिनकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है।

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में पात्रगत यथार्थ—स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में पात्रगत यथार्थ के सन्दर्भ में यहाँ पर यह संकेत करना आवश्यक है कि इस युग के कहानीकारों ने समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्गों से वास्तविक पात्रों का चयन करते हुए उनकी विशेषताओं, हीनताओं और कुण्ठाओं को उभार कर सामने रखा है। चरित्र-चित्रणगत यथार्थ की दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी के अन्तर्गत अमृतराय की कहानियों का भी उल्लेख किया जा सकता है। उदाहरण के लिए 'फिर सुबह हुई' शीर्षक कहानी में उन्होंने जो चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया है वह पढ़ने वाले के सामने एक जीती जागती तस्वीर प्रस्तुत कर देता है :"लम्बा कद, लम्बी सी नाक, कुछ लम्बा सा चेहरा, नीली आँखें, आँखों पर काले, हड्डी के फ्रेम का चश्मा, भूरे बाल, उभरी हुई गाल की हड्डियाँ, उम्र चालीस के आसपास, बाल कुछ पके हुए....यह एडवर्ड्स अस्पताल की डाक्टर मिस सिमसन हैं। उनके बारे में यह मशहूर है कि उनका मिजाज बड़ा रूखा है, मिजाज रूखा है या नहीं, कहना मुश्किल है, लेकिन यह जरूर है कि काम के मामले में किसी किस्म की लापरवाही या ढीलापन उन्हें मन्जूर नहीं।"[२]

उषा प्रियंवदा की कहानियों में जो चरित्र योजना हुई है, वह नारी जीवन के चित्रण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। आज का जमाना आदर्श और भावुकता का नहीं है। इसलिए अगर कोई स्त्री-पुरुष कल्पना में ही खोया रह कर किसी पुरानी स्मृति के सहारे जीता रहता है या अपने आपको सताता है तो यह भावुकता ही है परन्तु उषा प्रियंवदा ने अपनी लिखी हुई 'मोह बन्ध' जैसी कहानियों में जो चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया है वह इसी वर्ग का होते हुए भी इसलिए यथार्थवादी कहा जा सकता है क्योंकि उसमें वास्तव में उन भावनाओं का चित्रण है जो किसी स्त्री या

---

१. 'अकहानी', सं० श्री श्याममोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन १९६७, पृ० ५७.

२. 'कस्बे का एक दिन', श्री अमृतराय, पृ० १०३.

पुरुष के जीवन की गति को बदल देती है : "अचला को लगता है कि जीवन ऐसे ही बीत जायगा....और एक दिन मौत भी द्वार पर आ खड़ी होगी। उस अन्तिम क्षण अपनी जिन्दगी पर दृष्टि डालकर उसे लगेगा कि वह जैसे रीती-रीती आई थी, वैसे ही जा रही है। सूखे फलों सी, पुराने प्रेम पत्रों के पीले पड़े कागज की कुछ स्मृतियाँ लिये हुये चली जायगी। अचला के देखते-देखते ही सुजाता की शादी हुई, दो बच्चे हुए और अचला से कहती रहती है....जिन्दगी बहुत छोटी है, बहुत मूल्यवान है ... भविष्य की ओर देखो....नारी की सृष्टि इसलिए नहीं हुई कि वह पुरुषों की समानता कर लड़कियों को अर्थशास्त्र पढ़ाते-पढ़ाते काट दी जाये। सुजाता ने अचला के लिए एक सुयोग्य पात्र भी ढूंढ़ रखा था, पर अचला को लगता है कि उसके दिल में जो कुछ भी था, चुक गया है....अब वह कुछ महसूस नहीं कर पाती....साँसें आती हैं, दिल धड़कता है, पर जिन्दगी समाप्त हो गई है।"[१]

आलोच्ययुगीन कहानी में पात्रगत यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से अमरकान्त की लिखी हुई कुछ कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। अमरकान्त ने अपनी कहानियों में जो पात्र प्रस्तुत किये हैं वे समाज के यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें निम्न वर्ग के पात्रों का चरित्र-चित्रण विशेष रूप से प्रभावशाली बन पड़ा है। अपनी लिखी हुई 'दोपहर का भोजन' शीर्षक कहानी में अमरकांत ने सिद्धेश्वरी के रूप में एक ऐसी नारी का चित्रण किया है जो दरिद्रता के अभिशाप से पीड़ित है और धर्मनिष्ठ तथा ममतामयी होने के बावजूद अपने जीवन को कठोर संघर्ष करती हुई गुजार रही है। 'दोपहर के भोजन' में जिस अभाव और दरिद्रता का चित्रण है वह पाठक को रोमांचित कर देता है : "मुन्शीजी के निबटने के पश्चात् सिद्धेश्वरी उनकी जूठी थाली लेकर चौके की जमीन पर बैठ गई। बटलोई की दाल को कटोरे में उड़ेल दिया, पर वह पूरा भरा नहीं। छिपुली में थोड़ी सी चने की तरकारी बची थी, उसे पास खींच लिया, उसमें केवल एक रोटी बची थी। मोटी, भद्दी और जली उस रोटी को वह जूठी थाली में रखने जा रही थी कि अचानक उसका ध्यान ओसारे में सोए प्रमोद की ओर आकर्षित हो गया। उसने लड़के को कुछ देर तक एकटक देखा, फिर रोटी को बराबर टुकड़ों में विभाजित कर दिया। एक टुकड़े को तो अलग रख दिया और दूसरे टुकड़े को अपनी जूठी थाली में रख लिया। तदुपरान्त एक लोटा पानी लेकर खाने बैठ गई। उसने पहला ग्रास मुँह में रखा और तब न मालूम कहाँ से उसकी आँखों से टपटप आँसू चूने लगे।"[२]

निर्मल वर्मा की कहानियों में पात्र योजना का जो रूप मिलता है वह यथार्थ-

---

१. 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', सुश्री उषा प्रियंवदा, सन १९६१, पृ० ३.
२. 'स्वतन्त्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ', सं० श्री विजयचन्द्र, पृ० १७-१८.

परक होने के साथ-साथ मानसिक स्थिति से भी सामंजस्य रखता है। उदाहरण के लिए अपने 'जलती झाड़ी' शीर्षक कहानी संग्रह की 'माया दर्पण' नामक रचना में निर्मल वर्मा ने जो चरित्र-चित्रण किया है वह यथार्थ होने के साथ-साथ मनःस्थिति की दृष्टि से भी महत्त्व रखता है : "तरन अकबकाकर जाग गई। हाथ माथे पर गया, तो लगा पसीने की बूँदों पर बाल चिपक गये हैं, बिन्दी की रोली दोनों भौहों के बीच फैल गयी है। उसे लगा, मानों वह अब तक जाग रही थी, सचमुच जागने पर पता लगा था कि सोते समय भी वह बराबर यही सोच रही थी। दोपहर की नींद जो ठहरी। आधी आँखों में, आधी बाहर। .. आँखें धोई, बिन्दी पोंछ दी..... पम्प के पानी को चुल्लू में लेकर आँखों में छिड़का। गुसलखाने की खुली खिड़की से मैदान का वह हिस्सा दीखता था जहाँ बैठकों को ढहाया जा रहा था। आधी टूटी इमारतें, सूखे भग्न कंकालों सी खड़ी थी। सूखी रेत के कण धूप में मोतियों से झिल-मिला उठते थे। रतन को लगा, मानों उसके दाँतों के भीतर भी रेत चरमरा रही हो।"[1]

इस प्रकार से स्वातन्त्र्योत्तर युगीन गत कहानी में पात्र योजना अथवा चरित्र-चित्रणगत यथार्थ का भी प्रभावशाली रूप दृष्टिगत होता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इस युग के प्रमुख कहानीकारों ने समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्गों के जिन पात्रों का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है वे कल्पना की उपज न होकर अनेक प्रकार की विशेषताओं, हीनताओं और कुण्ठाओं से युक्त हैं। अमृतराय, उषा प्रियंवदा, अमरकान्त, तथा मन्नू भंडारी आदि की कहानियों से इस सम्बन्ध में जो उदाहरण इसमें प्रस्तुत किये गये हैं वे इसी तथ्य के परिचायक हैं।

**स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में कथोपकथनगत यथार्थ**—स्वातन्त्र्योत्तर युगीन कहानी में कथोपकथन का जो रूप दिखाई देता है वह नाटकीयता और बनावटी-पन से रहित है तथा उसमें यथार्थ का आग्रह स्पष्ट है। अमृतलाल नागर की कहा-नियों में कथोपकथन का जो रूप दिखाई देता है वह अवध के नवाबी जमाने की जीती जागती तस्वीर पाठक के सामने प्रस्तुत कर देता है। उदाहरण के लिए अमृतलाल नागर की लिखी हुई 'नवाबी मसनद' शीर्षक पुस्तक से एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें समाज के एक विशेष वर्ग की जिन्दगी का यथार्थ परिचय कथोपकथन के माध्यम से मिल जाता है। यह वर्ग किस प्रकार की चापलूसी भरी बनावटी जिन्दगी जीता रहता है, इसका आभास भी इस रचना से मिल जाता है : "कहो भाई पहलवान क्या हो रहा है ?

'आओ जी, ज़रा बीड़ी पी रहा था उस्ताद, लो भाई तुम भी एक दो कश।'

---

१. 'जलती झाड़ी', श्री निर्मल वर्मा, दिल्ली, पृ० २२-२३.

'अमां नहीं जी, बाहर नवाब साहब बैठे हैं, तुम्हें बुलाया है।'

'अमां कौन से नवाब साहब ? अपने वाले ?'

'हाँ हाँ यार कौन ?' मियाँ रमजानी ने उत्तर दिया।

पहलवान लुंगी सँभालते हुए उठ खड़े हुए और कहा...'अमां इनसे कुछ ऐंठा जाये।'

'नहीं यार अभी नहीं, किसी वक्त मौके से। मगर देखो उस्ताद जरा हमारी इज्जत...।'

'अमां तुम इससे निसाखातिर रहो। मैं सब कुछ देख लूँगा।''[1]

निर्मल वर्मा की लिखी हुई 'जलती झाड़ी' शीर्षक रचना भी स्वातन्त्र्योत्तर युगीन कहानी में कथोपकथन तद्गत यथार्थ की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस कहानी में लेखक ने कथोपकथन के माध्यम से आज के इन्सान की जिन्दगी के एक खास पहलू की ओर संकेत किया है। लेखक का कहना है कि आज नौजवानों के सामने कोई साफ रास्ता नहीं है जिस पर वह बढ़ सकें और इसीलिए वह मौजूदा जिन्दगी के उस आकर्षण में बँधे रहना चाहते हैं, जिससे वह अपनी जिम्मेदारी को भूले रह सकें : ''बिली हमारे यहाँ काम करता था...उसने गर्व से बिली की ओर देखा, मानो उसे हम लोग बिली की तुलना में काफी तुच्छ जान पड़ रहे थे।

—काफी देर से हो ?...उसने पूछा।

—सिर्फ कुछ दिन...मैंने कहा।

—इज इट फाइन....मैंने कहा।

—कोई काम ? वह मेरे कमीज के कालर को देख रहा था। न जाने कितने देशों की धूल उस पर जमा थी।

—अभी कुछ नहीं...।

—बिली को काम मिल सकता है, लेकिन यह एक जगह टिकता नहीं...उसने बिली की ओर देखा, कुछ प्यार से कुछ उलाहने से।

—मैं तुम्हारे यहाँ रह सकता। सिर्फ तुम...बिली ने कहा।

इटालियन का चेहरा अचानक क्षुब्ध-सा हो आया...तुम जानते हो...उसने कहा।

—आह बिली ने कहा....तुम सब लोग एक जैसे ही हो।

—बहुत गर्मी है...जार्ज ने कहा।

—तुम जानते हो...इटालियन ने बहुत आग्रह से कहा।

---

१. 'नवाबी मसनद', श्री अमृतलाल नागर, पृ० ६२.

—न....मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं सिर्फ इतना जानता हूँ कि मैं अभी डांस करूँगा...।"[1]

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के कहानी संग्रह 'ठुमरी' में संग्रहीत रचनाएँ कथोपकथन के उस रूप का परिचय देती हैं जो आंचलिक प्रभाव से युक्त हैं। उदाहरण के लिए इसी कहानी संग्रह की 'नित्य लीला' शीर्षक रचना का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें वृज प्रदेश में आई हुई एक अपरिचित युवती का वहाँ की नारियों के साथ वार्तालाप दिखाया गया है। इस कथोपकथन की विशेषता यह है कि इसमें नारी हृदय के सरल भावों की व्यंजना के साथ-साथ स्थानीय संवादों की विशेषताएँ भी मिलती हैं जिनकी वजह से इनकी यथार्थता में वृद्धि हो गयी है। इसी कहानी से इस प्रकार के कथोपकथन का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है : "...अरी, यह कहाँ की गोरी आई है, गुमान भरी ? इत्ती सी छोरी की बोली सुनो, कैसी विष भरी है। कोई इस तरह भी राह-बाट पूछती है भला। अपना नाम धाम कुछ नहीं बताती...।"

गोकुल की गोपियों ने गोरी को चारों ओर से घेर लिया...'ऐसी टेढ़ी-तिरछी बात क्यों करती है री ? तेरे साथ कोई मर्द पुरुष नहीं ?

'—न भैया। देखती हूँ यहाँ के लोग तन के ही नहीं मन के भी काले हैं। कैसा है यह गोकुल गाँव रे बाबा।'

—सुनती है इसकी बोली। बड़ी बुढ़िया भी आकर जमा हो गई...क्या है ? काहे की भीड़ लगा रखी है यहाँ ?

अपरिचिता किशोरी भीड़ से निकल कर बाहर आई...हाँ ए। तुम लोगों ने अपनी-अपनी बहू बेटियों को यह कैसी सीख दी है कि भूली-भटकी परदेसिन को राह भी न बताये कोई। नन्दराज की ड्योढ़ी किधर है ?

बूढ़ियाँ भी तिलमिला उठीं...और तू ही किस राजा की बेटी है कि परदेस में आकर टेढ़ी-टेढ़ी बातें करती फिर रही है ? अपना नाम धाम क्यों नहीं बतलाती ?

गोरी का चेहरा टेसू के फूल जैसा हो गया...मैं मथुरा से आ रही हूँ। वसुदेव राजा की बेटी और महाराज कंस की भांजी...।

—भांजी ? कंस की ई ई ? सभी ग्वालिनें एक साथ चीख पड़ीं ?"[2]

कहानी में कथोपकथन तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से कमलेश्वर की कुछ रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। कमलेश्वर के पात्र जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में जिस प्रकार के संवाद बोलते हैं वे अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। उनसे पात्रों की

---

१. 'जलती झाड़ी', श्री निर्मल वर्मा, पृ० ११५.
२. 'ठुमरी', श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु', पृ० ७९-८०.

चारित्रिक विशेषताओं का बोध तो होता ही है, साथ ही वे युग जीवन की परिवर्तित होती जाने वाली दशा का भी परिचय देते हैं। उदाहरण के लिए यहाँ पर कमलेश्वर की लिखी हुई 'नीली झील' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें निम्न वर्ग के पात्रों का स्वाभाविक कथोपकथन दृष्टिगत होता है जो मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त होने के साथ ही यथार्थता की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है : "और एक दिन देवियों की पूजा के लिए जब पारवती ने महावर लगाया, तो चमचे में घुला लाल रंग उँगली में लेकर उसने पारवती के ओठों पर लगा दिया। पारवती छुटाने लगी तो उसने अपनी कसम दे दी और नुमाइश से लाए शीशे को उसके सामने कर दिया। पारवती ने लजाते हुए अपने लाल होठों को देखा, पर अपनी खूबसूरती की शोखी से भर बोली—'तुम तो मेम से शादी करते।...लाली...पौडर वाली से।' और वह अपने को खुद किसी मेम से कम नहीं लगी थी।

तभी महेसा ने उसकी गुदारी कलाई पकड़ते हुए कहा—तुम किधर से कम हो।—'और हँसती पारवती के उजले दांतों को देख कर उसका मन खिल गया।—पारवती के दांत ठीक वैसे ही थे, जैसे उसने कभी देखे थे...हंस के पंखों की तरह धुले हुए..."[1]

इस प्रकार से स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में कथोपकथन तत्व के अन्तर्गत भी यथार्थ का स्पष्ट आग्रह दिखाई पड़ता है। ये कथोपकथन नाटकीयता और बनावटीपन से रहित हैं तथा उनमें स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता, विश्वसनीयता और यथार्थता के गुण समाविष्ट हुए हैं। इस युग के प्रमुख कहानीकारों में से अमृतलाल नागर, निर्मल वर्मा, फणीश्वरनाथ 'रेणु', उषा प्रियंवदा तथा कमलेश्वर की प्रतिनिधि कहानियों में से संवाद योजना अथवा कथोपकथन के जो उदाहरण ऊपर प्रस्तुत किये गये हैं वे इस कथन की पुष्टि करते हैं।

**स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में भाषागत यथार्थ**—स्वातन्त्र्योत्तर युगीन कहानी में भाषागत यथार्थ का भी विविधात्मक रूप उपलब्ध होता है। इस काल के लेखकों ने भाषा के जिन रूपों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है वे आधुनिक समाज के विभिन्न वर्गों में प्रचलित हैं। इनमें नाटकीयता, आलंकारिकता और बनावटीपन के स्थान पर स्वाभाविकता और यथार्थता मिलती है। अमृतलाल नागर की कुछ रचनाओं में स्वान्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में भाषागत यथार्थ का एक विशिष्ट रूप उपलब्ध होता है। नागर जी की कहानियों में भाषा एक खास लहजे के लिए मशहूर है। इस देश में विभिन्न भाषाओं के बोलने वालों का आपसी सम्बन्ध जब

---

१. **'स्वतन्त्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ', सं० श्री विजयचन्द्र,** पृ० ४१.

बहुत अधिक बढ़ जाता है तब भाषा का एक नया रूप जन्म लेता है। यह रूप भाषा की संकुचित सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता क्योंकि यह बोलचाल की भाषा होती है। आज के समय में कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली जैसे बड़े-बड़े शहरों में तमाम भाषाओं के बोलने वालों का जो जमघट दिखाई देता है उसके फलस्वरूप भाषा का एक और ही रूप विकसित हो रहा है। इसकी सबसे विशेषता प्रवाहपूर्णता और स्वाभाविकता है। अमृतलाल नागर की लिखी हुई 'बम्बई फावस' शीर्षक कहानी से इस भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है : "हम गये भैयो, भौत दिनों की बात है। मैं जानूँ कोई चालीस बरसें तो हो गयी होंगी—हाँ, मेरा यार चौबे जी भी साथ था। चले साब घर से। तो जाके टिकट लोना है भैयो, कि ऐसी भीड़ें, ऐसी भीड़ें, कि रेल का डिब्बा ही न खुले। मैंने कही चौबे जी, यार यह तो मामला खुसकैट है। बम्बई तक का सफर, कैसे चलोगे ? भइयो रे, चौबे जी तो, अरे कुछ पूछो मती, मेरा सेर गेंडे की तरह लपका। बिन्ने कही, अरे क्या खुसकैटी मचा रखी है। देख बे डब्बा का डण्डा साफ न कर दूँ तो मेरा नाम नहीं।"[1]

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में भावगत यथार्थ का वह रूप भी दृष्टिगत होता है जिसका उपयोग कस्बों आदि में किया जाता है। यह भाषा नागरिक और ग्रामीण भाषा की मिली-जुली शब्दावली से युक्त होती है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' की लिखी हुई अनेक कहानियों में भाषा के इसी रूप का प्रयोग मिलता है। यह भाषा अपनी प्रभावपूर्णता और स्वाभाविकता के कारण अधिक प्रभावशाली प्रतीत होती है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' की लिखी हुई इसी प्रकार की भाषा का एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है जो फणीश्वरनाथ 'रेणु' की लिखी हुई 'लाल पान की बेगम' शीर्षक कहानी में प्रयुक्त हुआ है : "अन्त में उसे अपने आप पर क्रोध हो आया। वह खुद भी कुछ कम नहीं। उसकी जीभ में आग लगे। बैलगाड़ी पर चढ़ कर नाच देखने की लालसा किस कुसमय में उसके मुँह से निकली थी, भगवान जाने। फिर आज सुबह से दोपहर तक, किसी न किसी बहाने उसने अट्ठारह बार बैलगाड़ी पर नाच देखने जाने की चर्चा छेड़ी है....लो, खूब देखो नाच। वाह रे नाच। कथरी के नीचे दुशाले का सपना।—कल भोरे पानी भरने के लिए जब जाएगी, पतली जीभ वाली पतुरिया सब हँसती आएँगी, हँसती जाएँगी....सभी जलते हैं उससे, हाँ, भगवान दाढ़ीजार भी।...दो बच्चों की माँ होकर भी वह जस की तस है। उसका घरवाला उसकी बात में रहता है। वह बालों में गरी का तेल डालती है। उसकी अपनी जमीन है। है किसी के पास एक धूर भी जमीन अपनी इस गाँव में। जलेंगे

---

१. **'सेठ बाँकेमल', श्री अमृतलाल नागर, पृ० १.**

नहीं तीन बीघे में धान लगा हुआ है, अगहनी। लोगों की बिख दीठ से बचे, तब तो।"[1]

अमृतराय की लिखी हुई कहानियों में भाषागत यथार्थ का जो रूप उपलब्ध होता है वह आज की जिन्दगी में एक पढ़े-लिखे आदमी के द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। उदाहरण के लिए यहाँ पर अमृतराय की लिखी 'लाट साहब को आमद' शीर्षक कहानी का कुछ अंश प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें हिन्दी के साथ साथ अंग्रेजी और उर्दू आदि के आम बोलचाल के शब्द मिलते हैं। वास्तव में इसी प्रकार की भाषा का रूप पढ़े लिखे मध्यवर्गीय समाज में प्रचलित है : "इस भूचाल की धमक यूनिवर्सिटी तक कैसे न पहुँचती। और जो सच पूछिये तो धमक पहुँचने की क्या बात है, खास वही तो आ रहे हैं गवर्नर साहब, बाहर वाले तो खामखाह उनको बीच में ही रोक लेने की कोशिश कर रहे हैं। मगर ऐसा भी कहीं हो सकता है। जिस काम के लिए आ रहे हैं चान्सलर साहब, पहले उसे करेंगे कि उटक्कर लैस यहाँ वहाँ घूमेंगे। मगर कौन समझाए इन लोगों को। अच्छा है दरवाजे पर सिर मार कर चले जायँगे। खुद हमारे फँक्शन इतने होंगे कि निबटाना मुश्किल हो जायगा। यूनिवर्सिटी डिनर, ला डिपार्टमेंट का ऐटहोम, ड्रैमेटिक एसोसिएशन का प्ले, हिन्दी विभाग की ओर से मानपत्र, नवलकलिका की कवि गोष्ठी, राजनीति विभाग में विश्व शान्ति की समस्या पर व्याख्यान, फिजिक्स डिपार्टमेंट में हाइड्रोजन बम के बारे में लोकोपयोगी व्याख्यान....इतना कार्यक्रम तो निश्चित हो चुका है। हाँ, विमेन्स कालेज में भी एक ऐटहोम होगा।....लिहाजा यूनिवर्सिटी में भी सब अपनी अपनी दौड़ भाग में लग गये हैं। सब अपनी कारगुजारी दिखाना चाहते हैं। भला क्यों कोई डिपार्टमेंट फिसड्डी रह जाये। चान्सलर का आगमन कोई छोटो बात है ?"[2]

उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में भाषा का जो रूप प्रस्तुत किया है वह आज की जिन्दगी की आम बोलचाल की भाषा है। लेखिका ने पारिवारिक जीवन के तमाम पहलुओं से सम्बन्धित जो कहानियाँ लिखी हैं उनमें वही भाषा मिलती है जिसमें भाषा का किसी तरह का कोई बनावटीपन नहीं है। यह भाषा आमतौर पर मध्यवर्ग के परिवारों में औरतें बोलती हैं और इसमें सहज रूप उनके भावों की अभिव्यंजना हुई है। यहाँ पर उषा प्रियंवदा की लिखी हुई 'पैरम्बुलेटर' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है : "न जाने सफर से, या कि ऐसे ही, बच्चों को शाम ही को बुखार आ गया। कालिन्दी उसे दाब ढांके रही। सोचा, ठीक हो जायगा, नन्ही सी जान है। दूसरे दिन परसे-

---

१. 'स्वतन्त्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ', सं० विजय चन्द, पृ० ७४.

२. 'गीली मिट्टी', श्री अमृतराय, सन १९५६, पृ० १०५-१०६.

श्वरी अस्पताल ले गया, दवा दिला लाया। बच्चे ने कुछ मुँह बिगाड़ कर पी, कुछ उगल दी। तीसरे दिन भी बुखार रहा तो मकान मालकिन की बताई दवा कुछ पीस कूटकर पिलाती रही। फिर भी बुखार नहीं उतरा। चौथे दिन शाम को थका थकाया, पैबन्द लगे जूते घसीटता परमेश्वरी घर में घुसा तो कालिन्दी ने रोकर कहा —'यह तो जाने कैसी साँस ले रहा है। जाओ किसी को बुलाकर लाओ।' परमेश्वरी वापस गया और एक डाक्टर को लेकर आया। डाक्टर ने एक नजर अँधेरे, घुटे कमरे पर डाली, फिर बच्चे की परीक्षा करके कहा—'ठंड लगने से निमोनिया हो गया है, आप लोग घबड़ाइये नहीं।''[1]

इस प्रकार से स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में भाषागत यथार्थ का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है, उसमें नाटकीयता, आलंकारिकता और बनावटीपन का अभाव है। यहाँ पर इस युग के प्रमुख कहानीकारों में से अमृतलाल नागर, फणीश्वरनाथ 'रेणु', कमलेश्वर की प्रतिनिधि कहानियों से भाषा के जो विभिन्न उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, वे स्वाभाविक यथार्थ और व्यावहारिक बोलचाल की भाषा के नमूने प्रस्तुत करते हैं।

**स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में शैलीगत यथार्थ**—स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में शैलीगत यथार्थ के सन्दर्भ में यहाँ पर यह संकेत करना असंगत न होगा कि इस युग के लेखकों ने परम्परागत शैली के प्रसार के साथ साथ अनेक नवीन शैलियों का भी विकास किया जिनमें आंचलिक शैली प्रमुख है। इस शैली के चित्रण की दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानीकारों में फणीश्वरनाथ 'रेणु' का नाम भी उल्लेखनीय है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने अपनी कहानियों में जो शैली आयोजित की है वह मुख्य रूप से ग्रामीण समाज की पृष्ठभूमि में है। उनमें भारतीय ग्राम जीवन की झाँकी तो दर्शनीय है ही साथ ही ग्रामीण जीवन के रीति-रिवाज, रहन-सहन और आचार-विचार का परिचय भी मिलता है। इस दृष्टि से यहाँ पर फणीश्वरनाथ 'रेणु' की लिखी हुई 'लाल पान की बेगम' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी में लेखक ने आँचलिक शैली का प्रयोग प्रभावशाली रूप में किया है:

''सूरज भगवान डूब गये। दीया बत्ती की बेला हो गई। अभी तक गाड़ी....'

चंपतिया बीच में ही बोल उठी—'कोयरी टोले में किसी ने गाड़ी नहीं दी भैया! बप्पा बोले, माँ से कहना सब ठीक ठीक करके तैयार रहे। मलदहिया टोली के मियांजान की गाड़ी लाने जा रहा हूँ।'

सुनते ही बिरजू की माँ का चेहरा उतर गया। लगा छाते की कमानी उतर गई, घोड़े से अचानक। 'कोयरी टोले में किसी ने गाड़ी मँगनी नहीं दी।....तब मिल चुकी गाड़ी जब अपने गाँव के लोगों की आँख में पानी नहीं तो मलदहिया टोली

---

१. 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', उषा प्रियंवदा, सन १९६१, पृ० १९.

के मियांजान की गाड़ी का क्या भरोसा। न तीन में, न तेरह में। क्या होगा शकर-कंद छील कर। रख दे उठा के।...वह मर्द नाच दिखायेगा। बैलगाड़ी पर चढ़ाकर नाच दिखाने ले जायगा।....चढ़ चुकी बैलगाड़ी पर....देख चुकी जी भर कर नाच.... पैदल जाने वाली सब पहुँचकर पुरानी हो चुकी होंगी।''[१]

शैलीगत यथार्थ की दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में मोहन राकेश की रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं। मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में जिस शैली का प्रयोग किया है वह प्रादेशिक विशेषताओं से युक्त होने के साथ-साथ विभिन्न परि-स्थितियों के भी अनुकूल है। इस दृष्टि से यहाँ पर मोहन राकेश की लिखी हुई 'मलवे का मालिक' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें प्रादेशिक विशेषताओं से युक्त शैली का स्वाभाविक रूप दृष्टिगत होता है: ''और भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलवे के चौखट पर बैठ गया। गली उस पर बिल्कुल सुनसान थी। कमेटी की कोई बत्ती न होने से वहाँ शाम से ही अँधेरा हो जाता था। मलवे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज करता हुआ बह रहा था। रात की खामोशी के साथ मिली हुई कई तरह की हल्की हल्की आवाजें मलवे की मिट्टी में से निकल रही थी....। च्यु च्यु च्यु .. चिक् चिक् चिक्... चिररर्र इर्रर्रर रीरी-रीरी चिरर्रर....एक भटका हुआ कौआ न जाने कहाँ से उड़कर लकड़ी के चौखट पर आ बैठा। उससे लकड़ी के रेशे इधर छितरा गए। कौए के वहाँ बैठते न बैठते मलवे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और जोर जोर से भौंकने लगा—बऊ अऊ अऊ बऊ। कौआ कुछ देर सहमा सा चौखट पर बैठा रहा, फिर वह पंख फड़फड़ाता हुआ उड़ कर कुएँ के पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की ओर मुँह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज में बोला—दुर दुर दुर....दुरे।''[२]

उषा प्रियंवदा की कहानियों में कहीं-कहीं पर शैली का जो रूप मिलता है वह अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'मोहबन्ध' शीर्षक कहानी में लेखिका ने जो शैली प्रस्तुत की है वह नारी हृदय की यथार्थ भावनाओं की अभिव्यक्ति करने में सफल है। इस कहानी में लेखिका ने यह संकेत किया है कि आज की नारी पुराने युग की स्त्री की भाँति लज्जा और संकोच की छुईमुई बनी हुई गठरी नहीं है बल्कि वह उसी प्रकार से पुरुष के सौन्दर्य का अवलोकन

---

१. 'स्वतंत्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ हिंदी कहानियाँ', सं० श्री विजय चन्द्र, सन १९६३, पृ० ७१.

२. वही, सन १९६३, पृ० ११८.

कर सकती है जिस प्रकार से पुरुष स्त्री के रूप का करता है। 'मोहबन्ध' शीर्षक कहानी में लेखिका ने यथार्थ भावनाएँ व्यक्त करने के लिए प्रभावशाली परन्तु सहज शैली का प्रयोग किया हैं : उदाहरण के लिए "तीव्र गति से जाती कार में सचला का मन उड़ने लगा। मन हो आया कि कार चलती ही रहे, बाल उड़-उड़ कर माथे पर आते जायं, हवा गालों, गले को गुदगुदाती रहे, साड़ी का आंचल रह-रह कर फड़फड़ा जाय। उस क्षण अचला वर्षों की निद्रा के बाद धीरे-धीरे जागी, कुहासा भेद कर उसकी आच्छन्न चेतना लौटी। उसे लगा कि उसका हर रोम फिर से साँस लेने लगा है। वह जीवित है। उसने मुड़ कर राजन को देखा। पहली बार देखा एक नये बोध से राजन का गोरा चेहरा, माथे से ऊपर संवारे गये बाल, उसकी घनी भौंहे, सामने सड़क को देखती सीधी आंखें—उसकी नाक, उसके ओंठ, उसकी ठोढ़ी में हलके से गढ़े का आभास, उसकी कमीज का बढ़िया कालर, उसकी मैरून टाई, स्टीयरिंग व्हील पर रखे हाथ, लम्बे गोल नाखून, उँगलियाँ—बाईं कलाई में घड़ी, जिसकी सेकेन्ड सुई अचला के हृदय की गति के साथ आगे बढ़ रही थी। बहुत बरसों बाद अचला ने किसी पुरुष को इस तरह देखा।"[1]

इस प्रकार से शैलीगत यथार्थ की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तरयुगीन हिन्दी कहानी अनेक विशेषताओं से युक्त प्रतीत होती है। फणीश्वर नाथ 'रेणु', अमृतलाल नागर, मोहन राकेश, अमृतराय, उषा प्रियंवदा तथा कमलेश्वर आदि की कहानियों से जो उदाहरण ऊपर प्रस्तुत किये गये हैं, वे इस युग की कहानी शैली के प्रतिनिधि रूपों के परिचायक हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इस युग के कहानी साहित्य में परम्परागत कहानी शैलियों का तो विकास हुआ ही, अनेक नई शैलियों का भी जन्म हुआ। स्थानीय और प्रादेशिक विशेषताओं से युक्त आंचलिक शैली के जो उदाहरण इस युग के कहानी साहित्य में उपलब्ध होते हैं, उनमें यथार्थता का आग्रह अपेक्षाकृत अधिक प्रतीत होता है।

**स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कहानी में वातावरणगत यथार्थ**—स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानी में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आंचलिक वातावरण के विभिन्न रूप दृष्टिगत होते हैं। अमृतलाल नागर की कहानियों में द्वितीय विश्व युद्ध कालीन वातावरण का विशेष रूप से प्रभावशाली चित्रण मिलता है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें लेखक ने व्यंग्यात्मक रूप से यह संकेत किया है कि द्वितीय महायुद्ध के समय जब सारी दुनिया में बड़ी सनसनी फैली हुई थी और लोगों को अपनी जान बचाने की फिक्र लगी थी उस समय भी बम्बई जैसे बड़े शहरों में लोग रुपये कमाने के चक्कर में लगे हुए थे और आँख से देखते हुए भी सारी हकीकत को भूले हुए थे। इस दृष्टि से यहाँ पर उदाहरण के

---

१. 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', उषा प्रियंवदा, सन् १९६१, पृ० ३४.

लिए अमृतलाल नागर की '१४ एप्रिल' नामक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इसी प्रकार के वातावरण का चित्रण है : "शाम के चार बज रहे थे। बम्बई निन्नानबे योग में समाधिस्थ थी। अचानक कान के पर्दों को बचाने की पड़ी।... लोगों ने अपने दिलों में दहला देने वाला एक गहरा धमाका महसूस किया। खुद को ठगने वाले इन्सान की आत्मा की तरह सहनशीलता की सीमा को लांघकर अत्याचारों के विरोध में बम्बई क्रान्ति कर उठी। जमीन, मकानात, दुकानें, महल, कोठियाँ, झोपड़ियाँ, लक्ष्मी नारायण का मन्दिर यहाँ तक कि लाट साहब की कोठी तक हिल उठीं।[1]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में वातावरणगत यथार्थ के नये रूप भी मिलते हैं। इनका सम्बन्ध वातावरण से ऐसे भेद के है जो प्राकृतिक, सामाजिक और राजनीतिक वातावरण से भिन्न किसी खास समय को उपज मालूम होते हैं। स्वतंत्र्योत्तर काल के अनेक कहानीकार में विशेष रूप से निर्मल वर्मा ने विश्व युद्ध के उपरान्त के वातावरण का यथार्थपरक चित्रण किया है। वातावरण का यह रूप पाठक की आँखों के सामने गुजरे हुए वक्त की जीती जागती तस्वीर प्रस्तुत कर देता है : "छज्जे पर भूरी, जलती रेत की परतें जम गयीं हैं। हवा चलने पर अलसाये से धूलकण धूप में झिलमिल से नाचते रहते हैं। लड़ाई के दिनों में जो बैरक बनाये गये थे, वे अब उखाड़े जा रहे हैं। रेत और मलवे के ढूह ऐसे खड़े हैं, मानों कच्ची सड़क के माथे पर गुमड़े निकल आये हों। खिड़की से सब कुछ दीखता है। दिन और शाम के बीच कितने विचित्र रंगों की छायाएँ टीलों पर फिसलती रहती हैं। दूर से निरन्तर सुनाई देता है। पत्थर तोड़ने की मशीन का शोर, दैत्य की घुरोहटों की तरह...घुर्र...घुर्र...घुर्र....।"[2]

वातावरण यथार्थ की दृष्टि से यहाँ पर अमृतराय की लिखी हुई 'व्यथा का सरगम' शीर्षक कहानी का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी में प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें लेखक ने मनुष्य के मस्तिष्क में होने वाली हलचल के साथ ही मौजूदा वातावरण से उसका सामंजस्य स्थापित किया है। अपनी इसी विशेषता के कारण इस प्रकार की शैली नाटकीय अथवा बनावटी नहीं मालूम होती और यथार्थ वातावरण की पृष्ठभूमि में अधिक प्रभावशाली लगती है : "आज अमावस की रात है। गहरी। काली। नीरव। निस्तब्ध। केवल दूर पर कुत्तों की भूंकने की आवाज और कुछ गोदड़ों की। मनुष्य की आवाज तो गाने की एकाध कड़ी के रूप में कभी-कभी सुनाई पड़ जाती है, किसी रिक्शेवाले के रोमांटिक फिल्मी

---

१. 'एटम बम', श्री अमृतलाल नागर, पृ० ११.
२. 'जलती झाड़ी', श्री निर्मल वर्मा, पृ० २२.

गाने की एक कड़ी। वर्ना सन्नाटा। पास के ही किसी घर से शहनाई का व्याकुल स्वर आ रहा है। शहनाई भी अब बाजा है, जो सुख दुख दोनों में समान रूप से आदमी का साथ देता है।....."[1]

वातावरण तत्वगत यथार्थ का एक अन्य रूप मोहन राकेश की लिखी हुई 'मलवे का मालिक' कहानी में दृष्टिगत होता है। इस कहानी में लेखक ने यह संकेत किया है कि भारतीय स्वतन्त्रता के साथ ही भारत-विभाजन की घटना ने देश को व्यापक रूप से प्रभावित किया। इस कहानी में वातावरण चित्रण का जो रूप मिलता है वह यह संकेत करता है कि विभाजन के पूर्व जिस स्थान पर खूब गुलजार रहता था वहाँ की सारी रौनक बँटवारे के बाद एकदम खत्म हो गई। इसी प्रकार के वातावरण का चित्रण करने वाला एक अंश यहाँ पर मोहन राकेश की कहानी 'मलवे का मालिक' से उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है: "बाजार बांसों में उस दिन भी चहल-पहल नहीं थी। क्योंकि उस बाजार के ज्यादातर बाशिंदे तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गए थे और जो बचकर चले गए थे, उनमें शायद लौटकर आने की हिम्मत बाकी नहीं रही थी। सिर्फ एक दुबला-पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस वीरान बाजार में आया और वहाँ की नई और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूल-भुलैया में पड़ गया। बाएँ हाथ को जाने वाली गली के पास पहुँच कर उसके कदम अंदर को मुड़ने को हुए, मगर फिर भी वह हिचकिचा कर वहाँ बाहर ही खड़ा रह गया, जैसे उसे निश्चय नहीं हुआ कि वह वहीं गली है या नहीं, जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ कुछ बच्चे कीड़ी-काड़ा खेल रहे थे और अन्तर पर दो स्त्रियाँ ऊँची आवाज में चीखती हुई एक दूसरी को गालियाँ दे रही थीं।"[2]

इस प्रकार से स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में वातावरण तत्व के परम्परागत रूपों में से ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक रूप उपलब्ध होते हैं। वातावरण के नवीन रूपों में आंचलिक वातावरण स्थानीय विशेषताओं के साथ इस काल की कहानियों में चित्रित होते हैं। यहाँ पर निर्मल वर्मा, अमृतलाल नागर, कमलेश्वर, अमृतराय, मोहन राकेश तथा मन्नू भंडारी की प्रतिनिधि कहानियों से देश-काल अथवा वातावरण तत्व के जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं वे इस तत्व के क्षेत्र में यथार्थ के बढ़ते हुए आग्रह का परिचय देते हैं।

**स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में उद्देश्यगत यथार्थ**—स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में उद्देश्यगत यथार्थ की दृष्टि से यहाँ पर यह संकेत करना असंगत न होगा

---

१. 'कस्बे का एक दिन', श्री अमृतराय, पृ० ८६.

२. 'स्वतंत्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ', सं० श्री विजय चन्द, सन १९६३, पृ० १०८.

कि इस युग के कहानीकारों ने जीवन के प्रायः सभी पक्षों के यथार्थ चित्रण करते हुए उसके स्वस्थ विकास पर बल दिया। विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त कुण्ठाओं और विरूपताओं के उन्मूलन का प्रयत्न करते हुए उन्होंने मानवतावादी भावना के विकास का संदेश दिया। पिछले युग की कहानी की तुलना में उद्देश्य तत्त्व की दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में कहीं-कहीं पर विशेष अन्तर मिलता है। इस युग का मानवतावादी दृष्टिकोण को स्वीकार करता है। ऐसा करते हुए वह अपनी कहानियों में उन परिस्थितियों का चित्रण करता है जो इन्सानियत के तमाम पहलुओं को उसके सामने उघाड़ कर रख दे। उदाहरण के लिए मोहन राकेश ने अपनी एक कहानी 'मलवे का मालिक' में यह संकेत किया है कि भारत के बटवारे के बाद इन्सान का वहशी रूप कितना प्रबल हो गया और उसने किस-किस तरह से दूसरे इन्सानों को जानवर समझ कर उनके साथ बेरहमी की। यहाँ पर मोहन राकेश की लिखी हुई इसी कहानी से एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें एक मकान को ध्वस्त कर मलवे के एक ढेर में बदल दिया जाता है और वह उसके मालिक को पल भर के लिए स्तब्ध कर देता है : "वह आपका मकान था।"... मनोरी ने दूर से एक मलवे की ओर संकेत किया। गनी पल भर के लिए ठिठक कर फटी-फटी आँखों से उसकी ओर देखता रहा। चिराग और उसके बीबी बच्चों की मौत को वह काफी अर्सा पहले स्वीकार कर चुका था मगर अपने नये मकान को इस रूप में देखकर उसे जो झुनझुनी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी जबान पहले से ज्यादा खुश्क हो गई और घुटने भी और ज्यादा काँपने लगे।

'वह मलवा...?' उसने अविश्वास के स्वर में पूछा।

मनोरी ने उसके चेहरे का बदला हुआ रंग देखा। उसने उसकी बाँह की ओर सहारा देकर ठहरे हुए स्वर में उत्तर दिया—"आपका मकान उन्हीं दिनों जल गया था।"[१]

राजेन्द्र यादव की लिखी हुई 'तलवार पंच हजारी' जैसी कुछ कहानियाँ स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में उद्देश्यगत यथार्थ की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार की रचनाओं में लेखक ने यह संदेश प्रस्तुत किया है कि मध्य युग में हमारे देश में अनेक राज-परिवारों और ऊँची जातियों ने मिथ्या अभिमान के वश में होकर अपनी जिन्दगी गुजार दी। यहाँ तक कि आज भी इन परिवारों के लोग पुरानी अनबन को याद करते हुए उसी की निशानियों के सहारे जिन्दगी गुजार देते हैं। भले ही उसमें उन्हें असली संतोष और सुख न मिले। इस कहानी में लेखक ने यह

---

१. 'स्वतंत्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ हिंदी कहानियाँ', सं० श्री विजयचंद, पृ० १११.

संदेश दिया है कि आज की दुनिया बहुत बदल गयी है और इन्सान को जमाने के साथ चलते हुए नई रोशनी को स्वीकार करना चाहिए क्योंकि यही उसके लिए उचित है : "हाँ अगर जाओ, तो कक्का से कह देना कि उस तलवार को मैंने तोड़ डाला है। पुराना होते हुए भी स्टील बहुत अच्छा था, इसलिए फेंकने को मन नहीं हुआ। उसके उस्तरे बना लिए हैं। एक पास रखकर बाकी सब चालवालों में बाँट दिए हैं। बहुत ही अच्छे चलते हैं, एक बार धार दे दो, बस हफ्ते भर जरूरत नहीं पड़ती।... उस तलवार की जंग लगी मूठ से जिसमें कभी हीरे जड़े रहे होंगे, मैंने बच्चों को गिल्ली डंडे के लिए गड्ढा खोदते देखा, तो, सोचो, क्या-क्या बातें मेरे दिल में आई होंगी ?....और अच्छा हुआ, यार, मैंने उसे तोड़-ताड़ दिया उस तलवार ने सिर्फ अधिकार ही अधिकार तो जाने थे।"[1]

उद्देश्यतत्त्वगत यथार्थ का एक रूप मन्नू भंडारी की कहानियों में भी दृष्टिगत होता है। मन्नू भंडारी ने अपनी कहानियों में यह संकेत किया है कि आज के समाज में जहाँ एक ओर नारी वर्ग में एक चेतना जाग्रत हो रही है, वहाँ दूसरी ओर अब भी एक बहुत बड़ी संख्या ऐसी स्त्रियों की है जो पढ़ी-लिखी और समझदार होकर भी गहने कपड़े के झूठे आकर्षण में पड़ी रहती हैं। यह समस्या कभी-कभी इतना विकराल रूप धारण कर लेती है कि उन्हें अपनी जिन्दगी में बड़े से बड़े खतरों का सामना करना पड़ जाता है। मन्नू भंडारी की लिखी हुई 'नकली हीरे' शीर्षक कहानी में इसी से सम्बन्धित एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा सकता है : "जब तक गाड़ी आँखों से ओझल नहीं हो गई, तब तक सरन एकटक उस ओर ही देखती रही। फिर एक निःश्वास छोड़कर भारी कदमों से लौट आई। कुछ देर तक वह निरुद्देश्य सी इस कमरे से उस कमरे में घूमती रही। फिर अपने कमरे में आकर सेफ खोला तो सामने ही वह हीरे का हार रखा दिखाई दिया। उन्होंने उसे निकाल लिया और खोलकर देर तक उसे इधर-उधर करके देखती रहीं। एकाएक ही उन्हें लगा इन हीरों में तो चमक ही नहीं, ये तो नकली हैं। कल जौहरी उनके साथ धोखा कर गया। इतने विश्वास का जौहरी और धोखा।....कल जाने उन्हें कैसे भ्रम हो गया। उन्होंने फिर एक बार गौर से देखा। नहीं-नहीं ये हीरे हो नहीं सकते। इतने फीके और मंदे...बिलकुल सादे कांच के टुकड़ों की तरह....।"[2]

इस प्रकार से, स्वातन्त्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानियों में उद्देश्य-तत्व के क्षेत्र में प्रमुख कहानीकारों का दृष्टिकोण यथार्थ के आग्रह से युक्त है। इस युग के कहानी-

---

१. 'स्वतंत्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ हिंदी कहानियाँ', सं० श्री विजयचंद, सन १९६३, पृ० १५८.

२. 'स्वतंत्रता के बाद सर्वश्रेष्ठ हिंदी की कहानियाँ', सं० श्री विजयचंद, सन १९६३, पृ० १३७,

लेखकों में मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, भैरव प्रसाद गुप्त, मन्नू भंडारी तथा फणीश्वर नाथ 'रेणु' की प्रतिनिधि रचनाओं में से इस सम्बन्ध में उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया है।

**स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद : सिंहावलोकन**—स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद का जो अध्ययन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है वह इस युग की हिन्दी कहानी पर पिछले युग की तुलना में बढ़ते हुए प्रभाव का परिचायक है। प्रस्तुत अध्याय के आरम्भ में यह संकेत किया जा चुका है कि यह युग सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का समय था। देश की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ ही सांस्कृतिक क्षेत्र में नवजागरण हुआ और राष्ट्रीय संस्कृति का पुनरुत्थान करने के साथ-साथ सांस्कृतिक एकता में भी प्रयत्न हुए। सामाजिक व्यवस्था के क्षेत्र में इस युग में सबसे अधिक परिवर्तन हुए। भारत-विभाजन की दुर्घटना ने भी समाज के समग्र स्वरूप को विभाजित किया। पारिवारिक व्यवस्था, सामाजिक संगठन, नैतिकता और समानता के क्षेत्र में नई धारणाओं का विकास हुआ। देश की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए तथा समाज के विभिन्न वर्गों का पारस्परिक अन्तर दूर करने के लिए देशी रियासतों की समाप्ति हुई और सहकारिता की भावना का विकास हुआ।

स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी कहानी परम्परागत रूपों के विकास में नवीन रूपों का भी आविर्भाव हुआ। अमृतलाल नागर, महादेवी वर्मा, डा० कंचनलता सब्बरवाल, भैरवप्रसाद गुप्त, स्वरूपकुमारी बख्शी, कुल भूषण, हरिशंकर परसाई, लक्ष्मीनारायण लाल, अमरकान्त, शान्ति मेहरोत्रा, डा० धर्मवीर भारती, डा० कृष्ण बलदेव 'वैद', आनन्द प्रकाश जैन, बलवन्त सिंह, डा० शिवप्रसाद सिंह, राजेन्द्र अवस्थी, निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, सुदर्शन चोपड़ा, राजकमल चौधरी, श्रीमती विजय चौहान, श्रीमती मन्नू भंडारी, महीप सिंह, फणीश्वरनाथ 'रेणु', कमल जोशी, नरेश मेहता, मोहन राकेश, कमलेश्वर, आज़म करेवी, उषा प्रियंवदा, शैलेश मटियानी तथा श्री कान्त वर्मा आदि कहानीकारों ने इस युग में विविध विषयक कहानियों की रचना करके उसके विकास में योग दिया है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मुख्य रूप से सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का विशेष रूप से विकास हुआ है। हिन्दी कहानी के इतिहास के पूर्व विकास काल की भाँति इस काल में भी सामाजिक प्रवृत्ति के क्षेत्र में सबसे अधिक क्रियाशीलता दिखाई देती है। आधुनिक समाज के विविध वर्गों में रूढ़िवादिता की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, भिक्षावृत्ति की समस्या, अन्तर्जातीय विवाह की समस्या, स्वच्छन्द प्रेम की समस्या, मध्यवर्गीय खोखली नैतिकता की समस्या, धर्म क्षेत्रीय आडम्बरप्रियता की समस्या, नारी जीवन से सम्बन्धित शिक्षा आदि की समस्या तथा शरणार्थियों के आगमन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई समस्याओं

का विश्लेषण करते हुए इस युग के कहानीकारों ने समाज के समग्र स्वरूप का चित्रण किया है।

इस युग में ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति का जो विकास हुआ है, उसके अन्तर्गत मुख्य रूप से मुगल और ब्रिटिश काल के इतिहास को आधार बनाया गया है। इस युग के कहानीकारों ने इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत यह संकेत किया है कि इतिहास के विभिन्न युगों से मनुष्य यदि शिक्षा ले तो उसे युद्ध जैसी विभीषिकाओं से मुक्ति मिल सकती है। इस काल का धार्मिक पौराणिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत लेखकों ने धार्मिक आडम्बरों का विरोध करके उसके परम्परागत रूपों का खंडन किया। इन लेखकों का कहना है कि आज के जीवन में धर्म एक आडंबर मात्र रह गया है।

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में मनोवैज्ञानिकता की जो प्रवृत्ति लक्षित होती है, उसमें प्रमुख कहानीकारों का योग है। उन्होंने जन जीवन के परिवर्तनशील रूपों का चित्रण करते हुए अनेक कुण्ठाओं को अभिव्यक्ति की है। आज का जीवन कृत्रिम सभ्यता, संस्कृति और शिष्टाचार से इतना अधिक आक्रान्त हो गया है कि उसमें सरसता और स्वाभाविकता का सर्वथा अभाव है।

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी साहित्य में यथार्थवाद के विविध रूपों के समावेश की दृष्टि से इस युग के कहानीकारों ने मुगल तथा ब्रिटिश कालीन इतिहास के सूत्रों का आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में चित्रण किया है। सामाजिक यथार्थवाद का चित्रण इस युग के प्रायः सभी कहानीकारों की रचनाओं में हुआ है। नागरिक और ग्रामीण समाज के तमाम पहलुओं को आधार बनाकर इस युग के कहानीकारों ने सामाजिक जीवन के विरोधाभास का चित्रण करते हुए विभिन्न वर्गों की खोखली नैतिकता का पर्दाफाश किया है।

इस युग की कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है, उसकी पृष्ठभूमि में भी आज के समाज में व्याप्त विरूपताएँ ही हैं। आज का जीवन यांत्रिक होता जा रहा है और आर्थिक संघर्ष की जटिलता ने उसे और भी अधिक जटिल बना दिया है। बनावटी जीवन और मिथ्या संस्कारों के फलस्वरूप मनुष्य के मस्तिष्क में निरन्तर दबाव रहता है और उसकी सहज भावनाएँ भी विभिन्न कुण्ठाओं का रूप धारण कर लेती हैं। इस पृष्ठभूमि में लेखकों ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उसका यथार्थपरक चित्रण किया है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के क्षेत्र में भी इस काल के कहानीकारों ने पिछले युग की परम्परा को जारी रखा है और समाज की विभिन्न समस्याओं के क्षेत्र में आदर्शपरक निदान प्रस्तुत किये हैं।

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी में यथार्थवाद के उपकरणगत विवेचन के संदर्भ में यहाँ पर यह संकेत करना आवश्यक है कि प्रायः सभी तत्त्वों के क्षेत्र में यथार्थ का

आग्रह बढ़ा है। इस युग की कहानी की कथावस्तु में समाज का समग्र स्वरूप चित्रित हुआ है और विभिन्न वर्गों के जीवन के विविधतापूर्ण रूप चित्रित हुए हैं। पात्रगत यथार्थ के अन्तर्गत इस युग के कहानीकारों ने उच्च, मध्य और निम्न वर्गों से वास्तविक पात्रों का चयन करते हुए उनकी विशेषताओं, हीनताओं और कुण्ठाओं की जीती-जागती तस्वीर सामने रखी है। उन्होंने इस क्षेत्र में यथार्थता के आग्रह का ही विशेष ध्यान रखा है, किसी आदर्श को थोपने की चेष्टा नहीं की है।

कहानी के कथोपकथन अथवा संवाद-योजना-तत्व के अन्तर्गत इस युग में नाटकीयता और बनावटीपन का अभाव दिखाई देता है। इसके विपरीत इस युग के कहानीकारों ने समाज के विभिन्न वर्गों और पात्रों के सन्दर्भ स्वाभाविक में और यथार्थ कथोपकथन प्रस्तुत किये हैं। भाषा-तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से इस युग की कहानी का महत्व है। इस काल में प्रायः सभी प्रतिनिधि कहानीकारों ने जिस भाषा का प्रयोग किया है उसमें नाटकीयता, आलंकारिकता और बनावटीपन के स्थान पर स्वाभाविकता, व्यावहारिकता और यथार्थता दृष्टिगत होती है। शैली के क्षेत्र में भी इस युग के कहानीकारों ने परम्परागत शैलियों के साथ आंचलिक शैली आदि का प्रयोग किया है। यह शैली प्रादेशिक, आंचलिक और स्थानीय विशेषताओं से युक्त होने के कारण यथार्थता की दृष्टि से अधिक प्रभावशाली प्रतीत होती है।

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में वातावरण-तत्वगत यथार्थ के सन्दर्भ में यहाँ पर यह संकेत करना आवश्यक है कि इस युग के प्रमुख कहानीकारों ने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आंचलिक वातावरण के यथार्थपरक रूप प्रस्तुत किए हैं। उद्देश्य-तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से इस युग के कहानीकारों ने गम्भीर धारणाओं का परिचय दिया है। उन्होंने समाज का सर्वतोमुखी चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें विशेषताएँ और हीनताएँ दोनों ही हैं। वह आदर्श के अनावश्यक आग्रह में नहीं पड़ता वरन् यथार्थ के उस रूप को प्रस्तुत करता है जो समाज में व्याप्त है। इस प्रकार से स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन कहानी हिन्दी कहानी में यथार्थवाद के बढ़ते हुए प्रभाव के जिस रूप को प्रस्तुत करती है उससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि वर्तमान कहानी में लेखक यथार्थ चित्रण के प्रति सबसे अधिक जागरूक है।

---

अध्याय ६

# कहानीक्षेत्रीय नवीन आन्दोलन और यथार्थवाद

## कहानीक्षेत्रीय नवीन आन्दोलन

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में बीसवीं अर्ध शताब्दी के पश्चात् अनेक नये आन्दोलन हुए। इन आन्दोलनों में योग देने वाले लेखक अधिकांशतः नई पीढ़ी के कहानीकार हैं। उन्होंने हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जो कार्य किया उसका परिणाम यह हुआ कि एक ओर तो परम्परागत कहानीकार अपनी गति से कहानी रचना करते रहे और दूसरी ओर नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी आदि नारे लगाए गये। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक से कहानी क्षेत्रीय इन आन्दोलनों ने व्यवस्थित रूप धारण किया। हिन्दी की प्रतिनिधि पत्रिकाओं में नई कहानी की चर्चा भी इसी समय से आरम्भ हुई। नई कहानी के अनेक आलोचकों ने भी स्वीकार किया है कि "यह ६०-६१ का समय था, जब कहानी का 'नई' नाम स्वीकृत ही नहीं हुआ था, उसका रूप भी खुल आया था। यानी उससे सम्बन्धित कुछ खास आयाम सामने आने लगे थे।"[1]

## नई कहानी का आन्दोलन

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक से नई कहानी का आन्दोलन व्यवस्थित रूप से आरम्भ हुआ। इसके मूल में नये कहानीकार की वह प्रतिक्रिया थी जिसका जन्म परम्परागत कहानी के रूढ़ रूप के प्रति विद्रोह की भावना से हुआ था। हिन्दी के अनेक नये कहानीकारों ने इसके स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए अनेक वक्तव्य भी दिये हैं। उदाहरण के लिए नये कहानीकार मार्कण्डेय ने नई कहानी का स्वरूप स्पष्ट करते हुए बताया है : "नयी कहानी से हमारा मतलब है उन कहानियों से, जो सच्चे अर्थों में कलात्मक निर्माण है, जो जीवन के लिए उपयोगी और महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही, उसके किसी न किसी नये पहलू पर आधारित है, या जीवन के नये सत्यों को एकदम नयी दृष्टि से दिखाने में समर्थ है।...नवीनता इसमें नहीं है कि उसमें किसी अछूते भूभाग के जीवन के

---

१. 'नई कहानी : दशा : दिशा : सम्भावना', सं० श्री सुरेन्द्र, सन १९६६, भूमिका, पृ० ५.

अजीब से प्राणियों का वर्णन है, बल्कि इसमें 'नयापन' है कि साधारण मानवीय जीवन में वह कौन-सा विशेष नयापन है जो सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण पैदा हो गया है, या बिना किसी परिवर्तन के भी जीवन का कौन-सा ऐसा पहलू है, जो साहित्य में अब तक अछूता है।"[1]

'नई कहानी : धुँधली स्थापना' शीर्षक अपने निबन्ध में श्री मनहर चौहान ने यह संकेत किया है कि नई कहानी के आन्दोलन के आरम्भिक काल से लेकर आज तक अनेक प्रकार के साहित्यिक वाद-विवाद हुए हैं, जिनसे कोई स्पष्ट निष्कर्ष नहीं निकला है। उनके विचार से "नई कहानी आन्दोलन ने एक खास किस्म का आलोचकीय ढंग पैदा किया, जिसने अस्पष्टता, आलोकप्रियता और विदेशीपन को उच्च स्थापनाएँ दीं। ऐसा लगता है, आलोचकों की कोई भीड़ है...ऐसी भीड़, जिसमें हिलने-डुलने की जगह न हो। कोई भी आलोचक आगे या पीछे तभी जा सकता है, जब उसके साथ के सभी व्यक्ति सामूहिक रूप से हटाना प्रारम्भ करें। ऐसे संगठनों में हटने का निर्णय लेने या कहिए नयों के रूप में लेखकों को उछाल देने के लिए आलोचकों में जो पारस्परिक मतभेद हैं, वे एक ही भीड़ के न होकर विभिन्न भीड़ों के मतभेद हैं और कोई भी भीड़ जनित मतभेद उदार नहीं होता।"[2]

**नई कहानी का नामकरण**—अनेक नये कहानीकारों ने नई कहानी के नामकरण पर अपने विचार प्रकट किये हैं। 'नई कहानी : नाम की सार्थकता' शीर्षक निबन्ध में श्री सुरेन्द्र ने लिखा है : "जो मित्र 'नई कहानी' के शब्दार्थ के भय से, इसे आज की कहानी नाम देना चाहते हैं, वे भी इस शब्दार्थ संकट से मुक्त नहीं हो पायेंगे, क्योंकि उनकी आज की कहानी, कल वालों के लिए व्यतीत 'कल' की कहानी हो जायगी, फिर मित्रों की 'आज की कहानी' नाम का क्या हश्र होगा, वे अपने 'आज' को इतना फैला पायेंगे, आखिर उसकी कोई सीमा होगी कि नहीं? और फिर यह क्या जरूरी है कि उनके फैलाए गए 'आज' की इयत्ता को 'कल' के लोग उसी बिन्दु तक मानें या उतना भर ही मानें? या, फिर यह मित्र अपने पैटर्न से 'आज की', 'कल की', 'परसों की' या इसी क्रम में कहानी को नाम दिए जायें, लेकिन ये नाम भी उन्हीं के द्वारा शब्दार्थ के कारण उठाए गए प्रश्न से अनुत्तरित भी हो जायेंगे। कुछ मित्रों का आग्रह 'नयी कहानी' को समकालीन या 'सामयिक कहानी' मान लेने का भी है, लेकिन शब्दार्थ वाले संकट के सामने उनकी यह बात

---

१. 'हंसा जाई अकेला', श्री मार्कण्डेय, भूमिका, पृ० २.

२. 'नई कहानी : दशा : दिशा : सम्भावना', सं० श्री सुरेन्द्र, सन १९६६, पृ० ११०.

भी अशक्त ही ठहरती है। साथ ही 'सामयिक' और 'समकालीन' शब्द उस अर्थ के बोधक भी नहीं हैं, जिस अर्थ का बोध नया शब्द कराता है।"[1]

**नई कहानी में जीवन का यथार्थ बोध**—अनेक कहानीकारों और आलोचकों ने नई कहानी का स्वरूप स्पष्ट करते हुए परम्परागत कहानी से उसका अन्तर स्पष्ट किया है। अपने लिखे हुए 'नई कहानी की बात और वक्तव्य' शीर्षक निबन्ध में श्री कमलेश्वर ने नई कहानी के स्वरूप पर विचार करते हुए उसकी यथार्थपरकता पर बल दिया है : "नयी कहानी आग्रहों की कहानी नहीं है, प्रवृत्तियों की हो सकती है। और उसका मूल स्रोत है...जीवन का यथार्थ बोध। और इस यथार्थ को लेकर चलने वाला वह विराट मध्य और निम्न मध्य वर्ग है, जो अपनी जीवनी शक्ति से आज के दुर्दान्त संकट को जाने-अनजाने झेल रहा है। उसका केन्द्रीय पात्र है (अपने विविध रूपों और परिवेशों में) जीवन को वहन करने वाला व्यक्ति। नयी कहानी ने इसलिए उस 'तीसरे उपजीवी' को पनाह नहीं दी, जो एकाएक बहुत महत्वपूर्ण होकर प्रेमचन्द और प्रसाद के बाद यशपाल की समकालीन कहानी में सहसा घुस आया था, जिसने अपने झूठे आभिजात्य को अस्त्र बनाकर उस विराट् वर्ग की नैतिकता और मानवीयता को और भी जर्जर किया था...उसके साथ बलात्कार किया था, जिसने आर्थिक रूप से विपन्न परिस्थितियों में जकड़े, रूढ़ियों में फंसे उस विराट मानव समुदाय के लिए एक व्यक्तिवादी नैतिक संकट खड़ा कर दिया था... जिसने हर औरत को अपने लिए निर्जन स्थानों या ड्राइंग रूमों में अकेला खड़ा कर लेना चाहा था...हर पुरुष को हीन लघु बना देना चाहा था...उसको उसके सार्थक परिवेश के प्रति शंकालु और संशयग्रस्त करके अकेला कर देने की कोशिश की थी और क्षणवादी दर्शन की पीड़ावादी व्याख्या से हर क्रूरता, अनैतिकता और अमानुषिकता के प्रति उसे वीतराग कर देना चाहा था...।"[2]

**नई कहानी में सांकेतिकता**—'नई कहानी : और उसका रूप बँध' शीर्षक निबन्ध में श्री सुरेन्द्र ने परम्परागत कहानी में निहित सांकेतिकता से नई कहानी की सांकेतिकता की तुलना की है। श्री सुरेन्द्र के शब्दों में "नई कहानी की सांकेतिकता का स्पष्ट अन्तर व्यतीत कथा की सांकेतिकता से है, इस माइने में कि व्यतीत कथा में संकेत का उपयोग कथा के प्रसाधन में हुआ करता था, नई कहानी में वह उसकी संश्लिष्ट परिवेश और व्यस्त संकुल जीवन के कारण नितान्त स्वाभाविक और अनिवार्य स्वीकृति है, बल्कि किसी स्तर पर वह संकेत का उपयोग न कर

---

१. 'नई कहानी : दशा : दिशा : सम्भावना', सं० श्री सुरेन्द्र, सन १९६६, पृ० ६०.

२. वही पृ० १५२ से उद्धृत.

स्वयं संकेत होती है। 'नई कहानी' में संकेत का सविशेष होना इस कारण से भी चालित है कि नये कथाकार को 'आदेश' देने, लेखक की हैसियत से 'सीधे बात' करने, कथा में अतिरिक्त 'नाटकीयता का आयोजन' करने आदि जैसी सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं। पुराने कथाकार को यह सुविधाएँ प्राप्त थीं। अस्ल में, इन सुविधाओं का उपयोग 'नया कहानीकार' कथा में करना भी नहीं चाहता, इसलिए कि इन्हें वह नये कथा-शिल्पबोध के समानान्तर नहीं पाता और इसलिए भी कि आधुनिक वस्तुबोध के संप्रेषण माध्यम के रूप में यह अपना अर्थ खो चुकी है। 'नई कहानी' पूरे तौर पर तो संकेत होती ही है, अलग-अलग स्तरों पर भी वह संकेत होती है, हालाँकि ये संकेत स्वयं में अलग से महत्वपूर्ण होने और स्वतन्त्र स्थिति रखने पर भी, होते कहानी के प्रभाव की पूरी अन्विति वाले बृहत्तर संकेत के लिए ही है।''[1]

**नई कहानी का स्वरूप**—वर्तमान युग के अनेक साहित्यकारों ने नई कहानी के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए उसकी विभिन्न विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। कहानी के विभिन्न तत्वों की दृष्टि से नई कहानी परम्परागत कहानी से जिस रूप में अन्तर रखती है, उसकी ओर भी इन लेखकों ने संकेत किया है। 'नई कहानी : नये पुरानों के बीच से गुजरती हुई' शीर्षक निबन्ध में श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने लिखा है : "नई कहानी में कुछ ऐसे लक्षण अवश्य प्रकट हो रहे हैं, जिनसे ऐसी आशंका हो सकती है कि कहानी में भी नई कविता की कुछ पुनरावृत्ति हो रही है। किन्तु कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि आज की हिन्दी कहानी स्वस्थ, सामाजिक दृष्टि अपना चुकी है और उसके विकास की दशा ठीक है। नई कविता की कुण्ठा और अहंवादिता कहानी की प्रमुख प्रवृत्ति नहीं है। मार्कण्डेय, निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर आदि अनेक प्रतिष्ठित कथाकार समाजचेता लेखक हैं और लेखक के सामाजिक दायित्व को वे स्वीकार करते हैं। उन्होंने हिन्दी कहानी की परम्परा में विकास की अनेक नई रूढ़ियाँ जोड़ी है। उन्होंने जीवन के नये, अछूते रूपों का उद्घाटन किया है, शिल्पगत प्रयोग किये हैं भाषा और कला में शृङ्गार की दृष्टि से अभिवृद्धि की है। फिर भी दिशा विभ्रम के लक्षण भी कभी-कभी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। और इसके प्रति सावधानी रखना आवश्यक है।''[2]

**नई कहानी में अनुभूति की प्रधानता**—नई कहानी में अनुभूति की प्रधानता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। नई कहानी के अनेक आलोचकों ने इसकी ओर संकेत भी किया है। मोहन राकेश ने नई कहानी में अनुभूति पक्ष पर विशेष बल दिया है। उन्होंने नये कहानीकार पर केवल शिल्प अथवा वस्तु क्षेत्रीय प्रयोगशीलता

---

१. **'नई कहानी : दशा : दिशा : सम्भावना', सं० श्री सुरेन्द्र, सन १९६६, पृ० ३७०-३७१.**

२. **वही, पृ० २८१.**

के आक्षेप का विरोध करते हुए अपने एक कहानी संग्रह की भूमिका में लिखा है : "आज कुछ लोग कहानी : नई कहानी का सम्बन्ध एक विशेष तरह के शिल्प या वस्तु के साथ जोड़कर उसका मूल्यांकन करना चाहते हैं ।....हमारी रचना का क्षेत्र निःसीम है और रचना की वास्तविक सिद्धि उसके प्रभाव की व्यापकता में है । इसके लिए इतना ही आवश्यक है कि लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट हो और उसकी रचना उसके और पाठक के बीच एक घनिष्ठता की स्थापना कर सके । इसके लिए अभिव्यक्ति में जिस स्वाभाविकता की आवश्यकता है, वह जीवन की सहज अनुभूतियों से जन्म लेती है और वह स्वतः ही रचना को सहज संवेग बना देती है । ये अनुभूतियाँ हमें जीवन के हर पक्ष और पहलू से प्राप्त हो सकती हैं ।"[1]

नई कहानी की उपलब्धियाँ—नई कहानी का जो विकास सातवें दशक में हुआ है, उसके प्रति अनेक आलोचकों ने आस्था और सन्तोष व्यक्त किया है, और अनेक ने अनास्था और असन्तोष । इस सम्बन्ध में यहाँ पर इस तथ्य का उल्लेख भी किया जा सकता है कि इनमें से प्रायः सभी ने उसकी उपलब्धि और विकास के प्रति सन्तोष व्यक्त किया है । उन्होंने नयेपन को अपने आप में पूजा की चीज अथवा विकास न पाते हुए भी यह स्वीकार किया है कि नई कहानी परम्परागत कहानी के समानान्तर ही विकसित हो रही है । उदाहरण के लिए श्री शिवदान सिंह चौहान ने 'नई कहानी' शीर्षक अपने एक निबन्ध में लिखा है, "मेरे ख्याल में हिन्दी कहानी का विकास तेजी से हो रहा है, यानी साल में चार-पाँच कहानियाँ तो ऐसी लिखी हो जाती हैं, जो इस 'नई कहानी' का सर्कस खत्म हो जाने के बाद भी जिन्दा रहेंगी । यह बहुत बड़ी उपलब्धि है । बीस साल पहले शायद ऐसी जानदार कहानियों की तादाद साल में तीन-चार या कहें तो तीन से ज्यादा नहीं होती थी । इस तरह हिसाब जोड़ कर देखें तो पिछले पचास साल में अगर सौ अच्छी स्मरणीय कहानियाँ हिन्दी में लिखी गई हैं, तो इनमें आजादी के बाद की कहानियों की तादाद आधे के करीब है । इनके लिखने वाले दोनों पीढ़ियों के हैं, और नये और पुराने, दोनों ढर्रों के हैं । इसलिए 'नई कहानी' अगर खुद मियां मिट्ठू बनना चाहती है, तो उस पर कौन ऐतबार करेगा ? दरअसल गौर से देखा जाय तो पिछले दस-बारह साल की पचास जानदार कहानियों की रचना में दोनों पीढ़ियों का करीब-करीब बराबर का योगदान है ।"[2]

## सचेतन कहानी का आन्दोलन

सातवें दशक की हिन्दी कहानी में सचेतन कहानी का आन्दोलन भी उल्लेख-

---

१. 'नये बादल', श्री मोहन राकेश, भूमिका, पृ० ३.
२. 'नई कहानी : दशा : दिशा : सम्भावना', सं० श्री सुरेन्द्र, सन १९६६, पृ० १४.

नीय है। इस आन्दोलन को नई कहानी से पृथक आन्दोलन के रूप में मान्यता दी गयी है। सचेतन कहानी की प्रवृत्ति के मूल में आज के युग के प्रखर चेतना विद्यमान है। श्री धनंजय के शब्दों में : "सचेतन कहानी अपने उद्देश्य और प्रक्रिया में निस्संदेह एक स्वस्थ और चेतन दृष्टिकोण लेकर चलती है। कम से कम उसमें मतभेद की गुंजाइश तो नहीं रह जाएगी। नई कहानी में इतना उलझाव है कि उसमें अनेक वर्ग बन गये हैं और प्रत्येक वर्ग वस्तु के ग्रहण और निरूपण में भिन्न-भिन्न मत रखता है। स्वयं उसके पक्षधर भी उसकी मान्यताओं को अस्वीकार करने लगे हैं। नई कहानी अस्तित्ववादी चिन्तन प्रक्रिया को मान्यता देती है, किन्तु अस्तित्ववाद का व्याख्याता ज्यां पाल सार्त्र बाद में मार्क्सवाद की ओर झुक गया। इसका कारण सम्भवतः यही है कि आज के ऐतिहासिक सन्दर्भ में उसे अपनी चिन्तन पद्धति अव्यावहारिक लगी।"[1]

**नई कहानी और सचेतन कहानी**—व्यक्ति की सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति तथा जीवन के यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से नई कहानी और सचेतन कहानी में पर्याप्त समता दिखाई देती है। वर्तमान युग के कुछ साहित्यकारों ने इन दोनों की पारस्परिक समानता और असमानता की ओर संकेत भी किया है। उदाहरण के लिए श्री कमलेश्वर का विचार है कि "यह बात सही है कि नई कहानी और सचेतन कहानी दोनों का सम्बन्ध जीवन से है, जिन्दगी के सही हालात से है पर सचेतन कहानी में जीवन को जानने, स्वीकार करने और भोगने पर जो जोर दिया जाता है वह मेरी दृष्टि में प्रदर्शनपरक है, बिना जीवन को जाने, स्वीकार किये और भोगे कोई अच्छा लेखक हो भी कैसे सकता है? असल में नई कहानी का आन्दोलन एक स्थान से चलाया गया, सचेतन कहानी का आंदोलन दूसरे स्थान से। वैचारिक स्तर पर सामाजिक चेतना दोनों में है। यों नई कहानी में वैयक्तिक चेतना भी मुख्य है। मतलब यह कि नई कहानी वैचारिक दृष्टि से उदार है, सचेतन कहानी अनुदार।"[2]

**सचेतन कहानी का स्वरूप**— सचेतन कहानी भी नई कहानी की भाँति जीवन के यथार्थ चित्रण और यथार्थ चेतना के प्रतिनिधित्व को बल देती है। इसके उद्देश्य, स्वरूप और प्रक्रिया के विषय में विचार करते हुए वर्तमान काल के विभिन्न आलोचकों ने अपने मत प्रकट किये हैं। धनंजय जैसे कहानीकारों ने उसके अनेक दावों का खंडन किया है।[3] श्री मनहर चौहान के शब्दों में : "सचेतन साहित्य अनिवार्य रूप से विजय का साहित्य नहीं है, लेकिन वह विजय का साहित्य हो सकता है। इसी

---

१. दृष्टव्य : 'माध्यम', अगस्त अंक, सन १९६७.

२. 'राष्ट्र धर्म', कथा विशेषांक, अगस्त सन १९६७.

३. 'माध्यम', अगस्त अंक, सन १९६७.

प्रकार वह पराजय का साहित्य भी हो सकता है क्योंकि पराजय भी हमारे जीवन में है। दुराग्रह से परे जीवनपरकता ही सचेतना है। सचेतन साहित्य विद्रोह का, कुछ कर गुजरने का, अपने अस्तित्व की सार्थकता प्रदर्शित करने का साहित्य है। सचेतना इस साहित्य में निहित विद्रोह में है, विद्रोह के परिणाम में नहीं। अप्रिय गली में भटकता पात्र उससे बाहर आना चाहे, इस चाह में ही उस पात्र की सचेतना है। चाहने के बाद वह पात्र सचमुच बाहर निकल पाता है या नहीं, यह उस पात्र का निजी सामर्थ्य अथवा असमर्थता है। अप्रिय गली में ही पात्र की मृत्यु भी हो सकती है, किन्तु इस मृत्यु से अन्तिम क्षण तक लड़ लेने की अदम्य आकांक्षा उस पात्र में होती है।"[1]

**सचेतन कहानी में यथार्थ**—वर्तमान कहानी के क्षेत्र में जो आन्दोलन हुए हैं, उनमें सभी में यथार्थ के प्रति तीव्र आग्रह मिलता है। सचेतन कहानी में भी यथार्थ चित्रण पर विशेष रूप से बल दिया गया है। डा० महीप सिंह के विचार से : "अपनी बात को अभिव्यक्ति का रूप देने के लिए सचेतन लेखकों के सामने विषय या शिल्प की कोई सीमा या बाध्यता नहीं है। इसमें आज के मशीनीकरण में जीने वाले लोग भी हैं : योगेश गुप्त की अधिकांश कहानियाँ : युद्ध सन्दर्भ की मानवीय चेतना भी है, : वेद राही की दरार : हमारी आज की शिक्षा पद्धति पर तीखा व्यंग्य भी है, : रघुवीर की दीवारें और उड़ने वाला घोड़ा : और प्रेम सम्बन्ध में बदली हुई पारिवारिक मानसिकता का यथार्थ भी है, : कुलदीप बग्गा की जड़ता।"[2]

**सचेतन कहानी में एब्सर्ड बोध**—वर्तमान हिन्दी कहानी के क्षेत्र में नई कहानी, सचेतन कहानी तथा अकहानी आदि जो आन्दोलन हुए हैं, उनमें प्रायः सभी में एब्सर्ड बोध अथवा कुरूपता के चित्रण के प्रति आग्रह दिखाई देता है। सचेतन कहानी में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दृष्टिगत होती है। कुछ लेखकों ने इस प्रवृत्ति को तर्कसंगत ठहराया है। उदाहरण के लिए श्री कमल जोशी का विचार है कि "जहाँ तक सचेतना का प्रश्न है, इसका स्थान हिन्दी कहानी में ही क्यों, किसी समय की, किसी भी कहानी में, किसी भी स्थिति में अनिवार्य है। कहानी में सजगता हो, सचेतनता हो, भला इससे कौन इंकार करेगा। एब्सर्ड बोध हमारे देश के कुछ बड़े-बड़े शहरों में कुछ विशेष वर्ग को होने वाला बोध है। स्पष्ट है कि कहानी में ऐसे बोध का स्थान वैसा ही होगा जैसा कि स्थान जीवन में है। साथ ही मैं यह भी मानने को तैयार नहीं हूँ कि एब्सर्ड बोध हमारे जीवन का अंग बन चुका है। इसलिए अधिकतर कहानीकार जब इस बोध पर कहानियाँ गढ़ते हैं, तो वे कहानियाँ कृत्रिम एवं आरोपित तथा तार्किक संवेदनाओं पर आधारित होती हैं।"[3]

---

१. 'इकाई', अप्रैल अंक, सन १९६७.

२. 'सचेतना', अंक ४, दिसम्बर, सन १९६७.

३. 'लहर', अंक ५-६ वर्ष ९, नवम्बर, सन १९६५, पृ० ९८.

डा० महीप सिंह जैसे आलोचकों ने सचेतन कहानी की प्रवृत्ति को एक आरोप मानकर इसका खंडन किया है। उनकी धारणा है कि सचेतन कहानीकार अपने दायित्वों के प्रति पूर्ण सजग है। डा० महीप सिंह के शब्दों में : "निष्क्रियता और निरर्थकता के इस बोध के विरुद्ध सचेतन कथाकारों ने कहा है कि वे जीवन के प्रति सक्रिय भाव बोध से प्रेरित हैं और आधुनिकता को वे एक गतिशील स्थिति मानते हैं। सचेतन कथाकारों के अनुसार जीवन को मात्र एक प्रदत वस्तु के स्तर पर ही नहीं ग्रहण किया जाना चाहिए जहाँ सक्रिय रूप से जीने की अपेक्षा कुछ घटित होने का बोध ही अधिक रहता है। वे यह मानते हैं कि जीवन को केवल अनुभूति के स्तर पर जीना एकांगी है। जीवन को समग्र रूप से जीने का अर्थ उसे जानना भी है। जीवन को जानने की दृष्टि व्यक्ति को अपने परिवेश के प्रति एक सक्रिय भावबोध से युक्त करती है और व्यक्ति चेतना की यह गत्यात्मकता ही उसे आधुनिक संस्पर्शों के निकट रखती है।"[1] इस प्रकार से सचेतन कहानी अभी अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में ही है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैसे साहित्यकारों ने उसके आरम्भिक काल की उपलब्धियों का स्वागत किया है और उसके उज्ज्वल भविष्य की आशा व्यक्त की है।[2]

## अकहानी का आन्दोलन

वर्तमान हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जो आन्दोलन हुए हैं उनमें अकहानी का आन्दोलन भी उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह आन्दोलन हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सचेतन कहानी के बाद आरम्भ हुआ है। श्री विनय जैसे आलोचकों की यह धारणा है कि आन्दोलन विदेशी प्रभाव के फलस्वरूप आरम्भ हुआ है। उनकी धारणा है कि "अकहानीकारों की दृष्टि में कहानी में कहानी की सम्भावना अब नहीं रही। प्लाट, उद्देश्य और युग-बोध के विभिन्न स्तरों का बोध एक पंक्ति में बैठकर नहीं हो सकता इसलिए अकहानी का कोई प्लाट नहीं, उद्देश्य नहीं। यह केवल जीवन की ओर 'एब्सर्डिटी' तेजी से भागती हुई पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों की विघटनात्मक प्रवृत्तियों की प्रतिच्छाया है। इस प्रसंग में कोई भी ऐसा लेखक नहीं है जिसने 'अ' की सार्थकता का प्रयास किया है, और इस नये परिवेश में उभरने वाले कथाकारों की दृष्टि को परिमार्जित होने में अभी समय लगेगा।"

'अकहानी का नामकरण—'नई कहानी' तथा 'सचेतन कहानी' की भाँति ही 'अकहानी' के नामकरण की सार्थकता पर भी कुछ लेखकों ने विचार किया है।

---

१. 'संचेतना, अंक ४, दिसम्बर, सन् १९६७.

२. 'हिन्दी कहानी : एक अंतरंग परिचय', श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', सन् १९६७, पृ० २७१.

उदाहरण के लिए श्री कमल जोशी ने बताया है कि "हमारे यहाँ जीवन इतना जटिल, इतना विकृत तथा दुर्बोध नहीं है कि उसे 'अजीवन कहा जा सके। हमारे अधिकांश शहरों तथा गाँवों में लोगों का जीवन अब भी काफी स्पष्ट और फार्मुलाबद्ध हैं। किन्तु फिर भी, आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक दबाओं को अनुभव करती हुई चेतना, जो कि बड़ी तेजी से बदल रही है, पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों से जर्जर जन-जीवन, नये मानव मूल्यों की खोज में है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। और, इनके सन्दर्भ में अकहानी का अर्थ कुछ-कुछ समझ में आता है। सम्भव है आने वाली पीढ़ियों का झुकाव अकहानी की ओर हो। कारण आने वाली जिन्दगी की व्याख्या करने में कहानी से अधिक अकहानी सक्षम होगी, बशर्ते उसके पीछे लेखक की ईमानदारी हो।"[1] इस रूप में श्री कमल जोशी ने 'अकहानी' के नामकरण का औचित्य सिद्ध किया है, और इसके नवीन रूप की ओर संकेत किया है।

## सचेतन कहानी और अकहानी

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, अकहानी का आन्दोलन ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वर्तमान हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सचेतन कहानी के बाद आरम्भ हुआ। स्फुट रूप से अनेक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशन के अतिरिक्त सन् १९६७ में श्री श्याम मोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा के सम्पादन में 'अकहानी' के नाम से एक कहानी-संकलन भी प्रकाशित किया गया जिसमें 'जल में डूबी सीढ़ियाँ', 'टूटी बाहें अन्धी रोशनियाँ' तथा 'खंडित मूर्तियाँ और कुचले हुए इतिहास' शीर्षकों से तीन खंडों के अन्तर्गत निमल वर्मा लिखित 'डेढ़ इंच ऊपर', योगेश गुप्त लिखित 'बड़े शहर के तावूत', ममता कालिया लिखित 'अन्धेरा', श्याम मोहन श्रीवास्तव लिखित 'सिवार', सुरेन्द्र अरोड़ा लिखित 'मोजे', श्री कान्त वर्मा लिखित 'दूसरे के पैर', कुलभूषण लिखित 'चिपचिपाहट', रवीन्द्र कालिया लिखित 'कोजी कार्नर', राजकमल चौधरी लिखित 'स्टिल लाइफ', सुधा अरोड़ा लिखित 'बगैर तराशे हुए', रघुवीर सहाय लिखित 'प्रेमिका', हिमांशु जोशी लिखित 'एक समुद्र भी', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना लिखित 'तोता', ज्ञान प्रकाश लिखित 'सभ्यता', रमेश उपाध्याय लिखित 'गलत-गलत', जगदीश चतुर्वेदी लिखित 'उदासी के टुकड़े' तथा कामतानाथ लिखित 'लाशें' कहानियाँ संकलित हैं। इस संकलन के सम्पादकीय वक्तव्य में यह बताया गया है कि इसके पीछे किसी वाद या आन्दोलन चलाने का कोई ध्येय नहीं है केवल व्यावसायिकता से हटकर लिखी गई, कथा-रूढ़ियों को तोड़ने वाली, साहित्यिक और प्रयोगशील कहानियों को सामने लाना ही इस संकलन का उद्देश्य है।

---

१. 'अकहानी', सं० श्री श्याम मोहन श्रीवास्तव तथा सुरेन्द्र अरोड़ा, सन् १९६७, पृ० १–२.

**अकहानी में यथार्थ**—अकहानी के सम्पादकीय वक्तव्य में श्री सुरेन्द्र अरोड़ा ने यह संकेत किया है कि अकहानी का लेखक जीवन के वास्तविक स्वरूप का यथार्थ चित्रण करता है। श्री अरोड़ा के शब्दों में : "एक बदले हुए परिवेश में और अपने ही समय के क्राइसिस को जीने वाले आज के कहानीकार के सम्मुख मृत्यु, आतंक, संकट, पार्थक्य और कुंठाग्रस्तता उससे अभिव्यक्ति की माँग करती है। आज का मनुष्य एक ओर समृद्ध भी होता जा रहा है और दूसरी ओर निर्धनता के अथाह जल में डूब उतरा भी रहा है।···विरोधाभास से भरे हुए इस जीवन का प्रत्येक क्षण वह जीता है-सिर्फ अपने लिए। एक-एक क्षण उसके हृदय में दुखता चला जाता है। उसकी सब्जेक्टिविटी इतनी बढ़ गयी है कि यदि वह कुछ पहचानता है तो केवल उन क्षणों को जिन्हें उसने स्वयं भोगा है, स्वयं जिया है। आयोजन, क्रमबद्धता, पुनरावृत्ति का नाटक—ये सब उसे पुरातन लगते है। उसे अपने एक-एक क्षण से प्यार है—अपनी अमूर्त्तता से प्यार है। वह चाहता है कि वह इन क्षणों में गहरे उतर जाए। सूक्ष्म के सूक्ष्म संवेदन को आत्मसात् कर ले। आज की कहानियों का नायक 'वह' यानी स्वयं लेखक भी हो सकता है जो जीवन के साथ-साथ चलते हुए भी उससे तटस्थ रहता है और समस्त अन्ध आस्थाओं को नकारता हुआ सूक्ष्म से सूक्ष्म क्षणों और संवेदनाओं को बिना किसी पूर्व नियोजन के और बिना किसी कृत्रिमता के, सृजन के माध्यम से अभिव्यक्ति देता चलता है।"[1]

**कहानी में प्रयोगशीलता**—जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, 'कहानी' के सम्पादकों का उद्देश्य व्यावसायिक कहानी से अलग साहित्यिक कहानी का रूप सामने लाना है। इसमें 'परम्परा और प्रयोग' शीर्षक सम्पादकीय वक्तव्य में श्री श्याममोहन श्रीवास्तव ने लिखा है कि "इन कहानियों को केवल इस अर्थ में अकहानियाँ कहा जा सकता है कि वे 'चालू' व्यावसायिक कहानियों को देखते हुए कहानियाँ नहीं हैं...और यह भी सम्भव है कि उनके पाठकों को पारस्परिक अर्थों में कहानी के मूल तत्व अनिवार्य रूप से न मिलें। जहाँ एक ओर कुछ व्यावसायिक लेखक आज भी प्रेमचन्द, सुदर्शन और कौशिक की शैली में लिख रहे हैं और बदली हुई शब्दावली और प्रतीक योजना का सहारा लेकर जीवित रहने का उपक्रम कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर आज के साहित्यिक कहानीकार पुराने ढंग के रचना-विधान को त्याग चुके हैं और अनेकानेक नये अभिव्यक्त रूपों के माध्यम से आधुनिक युग की कथाव्यथा को अनुभव करना चाहते हैं।"[2]

---

१. 'अकहानी', सं० श्री श्याममोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन १९६७, पृ० १-२.

२. वही, सन १९६७, पृ० ६-१०.

अकहानी की सम्भावनाएं—वर्तमान युग में कहानी क्षेत्रीय नवीन आन्दोलनों में से नयी कहानी, सचेतन कहानी तथा अकहानी आदि के विषय में जो भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं वे इन आन्दोलनों के उद्देश्य और स्वरूप का परिचय देते हैं। अकहानी के विषय में भी यह कहा गया है कि उसकी पृष्ठभूमि में कोई वाद या आन्दोलन नहीं है। केवल सुविधा विचार से ही उसे अकहानी नाम दिया गया है। अकहानी संकलन के प्रकाशन का उद्देश्य भी व्यावसायिक कहानी से अलग साहित्यिक अन्तर को स्पष्ट कर निष्ठावान लेखकों को प्रोत्साहन देना है। इसकी सम्भावनाएँ इसलिए आशाजनक हैं क्योंकि इसके लेखक अपने कृतित्व के प्रति पूर्ण सजग और निष्ठावान हैं।

## वर्तमान युग के प्रमुख कहानीकार

वर्तमान युग में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जो आन्दोलन हुए हैं, उनके विकास में अनेक नये-पुराने लेखकों ने योग दिया है। इनमें एक बड़ी संख्या पुराने कहानीकारों की है जिनका उल्लेख पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। उनके अतिरिक्त ऐसे लेखकों की संख्या भी बड़ी है जो नई पीढ़ी के रचनाकार हैं। इनमें योगेश गुप्त, कु० सोमावीरा, मार्कण्डेय, धर्मेन्द्र गुप्त, जगदीश चतुर्वेदी, शेखर जोशी, सेवाराम यात्री, डा० प्रतापनारायण टंडन, केशवप्रसाद मिश्र, रमेश बक्षी, गोपाल शेखरन, ज्ञान रंजन, रामनारायण शुक्ल, रवीन्द्र कालिया, गंगाप्रसाद मिलन, राजेन्द्र जगोत्रा, दूधनाथ सिंह, महेन्द्र भल्ला, भीष्म साहनी, श्रीमती शशिप्रभा शास्त्री, सुरेन्द्र मल्होत्रा, ममता अग्रवाल, प्रयाग शुक्ल, अनन्त गिरिराज किशोर, सुधा अरोड़ा, अनीता औलक, मनहर चौहान, अवधनारायण सिंह, सुरेन्द्र अरोड़ा, मशकूर जावेद, वीना रामानन्द, कुसुम चतुर्वेदी, तथा कामतानाथ आदि के नाम उल्लेखनीय है, जिनका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सोमा वीरा—सोमा वीरा का जन्म २० नवम्बर सन् १६३२ को हुआ था। इनकी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय कहानी के अतिरिक्त नाटक तथा उपन्यास के क्षेत्र में भी मिलता है। सोमा वीरा का नाम भी स्वातन्त्र्योत्तर कहानीकारों में प्रमुख है। इनकी कहानियों में सामाजिक नैतिकता की नवीनतम धारणाओं के बीच आधुनिक जीवन मूल्यों का निर्धारण हुआ है। इनकी कहानियों में परम्परागत संस्कारों के प्रति मोह दृष्टिगत होता है। यद्यपि इनमें नवीनता के प्रति भी आग्रह दिखायी देता है। उदाहरण स्वरूप मध्यम वर्ग में वैदिक रीति से जो विवाह हिन्दू समाज में होते हैं उनमें अनेक रीतियाँ वर-वधू को मानसिक रूप से एक दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व की भावना को जाग्रत कराती तथा विवाह के पवित्र बन्धन के प्रति निष्ठावान बने रहने की प्रेरणा देती हैं जब कि कानूनी तौर पर कचहरी में जाकर शादी करने पर यह भावनाएँ नहीं उत्पन्न हो सकती हैं। इस प्रकार से सोमा वीरा

की कहानियों में प्राचीनता के प्रति विशेष आग्रह लक्षित होता है। सोमा वीरा की प्रतिनिधि कहानियों का संग्रह सन् १९६२ में 'धरती की बेटी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था।

**मार्कण्डेय**—श्री मार्कण्डेय का जन्म जून सन् १९३२ को हुआ था। वर्तमान युग के यथार्थवादी आंचलिक कहानीकारों में मार्कण्डेय का नाम उल्लेखनीय है। 'हंसा जाई अकेला', 'भूदान', 'धुन', 'पानफूल', तथा 'माही' इनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। ग्रामीण कहानियों के अतिरिक्त मार्कण्डेय ने नारी जीवन से सम्बन्धित अनेक कहानियों की रचना भी की है परन्तु इनमें ग्रामीण कहानियों की भाँति स्वाभाविकता नहीं है। इन्होंने ग्रामीण जीवन की समस्याओं का निरूपण अपनी कहानियों में प्रभावशाली रूप में किया है। इनका यथार्थपरक दृष्टिकोण आज के सामाजिक जीवन पर आधारित है। धीरे-धीरे किस भाँति रूढ़ियों का अन्त हो रहा तथा ग्रामीण लोग नवीनता को किस प्रकार स्वीकार कर रहे हैं, यह भी इनकी कहानियों में वर्णित है। वर्ग वैषम्य, सामाजिक असमानता, छुआछूत तथा शोषण आदि की समस्याओं पर भी इनकी कहानियों में विचार हुआ है। मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों में बुर्जुआ मनोवृत्ति तथा पूँजीवादी सभ्यता को दोषी बताया है और इनके सुधार के लिए नवीन मूल्यों की स्थापना की है। कथावस्तु के अतिरिक्त इनकी कहानियों के पात्र भी यथार्थ व स्वाभाविक रूप में चित्रित हुए हैं।

**शेखर जोशी**—श्री शेखर जोशी का जन्म १० सितम्बर १९३४ को हुआ था। इनकी प्रतिभा मुख्य रूप से कविता और कहानी के क्षेत्र में प्रस्फुटित हुई है। 'कोसी का घरवार' शीर्षक से इनकी एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। इनकी कहानियाँ सामाजिक जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित हैं और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखी गयी हैं।

**सेवाराम यात्री**—श्री सेवाराम यात्री का जन्म १० जुलाई सन् १९३४ को हुआ था। कहानी लेखन के अतिरिक्त इन्होंने आलोचना, कविता तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनका नाम यथार्थवादी कहानीकारों में उल्लेखनीय है। इनकी कहानियों में जीवन की निर्ममता का चित्रण हुआ है। इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ 'धब्बे', 'बोझ', 'यादों के स्तूप और दर्द के आइने', 'दर्द और गुबार', 'नीति रक्षा' तथा 'नदी प्यासी थी' आदि हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में कटु यथार्थ का चित्रण किया है। आज के जीवन में व्याप्त निराशा तथा अकुलाहट का मनोवैज्ञानिक चित्रण इन्होंने किया है। इनकी कहानियाँ मध्य वर्गीय जीवन की आधारशिला पर टिकी हुई हैं तथा नगरीय जीवन की समस्याओं का भी विशद निरूपण उनमें हुआ है। आज का व्यक्ति ठगा सा दिशा भ्रमित होने के कारण भटकता-सा, प्रयासहीन व खोखली जिन्दगी को बिताता है। इसी का सूक्ष्म विवेचन यात्री जी

की कहानियों में द्रष्टव्य है। इनकी कहानी का शिल्प विधान भी नया है। कहीं वह इसमें सफल हैं और कहीं असफल भी हुए हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में यथार्थ जीवन व व्यक्ति की पूर्णता पर विशेष बल दिया है। इनकी भाषा भी साधारण बोलचाल की भाषा है।

डा० प्रतापनारायण टंडन—वर्तमान काल के हिन्दी कहानीकारों में डा० प्रतापनारायण टंडन का नाम भी उल्लिखित किया जा सकता है। इन्होंने कहानी के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक, एकांकी, कविता, शोध निबन्ध तथा आलोचना के क्षेत्रों में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी प्रतिनिधि कहानियों के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं। ये सन् १९६० में प्रकाशित 'बदलते इरादे' तथा सन् १९६४ में प्रकाशित कहानियों में से 'मजबूरियाँ', 'भविष्य के लिए', 'उचक्का', 'एक मानवीय सत्र', 'एक शाम', तथा 'लाल रेशम का पतला धागा' आदि कहानियाँ लेखक के यथार्थपरक दृष्टिकोण की परिचायक हैं। 'गलत फहमी', 'पुराने दोस्त', 'थोड़ी देर का सफर', 'चपरासियों की चाय', 'इंटरव्यू लेटर', 'लंच टाइम', 'पार्टनर', 'आदमी जागेगा', 'चलती हुई रकम', 'आखिरी खत', 'जन्नत से बाहर', 'जीवन सिंह' तथा 'भेद की बात' आदि कहानियों में आधुनिक सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया गया है।

केशवप्रसाद मित्र—श्री केशवप्रसाद का जन्म ११ सितम्बर सन् १९३५ को हुआ था। आज के यथार्थवादी कहानीकारों में इनका नाम भी उल्लेखनीय है। 'सुमुहूर्त' शीर्षक से इनका एक कहानी संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। 'गंगाजल', 'उस रात के बात के बाद', 'कोहबर की शर्तें', 'कोयला भई न राख', 'पैरों के निशान', 'भीमसेन', 'तुलसी सत गई' तथा 'एक था सुधारक' आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। इनकी कुछ कहानियों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण हुआ है तथा कुछ में मध्यवर्गीय जीवन और ग्राम जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को चित्रित किया गया है। इनकी कहानियों में कटु यथार्थ की भावना मिलती है। आज समाज में जो असंतोष फैला है उसका सफल चित्रण मित्र जी की कहानियों में हुआ है। इन्होंने साधारण शिल्प को अपनी कहानियों में स्थान दिया है, जटिल शिल्प को नहीं। इनकी कहानियों में संवेदनशीलता अधिक मिलती है। पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में नित्य होने वाले परिवर्तनों तथा रूढ़ियों, नवीनता, विवशता आदि को उन्होंने यथार्थ रूप में देखा है तथा पाठक के सामने प्रस्तुत किया है। मित्र जी ने निम्न मध्यवर्गीय जीवन के परिवारों का सत्य चित्रण अपनी कहानियों में किया है।

रमेश बक्षी—श्री रमेश बक्षी का जन्म १५ अगस्त सन् १९३६ को हुआ था। कहानी साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय देने के साथ उपन्यास, निबन्ध तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया है। इनकी प्रतिनिधि

कहानियों का एक संग्रह 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इनकी प्रतिनिधि कहानियों में 'मुहर्रम की तैयारी', 'कुंवारी चोरी', 'वही का वही सवाल', 'बहती नावों में सपनों का तैरना', 'अलग-अलग कोण', 'एक आत्म हत्या', 'पटाखे वाले', 'गूगली' तथा 'आलू गोभी' आदि सामाजिक यथार्थ के प्रभावशाली चित्रण की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

ज्ञानरंजन—श्री ज्ञानरंजन का जन्म ३१ अगस्त सन् १९३६ को हुआ था। नई कहानियों के लेखकों में ज्ञानरंजन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनकी कहानियाँ जीवन के विविध पक्षों को बड़ी यथार्थता से प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं। 'बुद्धिजीवी', 'अमरूद का पेड़', 'याद और याद', 'मनहूस बंगाल', 'दिवास्वप्नी', 'खलनायिका और बारूद का फूल', 'शेष होते हुए', 'फेन्स के इधर-उधर', 'सीमाएँ', 'पिता' तथा 'छलांग' आदि प्रमुख कहानियाँ हैं।

रामनारायण शुक्ल—श्री रामनारायण शुक्ल का जन्म अक्टूबर सन् १९३७ में हुआ था। आज के यथार्थवादी कथाकारों में रामनारायण शुक्ल का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ 'भावुक', 'डाक', 'पासबुक' तथा 'जीवन' आदि हैं। इनकी कहानियों में परिवर्तन का आग्रह है। पुरानी रूढ़ियों का त्याग तथा नूतन का स्वागत यह आवश्यक समझते हैं। नये सामाजिक यथार्थ का चित्रण वे बड़ी सफलता से कहानियों में करते हैं। इस दृष्टि से इनकी 'भावुक' शीर्षक कहानी सफल बन पड़ी है। इसमें परिवर्तित होती हुई नैतिकता का सूक्ष्म चित्रण कथाकार ने किया है।

रवीन्द्र कालिया—श्री रवीन्द्र कालिया का जन्म सन् १९३८ में हुआ था। आज के कहानी लेखकों में इनका नाम भी उल्लेखनीय है। 'नौ साल छोटी पत्नी', 'सिर्फ एक दिन', 'बड़े शहर का आदमी', 'क ख ग', 'दफ्तर' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। 'सिर्फ एक दिन' में एक शिक्षित योग्य व्यक्ति जो नौकरी में सफल नहीं होता उसकी घुटन, आत्मपीड़न तथा कुण्ठा को मार्मिकता के साथ व्यक्त किया गया है। 'बड़े शहर का आदमी' शीर्षक कहानी में सामाजिक यथार्थ का चित्रण हुआ है तथा सामाजिक विकृतियों का व्यंग्यात्मक परिचय दिया है। इनकी अन्य कहानियों में शिल्पगत नवीनता सहज रूप में मिलती है।

गंगाप्रसाद विमल—श्री गंगाप्रसाद विमल का जन्म ३ जून सन् १९३९ को हुआ था। वर्तमान युग के कहानीकारों में यथार्थ के प्रति जो तीव्र आग्रह मिलता है उसे इनकी रचनाओं में भी देखा जा सकता है। 'दोनों से पहले तथा उसका साथ' जैसी कहानियों में इन्होंने आधुनिक सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि में जटिल मानवीय सम्बन्धों का विवेचन किया है। इनके दृष्टिकोण में कहीं-कहीं पर यथार्थ से आगे अतियथार्थवाद का परिचय भी मिलता है।

मनहर चौहान—श्री मनहर चौहान का जन्म सन् १६३६ में हुआ था। आज के कहानीकारों में नई कहानी में सफल मनहर चौहान का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी कहानियों के दो कहानी-संग्रह 'मत छुओ' तथा 'बीस सुबहों के बाद' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। 'बरबुसरा', 'बीस सुबहों के बाद', 'टोकरी में बैठी उदासी', 'न उड़ने वाली लाशें', 'विपरीतीकरण' तथा 'घी घी घोड़ा' आदि इनकी बहुचर्चित कहानियाँ हैं। इनके अतिरिक्त 'सीढ़ियाँ', 'हीरो' भी इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

भीष्म साहनी—नई कहानियों के कहानीकारों में भीष्म साहनी का नाम भी उल्लेखनीय है। 'भाग्य रेखा' और 'पहला पाठ' शीर्षक नामक इनके दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'चीफ की दावत', 'सिर का सदका', 'सफर' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। इनकी कहानियों में यथार्थ जीवन का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। इन्होंने वर्ग वैषम्य, आर्थिक विपन्नता, अन्तर्विरोध तथा कटुता आदि को यथार्थ रूप में अपनी कहानियों में चित्रित किया है। इन्होंने अपनी इन कहानियों में यह भी बताया है कि मानव संघर्ष करके परिस्थितियों पर विजयी बन सकता है। आज के नए यथार्थ के विभिन्न रूप बड़े प्रभावशाली ढंग से साहनी की कहानियों में वर्णित हुए हैं। इनकी कहानियाँ सामाजिक यथार्थ पर ही आधारित हैं।

शशिप्रभा शास्त्री—वर्तमान युग की कहानी-लेखिकाओं में शशिप्रभा शास्त्री का नाम भी उल्लेखनीय है। यद्यपि इनकी रचनाओं का अधिक प्रचार नहीं हो सका है पर वे उच्च कोटि की हैं। इन्होंने लगभग सौ कहानियों की रचना की है। इनकी प्रमुख कहानियाँ 'गहराइयों में गूँजते प्रश्न', 'स्टैंडर्ड', 'दो कोणों वाला एक बिन्दु' तथा 'घाटे की लकीरें' आदि हैं। इनकी कहानियों में नारी जीवन की वर्तमान गति एवं यथार्थता को ही नवीन सन्दर्भों के साथ चित्रित किया गया है। इनकी कहानी शिल्प में भी जटिलता नहीं आने पायी है।

ममता अग्रवाल—आज की यथार्थवादी कहानी-लेखिकाओं में ममता अग्रवाल का नाम भी उल्लेखनीय है। 'एक अकेली तस्वीर', 'रोग का निदान', 'टिटहरी और ज्यामिती के बिन्दु', 'छिटकी हुई जिन्दगी' तथा 'छुटकारा' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। इनकी कहानियों में नारी जीवन के विविध पक्षों का सूक्ष्मता के साथ चित्रण हुआ है। आधुनिक नारी नवीन परिवर्तनों के कारण अपने को समय के अनुकूल न ढाल कर दुविधा में रह गयी है तथा उसके जीवन में अन्तर्विरोध की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। ममता अग्रवाल की कहानियों में पूर्ण यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। जैसा कि प्रायः देखा जाता है महिला लेखिका भावुकता में अवश्य बह जाती हैं परन्तु ममता अग्रवाल की यह विशिष्टता है कि वे अपने को इससे बचाये रख सकी हैं।

प्रयाग शुक्ल—नये कहानीकारों में प्रयाग शुक्ल का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ 'अनहोनी', 'खोज', 'आदमी', 'बातें' तथा 'एक अपरिचित' आदि हैं। यद्यपि इनकी कहानियों का आकार लघु है परन्तु इनमें जीवन के यथार्थ के तुच्छ से तुच्छ कणों को भी सजगता के साथ चित्रित किया गया है। इन की कहानियों में यथार्थ जीवन चित्रित हुआ है। इनकी कहानियों में सामाजिक युग-बोध और भाव-बोध तथा कला-सौष्ठव भी दृष्टव्य है। इनकी कहानियों में आज के जीवन की बहुविविध पक्षों का प्रभावशाली चित्रण हुआ है।

गिरिराज किशोर—समकालीन कहानीकारों में गिरिराज किशोर का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके दो कहानी-संग्रह 'नीम के फूल' तथा 'चार मोतीं बेआब' शीर्षक से प्रकाशित हो चुके हैं। 'नया चश्मा', 'पेपरवेट', 'संगत', 'आमंत्रित', 'जनाने डिब्बे में मर्द', 'यात्रा', 'चूहे' तथा 'पैरों तले दबी परछाइयाँ' आदि इनकी प्रमुख कहानियाँ हैं। इनकी कहानियों में भी दो वर्ग हैं : राजनीतिक तथा आधुनिक परिवेश को लेकर लिखी गई कहानियाँ। प्रथम में भ्रष्टाचार, दोषपूर्ण व्यवस्था, पद-लोलुपता, स्वार्थी प्रवृत्तियाँ एवं राजनीतिक विघटन का यथार्थ चित्रण हुआ है। इन कहानियों में राजनीतिक व्यवस्था के दोषों का यथार्थता के साथ चित्रण हुआ है जो हमारे सामने आज राजनीतिक परिस्थिति को प्रस्तुत करती हैं। दूसरे वर्ग की कहानियों में सामाजिक सत्यान्वेषण, सामाजिक घुटन, अकुलाहट का सूक्ष्मतर चित्रण हुआ है। इन कहानियों में जीवन के यथार्थ का अंकन किया गया है।

अन्य कहानीकार—यहाँ पर वर्तमान काल के जिन कहानीकारों का संक्षिप्त विवेचन किया गया है, उनके अतिरिक्त भी एक बड़ी संख्या ऐसे कहानीकारों की है जिनकी रचनाओं में वर्तमान हिन्दी कहानी की विभिन्न प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। इनमें 'जीप की दोगली नजर', 'लान पर कसमसाते पाँव' तथा 'अलस बाँहों की दोपहर' के लेखक श्याम परमार, 'खाली चेहरा', 'अपने शहर की उदासियाँ' तथा 'अँधेरे में डूबा हुआ आदमी' आदि कहानियों के लेखक बलराज पंडित, 'किसी के लिए' तथा 'ऊब' आदि कहानियों के लेखक ओंकार ठाकुर, 'रक्तपात', 'आइस वर्ग', 'रीछ', 'स्वर्गवासी' तथा 'दुस्वप्न' आदि कहानियों के लेखक दूधनाथ सिंह, 'दिन शुरू हो गया', 'सही घटा', 'डुबकी' तथा 'एक पति के नोट्स' आदि कहानियों के लेखक महेन्द्र भल्ला, 'लाशें और कफन', 'जिन्दगी एक पंखहीन तितली' तथा 'मुट्ठी भर खुशबू' आदि कहानियों के लेखक सुरेन्द्र मल्होत्रा, 'अविवाहित पृष्ठ', 'बगैर तराशे हुए', 'निर्मम' तथा 'एक सिन्टीमेन्टल डायरी की मौत' की लेखिका सुधा अरोड़ा, 'न जाने क्यों बेगज़ल', 'उसका अपना आप' तथा 'चरागाहों के बाद' आदि कहानियों की लेखिका अनीता ओलक, 'चेहरे', 'निर्णय', 'बीमार', 'आकाश का दबाव' तथा 'कुत्ते का शव' आदि कहानियों के लेखक अवधनारायण सिंह, 'फ्रेम किया हुआ समुद्र' कहानी के लेखक मशकूर जावेद, 'निष्कृति' कहानी की लेखिका वीना रामानन्द,

'हिफाजत' कहानी की लेखिका कुसुम चतुर्वेदी तथा 'यजमानी' आदि कहानियों के लेखक कामतानाथ के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कहानीकारों के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से लेखक वर्तमान हिन्दी कहानी के विकास में योग दे रहे हैं जिनमें इन्द्रभूषण, मनमोहन वशिष्ठ, वंशीधर पाठक, अनिरुद्ध झा, चन्द्रमोहन दिनेश, इन्दुबाली, कैलाश नारद, आलोक शर्मा, मेहरुन्निसा परवेश, विजयमोहन सिंह, ओमप्रकाश निर्मल, नीलम सिंह, कुमकुम जोशी, इन्दु भूषण, राजेन्द्र किशोर, रणधीर सिनहा तथा सुरेश सिनहा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ऊपर जिन कहानीकारों का उल्लेख किया गया है वे वर्तमान युग के प्रतिनिधि कहानीकार मान्य किये जा सकते हैं।

## समकालीन कहानी क्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ और यथार्थवाद

विगत युगों की भांति सातवें दशक की कहानी में भी विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास दृष्टिगत होता है। इनमें सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति, धार्मिक पौराणिक कहानी की प्रवृत्ति, राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति तथा मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति मुख्य हैं। आज के समाज में सबसे अधिक संकट आर्थिक क्षेत्र में हैं। आज के अनेक कहानीकारों ने देश की आर्थिक स्थिति का चित्रण करने वाली कहानियाँ लिखी हैं। औद्योगिक उन्नति ने आज के समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सामाजिक व्यवस्था परिवर्तित हो गयी है। धार्मिक पौराणिक कहानियों की जो प्रवृत्ति वर्तमान कहानियों में दिखाई देती है उससे यह संकेत मिलता है कि आज के युग में धर्म की भावना वैज्ञानिक और तर्कपरक होती जा रही है। भाग्यवाद, अन्धविश्वास, मिथ्याडम्बर, आत्मा-परमात्मा आदि से विमुख होकर आज व्यक्ति का दृष्टिकोण भौतिकवादी होता जा रहा है। वर्तमान काल की राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत देश की स्वतन्त्रता, देश का विभाजन, शरणार्थी समस्या, जनतन्त्र प्रणाली, जमींदारी उन्मूलन, सहकारी आन्दोलन आदि को आधार बनाया है। मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत आज के जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित समस्याओं का विवेचन किया गया है। यहाँ पर वर्तमान कहानी की इन्हीं प्रमुख प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

## वर्तमान युगीन सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद

सातवें दशक की हिन्दी कहानी में जो सामाजिकता की प्रवृत्ति दिखाई देती है उसका आधार आज के समाज का पतनोन्मुख स्वरूप है। आज की सभ्यता के बनावटीपन को कटु व्यंग्य से पूर्ण दृष्टिकोण के साथ आज का कहानीकार अपनी रचना में प्रस्तुत करता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो अनिश्चयता और भय विद्यमान है, उसके कारण नवयुवक वर्ग किसी भी क्षेत्र में रचनात्मक कार्य नहीं कर पाता। उसे

प्रत्येक स्थिति विषम लगती है क्योंकि वह उनमें अपने लिए कहीं पर कोई स्थान नहीं बना पाता है। आज का समाज कृत्रिम सभ्यता और शिष्टाचार के जिस रूप का परिचय देता है उसमें मानवीयता का अभाव है। स्वाभाविक रूप से इस समाज का सबसे अधिक प्रतिनिधित्व मध्य वर्ग करता है। यहाँ पर इस तथ्य की ओर उल्लेख करना अनुचित न होगा कि आज के अधिकांश कहानीकार इसी मध्य वर्ग के हैं जो इन परिस्थितियों और उनसे सम्बन्धित अनुभूतियों का यथार्थ चित्रण करने में समर्थ भी हैं।

समकालीन सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति में स्त्री पुरुष के सम्बन्धों को भी नवीन रूप में व्यंजना हुई है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, देश का विभाजन इतनी बड़ी दुर्घटना सिद्ध हुआ है जिसने भारत के समग्र स्वरूप को प्रभावित किया है। इस विभाजन के उपरान्त जो नया समाज बना है, उसमें शरणार्थियों की संख्या भी बहुत बड़ी रही है। विभाजन की घटना शरणार्थियों के लिए जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप सिद्ध हुई है। देश परिवर्तन के पश्चात् स्त्री पुरुषों को सामूहिक रूप से जिन कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा उसका फल यह हुआ कि उन दोनों में ही स्वावलम्बन की भावना बढ़ी। पुरुष वर्ग में तो यह भावना परम्परागत रूप में विद्यमान थी। नारी वर्ग में यह एक तीखी चेतना के रूप में जन्मी। कानून की दृष्टि में जब उसे समान अधिकार मिल गये तब धीरे-धीरे परिवार और समाज ने भी उसकी स्वतंत्रता को स्वीकार कर लिया। शिक्षा के प्रचार प्रसार ने भी उसे स्वावलम्बन का सबक सिखाया। उसके पुराने संस्कार धीरे-धीरे समाप्त हो गए और वह एक नये रूप में सामने आयी। समकालीन कहानी में उसके इसी नए रूप का चित्रण हुआ है जिसके सामने एक ओर पुराने संस्कार और दूसरी ओर आधुनिकता का आकर्षण।

वर्तमान कहानी में गाँवों, कस्बों, शहरों और महानगरों के जीवन का विस्तार से चित्रण हुआ है। इसमें लेखकों ने जीवन के इन क्षेत्रों के परिचित रूप का तो चित्रण किया ही है साथ ही साथ ऐसे भी अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं जो सामान्य पाठक के लिए अमान्य हैं। समाज के विभिन्न वर्गों में आज की परिस्थितियों में जिस प्रकार की भावनाएँ क्रियाशील रहती हैं उनका चित्रण भी नए कहानीकार ने विस्तार से किया है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है उसमें केवल शिल्प के क्षेत्र में ही नवीनता नहीं है बल्कि उसका समग्र स्वरूप ही नया है। जीवन के किसी विशिष्ट क्षेत्र को आधार बनाकर सहज घटनाओं, स्वाभाविक पात्रों और व्यावहारिक भाषा शैली को बिना किसी आडम्बर के चित्रित करना नई कहानी की उल्लेखनीय विशेषता है। वर्तमान हिन्दी कहानी ने अपने विकास के आरम्भिक चरण में ही कुछ नई दिशाओं का परिचय दिया उसमें सामाजिक जीवन के भिन्न-भिन्न रूपों के क्षेत्र में

व्याप्त दृष्टिकोण के खोखलेपन का चित्रण किया है। आज के जीवन में जितना आडम्बर और मिथ्याचार दिखाई देता है उसने उसे हटाकर मानव जीवन के यथार्थ स्वरूप को पाठक के सामने प्रस्तुत किया। उसने कथावस्तु के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग किये और आज के जीवन की सामान्य घटनाओं को अपनी कहानी में प्रस्तुत किया।

## वर्तमानयुगीन धार्मिक पौराणिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद

आधुनिक युग में धर्म की भावना मुख्यतः वैज्ञानिक और तर्कपरक होती जा रही है। भाग्यवाद, अंधविश्वास, मिथ्या आडंबर आदि में धीरे-धीरे कमी होती जा रही है। आत्मा, परमात्मा, लोक परलोक और भक्ति अध्यात्म आदि की परम्परागत भावनाएँ समाप्त हो रही हैं और इनके स्थान पर भौतिकवादी दृष्टिकोण प्रधान होता जा रहा है। अब व्यक्ति का दृष्टिकोण परलोक-प्रधान न रहकर लोक-प्रधान हो गया है। मूर्ति पूजा और धार्मिक पर्वों का महत्व भी अब पहले जैसा नहीं रह गया है। अब ईश्वर के अवतारों के स्थान पर महापुरुषों की पुन्य तिथि का महत्व बढ़ गया है और धार्मिक त्योहारों का स्थान राष्ट्रीय पर्व लेते जा रहे हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, नरेश मेहता लिखित 'वह मर्द थी' तथा मोहन राकेश लिखित 'मलबे का मालिक' जैसी कहानियों में धर्म की संकीर्णता से प्रेरित मनुष्य के पाशविक कृत्यों की रोमांचक कथा प्रस्तुत की गई है। मार्कन्डेय लिखित 'कानी घोड़ी', महीप सिंह लिखित 'पानी और पुल,' तथा शानी लिखित 'कफन चाहिए' जैसी कहानियों में भी धर्म के उस रूप का चित्रण किया गया है, जिसमें अधर्म को प्रश्रय दिया गया है। यह अधर्म मूल रूप से अज्ञान और अशिक्षा के कारण फैलता है। शेखर जोशी लिखित 'कवि प्रिया', शानी लिखित 'इज्जत का सवाल' तथा मन्नू भंडारी लिखित 'यही सच है, जैसी कहानियों में यह संकेत किया गया है कि अज्ञान और अशिक्षा को जब तक नहीं दूर किया जाएगा, तब तक धर्म और रूढ़ि के नाम पर अनेक अत्याचार, अनाचार और अधर्म होते रहेंगे। मार्कन्डेय लिखित 'वासवी की माँ', तथा 'सात बच्चों की माँ', मन्नू भंडारी लिखित 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' तथा 'बंद दराजों का साथ' एवं शानी लिखित 'छोटे घेरे का विद्रोह' जैसी कहानियों में अंध विश्वास और रूढ़ियों के भयानक परिणाम चित्रित किये गये हैं। नीति, सदाचार, सच्चाई, इमानदारी, पातिव्रत आदि की निरर्थता का भी चित्रण अनेक कहानीकारों ने विभिन्न परिस्थितियों में किया है, जो मनुष्य की विवशता की परिचायक हैं।

धार्मिक पौराणिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत रमेश बक्षी की 'कीर्तन' जैसी कहानियों का उल्लेख भी यहाँ किया जा सकता है जिनमें लेखक ने यह व्यंग्य किया है कि आधुनिक युग में धर्म मात्र आडम्बर रह गया है और जनता की धार्मिक भावना भी मिथ्या अन्ध विश्वास बन कर रह गई है। इस कहानी में लेखक ने अखंड कीर्तन में व्यतिक्रम आ जाने के कारण उसके खंडित हो जाने का चित्रण किया है।

वह यथार्थवाद की सीमा लांघ कर अतियथार्थवादी हो गया है। इस कहानी के अंत में लेखक ने यह संकेत किया है कि धर्मभीरु व्यक्ति अपने मन को हर तरह से समझा लेता है : "क्या पर-पर लगा रखी है तिवारी जी ? 'भगत ने उन्हें चुरा कर दिया'-कीर्तन तो अखंड था इस बात को मैं सौ बार कर सकता हूँ कि था-था-था-था !' फिर भगत तिवारी जी के पास जाकर बोले-,जरा दिमाग पर जोर देकर सोचो आप। मैं तो जानता था भाई, सोचा नहीं था और दोनों बहू-बेटी कीर्तन कर रहे थे। सोचिए आप जरा, अगर दो एक मिनट के लिए जवान लड़के-लड़की दुखी हुई। उँगलियाँ चिटकाने के लिए झांझ करताल बजाना बन्द भी कर दें, जैसा कि ब्रजमोहन और बहू ने किया, तो क्या इससे कीर्तन खंडित हो जाता है ? 'भगत ने तिवारी के उत्तर की राह न देखी और खुद ही बोले'-इस तरह कीर्तन कभी खंडित नहीं होता, वह तो अखंड था, एकदम अखंड था।"[१]

समकालीन कहानी में धर्म से सम्बन्धित जिन समस्याओं का विवेचन हुआ है उनमें भी कहानीकारों का दृष्टिकोणगत पतिवर्तन स्पष्ट है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, पिछले युगों में समाज सुधार के उद्देश्य से जो अनेक संस्थाएँ बनी उन्होंने धर्म सुधार के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने धर्म के आडम्बरपूर्ण रूप का विरोध किया और धर्म के नाम पर होने वाले शोषण के विरुद्ध भी आवाज उठायी। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म क्षेत्र से विश्वास की कमी होने लगी और उसके स्थान पर तर्क बढ़ने लगा। अब धर्म का मूल आधार भी तर्क ही हो गया। अन्ध भक्ति की भी क्रमशः समाप्ति होने लगी और धीरे-धीरे उसमें वैज्ञानिक दृष्टि का समावेश हुआ। समकालीन कहानीकारों ने इसी वैज्ञानिक धर्म का चित्रण करते हुए अपनी रचनाओं में रूढ़िवादिता और आडम्बरप्रियता का तीव्र विरोध करते हुए उसका व्यंग्यपूर्ण खंडन किया है।

## वर्तमानयुगीय राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद

राजनैतिक उथल-पुथल आलोच्य युग में और भी अधिक बढ़ी हुई दिखाई देती है। देश की स्वतंत्रता, देश का विभाजन, शरणार्थियों की समस्या, जनतंत्र शासन प्रणाली का आरम्भ, संविधान की स्वीकृति, जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, सहकारी आन्दोलन का आरम्भ, भारत और चीन का युद्ध, भारत और पाकिस्तान का युद्ध, पंचायत प्रणाली का आरम्भ, प्रिवी पर्स की स्वीकृति और समाप्ति, विभिन्न बीमा कंपनियों, उद्योगों तथा बैङ्कों का राष्ट्रीयकरण आदि घटनाओं ने समय-समय पर देश की राजनीति को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। हिन्दी का कहानीकार इन सब घटनाओं और उनके परिणामों के प्रति जागरूक रहा है। जैसा कि पीछे संकेत किया

---

१. 'युग चेतना', वर्ष ४, अंक ५, मई १९५८, पृ० ३८.

जा चुका है, केवल भारत विभाजन के ही परिणामस्वरूप जितनी पाशविकता उभरी है, उसकी मिसाल मिलना कठिन है। नरेश मेहता की लिखी हुई 'वह मर्द थी' जैसी कहानियाँ इस पाशविकता का जो चित्रण करती हैं, उसे पढ़कर इंसान के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' भी इसी विडंबना का चित्रण करती है। इस जैसी रचनाओं से यह संकेत भी मिलता है कि भारत विभाजन की समस्या का अभिशाप अभी तक किसी न किसी रूप में बना हुआ है। महीप सिंह लिखित 'पानी और पुल' तथा मोहन राकेश लिखित 'क्लेम' और 'परमात्मा का कुत्ता' जैसी कहानियाँ भी आज के समय की राजनैतिक सामाजिक स्थिति के तमाम पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं। कमलेश्वर लिखित 'अपने देश के लोग', मन्नू भंडारी लिखित 'हार' तथा मार्कन्डेय लिखित 'हँमा जाई अकेला' जैसी कहानियाँ आज के युग में नौकरशाही, चुनाव चक्कर, राजनैतिक षड्यंत्र, चोरबाजारी, कालाबाजारी, कामचोरी, आन्दोलन, हड़ताल, आपसी फूट आदि का जो चित्रण करती हैं, वह पाठक को देश के सही स्वरूप से परिचित कराती हैं।

राजनीति के क्षेत्र में आज मुख्य रूप से वाम पंथी और दक्षिण पंथी विचार-धाराओं का संघर्ष ही प्रमुख रहा है। वामपंथी विचारधारा उन देशों में है जो समाज-वाद और साम्यवाद के समर्थक हैं। इसके विपरीत दक्षिण पंथी विचारधारा को उन देशों में प्रोत्साहन मिल रहा है जिनका विश्वास साम्राज्यवाद और पूँजीवाद में है। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों में इन दोनों विचारधाराओं के समर्थक देश विभिन्न प्रकार की सहायताओं, योजनाओं के अन्तर्गत अपने-अपने दृष्टिकोण का प्रचार कर रहे हैं। ये दोनों विचारधाराएँ आज की दुनियाँ में इतनी व्यापक हो गयी हैं कि इन्होंने स्पष्ट रूप से सभी देशों और समाज को दो वर्गों में विभाजित कर दिया है। इन दोनों वर्गों की अलग समस्याएँ और अलग स्वार्थ हैं। आज के अधिकांश कहानी-कार इनमें से वामपंथी मार्ग के अनुगामी हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इनमें मध्य वर्ग से ही अधिकांश कहानीकार आए हैं इसलिए उनकी रचनाओं में शोषण के विरुद्ध आवाज उठायी गयी है।

राजनैतिक प्रवृत्ति से सम्बन्धित इस युग के कहानीकारों की विचारधारा मुख्य रूप से वामपंथी होती गयी है। इसका मूल कारण यह है कि देश में जिस जनतांत्रिक सरकार की व्यवस्था है उसके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्वरूप में बड़ा अन्तर है। सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि देश की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र के प्रति हमारे कर्तव्यों का अन्त हो गया है। वस्तुतः इसके बाद ही सच्चे त्याग और बलिदान की आवश्यकता थी। इसके अभाव में देश की शासन-प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं आया और वह अंग्रेजी समय की नौकरशाही से ही चलती रही। देश में जितने भी सुधार हुए उनका भी कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ।

जमींदारी व्यवस्था की समाप्ति के पश्चात शोषण का अन्त इसलिए नहीं हो सका कि भूतपूर्व जमींदार भारी धन व्यय करके चुनाव में जीत गए और विधान मंडल अथवा संसद के सदस्य और मन्त्री बन गए हैं। सिफारिश और पक्षपात का पुराना दौर अब भी बना रहा। अमरकान्त लिखित 'दोपहर का भोजन' तथा 'डिप्टी कलक्टरी' और भीष्म साहनी लिखित 'चीफ की दावत' और 'सिफारिशी चिट्ठी' जैसी कहानियों में इसी अवस्था का चित्रण हुआ है।

समकालीन कहानी में जो राजनैतिक चेतना दृष्टिगत होती है उसकी पृष्ठभूमि में आज के समाज पर राजनीति का बढ़ता हुआ प्रभाव है। भारत विभाजन की समस्या ने समाज के सम्पूर्ण रूप को प्रभावित किया है। अब व्यक्ति में सामाजिकता अथवा समष्टि की भावना धीरे-धीरे कम होने लगी और वह आत्मपरक बनने लगा। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि उसकी वृत्ति स्वार्थी होने लगी और इस कारण उसमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि स्वार्थ के अधिक से अधिक वशीभूत होता गया और स्वाभाविक रूप से अपने कर्तव्य के प्रति उसकी उदासीनता बढ़ती गयी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व उसमें अपने कर्तव्य के प्रति जो निष्ठा थी वह समाप्त हो गयी। स्वतन्त्र देश में जनतन्त्र की शासन प्रणाली भी असफल सिद्ध हुई। आज राजनीति के क्षेत्र में जो चुनाव प्रणाली नेतागीरी, घूसखोरी, साम्प्रदायिकता और अनैतिकता बढ़ रही है, उसके मूल में भी यही असफल व्यवस्था है। अप्रत्यक्ष रूप से पूँजीपति वर्ग राजनीति का संचालन करता रहा है क्योंकि धन की शक्ति के अभाव में बड़े नीतिवान और योग्य राजनीतिज्ञ नेता एक चुनाव में पराजित हो जाते हैं।

## वर्तमानयुगीन मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति और यथार्थवाद

समकालीन कहानी में मनोविश्लेषणात्मकता का आग्रह बढ़ने के साथ-साथ कथा वस्तु और घटनाओं का अभाव मिलता जाता है। इसके स्थान पर उसमें विभिन्न प्रकार की स्थितियों का चित्रण प्रधान होता जाता है। आज जीवन के सभी पहलुओं के क्षेत्र में इतनी जटिलता और विषमता मिलती है कि सहज और सरल हृदय वाला व्यक्ति गहरी मानसिक उथल-पुथल और अन्तर्द्वन्द्व का शिकार हो जाता है। शेखर जोशी लिखित 'उस्ताद' तथा 'बदलू' और शानी लिखित 'आँखों वाली अन्धी' तथा 'भूले हुए' आदि कहानियों में घटनाओं को महत्व न देकर स्थितियों को ही महत्व दिया गया है। इसी प्रकार से मार्कण्डेय लिखित 'एक काला दायरा' तथा 'हंसा अकेला' और शानी लिखित 'गंदले जल का रिश्ता' तथा 'उखड़ी हुई दीवार' में भी घटनाओं की तुलना में स्थितियाँ अधिक महत्वपूर्ण हो गयी हैं।

वर्तमानयुगीन मनोवैज्ञानिक कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में आर्थिक कारणों को भी अनेक कुण्ठाओं और विषमताओं का जन्मदाता बताया है। यद्यपि

भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् से ही देश के सामने आर्थिक संकट बढ़ते रहे हैं, परन्तु इस काल में विडम्बना कुछ ऐसी रही कि सरकार की ओर से अनेक सहकारी योजनाएँ आदि निर्धनता बढ़ाती रहीं। समाज में धनी वर्ग के पास धन बढ़ रहा है और निर्धन वर्ग धीरे-धीरे और गरीब होता जा रहा है। एक ओर यदि पूँजीपति वर्ग में एक व्यक्ति की औसत आय एक लाख रुपया तक प्रतिदिन के हिसाब से है, तो दूसरी ओर निर्धन वर्ग में प्रति व्यक्ति आय का औसत एक रुपये से भी कम है। इसके बाद भी स्थिति कुछ ऐसी होती जा रही है कि गरीबों और अमीरों के बीच का अन्तर बराबर बढ़ता चला जा रहा है। बड़े उद्योगों, लघु उद्योगों तथा सहकारी उद्योगों की अनेक योजनाएं आज सरकारी और गैर सरकारी स्तरों पर दिखाई दे रही हैं। औद्योगिक उन्नति ने व्यक्ति, परिवार और समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। नागरिक और ग्रामीण जीवन दोनों में ही इस प्रभाव के फलस्वरूप व्यापक परिवर्तन आया है। आज औद्योगिक युग की सभ्यता और संस्कृति तक सामाजिक व्यवस्था के साथ ही परिवर्तित हो गयी है। पारिवारिक स्तर पर जहाँ इसके फलस्वरूप विशृङ्खलन हुआ है, वहाँ सामूहिक स्तर पर उसमें एकता की भावना भी जाग्रत हुई है। आज अनेक वर्गों के मजदूरों के जो तमाम संगठन बने हुए हैं, उनके मूल में यही भावना कार्य कर रही है। संगठन रूप में वे अपने संघों के माध्यम से अपनी आवाज को बुलन्द कर सकते हैं और पूँजीपति वर्ग से संघर्ष करने में समर्थ बने हुए हैं। परन्तु फिर भी शोषण अनेक रूपों में जारी है। हिन्दी के बहुत से कहानीकारों ने आर्थिक परिवर्तन के विभिन्न रूपों का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। गोपाल शेखरन की लिखी हुई 'मिठास' जैसी कहानियों में धन की शक्ति और शोषण का मार्मिक चित्रण हुआ है। मार्कण्डेय की लिखी हुई 'भूदान' जैसी कहानियों में भी जमींदारी शोषण के परिवर्तित रूप का चित्रण है। शानी की लिखी हुई 'नंगे' तथा शेखर जोशी की लिखी हुई 'बदलू' जैसी कहानियों में भी शोषित वर्गों के दयनीय चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। हृदयेश की लिखी हुई 'दुकानदार बच्चे' जैसी कहानियाँ भी निम्न वर्गों के अबोध बच्चों के विपन्न जीवन का प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत करती हैं। निम्न मध्य वर्गों में आर्थिक हीनता की इस स्थिति में भी जो रूढ़िवादिता बनी हुई है, वह उसे घुन की तरह खोखला बनाती जा रही है। मार्कण्डेय लिखित 'चाँद का टुकड़ा' तथा शानी लिखित 'हाशिए' जैसी कहानियों में दहेज और अन्य कुप्रथाओं को मजबूरियों के रूप में चित्रित किया गया है, जिनसे बहुत चाहते हुए भी छुटकारा नहीं मिल पाता। इसी प्रकार से अभिजात वर्ग में फैशन, फिजूलखर्ची तथा काले धन की बढ़ती आदि का भी कहानीकारों ने चित्रण किया है। धन की तृष्णा व्यक्ति को हैवानियत की किस सीमा तक ले जाती है, इनका चित्रण मार्कण्डेय लिखित 'संगीत, आंसू और इन्सान' जैसी कहानियों में मिलता है। आर्थिक विपन्नता और आर्थिक संपन्नता ही अनेक प्रकार की स्थितियों को जन्म देती हैं और उन्हीं के फलस्वरूप

आदमी में गुण और अवगुण आते हैं। ऊपर जिन कहानियों की चर्चा की गयी है, उनसे यही बात सिद्ध होती है।

## वर्तमान कहानी में यथार्थवाद के विविध रूप

वर्तमानयुगीन कहानी में भी यथार्थवाद के सभी प्रमुख रूपों का समावेश हुआ है। ऐतिहासिक यथार्थवाद की दृष्टि से इस युग की जिन कहानियों का उल्लेख आगे किया जा रहा है उनका आधार यह तथ्य है कि आज का भारतवासी अपने पूर्वजों की उन कुर्बानियों को भूल गया है जो उन्होंने देश आजाद कराने के लिए की थीं। कुछ लेखकों ने इतिहास के विभिन्न युगों को आधार बना कर प्रत्येक युग में स्वार्थ का बोलबाला दिखाया है। सामाजिक यथार्थ का चित्रण करते हुए कुछ लेखकों ने विभिन्न वर्गों की सामाजिक स्थिति का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। मनोवैज्ञानिक यथार्थ के क्षेत्र में लेखकों ने परम्परागत नैतिक रूढ़ियों और मानसिक स्वीकृतियों का चित्रण करते हुए यह बताया है कि बहुधा नैतिक बन्धन ही मनुष्य को उच्छृङ्खल बना देते हैं। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण का विवेचन करते हुए आज के लेखक ने जाति व्यवस्था छुआछूत तथा शोषण आदि का विरोध किया। यहाँ पर संक्षेप में वर्तमान कहानी में समाविष्ट यथार्थवाद के विभिन्न रूपों का विवेचन किया जा रहा है।

**वर्तमानयुगीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद**—वर्तमानयुगीन कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद का जो रूप मिलता है, उसका आधार लेखकों का इतिहास सम्बन्धी नवीन दृष्टिकोण है। उदाहरणार्थ 'उँगली का इशारा' शीर्षक कहानी में वीरेन्द्र मेहदीलता ने ऐतिहासिक यथार्थवाद का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है। आज हमारे देश के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम लोग उन कुर्बानियों को बिल्कुल भूल गये हैं जो हमारे शहीदों ने देश को आजाद कराने के लिए की थी। 'उँगली का इशारा' जैसी कहानियों में यह संकेत किया गया है कि आज बनावटीपन और नकलीपन का बोलबाला है और सफलता के लिए झूठ और आडम्बर आवश्यक है। आज की नारी भी पुरानी नैतिक मर्यादा को भूलकर उच्छृङ्खल हो गयी है। ऐसी परिस्थिति में हम लोग उन शहीदों की कुर्बानियों की कदर नहीं कर सकते हैं जिनकी वजह से हमारा देश आजाद हुआ : वह बोला, 'वे भी क्या दिन थे। देश को स्वतन्त्र कराने का एक जोश था। माताओं ने मुस्करा कर अपनी सन्तान को स्वाधीनता की वेदी पर बलिदान होने को भेजा। इसी धुन में विद्यार्थियों ने कालेज छोड़ दिये थे, सेठों ने विदेशी कपड़े जला दिये थे...परन्तु अब मैं वे सारी बातें भूलने का प्रयत्न कर रहा हूँ। आज उन्हें याद करने का फायदा भी क्या है? मेरे देश के लोग आज हमारी कुर्बानियों को भूल गये हैं कि आर्थिक स्वतन्त्रता लानी बाकी है और ठीक भी है। राग रंग में लिप्त लोगों को यह बातें कैसे याद रह सकती हैं।..

कुछ ऐसा लगता है, जैसे स्वतन्त्रता के बाद भारतवासी नैतिकता के बन्धनों से भी मुक्त हो चुके हैं। विद्यार्थी उच्छृङ्खल हो गये हैं। भारतीय नारी ने प्राचीन बन्धन काट दिये हैं और पुराना रास्ता भी छोड़ दिया है। परन्तु नवीन सीमाएँ मालूम नहीं, इसीलिए आज की शिक्षित नारी भटक रही है और शायद तब तक भटकती रहेगी जब तक वह स्वयं अपनी नयी सीमाओं और नये रास्ते को बना न लेगी और...।"[1]

राजेन्द्र किशोर लिखित 'एक खत' जैसी कहानियाँ ऐतिहासिक यथार्थ की कटुतापूर्ण रूपों का चित्रण करती हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनमें इतिहास के विभिन्न सन्दर्भों में आज के युग में व्याप्त स्वार्थपरता और अनैतिकता की ओर संकेत किया गया है। लेखक की यह धारणा है कि व्यक्ति अपने स्वार्थ और उपनी नैतिकता के चश्मे से ही सारी दुनियां को देखता है। जब दो व्यक्तियों के स्वार्थ आपस में टकरा जाते हैं तब संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस कहानी में इतिहास के इसी कल्पित कथासूत्र को लेकर कटु व्यंग्य किया गया है जो आज के युग जीवन की ओर भी संकेत करता है: "सुनो बहुत दिनों पहले की बात है। किसी देश के राजा के पास दो बहुत प्यारी चीजें थी—जान से भी ज्यादा प्यारी, जिन्हें वह किसी भी कीमत पर अपने से जुदा नहीं कर सकता था। एक थी चम्पा—उसकी हसीन बीबी और दूसरी थी एक कुतिया। दोनों जवान थीं। राजा दिन रात उन्हीं की चिन्ता में डूबा रहता।...एक दिन अचानक दो अन्य देशों के राजाओं ने उस पर चढ़ाई कर दी। एक को तो उसने हरा दिया, मगर दूसरे से खुद हार गया। पराजित राजा से उसकी बीवी छीन ली, मगर विजयी राजा को उसे अपने राज्य के बदले में चम्पा देनी पड़ी।... चम्पा के चले जाने के बाद राजा का जी किसी भी काम में नहीं लगता। वह दिन रात उदास पड़ा रहता।"[2]

**वर्तमानयुगीन कहानी में सामाजिक यथार्थवाद**—नई कहानी में सामाजिक जीवन के यथार्थपरक रूप अभिव्यक्त हुए हैं। नया कहानीकार यह स्वीकार करता है कि यथार्थ जीवन का कलात्मक चित्रण कहानी की प्रमुख विशेषता है। वह केवल शिल्प अथवा चमत्कार के आधार पर अपनी रचना को प्रतिष्ठित नहीं करना चाहता। 'नई कहानियाँ' के संपादक भैरव प्रसाद गुप्त ने नयी कहानी की इसी विशेषता की ओर संकेत करते हुए लिखा है: "कहानियाँ केवल शिल्प, रंगीन वर्णन, कला की कलाबाजी के बल पर खड़ी नहीं होती, उनका निर्माण जीवन वस्तु शिला पर होता है और इसीलिए वे पत्थर की तरह ठोस और कंक्रीट की तरह शक्तिसंपन्न होती हैं।

---

१. **'पुरानी मिट्टी नये ढांचे', श्री वीरेन्द्र मेहदीरत्ता, सन १९५७, पृ० ७२-७३.**

२. **'राष्ट्रवाणी', सितम्बर १९५७, पृ० २३.**

उनमें आपको बड़े बोले नहीं मिलेंगे, घुमाव फिराव या बाल की खाल निकालने वाली बारीकी नहीं मिलेगी, मिलेगी एक सरलता, एक सहजता, एक सादगी और एक सीधापन···लक्ष्य भी सीधा और अचूक होता है।···कहानी की कोई एक बात या कोई एक विशेषता हमारे मन में नहीं धसती, बल्कि पूरी कहानी हमारे स्मृति पट पर चित्रित रहती है।"[1]

आज का कहानीकार समाज के विभिन्न वर्गों का चित्रण करते समय उसके प्रतिनिधि रूप में जिन पात्रों को प्रस्तुत करता है, वे सभी प्रकार की आदर्शपरक कल्पनाओं से अलग एक यथार्थ व्यक्ति हैं। श्री मार्कन्डेय ने इस विषय में विचार करते हुए लिखा है कि "सवाल समय का भी नहीं, वरन् उस आदमी का है, जो आज के अपने सामाजिक आर्थिक सन्दर्भ की सही उपज है। विचार की सही दिशा तो यह होगी कि इस सही उपज को देखकर ही सन्दर्भ का विश्लेषण किया जाय क्योंकि मिट्टी और पौधे के समान उपज और व्यक्ति दो भिन्न तत्व नहीं हैं। प्रयोगशाला में मिट्टी का विश्लेषण करके पौधे की हालत बताई जा सकती है लेकिन समाज के विश्लेषण का मतलब ही है, मनुष्य का विश्लेषण। इसलिए समकालीन कहानी में चित्रित उस सही आदमी की तलाश ही मुख्य है, जिसका विश्लेषण हमारे आज के समाज के सामने आईना बन जाय। असल में वह सही आदमी ही ऐसा सुराग है, जिससे हमारे चारों ओर फैले रहस्य के फन्दे का पता चल सकता है।"[2]

सामाजिक यथार्थवाद के सन्दर्भ में यहाँ आज के युग की एक ज्वलंत समस्या की ओर संकेत किया जा सकता है, जो स्वच्छंद प्रेम की समस्या है। आज के समाज में तमाम क्षेत्रों में जो विरोधाभास दिखाई देता है, उसने इस समस्या को और भी जटिल बना दिया है। श्री सुरेन्द्र ने इस समस्या पर विचार करते हुए लिखा है कि "नई कहानी में प्रेम सम्बन्धों की जो अभिव्यक्ति हुई है वह सामाजिक सन्दर्भों से होकर कम गुजरी है, जितनी कि निरे वैयक्तिक सन्दर्भों से होकर। इन सम्बन्धों को परिवेश ने बहुत कम संदर्भित किया है। :कमज कम प्रत्यक्ष रूप से: और वह भी काफी अलग से। युग तनाव ने ज्यादा से अधिक जिन रिश्तों पर असर डाला हैं या जिन्हें झकझोरा है, वे नारी पुरुष के प्रेम सम्बन्ध ही हैं। सस्ती और गीली भावुकता से धीरे-धीरे छुटकारा पाता हुआ आज का आदमी इन सम्बन्धों के बौद्धिक धरातल पर स्पर्श करता है, कहीं उसे ये सम्बन्ध निरे शारीरिक लगते हैं और उन्हें लेकर वह बहशियाना व्यवहार करने लगता है और कहीं उसे इनमें जीवन की कोमलता अनुभूति की सार्थकता नजर आती है।"[3]

---

१. 'आधुनिक हिन्दी कहानी', डा० लक्ष्मीनारायण लाल, सन् १९६२, पृ० ९५ से उद्धृत.

२. 'नई कहानी : दशा : दिशा : सम्भावना', सं० श्री सुरेन्द्र, पृ० २९७ से उद्धृत.

३. 'नई कहानी : दशा : सम्भावना', सं० श्री सुरेन्द्र, सन् १९६६, पृ० ५०.

**वर्तमानयुगीन कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद**—वर्तमानयुगीन कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का जो रूप दिखाई देता है, उसका आधार आज के जीवन में व्याप्त विभिन्न क्षेत्रीय रूढ़ियाँ हैं। आज का कहानीकार नैतिक बन्धों को ही व्यक्ति की उच्छृंखलता का कारण मानता है। इस युग के कहानीकारों में अमर गोस्वामी लिखित 'नायक' जैसी कहानियों में भी मनोवैज्ञानिक यथार्थ का जो रूप दिखाई देता है वह कहीं-कहीं पर अतियथार्थवादी और प्रकृतवादी हो गया है। इस प्रकार की रचनाओं में आज के जीवन की अनेक विडम्बनाओं का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। इनमें आधुनिक जीवन की कुछ स्थितियों की ओर संकेत करते हुए लेखक ने परम्परागत रूढ़ियों और आधुनिक अनैतिक कामों का भी वर्णन किया है। आज के समाज के कुछ पहलुओं के यथार्थ चित्रण और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से इस प्रकार की कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। यहाँ 'नायक' शीर्षक कहानी से ही इस प्रकार का एक अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है : "वह अपनी डरावनी लाल-लाल आँखों से मुझे घूर रहा था। जहाँ मेरा गुमड़ा था, उसी से अपना सिर वह बाहर निकाले हुए था। मेरे सीने के चारों ओर गरम खून बह रहा था और उनके बीच में उसका सिर किसी वीभत्स लड़ाई में बहते हुए खून पीव की नदी में कटे सिर जैसा हिलता हुलता तैर रहा था, जो कि थोड़ी देर पहले ही साबुन मेरे गुमड़े के भीतर से उछलकर बाहर निकल आया था। उसके शरीर में जहाँ तहाँ पीव और गन्दगी के लोथड़े चिपके हुए थे, जिसे देख कर मेरी तबियत मिचला उठी थी। मुझे बराबर उस दृश्य की याद आ रही थी, जब मैंने अपनी प्रेमिका का 'अबार्शन' करवाया था और भ्रूण को देख कर कै करने को हो गया था।"[1]

वीरेन्द्र मेहदीरत्ता की लिखी हुई 'एक लड़का : एक लड़की' शीर्षक कहानी का उल्लेख भी मनोवैज्ञानिक यथार्थ के सन्दर्भ में किया जा सकता है। इस कहानी में लेखक ने यह संकेत किया है कि किशोर अथवा युवा लड़के लड़कियों का आपस में मिलना-जुलना रूढ़िवादी समाज में अच्छा नहीं समझा जाता है और उन पर तरह-तरह के बन्धन लगाए जाते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि जब कभी उन्हें मिलने का अवसर मिलता है तब वे समूची मर्यादा तोड़ देते हैं। लेखक ने यह संकेत किया है कि मनुष्य के लिए जो सहज और स्वाभाविक है उस पर प्रतिबन्ध नहीं लगने चाहिए क्योंकि वह आज के संसार की वास्तविकता है : "कान्ता मेरे पास बैठी पढ़ रही थी। हम कमरे में अकेले थे। उसका पाँव मेरे पाँव से छू गया। उसका चेहरा लाल हो गया और मैं रोमांचित। न जाने क्यों एक-एक अजीब सी साध मन में जागी। जी चाहा कि उसे अपनी भुजाओं में कस लूं और उसके माथे पर चोट के निशान को बार-बार चूमूं। फिर अपनी उस पागल साधपर स्वयं ही झुंझलाया और

---

१. 'विकल्प', सं० शैलेश मटियानी, १७ दिसम्बर १९६७, पृ० १०२–१०३.

एक घुटी सी नजर से मैंने कान्ता की ओर देखा। कान्ता पिछले दिन का पाठ सुना रही थी। कुछ ऐसा लगता था, मेरे इतने निकट होते हुए भी वह मुझसे कोसों दूर है। जैसे हमारे बीच में 'धर्म भाई' शब्द की एक बड़ी दीवार खड़ी है। यस नाना, मुझमें उसे छूने मात्र के साहस को नष्ट कर चुका था।"[१]

इस प्रकार से मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का जो रूप वर्तमान युगीन कहानी में दिखाई देता है वह कहीं-कहीं पर यथार्थ की सीमा से आगे बढ़ कर अति यथार्थ-वादी और प्रकृतवादी भी हो गया है। अमर गोस्वामी लिखित 'नायक', ज्ञानरंजन लिखित 'सभ्यता', वीरेन्द्र मेहदीरत्ता लिखित 'एक लड़का : एक लड़की', कामतानाथ लिखित 'यजमानी', वीना रामानन्द लिखित 'निष्कृति', कुसुम चतुर्वेदी लिखित 'हिफाजत', मशकूर जावेद लिखित 'फ्रेम किया हुआ समुद्र', अवधनारायण सिंह लिखित 'एक कमरा और फुटपाथ', अनीता औलक लिखित 'उसका अपना भाग्य', सुधा अरोड़ा लिखित 'अविवाहित पृष्ठ', सुरेन्द्र मल्होत्रा लिखित 'मुट्ठी भर खुशबू', महेन्द्र भल्ला लिखित 'दिन शुरू हो गया' तथा रमेश बक्षी लिखित 'क्रासिंग आदि कहानियों में मनोवैज्ञानिक यथार्थ का जो रूप दृष्टिगत होता है, वह आज के कहानी-कारों के विभिन्न नैतिक मूल्यों और रूढ़िवादी मान्यताओं के प्रति परिवर्तित होते हुए दृष्टिकोण का परिचायक हैं।

**वर्तमानयुगीन कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद**—आदर्शोन्मुख यथार्थ-वाद के वर्तमान कहानियों में आरोपण के सम्बन्ध में पीछे यह स्पष्ट संकेत किया जा चुका है कि इस युग के कहानीकारों का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत यथार्थ के आग्रह का ही सूचक है। आज का कहानीकार आदर्श के अनावश्यक अनावरण को इसलिए नहीं स्वीकार करता क्योंकि वह स्पष्ट रूप से यह देखता है कि आज देश में धर्म-निरपेक्षता, गुट-निरपेक्षता, शान्तिवाद और मानवतावाद आदि अर्थहीन नारे मात्र बन कर रह गए हैं और इनके स्थान पर अराजकता, असन्तोष, घुठन, कुंठा, हताशा और निर्धनता का बोलबाला है। वह अब कोरे आदर्श से असन्तुष्ट नहीं होता क्योंकि उसके सामने जीवन का कटु यथार्थ अपनी सारी विकरालता के साथ उपस्थित है। इसलिए आज का कहानीकार केवल इसी अर्थ में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहा जा सकता है कि वह शोषण का विरोध करके स्वस्थ समाज के विकास पर बल देता है। फणीश्वर नाथ 'रेणु' लिखित 'ठेस' शिवप्रसाद सिंह लिखित 'हाथ का दाग', डा० धर्मवीर भारती लिखित 'गली का आखिरी मकान', कमलेश्वर लिखित 'सुबह का सपना', राजेन्द्र यादव लिखित 'विरादरी बाहर', मोहन राकेश लिखित 'मलबे का मालिक', अमरकान्त लिखित ,जिन्दगी और जोंक' तथा मार्कन्डेय लिखित 'सात

---

१. 'पुरानी मिट्टी नये ढाँचे', श्री वीरेन्द्र मेहदीरत्ता, सन् १९५३, पृ० ३२.

बच्चों की माँ' जैसी कहानियाँ उपर्युक्त दृष्टिकोण से आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कही जा सकती है।

वर्तमान कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का जो रूप दृष्टिगत होता है, उसके सिलसिले में यहाँ डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'लाल रेशम का पतला धागा' शीर्षक कहानी का उल्लेख भी किया जा सकता है। इस कहानी में लेखक ने एक चरित्रहीन मुसलमान युवक और निम्न वर्ग की एक हिन्दू युवती के चरित्रों के द्वारा यह संकेत किया है कि बहुधा सरल हृदय की आदर्शपरक मान्यताएँ भी दुष्ट व्यक्तियों के चरित्र में सुधार कर देती हैं। अपने ऊपर कुदृष्टि रखने वाले हमीद के प्रति बंसो जब भाईचारे की भावना से राखी बाँधने का प्रस्ताव रख देती है तब वह सहसा एक आदर्श लोक में पहुँच जाता है: "आज बड़े लाला के घर मुझे देर हो गयी', बंसों कहती जा रही थी, 'जानते हो क्यों? आज उनके यहाँ त्योहार था। पता है कौन सा? रक्षाबन्धन का। मालूम है न, जिसमें राखी बाँधी जाती है, बहनें अपने-अपने भाइयों के राखी बाँधती हैं।

हमीद को इस बे सिर पैर की बकवास का कोई मतलब नहीं नजर आ रहा था वह भूखी निगाहों से बंसों के शरीर को ताक रहा था।

'आज बड़े लाला की लड़की ने अपने भइया के राखी बाँधी थी। 'बंसों की आवाज में ललक थी, मुझे बड़ा अच्छा लगा। मैंने सोचा कि मेरे भी भाई होता तो मैं उसके राखी बाँधती।...फिर मैं चलते वक्त एक राखी ले आई। मैंने सोचा कि मैं हमीद को भाई बना लूँगी। लाओ मैं तुम्हारे राखी बाँध दूँ।"[१]

आज के युग में लेखकों, कलाकारों और चित्रकारों को जिन आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इसका परिणाम यह होता है कि बहुधा प्रतिभाशाली लेखक कलाकार और चित्रकार संघर्षों से घबड़ा कर अपने आपको हताश और निराश अनुभव करने लगते हैं। डा० एस० के० कल्याण सुन्दरम् की लिखी 'सावित्री' जैसी कहानियों में इस यथार्थ स्थिति का आदर्शपरक निदान प्रस्तुत किया गया है। इसमें कहानी की नायिका कलाकार नायक को इस हताशा से छूटकर नए उत्साह से कर्मशील जीवन के क्षेत्र में नई उमंग के साथ कार्य करने की प्रेरणा देती है: "आत्मीयता की प्रबल बाढ़ न संभाल सकने के कारण नरेन की आँखों से अनायास ही आंसू की बूँदें ढुलक पड़ी। अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कातर स्वर में उसने कहा...'नलिनी। मैं जितना खुशकिस्मत हूँ उतना ही बदकिस्मत भी...। नलिनी ने शीघ्रता से उसके होठों पर हाथ रख दिए...'छिः, ऐसी बातें नहीं कहते। अब तुम मर्द होकर यों हिम्मत हार जाओगे, तब फिर मैं तो एक नारी हूँ। इतना घबड़ाते क्यों हो? अब तो तुम बिल्कुल चंगे हो गये हो। सिर्फ कमजोरी ही तो है और वह

१. 'शून्य की पूर्ति', डा० प्रतापनारायण टंडन, सन् १९६४, पृ० ९३--९४.

भी शीघ्र दूर हो जायगी। अच्छा, लो यह ब्रुश। अपना चित्र पूरा कर डालो, तब तक मैं घर के कामों से निपट लूँ, नहीं तो आफिस जाने में देर हो जायेगी।"[1]

## वर्तमानयुगीन कहानी में यथार्थवाद का उपकरणगत विवेचन

वर्तमानयुगीन कहानी में विभिन्न उपकरणों के क्षेत्र में यथार्थ का स्पष्ट आग्रह दिखाई देता है। कथावस्तु के क्षेत्र में यथार्थ का आधार पिछले युगों की कहानियों की भाँति घटनाएँ न रहकर अब परिस्थितियाँ हो गयी हैं। आज का कहानीकार छोटी स्थितियों का आधार बना कर कहानी की रचना करता है इसी प्रकार से आज की कहानियों में जो पुरुष और स्त्री पात्र आयोजित हुए हैं वह समाज की यथार्थ प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। वर्तमानयुगीन कहानियों में संवाद योजना अथवा कथोपकथन तत्व के क्षेत्र में जो यथार्थ दृष्टिगत होता है उसकी पृष्ठभूमि में कहीं-कहीं लेखकों का आग्रह अतियथार्थवादी और प्रकृतवादी भी हो गया है। वर्तमानयुगीन कहानी की भाषा सामान्य बोलचाल की भाषा है जिसका प्रयोग आज समाज के विभिन्न वर्गों में होता है। शैली तत्वगत यथार्थ का आधार भी वर्तमान कहानी में नवीनता का समावेश है। साधारण परिस्थितियों को आधार बना कर लिखी गयी कहानियों में जो शैली मिलती है उसमें बनावटीपन न होकर वास्तविकता दिखाई पड़ती है। वातावरण की दृष्टि से आज की कहानी में जो विशेषताएँ मिलती हैं उनका आधार ग्रामीण और नागरिक जीवन के तमाम पहलू हैं। उद्देश्य तत्व के क्षेत्र में भी आज के कहानीकार ने अपेक्षाकृत नवीन दृष्टिकोण का परिचय देते हुए व्यक्ति की सर्वतोमुखी चेतना का आवाहन किया है। यहाँ पर वर्तमान हिन्दी कहानी के क्षेत्र में विभिन्न उपकरणों से सम्बन्धित यथार्थ का संक्षेप में विवेचन किया जा रहा है।

**वर्तमानयुगीन कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ**—वर्तमानयुगीन कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ का जो स्वरूप दिखायी देता है, उसकी पृष्ठभूमि में लेखकों का जीवन और समाज के प्रति परिवर्तित होता हुआ दृष्टिकोण है। आज का कहानीकार अपनी कहानी की कथावस्तु में घटनाओं के स्थान पर परिस्थिति का चित्रण करता है। वह आज भी इस तत्व के महत्व को अस्वीकार नहीं करता है और इसके नियोजन में पूर्ण सजगता का परिचय देता है। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के शब्दों में : "मेरी राय से कहानी में कथानक का महत्व आज भी बहुत अधिक है। यह ठीक है कि कथानक स्वयं लक्ष्य नहीं है, वह कुछ और बात कहने का माध्यम भर हैं। पर अच्छा कथानक कहानी को प्राणदान और शक्तिशाली बना देता है। आज भी सन् १९६४ में भी ठीक है कि कहानी के कथ्य : केन्द्रीय भाव :, कथानक और रूप : फार्म : तीनों की श्रेष्ठता के बिना कोई कहानी प्रथम श्रेणी की नहीं बन सकेगी। और इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि किसी भी दशा में कथानक को उपेक्षणीय

---

१. 'उर्वतिका', अंक जुलाई सन १९५५, पृ० १४७.

माना जा सकता। यह ठीक है कि मौलिक कथानकों की कल्पना कर सकना भी कोई आसान काम नहीं है। एक तरह कथानकों में पुनरावृत्ति आने और दूसरी तरफ वास्तविकता पर आधारित नये कथानकों के निर्माण में कमी इन दो कारणों से भी कथानक विरलता की प्रवृत्ति व्यापक बनी है। यदि कोई प्रतिभाशाली लेखक आज भी औचित्यपूर्ण मौलिक कथानकों की कल्पना कर सका है, उसके पास कहने को बहुत कुछ है, और कहानी के फार्म पर उसका प्रभुत्व है, तो उसकी कहानी न सिर्फ बहुत लोकप्रिय सिद्ध होगी, अपितु वह अत्यन्त श्रेष्ठ कोटि की भी होगी।"[1]

जगदीश चतुर्वेदी लिखित 'अँधेरे का आदमी' जैसी कहानियों में भी कथा-वस्तुगत यथार्थ का विश्वसनीय रूप मिलता है। इस प्रकार की कहानियों में लेखक ने यह संकेत किया है कि आज के युग में समाज की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक-हीनता है। जिसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से बेरोजगारी से है। आज देश में युवक वर्ग के सामने जो निराशा और उद्देश्यहीनता दिखाई देती है उसका सबके बड़ा कारण भी बेरोजगारी का अभिशाप है जो नवयुवक वर्ग को कुण्ठित बनाए हुए है : "उन दिनों मैं बेकार था। मेरी अच्छी खासी नौकरी एक सनक में छूट गयी थी और मैं काफी दिन पछता कर अब काफी खुश था। नौकरी छोड़ने के कुछ दिन बाद आदमी बहुत ताजा और भला महसूस करता है। रुटीन की दमघोट्टू यंत्रणा से मुक्ति मिल जाती है। मैं वहाँ की गर्द भरी हवा में मोटा हो गया था और मेरे गालों में लाली दिखाई देने लगी थी।....उन दिनों ठंड लगी थी और पिता जी रात बड़ी देर गये दौरे से लौटते थे और मुझ पर एक अविश्वसनीय दृष्टि फेंक कर अन्दर कमरे में चले जाते थे। मैं ड्राइंग रूम में ही लेटा रहता था और मुझे बिस्तर पर सोने की बजाय सोफे पर ऊँघना अधिक अच्छा लगता था। पिताजी को देखकर मैं आँखें जोर से मूँद लेता था और शायद मेरे गालों की चमक पीली रोशनी में गाढ़ी सुर्मई रंग की हो जाती थी।"[2]

योगेश गुप्त लिखित 'बड़े शहर के ताबूत' शीर्षक कहानी में कथावस्तु का नया रूप दिखाया गया है। इस कहानी में कथा का आधार कुछ साधारण सूत्र है जिनका सम्बन्ध कथानायक की मनःस्थिति और आसपास के वातावरण से है। जीवन के वास्तविक पक्ष से सम्बन्धित इस प्रकार के प्रसंग कथावस्तु को तत्वगत यथार्थता प्रदान करते हैं : "नहा धोकर फिर मैंने कुछ देर आराम किया है। सामने की लड़की

१. 'नई कहानी : दशा : दिशा : सम्भावना, श्री सुरेन्द्र, सन १९६६, पृ० २७०.
२. 'अकहानी', सं० श्री श्याम मोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन १९६७. पृ० १४६.

दीखी है। ऊपर छत पर निकल गया हूँ तो मस्जिद दीखी है। नंगी औरत धूप में नहाती हुई। दूर-दूर मकान ही मकान हैं। एक-एक मकान में जाने कितने-कितने आदमी हैं। वे सब जाने क्या-क्या कर रहे होंगे। मस्जिद के बराबर के पेड़ पर कितने कबूतर बैठे हैं। धूप ने उनके पैरों को कैसा सलोना बना दिया है। पूरा शहर जैसे रोशनी की एक चादर ओढ़े हुए है। हवा में बालूकण भी हैं। उन पर भी धूप पड़ रही है। धूप में वे इतरा रहे हैं। आपस में अठखेलियाँ कर रहे हैं।...आदमियों, औरतों' बच्चों, तांगों, कारों, बसों से भरी हुई सड़क पार करता हुआ मैं किसी तरफ बढ़ रहा हूँ, बस आज ही की छुट्टी तो बची है। आज उससे जरूर मिलना चाहिए।''[१]

इस प्रकार से वर्तमान हिन्दी कहानी में कथावस्तुगत यथार्थ के अन्तर्गत लेखकों ने पिछले युगों की कहानियों की भाँति घटनाओं को महत्त्व न देकर स्थितियों को चित्रित किया। पीछे जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं उनमें यही विशेषता दिखाई देती है। मार्कण्डेय लिखित 'सतह की बातें', जगदीश चतुर्वेदी लिखित 'अँधेरे का आदमी', सुरेश सिनहा लिखित 'उदासी के टुकड़े', योगेश गुप्त लिखित 'बड़े शहर के ताबूत' तथा अंगराज लिखित 'ब्याह दोस्त और दुनिया' आदि कहानियों में कथावस्तु का विकास यथार्थ के बढ़ते हुए आग्रह के साथ स्पष्टतः देखा जा सकता है।

**वर्तमानयुगीन कहानी में पात्रगत यथार्थ**—वर्तमानयुगीन कहानी में पात्रगत योजना के सम्बन्ध में भी यथार्थ का बढ़ता हुआ आग्रह स्पष्ट दिखाई देता है। श्याम मोहन श्रीवास्तव लिखित 'सियार' शीर्षक कहानी में जो पात्र योजना मिलती है उसका आधार आज के युग के कुण्ठित चरित्र हैं। इस कहानी की पात्र योजना लेखक के अतियथार्थवाद दृष्टिकोण की परिचायक है। उसने यह बताया है कि आज के युग में गरीबी, बेकारी और बीमारी आदि के अभिशाप से नवयुवक वर्ग इतना अधिक ग्रस्त रहता है कि उसे निराशा ही निराशा दिखाई देती है और जीवन में किसी भी क्षेत्र में किसी तरह का उत्साह नहीं मालूम पड़ता है: ''उसने एक बाब्ड हेयर वाली लड़की की ओर उदासीनता की दृष्टि डाली और खखारकर थूक दिया। आज कल बड़ा गाढ़ा बलगम निकलता है। कफ का प्रकोप है शायद। तभी उसके मुँह का स्वाद कड़वा हो आया और उसे एक खट्टी डकार आ गई। वात, पित्त, कफ सभी कुछ बिगड़ गया है...होपलेस। पर इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर सब कुछ ठीक हो जायगा और तब यह बाब्ड हेयर वाली लड़की शायद मेरी पत्नी बनने की उम्मीदवार होती।...वह सहसा विरक्त हो उठा क्योंकि उसे अपना बहुत घटिया लगा। दरअसल वह बहुत फ्रस्ट्रेटेड है और जीवन में दो ही काम कर

---

१. 'अकहानी', सं० श्री श्याम मोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन १९६७.

सकता है : या तो आने को ओवरएस्टिमेट कर सकता है या फिर अंडरएस्टिमेट। कोई परीक्षा तो कतई नहीं पास कर सकता। यह बात तय है।"

गोपाल शेखरन की लिखी हुई 'मिठास' शीर्षक कहानी में जो पात्र आयोजित हुए हैं वे भी यथार्थ जीवन से लिए गए हैं। इस कहानी में लेखक ने कुछ ऐसे चरित्रों की योजना की है जो व्यापारी वर्ग की नौकरी करते हैं और जीवन भर शोषित बने रहते हैं। इस प्रकार की नौकरियों में उन्हें साधारण सुविधाएँ भी नहीं दी जातीं और उनकी माँग करने पर नौकरी से निकाल देने की धमकी दी जाती है। आज के युग में जब सभी वर्गों में नौकरियों की स्थिति सुधरती जाती है, इस प्रकार का शोषण इन्सानियत के विरुद्ध है परन्तु फिर भी शोषक वर्ग के कारण यह स्थिति बनी हुई है : "यह कह कर सुन्दर सिंह ने एक चम्मच चीनी चाय में डाला। एक घूंट पीकर एक चम्मच चीनी वैसे ही फाँक गया और कहने लगा—'यह सेठ लोग एक दिन की भी छुट्टी देने वाले नहीं हैं। जब कभी छुट्टी मांगते हैं तो वे कहते हैं...'नौकरी छोड़ जाओ।' मगर जब उनके यहाँ कोई जग दिखावे का उत्सव होता है या कोई सिधार जाता है तो सबकी छुट्टी कर दी जाती है। फिर लोग उनकी चर्चा करते हैं...अजी बहुत आदमी थे अर्थी के साथ और सबके सब आँसू बहा रहे थे। उनको यह तो मालूम ही नहीं कि यह बिचारे तो अपनी ड्यूटी पर है।...सच पूछो तो हम जैसे भाग्यहीनों की ड्यूटी ही यह है कि सारा दिन तो चिल्लाते रहो और अवसर आने पर सेठ जी के सामने अपने दुःखों का वर्णन करते-करते ही रो पड़ो।"[1]

रणधीर सिनहा लिखित 'बेहंगवा' शीर्षक कहानी में भी पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण का यथार्थ परक रूप दिखाई देता है। इस कहानी में लेखक ने यह संकेत किया है कि प्राचीन काल में अशिक्षा और अज्ञान के कारण विधवा आदि कुप्रथाएँ समाज में प्रचलित थीं। आज के युग में शिक्षा का इतना अधिक प्रचार हो गया है कि धीरे-धीरे सभी तरह की रूढ़ियाँ समाप्त हो रही हैं परन्तु फिर भी आज समाज के अनेक वर्गों में यही कुप्रथा पुराने जमाने के समान ही चली आ रही है और विधवाओं का जीवन उतना ही दुर्दशापूर्ण है : फूलो विधवा थी लेकिन बूढ़ी नहीं। वह बूढ़ी नहीं तो युवती भी नहीं थी। चालीस की उमर पर विधवापन की चादर कहीं अधिक चुभने वाली होती है। यदि फूलो बूढ़ी होती तो शायद दर्द का पात्र वह उतनी नहीं होती जितनी चालीस वर्षों की प्रौढ़ा होने पर लगती थी। भरे पूरे गालों पर उदासी की परत नीचे बिछती जा रही थी लेकिन झुर्रियों के बदले अभी लाली का रंग जैसे उसे आधे रास्ते का राही बना डाल रहा था। बूढ़ी होती तो

---

१. 'स्वतंत्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ', सं० श्री विजयचंद, सन १९६३, पृ० ६३.

राह की यात्रा समाप्त समझ कर उसे भी संतोष होता। लेकिन उसे तो अभी उतना ही समय काटना था, जितना वह बिता चुकी थी। एकमात्र संतान के सहारे उसे सब कुछ सहना था और इस बेहंगवा की मनहूस चीख से भरे हुए गाँव में उसे लोमड़ियों और आदमी के हिंसक पंजों के बीच रहना भी था।"[1]

इस प्रकार से वर्तमानयुगीन कहानी में पात्र योजना तथा चरित्र चित्रणगत यथार्थ से सम्बन्धित जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं उनसे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि आज का कहानीकार आदर्श अथवा कल्पना के मोह में पड़कर ऐसे पात्रों को प्रस्तुत करता है जो वास्तविक समाज का सच्चा रूप पाठक के सामने रखते हैं भले ही वे कुण्ठित, हताश अभिशप्त हों। श्याम मोहन श्रीवास्तव लिखित 'सिवार', मार्कण्डेय लिखित 'सूर्या', गोपाल शेखरन लिखित 'मिठास', सुरेन्द्र अरोड़ा लिखित 'मोजे' तथा रणधीर सिनहा लिखित 'बेहंगवा' आदि कहानियों से जो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं वे यहाँ पर इस कथन की पुष्टि करते हैं।

**वर्तमानयुगीन कहानी में कथोपकथनगत यथार्थ**—वर्तमानयुगीन कहानी में कथोपकथन अथवा संवाद योजना तत्व के अन्तर्गत भी यथार्थ का आग्रह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आज का कहानीकार अपनी रचनाओं में जिन संवादों की आयोजना करता है, उनमें अनावश्यक शिष्टाचार का आग्रह अथवा कृत्रिमता नहीं मिलती है। उदाहरणार्थ श्रीकान्त लिखित 'शवयात्रा' शीर्षक कहानी में बंसी जमादार वेश्या इमरती की मृत्यु पर उसके सभी संस्कार यथा रीति संपन्न करता है। मरघट पर चौकीदार के पूछने पर भी वह बिना किसी झिझक के अपने दायित्व को निभाता है :

'जलाना है ?'
'दफनाना है।'
'नाम ?'
'इमरती बाई।'
'उम्र ?'
'बत्तीसी साल।'
'पति का नाम ?'
'बंसीलाल वाल्मीकि।'

वर्तमान कहानी में संवाद योजना अथवा कथोपकथन तत्वगत यथार्थ का एक रूप डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'शून्य की पूर्ति' जैसी कहानियों में भी दृष्टिगत होता है। इनमें लेखक ने यह संकेत किया है कि जीवन में भयानक रोग से ग्रस्त होने के कारण मृत्यु के मूल में पहुँचे हुए व्यक्ति भी कभी-कभी बच्चों के साहचर्य में अजब

१. 'रणधीर सिनहा की रचनाएं', पहला चयन; सन १९५८, पृ० ४५.

तरह के उल्लास और उत्साह का अनुभव करते हैं। यहाँ पर टी० बी० की अन्तिम अवस्था पर पहुँचे हुए कथा नायक तथा शैशव की उमंग में चूर सुनयना का जो वार्तालाप है, वह इसी तथ्य को सहज और स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करता है :

'ऐ मिस्टर' सुनयना मुझे सम्बोधित करती है।

मैं सकपका कर सिगरेट मुँह से निकाल लेता हूँ और प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर ताकने लगता हूँ।

'तुम सिगरेट पीते हो ?' वह पूछती है।

'हाँ, पीता तो हूँ।' मैं उत्तर देता हूँ।

वह चुप होकर मेरा मुँह देखती रहती है। कहती है 'अच्छा तो पियो।'

'तुम भी पियोगी ?' मैं पूछता हूँ।

'नहीं।' वह गम्भीर स्वर में जवाब देती है, 'लड़कियाँ सिगरेट नहीं पीतीं।'

मैं सिगरेट सुलगाता हूँ।

'तुम्हें मुँह से धुएँ की रेलगाड़ी निकालनी आती है ?' वह फिर पूछती है।

'हाँ, हाँ।' मैं शंकित भाव से कह देता हूँ।

'अच्छा तो निकालो।' वह मेरा मुँह निहारने लगती है। मैं किसके धुएँ के अटूट लच्छे निकालने की पूरी कोशिश करता हूँ।

पहली बार सुनयना के मुँह से हँसी की फुहार फूटती है। बलपूर्वक रोकी हुई हँसी का बाँध धीरे-धीरे टूटता है। हुँ हुँ हुँ हुँ।"[१]

भीमसेन त्यागी लिखित 'आत्महत्याएँ' जैसी कहानियों में आज के युग में सामाजिक कुहासे और असन्तोष का परिचय कथोपकथन के माध्यम से मिलता है। इस कहानी में लेखक ने मध्य वर्ग की स्त्रियों के पारस्परिक वार्तालाप के द्वारा किसी व्यक्ति की आत्महत्या की घटना की ओर संकेत किया है। आज का सामाजिक जीवन इतना जटिल हो गया है कि इस प्रकार की घटनाएँ व्यक्ति पर एक सहज कौतूहल प्रतिक्रिया ही सूचित करती हैं, उनसे उसका कोई भावनात्मक लगाव नहीं होता है। निम्नलिखित संवाद आज के सामाजिक जीवन के इसी पहलू का परिचय देता है :

'क्या हुआ ?' मिसेज खन्ना ने खटाक से खिड़की खोलकर नीचे झाँका।

'कुछ गिरा है.. कुएँ में।' मेरे कमरे के बराबर से बनवारी की बहू विमला की काँपती आवाज आई—'बड़े जोर का धमाका हुआ !'

'क्या हो सकता है ?'

'पता नहीं। मैं तो चुन्नू को दूध पिला रही थी कि दिल धक् से रह गया।' विमला सहन में आ खड़ी हुई। धोती का पल्ला उसके सर से खिसका हुआ था और बायाँ हाथ सीने पर रखा था—'किसी बच्चे ने पत्थर तो नहीं गिरा दिया ?'

---

१. 'शून्य की पूर्ति', डा० प्रतापनारायण टंडन, सन १९६४, पृ० ११.

'पत्थर अब कौन गिरायेगा रात को। बच्चे तो सब...।'

'अजी, वह तो कोई आदमी था।' खन्ना साहब के नौकर रामजस ने बाहर से आकर बताया, 'मलकपुर की तरफ से आया था।'

'आदमी ?' विमला का मुँह खुला का खुला रह गया।

'हाँ, बीवी जी। मैं बाजार से दही लेकर चला, तो वह मेरे से कुछ ही आगे था। चलते-चलते उसने दो-तीन बार पीछे मुड़कर देखा। कुएँ के बराबर आया तो एकदम छलांग लगा दी।"[१]

रवीन्द्र कालिया लिखित 'कोजी कार्नर' जैसी कहानियों में आज की शिक्षित युवा वर्ग की भावनाओं का चित्रण मिलता है। आज का जीवन विभिन्न प्रकार की जटिल परिस्थितियों में इतना अधिक प्रभावित हो रहा है कि समाज के सभी वर्गों में एक प्रकार के अनिश्चयतापूर्ण भय की भावना मिलती है। प्रत्येक क्षेत्र में इतनी अधिक प्रतिद्वन्द्विता बढ़ गयी है कि आज का व्यक्ति अनेक प्रकार की कुण्ठाओं से स्वाभाविक रूप में ही ग्रस्त हो जाता है। इस कहानी का निम्नलिखित कथोपकथन इसी तथ्य का परिचय देता है : "तुम कुछ सोच रहे हो, क्या सोच रहे हो ?' उसने पूछा।

मैंने कहा कि मैं काफी के बारे में सोच रहा हूँ जबकि मैं शाम के बारे में सोच रहा था। उसी क्षण मैंने उसके डर के बारे में भी सोचा था।

'देखो, मुझे बुखार तो नहीं है ? मेरा गला और मेरे होंठ सूख रहे हैं और मुझे नींद आ रही है।' उसने कहा और अपनी कलाई मेरे हाथ में पकड़ा दी। कलाई गरम थी न ठण्डी, मुलायम थी। मैंने कहा और एक अपराध भावना के साथ क़ाफी की प्रतीक्षा करने लगा।

'आपको तीन इंक्रीमेंट्स क्यों मिले हैं ?' मैंने पूछा।

'मैं भी झूठ बोल रही थी, मुझे केवल एक इंक्रीमेंट मिला है। एक इंक्रीमेंट सबको मिलता है।' उसने कहा, 'तुम काफी पीने के बाद मुझे घर तक छोड़ आओगे।'

'आप बिल्कुल स्वस्थ हैं। वैसे मैं आपको घर तक जरूर छोड़ आऊँगा।' मैंने कहा।"[२]

इस प्रकार से वर्तमानयुगीन कहानी में कथोपकथन अथवा संवाद-योजना का जो रूप मिलता है उसमें पिछले युगों की कहानियों की भाँति अनावश्यक शिष्टाचार

---

१. **'विकल्प', सं० शैलेश मटियानी, १७ दिसम्बर, सन १९६७ पृ० ९१.**

२. **'अकहानी', सं० श्री श्याममोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन १९६७, पृ० ६७.**

का आग्रह अथवा बनावटीपन नहीं मिलता है। आज के युग में जो जटिलता जीवन और समाज में विभिन्न क्षेत्रों में दिखाई देती है उसका परिचय इन स्पष्टवादी संवादों से मिल जाता है। श्रीकान्त लिखित 'शवयात्रा', डा० प्रतापनारायण लिखित 'शून्य की पूर्ति', भीष्म साहनी लिखित 'इन्द्रजाल', भीमसेन त्यागी लिखित 'आत्महत्याएँ', कामतानाथ लिखित 'लाशें', रवीन्द्र कालिया लिखित 'कोजी कार्नर' तथा सुरेन्द्र अरोड़ा लिखित 'बर्फ' आदि कहानियों से संवाद-योजना के जो उदाहरण यहाँ दिये गये हैं, वे इस कथन की पुष्टि करते हैं।

**वर्तमानयुगीन कहानी में भाषागत यथार्थ**—वर्तमानयुगीन कहानी में भाषा तत्व के क्षेत्र में भी लेखकों का यथार्थ के प्रति बढ़ता हुआ आग्रह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अनेक लेखकों और आलोचकों ने भाषागत परिवर्तनशीलता को स्वीकार किया है। श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की धारणा है कि "सातवें दशक की कहानियां में भाषा काफी बदल गयी है। यों तो भाषा का यह परिवर्तन काफी पहले से शुरू हो गया था, तो भी एक परिष्कृत भाषा का आग्रह हर अच्छा लेखक करता था और बीच के लेखकों ने भी ऐसा किया। लेकिन सातवें दशक के कथाकार, ऐसा लगता है, जैसे जानबूझ कर भाषा को रूखड़ और ऊबड़-खाबड़ बना रहे हैं ...सद्य-स्नात, प्रातः स्मरणीय, अनिमेष दृगों से, निर्निमेष देखता रहा, और ऐसे ही बेगिनती शब्द और वाक्य खण्ड उन्होंने अपनी भाषा से निकाल दिये हैं। प्रकृति-चित्रण में भी रोमानी शब्दावली को उन्होंने हटा दिया है। और यदि यह अजाने किया होता तो शायद दोष होता, लेकिन जैसा कि मैंने कहा, जानबूझ कर एक खास तरह का प्रभाव पैदा करने के लिए उन्होंने ऐसा किया।"[१]

आज की कहानी में भाषा का जो मिश्रित रूप मिलता है, उसका एक उदाहरण डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'मजबूरियां' शीर्षक कहानी में देखा जा सकता है। इस कहानी की भाषा में स्वाभाविक लहजे में आज के शिक्षित वर्ग द्वारा बोले जाने वाले हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया गया है। आज समाज के उच्च वर्गों में प्रायः क्लब और सभा सोसायटियों में अभिजात वर्ग इसी भाषा का प्रयोग करता है। 'मजबूरियाँ' शीर्षक कहानी में इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है : "बात यह हुई कि वह एक मिस पिंटो थीं। शायद आप लोगों ने उनका नाम सुना हो, ईसाइन थी,....ऐंग्लो इण्डियन, मगर साहब, बला की खूबसूरत, अंग्रेजों के वक्त की बात है, बाप कहीं कमिश्नर था। यहाँ पर जनाब क्या हुआ कि एक मुसलमान नौजवान से आँखें लड़ गयीं। वह

---

१. **'हिन्दी कहानी : एक अंतरंग परिचय'**, श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', सन १९६७, पृ० २८५-२८६.

मुसलमान जो था साहब, एक डिप्टी मिनिस्टर का लड़का था, अजी वही, जो बाद में पाकिस्तान में मिनिस्टर बन गये थे....तो जनाब कुछ तो उसके बाप ने उज्र किया लेकिन फिर कमिश्नर साहब चुप हो गये। आखिर तो बिलायत का पढ़ा हुआ लड़का था और फिर हर तरह से काबिल था। डिप्टी मिनिस्टर भी राजी हो गये। आखिर में यह तय हो गया कि दोनों की शादी कर दी जायगी। यों भी वे दोनों मियाँ बीवी की तरह रहते थे। कई बार कश्मीर हो आये थे।"[१]

इस प्रकार से वर्तमानयुगीन कहानी में भाषा तत्व के क्षेत्र में भी नवीनता, विविधता और परिवर्तनशीलता दिखाई देती है। यहाँ पर सातवें दशक के जिन कहानीकारों की रचनाओं से भाषा के विभिन्न उदाहरण दिये गये हैं वे इस तत्व का परिचय देते हैं कि आज विभिन्न प्रदेशों और विभिन्न वर्गों में भाषा का जो रूप लोकप्रिय हो रहा है उसमें किसी भी भाषा के प्रति मोह नहीं है। इसके विपरीत उसमें देशी-विदेशी भाषाओं के वे शब्द स्वीकार कर लिए गये हैं जिनका प्रयोग आज अधिकता से किया जाता है। रमेश उपाध्याय लिखित 'गलत गलत', डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'मजबूरियाँ', शानी लिखित 'नंगे' तथा मार्कण्डेय लिखित 'भूदान' आदि कहानियों की भाषा के जो उदाहरण यहाँ दिये गये हैं वे आज की कहानियों की भाषा के प्रतिनिधि रूप कहे जा सकते हैं।

वर्तमानयुगीन कहानी में शैली तत्वगत यथार्थ—वर्तमानयुगीन कहानी में शैली तत्वगत यथार्थ के सम्बन्ध में यहाँ इस तथ्य का उल्लेख करना असंगत न होगा कि विभिन्न तत्वों के क्षेत्र में कहानीकारों के दृष्टिकोण की परिवर्तनशीलता के कारण कहानी के शैली तत्व के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रयोगशीलता दिखाई देती है। इस विषय में विचार करते हुए श्री राजेन्द्र यादव ने लिखा है कि "अतः आज की कहानी अधिक यथार्थ दृष्टि, प्रामाणिकता और अधिक ईमानदारी से अपने आसपास के परिचित परिवेश में ही किसी ऐसे सत्य को पाने का प्रयत्न करती है जो टूटा हुआ, कटा छंटा या आरोपित नहीं बल्कि व्यापक सामाजिक सत्य का एक अंग है। आज की कहानी का ताना-बाना भी आइडिया, विचार या केन्द्रीय भाव के आस-पास या उसके लिए ही बुना जाता है .. लेकिन कहानी उसे उसकी जन्मभूमि से काटकर अलग नहीं करती। वह तो सिर्फ उसकी स्थिति ज्यों की त्यों बनाए रखते हुए सिर्फ उस केन्द्रीय भाव या आइडिया को रेखांकित या फोकस कर देती है। यही नहीं, आज की कहानी अतिरिक्त सावधानी बरतती है कि नहीं वह केन्द्रीय भाव या आइडिया अपनी शेष धारा से कट न जाए। इसके लिए उसे अधिक संवेदनशील दृष्टि और अधिक नाजुक शिल्प का सहारा लेना पड़ता है।"[२]

---

१. 'शून्य की पूर्ति', डा० प्रतापनारायण टंडन, सन १९६४, पृ० १३४.

२. 'नई कहानी : दशा : दिशा : सम्भावना', श्री सुरेन्द्र, सन १९६६, पृ० ७५.

हिमांशु जोशी लिखित 'एक समुद्र भी' जैसी कहानियों में जिस शैली का प्रयोग हुआ है वह यथार्थ की सीमा से आगे बढ़कर अतियथार्थवादी हो गयी है। इसमें लेखक ने कथा नायक की मानसिक स्थिति और भावनाओं का परिचय जिस रूप में दिया है वह कहीं-कहीं पाठकों को खटकने वाला भी प्रतीत होता है। शैली का यह रूप सामान्यतः उन कहानियों में अधिक दिखाई पड़ता है जिनमें लेखकों का यथार्थ के चित्रण के प्रति बढ़ता हुआ आग्रह स्पष्ट प्रतीत होता है : "वह परेशान सा भीतर जाता है....किवाड़ मूँद कर आराम कुर्सी पर मुर्दे की तरह निढाल गिर पड़ता है। सोचता है—किसी दिन वह इसी तरह लेटा का लेटा रह जाएगा—दरवाजे बन्द होंगे और भीतर अँधेरा—

उसे पक्का यकीन है कि बड़े आदमियों की तरह वह भी हार्ट फेल होने से ही मरेगा—उसके पिता, यद्यपि उसी की तरह बड़े आदमी नहीं थे, फिर भी वहाँ पेशाब करते-करते बुत बन गये थे—

वह आलमारी खोलता है—भीतर ढेर सारी रीती बोतलें भरी पड़ी हैं—उसकी समझ में नहीं आता, इन सबसे अब वह क्या करेगा—डाक टिकट इकट्ठा करने की हाबी की तरह, शराब की खाली बोतलें इकट्ठा करने की उसकी आदत है—पुरानी—

इन सबको इसी ताबूत में दफना देना चाहिए—वह आलमारी जोर से बन्द करता है—

किवाड़ बन्द करते समय उसे नीले कागज की थैली में कुछ लिपटा दीखता है—अपनी कनपटी के बालों पर हाथ फेरता हुआ सोचता है—उसे कौन लायी थी—जब कुछ भी सूझता नहीं तो झटके से गर्दन हिलाता है—जब से लूप प्रथा चली है—इनका अब विशेष महत्त्व रहा नहीं—।"[1]

वर्तमान कहानी में शैलीगत यथार्थ का एक रूप डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'एक मानवीय सत्य' जैसी कहानियों में दिखाई देता है। उनमें लेखक ने यह संकेत किया है कि आज के समाज में प्रतिष्ठित समझे जाने वाले बहुत से आदमी कभी-कभी कितने गिरे हुए सिद्ध होते हैं। औरत और पकौड़ी की जिन्दगी की आयु-सीमा निर्धारित करते हुए लेखक ने इस कहानी में कथानायक के चरित्र के माध्यम से जो कटु व्यंग्य किया है, वह शैली की यथार्थता और रवानगी के कारण बहुत तीखा बन पड़ा है : "मेरे एक दोस्त हैं मदन साहब। हद दर्जे के ऐयाश आदमी। शाम हुई और अपने ठिकाने पहुँच गए। जब से होश सम्भाला है, तब से एक दिन के लिये भी यह सिलसिला नहीं टूटा है। पचास साल के होने आ रहे हैं, मगर अभी

---

१. 'अकहानी', श्री श्याममोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन १९६७ पृ० १०४-१०५.

भी आदत में कोई फर्क नहीं है। अब हालत उनकी यह है कि हर कोठे पर उनकी आमद-रफ्त का सिलसिला करीब-करीब तीस-तीस साल पुराना है। अब आप खुद ही समझ लीजिये कि कभी-कभी क्या नज्जारे सामने आते होंगे। कहीं-कहीं तो ऐसा तक है कि तीस साल पहले किसी वेश्या से उनका सम्बन्ध हुआ। सम्बन्ध जारी रहा। फिर साल डेढ़ साल में उस वेश्या से उनके कोई लड़की जन्मी। अब जब भी वहाँ आएं तो छोटी-छोटी बच्चियाँ अब्बा-अब्बा पुकारती हुई उनके पास आ खड़ी होयें और उनसे जलेबी खाने को पैसे माँगें। अब जनाब मदन साहब सब को एक-एक रुपया बाँटते फिर रहे हैं। यह नज्जारा जब कभी मैं मदन साहब के साथ जाऊँ, तब दिखाई पड़े।"[1]

इस प्रकार से वर्तमानयुगीन हिन्दी कहानी में शैली तत्व के क्षेत्र में यथार्थ का आग्रह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, कहानी के विभिन्न तत्वों के सम्बन्ध में लेखकों के दृष्टिकोण के परिवर्तन के कारण शैली के अनेक नये रूप सामने आये। यथार्थ से आगे बढ़कर अनेक कहानीकारों ने इस क्षेत्र में अतियथार्थवादी तथा प्रकृतवादी दृष्टिकोण का भी परिचय दिया। अनेक स्थलों पर आज का कहानीकार आक्रोशपूर्ण शैली का भी प्रयोग करता है जो अपेक्षाकृत यथार्थता के अधिक निकट है। शरद लिखित 'तूफान', हिमांशु जोशी लिखित 'एक समुद्र भी', डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'एक मानवीय सत्य', तथा ज्ञान प्रकाश लिखित 'सभ्यता आदि कहानियों से शैली के जो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं वे इसी प्रकार के हैं।

वर्तमानयुगीन कहानी में वातावरणगत यथार्थ—वातावरणगत यथार्थ की दृष्टि से भी सातवें दशक की हिन्दी कहानी अनेक विशेषताओं को लिये हुए हैं। जैसा कि विगत अध्यायों में संकेत किया जा चुका है, इस युग में अनेक लेखकों ने ग्रामीण और नागरिक जीवन के जो चित्र प्रस्तुत किये हैं उनमें विशिष्ट क्षेत्रीय विशेषताओं को स्थानीय प्रभाव से युक्त चित्रित किया। डा० लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में "पहली प्रकृति और स्वरूप के अन्तर्गत हिन्दी नयी कहानी का उन्मेष आता है। इस नवोन्मेष की एक विशेषता यह भी थी कि जो नया कथाकार अपनी जन्मभूमि कर्मभूमि के विशेष अंचल से आया हुआ था, या उससे संस्कारतः सम्बन्धित था, उसने प्रायः अपने उसी चंचल या देश विशेष को ही विषय सामग्री के रूप में ग्रहण किया। यह सत्य नयी कहानी के लेखक के रचनाकार व्यक्तित्व की ईमानदारी का द्योतक ही था ही, साथ ही विषय सामग्री की यह नयी ऐतिहासिकता उसकी रचना प्रक्रिया की एक बहुत बड़ी पकड़ थी। प्रेरणा भूमि के भी रूप में, और स्वभावतः उसी के अनुरूप रचना शिल्प के भी रूप में। तभी इस नयी कहानी धारा

---

१. 'शून्य की पूर्ति', डा० प्रतापनारायण टंडन, सन् १९६८, पृ० ५९.

में एक ही लेखक द्वारा समान अर्थों में उसी की लेखनी से एक ओर जहाँ सर्वथा नयी कहानी की रचना हुई, वहाँ दूसरी ओर उसने पुरानी कहानी भी लिखी। पुरानी कहानी; रचना प्रक्रिया के सन्दर्भ में।"[1]

पहाड़ के अंचलों से बने हुए टी० बी० के सैनिटोरियम के आसपास के वातावरण का यथार्थपरक चित्रण डा० प्रतापनारायण टंडन की लिखी हुई 'शून्य की पूर्ति' कहानी में हुआ है। इसमें लेखक ने यह संकेत किया है कि बहुधा अपनी जिन्दगी की सारी उम्मीदें छोड़ देने के बावजूद भी मरीज के मन में अपने आसपास के वातावरण को देखकर एक बार फिर से जीने की उमंग पैदा होती है। इस कहानी से इसी प्रकार के वातावरण का एक चित्र यहाँ पर उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है: "मैं सैनिटोरियम से निकल कर बाहर पार्क में आ गया हूँ। दिन में जब गहरी चमकीली धूप दूरी तक फैली होती है, उस वक्त मुझे अपने रोगीले कमरे में बिस्तर पर पड़े-पड़े सड़ना अच्छा नहीं मालूम होता। इसी लिये चाहे मैं सवेरे शाम न निकलूँ लेकिन दुपहरी में बिना बाहर निकले मेरा दम घुटने लगता है।...इस समय पार्क काफी गुलजार है। बूढ़े जवान, स्त्री पुरुष, लड़के लड़कियाँ, अपनी-अपनी उम्र में खोये उसी के अनुसार बहाव में बहते, जीवन में लिप्त, जीवन को जीते हुए लगते हैं। यह सब देखकर कभी-कभी यह इच्छा होती है कि मैं भी कुछ क्षण इसी प्रकार जियूँ यदि सम्भव हो सके।..."[2]

ममता कालिया की लिखी हुई 'अँधेरा' जैसी कहानियों में युद्ध की आशंका से ग्रस्त वातावरण का चित्रण किया गया है। इसमें युद्ध के दौरान आपत्तिकालीन वातावरण को चित्रित करते हुये लेखिका ने यह संकेत किया है कि आज देश में बहुत से वर्ग ऐसे हैं जो स्वार्थ को सबसे अधिक रखते हैं। कभी-कभी उनमें यह स्वार्थ भावना इतनी अधिक प्रबल हो जाती है कि व्यक्ति अपने स्वार्थ के सामने देश व राष्ट्र के हित को कोई महत्व नहीं देता, परन्तु जब कभी स्वयं उसका अस्तित्व और सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है तब वह देशव्यापी खतरे की ओर ध्यान देता है। ममता कालिया की लिखी हुई 'अंधेरा' शीर्षक में युद्धकालीन वातावरण का इसी पृष्ठभूमि में प्रभावशाली चित्रण हुआ है: "सायरन बन्द हो गया, पर अपना उद्देश्य और वातावरण छोड़ गया। चुप शहर, ज्यादा चुप और सोया मुहल्ला, ज्यादा सो गया। असल में सोया कोई नहीं था, आँखें खोल; सब शब्दहीन इन्तजार में थे। रुचि और वह, अपनी-अपनी जगह पर बैठ गये थे। कोई किसी की स्तब्धता नहीं तोड़ रहा था। भय ने ओठों पर उँगलियाँ रख दी थीं। कपूर अब तक हमेशा व्यक्तिगत खतरों से डरा था। राष्ट्र के खतरे उसने अखबारों में पढ़े थे और अगली सुबह तक भुला दिये

---

१. 'आधुनिक हिन्दी कहानी', डा० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० १०१-१०२.

२. 'शून्य की पूर्ति', डा० प्रतापनारायण टंडन, सन् १९६४, पृ० ६.

थे। उनके छोटे गुजरते चित्र, कभी-कभी उसने देखे थे। उसे भान था, रिंग रोड के किनारे पर बाढ़-पीड़ितों की झोंपड़ियाँ हैं, कनाट प्लेस के गेलार्ड के सामने भिखारियों से भी दयनीय बच्चे वेणी बेचते हैं। पर उसने संकटों में कभी अपने को सम्मिलित नहीं पाया था। आज का खतरा उसे अपनी सिकुड़ी झुकी माँ और निस्सहाय होते बाप पर पारे सी तरल रुचि और स्वयं पर एक्सरे की फिल्म सा साफ नजर आ रहा था। उसने पाया वह अंधेरा, उनके उद्देश्य से अपनी असहमती जताने का सामर्थ्य रखता है, इसमें प्रेम नहीं किया जा सकता, सिर्फ सांस थाम, आँखों और कानों को एक केन्द्र पर जमा, इन्तजार किया जा सकता है।"[1]

सुधा अरोड़ा की लिखी हुई 'वगैर तराशे हुये' जैसी कहानियों में दोपहर के वातावरण का यथार्थपरक चित्रण उपलब्ध होता है। जाड़ा, गर्मी और बरसात की ऋतुओं में दोपहर के समय विभिन्न वर्गों और अवस्थाओं के लोगों के आसपास एक विशेष प्रकार का वातावरण दिखाई देता है जो उन व्यक्तियों की मन:स्थिति के अनुरूप एक खास तरह का रूप धारण कर लेता है। सुधा अरोड़ा की 'वगैर तराशे हुये' शीर्षक कहानी से इसी प्रकार के वातावरण का एक उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है : "वह वहाँ बैठा था उसके दायीं ओर धूप का एक टुकड़ा कुछ लम्बा था। धूप साफ और एकरस नहीं थी। सूरज बादलों में कुछ इस तरह आ गया था कि वह दुपहरी की धूप कट छँटकर टुकड़ों में फैल गई थी। सामने छोटे-छोटे पत्थरों से बिछा एक रास्ता था। सूरज सिर पर नहीं था, तो भी उसके सामने के पत्थर बिछे रास्ते का एक टुकड़ा हल्का तेज चमक रहा था। पत्थरों के ऊपरी सिरों पर धूप साफ थी और वे चिकने लग रहे थे। उसने सोचा—अगर इस रास्ते के जरा से अंश को माइस्क्रोस्कोप से देखें तो ठीक वैसा ही लगेगा जैसा इस मैदान पर टुकड़ों में पड़ी दुपहर को देखने से लग रहा है। 'दुपहर' शब्द जैसे ही उसके मन में आया, उसने अपने पास के लम्बे धूप के टुकड़े की ओर देखा....धूप से हटकर उसका ध्यान दुपहर की ओर गया और उसे यह अच्छा लगा कि वह सर्दियों की दुपहर में बैठा है। गर्मियों की दुपहर में किसी की प्रतीक्षा करना कष्टकर ही नहीं खतरनाक भी होता है। लोग या तो प्रतीक्षा करने वाले व्यक्ति के चेहरे की बेचैनी पढ़कर हालत समझ उसे उपेक्षा की निगाह देखते हैं या यह रहस्य अनुमानित कर कि वह अपनी प्रेमिका का इन्तजार कर रहा, उसे और अधिक उत्सुक और प्रामाणिक दृष्टि से देखने लगते हैं।"[2]

---

१. 'अकहानी', सं० श्री श्याममोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन् १९६७, पृ० ५२.

२. 'अकहानी', सं० श्री श्याममोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन् १९६७, पृ० ७५.

इस प्रकार से वर्तमानयुगीन हिन्दी कहानी में वातावरणगत यथार्थ का विविधता पूर्ण रूप दिखाई देता है। इस काल के कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक, भौगोलिक; प्राकृतिक एवं आंचलिक वातावरण के विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत किये हैं यहाँ पर वर्तमान युगीन प्रतिनिधि कहानीकारों की रचनाओं में वातावरण के जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें आज के युग के ग्रामीण और नागरिक जीवन के अनेक चित्र स्पष्ट हुए हैं। इनसे यह पता चलता है कि आज का कहानीकार कल्पित और आदर्शपरक वातावरण के स्थान पर सहज और स्वाभाविक वातावरण के चित्रण पर बल देता है। उसमें वह वास्तविकता का चित्रण करता है भले ही वह सौन्दर्ययुक्त न हो।

वर्तमानयुगीन कहानी में उद्देश्यगत यथार्थ—उद्देश्य तत्व के क्षेत्र में वर्तमान कहानीकार अपेक्षाकृत अधिक यथार्थपरक दृष्टिकोण का परिचय देता है। परम्परागत कहानी में यथार्थ के चित्रण के बावजूद लेखक उद्देश्य के क्षेत्र में किसी सीमा तक आदर्शवादी हो जाता है। इस दृष्टि से वर्तमान कहानीकार उससे भिन्नता रखता है और किसी कल्पित अथवा आदर्श के प्रभावित उद्देश्य को न थोप कर ईमानदारी से अपनी अनुभूतियों का चित्रण करता है। यहाँ पर कहानी के विभिन्न उपकरणों के यथार्थ के बढ़ते हुये आग्रह से सम्बन्धित जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि युग और परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप आज का जीवन सहज, सरल और स्वाभाविक नहीं रह गया है। वर्तमान कहानीकार इस तथ्य की उपेक्षा नहीं करता और वह इसी जटिल जीवन को अभिव्यंजना करता है। डा० सुरेश सिन्हा के शब्दों में : "हमारा आज का जीवन सरस, सपाट और समतल नहीं रह गया है जिसमें अनेकरूपता और संगुम्फन है। आज की कहानी हमारे जीवन की अभिव्यक्ति है। जब जीवन संकुल और संश्लिष्ट है तब कहानी का तथ्य भी संकुल और संश्लिष्ट हो गया। कोई भी कहानी जब संश्लिष्ट जीवन के तथा सूत्रों एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करने के प्रयत्न को लेकर अपने शरीर की रचना करती है तो उसका पक्ष सपाट एवं सरल नहीं होता, वह एकतरफा भी नहीं होता। पहले ही कहानियों में हमें केवल अस्वस्थ मनोविकारों, ग्रन्थियों एवं कुंठाओं के उलझे हुये गुजलकों की उपलब्धि होती थी पर आज की कहानियों में हमें अनुभूतियों की समग्रता प्राप्त होती है। आज की नयी कहानी युग की समग्रता को अपने परिवेश में समेट कर व्यक्ति और परिवेश के अनेक स्तरीय सम्बन्धों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करती है। उसके बाह्य एवं आंतरिक दोनों ही पक्षों को गहराई से प्रकट करने एवं उसका स्पष्टीकरण तथा विश्लेषण करने का प्रयत्न लक्षित होता है। नई कहानी जब व्यापक सामाजिक परिवेश, परिवर्तनशीलता नूतन आयामों एवं संश्लिष्ट व्यक्ति की जीवन परिधि के अंतर एवं बाह्य रेखाओं को विभिन्न स्तर पर संप्रेषित एवं संपर्शित करने का प्रयत्न करती है तो वह एक नई किन्तु जटिल जमीन

पर अपने पाँव स्थित करता है और नये पुराने मूल्यों का संघर्ष इसे संकुल और जटिल ही नहीं बना देता वरन् बौद्धिक भी बना देता है।,'[१]

वर्तमान हिन्दी कहानी में नारी समाज के स्वावलम्बन तथा नवजागरण के उद्देश्य की दृष्टि से यहाँ डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'भविष्य के लिए' शीर्षक रचना का उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी में लेखक ने यह संदेश प्रस्तुत किया है कि आज नारी समाज के कुछ वर्गों में शिक्षा आदि तो बढ़ गयी है, परन्तु वह अभी तक अपने रूढ़िवादी संस्कारों और भावनाओं से मुक्त नहीं हो पाई है। इसलिए उसे कमर कसकर इन बुराइयों से लड़ना पड़ेगा और तभी वह दुनिया में अपने सम्मान और अस्तित्व की रक्षा कर सकेगी। 'भविष्य के लिए' कहानी में उद्देश्यगत यथार्थ के सन्दर्भ में यही संदेश निहित है : "बहुत से पुरुष इस तरह नीच वृत्ति के होते हैं। किसी की विवशता या कमजोरी से भरपूर लाभ उठाने वाले पशु। मेरा मन घृणा से भर गया। मुझे लगा संसार में बहुत-सी बुराइयाँ हैं, जीवन के हर क्षेत्र में हैं।...उनके आगे सिर नहीं झुकाना होगा, इनसे किसी न किसी प्रकार समझौता नहीं करना होगा, बल्कि इनका विरोध करना होगा, अन्त करना होगा।....क्या अधिकार है मेरे पति को मुझे इस प्रकार घर से निकाल कर मेरे सब अधिकारों को ले लेने का ? क्या अधिकार है उन्हें मुझे राह की भिखारिन बना देने का ? क्या मैं उनकी विवाहिता स्त्री नहीं हूँ ? मैंने सोचा कि मुझे अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए। यदि वे मेरे साथ रहना नहीं चाहते तो न रहें, इसके लिए वे स्वतन्त्र हैं। मगर उन्हें मुझे मेरे समस्त अधिकारों से वंचित कर देने का कोई हक नहीं है, मेरी स्वतन्त्रता का हनन करने का कोई अधिकार नहीं है।'[२]

ज्ञानरंजन ने अपनी लिखी हुई 'सभ्यता' जैसी कहानियों में आज के युग की खोखली सभ्यता और संस्कृति का चित्रण करते हुए यह बताया है कि आज के युग में सदाचार और सदआदर्श का कोई महत्व नहीं रह गया है। आज साधारण जीवन में भी इतना अधिक बनावटीपन आ गया है कि व्यक्ति को अपनी इच्छा के प्रति बहुत से ऐसे कार्य करने पड़ते हैं और उसका परिणाम यह होता है कि उसके मन में असंतोष की वृद्धि होती है। ज्ञानरंजन की लिखी हुई 'सभ्यता' शीर्षक कहानी में उसी विडम्बना का चित्रण है : "मैं समझ पाता कि आज सभ्यता और संस्कृति कितना आगे बढ़ी है। उन्नति करके भी हमने क्या खोया या पाया है। यह उन्नति हमारे हित में हुई है या अहित में। असल में इस तरह के सवालों में मेरे जैसे मजदूर आदमी को उलझना नहीं चाहिए। पर क्या करूँ मैं तो मनुष्य हूँ। यह दूसरी बात

---

१. 'नयी कहानी की मूल संवेदना', डा० सुरेश सिन्हा, पृ० ३४.

२. 'बदलते इरादे', डा० प्रतापनारायण टंडन, सन १९६०, पृ० २२७-२२९.

है कि मैंने अपनी मनुष्यता खो दी है, मैंने अपना जमीर गिरवी रख दिया है और मैं पूरा जानवर बन गया हूँ।....जब दूसरा मुझसे सभ्यता पर प्रश्न करता है तो मेरे घाव हरे-भरे हो जाते हैं और ये तमाम बातें मेरे मन में उठने लगती हैं...।"[1]

पिछले युग के कहानी-साहित्य की भाँति इस काल में लिखी गयी कहानियों में भी नारी जागरण का संदेश और नारी चेतना का आवाहन दृष्टिगत होता है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इस दशक की कहानियों में विभिन्न आन्दोलनों से सम्बन्धित अनेक कहानी लेखिकाएँ रही हैं जिन्होंने एक नारी के दृष्टिकोण से नारी-चरित्र का उद्घाटन व्यापक पृष्ठभूमि में किया है। विजय चौहान, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, शशि प्रभा शास्त्री, ममता अग्रवाल, सुधा अरोड़ा, अनीता औलक, मेहरुनिसा परवेश तथा शिवानी आदि कहानी-लेखिकाओं ने अपने दृष्टिकोण से नारी हृदय की विभिन्न भावनाओं की जो अभिव्यंजना की है वह व्यापक सामाजिक परिवर्तनों के इसी युग में विशिष्ट महत्व रखती हैं।

## कहानी-क्षेत्रीय नवीन आन्दोलन और यथार्थवाद : सिंहावलोकन

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में बीसवीं अर्धशताब्दी के पश्चात् अनेक नवीन आन्दोलन हुए हैं। जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ में संकेत किया जा चुका है, इन आन्दोलनों में योग देने वाले अधिकांश कहानीकार नई पीढ़ी के कहानीकार हैं। इन कहानीकारों ने नई कहानी, सचेतन कहानी तथा अकहानी आदि के रूप में अनेक आन्दोलन आरम्भ किये। ये आन्दोलन भी सातवें दशक में हुए और इनमें आज के जीवन के यथार्थ को व्यक्त किया गया है। आज का कहानीकार अपनी रचनाओं में यथार्थ के चित्रण के प्रति जितना आग्रहशील रहा है उतना पहले कभी नहीं हुआ। वर्तमान हिन्दी कहानी के क्षेत्र में नई कहानी का आन्दोलन बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन के विकास में योग देने वाले कहानीकारों ने कहानी के परम्परागत स्वरूप के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की। उन्होंने जीवन का वर्तमान स्वरूप अपनी सारी सुन्दरता और कुरूपता के साथ कहानी में अभिव्यक्त किया। वह जिस यथार्थ के प्रति आग्रह रखता है वह यथार्थ कल्पना की उपज अथवा आदर्श का प्रतीक न होकर उसके द्वारा स्वयं भोगे हुए जीवन का यथार्थ है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है' नई कहानी के पक्ष और विपक्ष में अनेक कहानीकारों और आलोचकों ने विभिन्न प्रकार के तर्क-वितर्क किये हैं। इस चर्चा ने एक प्रकार के साहित्यिक वाद-विवाद का रूप धारण कर लिया जो किसी न किसी रूप में अभी तक चल रहा है।

---

१. 'अकहानी,' सं० श्री श्याममोहन श्रीवास्तव तथा श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, सन १९६७, पृ० १३२.

नई कहानी के समर्थकों में एक वर्ग ऐसा है जो इसे कोई आन्दोलन नहीं मानता। कमलेश्वर जैसे कहानीकारों की यह धारणा है कि नई कहानी को एक आन्दोलन समझना एक बहुत बड़ा भ्रम है। उनके विचार से नई कहानी की मुख्य विशेषता वर्तमान सामाजिक जीवन की यथार्थ चेतना की अभिव्यक्ति है। इसी यथार्थ चेतना के आग्रह के कारण ही सुरेन्द्र जैसे आलोचकों ने इसके नई कहानी नाम का समर्थन किया है क्योंकि उनके विचार से यह विशेषता पुरानी और परम्परागत कहानी में नहीं मिलती है। नई कहानी में जीवन के यथार्थ रूप के चित्रण का जो आग्रह है उसकी पृष्ठभूमि में कहानीकार का परम्परा-विरोधी दृष्टिकोण है। नया कहानीकार जीवन के नये और अछूते पहलुओं के चित्रण पर बल देता है। उनमें केवल ऊब, घुटन, पलायन, मानसिक तनाव, कुंठा और निराशा आदि का ही चित्रण नहीं है बल्कि उन अनुभूतियों का भी प्रभावशाली चित्रण है जिनका सम्बन्ध जिन्दगी के हर अच्छे बुरे पहलू से है। जो आलोचक साहित्य में जीवन के यथार्थ चित्रण का समर्थन करते हैं वे नई कहानी की उपलब्धियों को भी स्वीकार करते हैं और जो कहानीकार आदर्शपरक दृष्टिकोण रखते हैं वे उस पर अतियथार्थवादी और काम-भावनाप्रधान होने का आरोप लगाते हैं।

अकहानी का आन्दोलन भी बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में ही हुआ, जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, कुछ कथाकारों ने इसे विदेशों से प्रभावित माना है और कुछ ने वर्तमान हिन्दी कहानी का ही नया चरण स्वीकार किया है। कहानीकारों की दृष्टि में हिन्दी कहानी की भावी सम्भावनाएँ तभी आशाजनक हो सकती हैं जब कहानीकार रूढ़िवादी दृष्टिकोण में परिवर्तन कर एवं उसे त्यागकर नये जीवन के यथार्थरूप का चित्रण करे। इसके लिये यह आवश्यक है कि कहानी से संबन्धित रूढ़िवादी दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाय। कहानी के प्रवर्तकों ने इसे कोई साहित्यिक वाद नहीं माना। श्याममोहन श्रीवास्तव ने तो इसके नाम पर भी विशेष आग्रह नहीं किया। उनकी धारणा है कि अकहानी का लेखक केवल उस कहानी का विरोधी है जो आज सबसे बड़ी संख्या में लिखी जा रही है और जो केवल व्यावसायिक दृष्टिप्रधान है।

नई कहानी, सचेतन कहानी तथा अकहानी आदि आधुनिक कहानी की विभिन्न प्रवृत्तियों और आन्दोलनों के विकास में जिन कहानीकारों ने योग दिया है उनमें विगत अध्याय में उल्लिखित लेखकों के अतिरिक्त योगेश गुप्त, सोमावीरा, मार्कण्डेय, धर्मेन्द्र गुप्त, जगदीश चतुर्वेदी, शेखर जोशी, सेवाराम यात्री, डा० प्रताप-नारायण टंडन, केशव प्रसाद मिश्र, रमेश बक्षी, गोपाल शेखरन, ज्ञान रंजन, राम-नारायण शुक्ल, रवीन्द्र कालिया, गंगा प्रसाद विमल, राजेन्द्र अरोड़ा; दूधनाथ सिंह, महेन्द्र भल्ला, भीष्म साहनी, शशिप्रभा शास्त्री, सुरेन्द्र मल्होत्रा, ममता अग्रवाल,

प्रयाग शुक्ल, गिरिराज किशोर, सुधा अरोड़ा, अनीता औलक, मनहर चौहान, अवध नारायण सिंह, सुरेन्द्र अरोड़ा, मशकूर जावेद, वीना रामानन्द, कुसुम चतुर्वेदी, कामतानाथ, जहाँआरा बेगम, सुशील शुक्ल आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों की रचनाओं में नई कहानी, सचेतन कहानी तथा अकहानी विशेष रूप से दृष्टिगत होती है।

सामाजिक यथार्थवाद के चित्रण की दृष्टि से वर्तमान युग के कहानीकारों की रचनाएँ अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं। सातवें दशक की हिन्दी कहानी में सामाजिकता की प्रवृत्ति उसका मूल आधार आज के समाज की पतनोन्मुख अवस्था है। आज समाज के प्रत्येक पहलू में बनावटीपन की अधिकता है।

वर्तमान हिन्दी कहानी में राजनैतिकता की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है, आज का कहानीकार इनके परिणामों के प्रति जागरूक रहा है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, नरेश मेहता लिखित 'वह मर्द थी', मोहन राकेश लिखित 'मलवे का मालिक', महीप सिंह लिखित 'पानी और पुल', कमलेश्वर लिखित 'अपने देश के लोग', मन्नू भंडारी लिखित 'हार' तथा मार्कण्डेय लिखित 'हंसा जाई अकेला' आदि कहानियाँ वर्तमान युग की चेतना का यथार्थ परिचय पाठक के सामने उपस्थित करती हैं।

वर्तमान हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भी पिछले युगों की भाँति विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। धार्मिक कहानी की जो प्रवृत्ति इस युग में विकसित हुई है उसमें पिछले युगों की भाँति धर्म भावना का आस्थायुक्त चित्रण न होकर उसका विरोध ही किया गया है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, श्रीमती इन्दुमती लिखित 'कलयुगी कुन्तियाँ', तथा रमेश बक्षी लिखित 'कीर्तन', मार्कण्डेय लिखित 'कानी घोड़ी', शेखर जोशी लिखित 'कवि प्रिया', मन्नू भंडारी लिखित 'यही सच है', शानी लिखित 'इज्जत का सवाल' तथा महीप सिंह लिखित 'पानी और पुल' जैसी कहानियों में यह संकेत किया गया है।

समकालीन कहानी में मनोवैज्ञानिकता की जो प्रवृत्ति मिलती है उसके अन्तर्गत लेखकों ने सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि में जटिल सम्बन्धों, प्रतिक्रियाओं, विषमताओं, कुंठाओं और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, शेखर जोशी लिखित 'बदबू', शानी लिखित 'आँखों वाली अन्धी' तथा मार्कण्डेय लिखित 'एक काला दायरा' जैसी रचनाओं में इस प्रवृत्ति का प्रतिनिधि रूप दिखाई देता है। आज मनोवैज्ञानिक कहानी में घटनाओं और पात्रों को महत्त्व न देकर परिस्थितियों और वातावरण को महत्ता दी जाती है। लेखक यथासम्भव संकेतों से अपने अभीष्ट का चित्रण करता है। शेखर जोशी लिखित 'दीनू के साथ एक सुबह', राजेन्द्र यादव लिखित 'नया मकान और प्रश्नवाचक पेड़', मोहन राकेश लिखित

'आर्द्रा', निर्मल वर्मा लिखित 'तीसरा गवाह' जैसी कहानियों में संकेतों के माध्यम से ही मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है।

यथार्थवाद के विभिन्न रूपों में ऐतिहासिक यथार्थवाद का समावेश भी वर्तमान कहानियों में हुआ है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, आज हमारे देश के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम लोगों में राष्ट्रीय चेतना का सर्वथा लोप हो गया है। आज हम उन कुर्बानियों को भूल गये हैं जब हमारे देशवासियों ने अपने प्राणों का बलिदान करते हुए राष्ट्र के सम्मान की रक्षा की थी। वीरेन्द्र मेहदीरत्ता लिखित 'उंगली का इशारा' तथा राजेन्द्र किशोर लिखित 'एक खत' जैसी कहानियों में यह संकेत किया गया है कि हमें प्राचीन काल के इतिहास के कल्पनात्मक आदर्श से शिक्षा लेनी ही चाहिए परन्तु उससे भी पहले यह आवश्यक है कि हम निकट अतीत के इतिहास के यथार्थ से चेतना ग्रहण करें।

सामाजिक यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से वर्तमान कहानी में अनेक विशेषताएँ दिखाई देती हैं। वर्तमान युग का कहानीकार समाज के सभी पहलुओं के क्षेत्र में जागरूकता का परिचय दे रहा है। योगेश गुप्त लिखित 'बड़े शहर के ताबूत', गोविन्द मिश्र लिखित 'घाव', अंगराज लिखित 'ब्याह; दोस्त और दुनिया', रवीन्द्र कालिया लिखित 'कोर्जी कार्नर' तथा रमेश उपाध्याय लिखित 'गलत-गलत' जैसी कहानियों में आज के सामाजिक जीवन के अनेक पहलुओं का यथार्थपरक चित्रण हुआ है। इन लेखकों ने केवल समाज की वस्तुस्थिति का ही ईमानदारी के साथ तटस्थ भाव से चित्रण करता रहा है।

मनोवैज्ञानिक यथार्थ का जो रूप वर्तमान हिन्दी कहानी में मिलता है उसकी पृष्ठभूमि में आज की परिस्थितियों में मानव मन में उत्पन्न होने वाली कुण्ठाएँ, विरूपताएँ, तनाव और असंतोष है। अमर गोस्वामी लिखित 'नायक', ज्ञान रंजन लिखित 'सभ्यता', वीरेन्द्र मेहदीरत्ता लिखित 'एक लड़का एक लड़की', भीष्म साहनी लिखित 'इन्तजार', कामतानाथ लिखित 'लाशें' तथा सुधा अरोड़ा लिखित 'और तराशे हुए' कहानियों में जो विश्लेषण हुआ उसकी पृष्ठभूमि में समाज की विभिन्न क्षेत्रीय परिस्थितियाँ हैं। आज का कहानीकार आधुनिक जीवन में जो विरोधाभास देखता है, वह उसे अपनी रचनाओं में तटस्थ दृष्टिकोण से बिना किसी आदर्श का आवरण प्रदान किये हुए प्रस्तुत कर देता है।

आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समावेश भी वर्तमान काल के अनेक कहानीकारों की रचनाओं में हुआ है। डा० एम० के० कल्याण सुन्दरम् लिखित 'सावित्री', डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'लाल रेशम का धागा', वीरेन्द्र मेहदीरत्ता लिखित 'आवश्यक पात्र', श्रीकान्त लिखित 'शव यात्रा' जैसी कहानियाँ आज के समाज का जहाँ एक ओर यथार्थ स्वरूप चित्रित करती हैं वहाँ दूसरी ओर विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त

समस्याओं का आदर्शपरक निदान भी प्रस्तुत करती हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, आज का कहानीकार वर्ण-व्यवस्था, जाति-प्रथा, छूआछूत, अनैतिकता और शोषण आदि के विरुद्ध आवाज उठाता है। फणीश्वरनाथ रेणु लिखित 'ठेस', शिवप्रसाद लिखित 'हाथ का दाग', डा॰ धर्मवीर भारती लिखित 'गली का आखिरी मकान', कमलेश्वर लिखित 'सुबह का सपना', राजेन्द्र यादव लिखित 'बिरादरी बाहर' तथा मार्कण्डेय लिखित 'सात बच्चों की माँ' आदि कहानियाँ वर्तमान कहानीकार के आदर्शवादी दृष्टिकोण का परिचय देती है।

वर्तमान हिन्दी कहानी में कथावस्तु-तत्वगत यथार्थ का रूप भी दृष्टिगत होता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है आज की कहानी में घटना की अधिकता नहीं मिलती। आज का कहानीकार अपनी रचना में घटना के स्थान पर परिस्थितियों के चित्रण पर बल देता है। आज की कहानी की कथावस्तु का विषय आज की जिन्दगी में बढ़ती हुई भौतिकता है।

पात्र-योजना अथवा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वर्तमान हिन्दी में जो विशेषता दिखाई देती है वह यह है कि आज के कहानीकार ने किसी पात्र के चित्रण में अनावश्यक आदर्श या बनावटी नैतिकता का परिचय नहीं दिया है। वर्तमान कहानी में आयोजित पुरुष और स्त्री पात्र झूठे संतोष में नहीं जीते हैं बल्कि उनकी जिन्दगी अतृप्त इच्छाओं, मानसिक कुण्ठाओं, आर्थिक अभावों, शोषण, हताशा, निराशा आदि से भरी हुई है।

संवाद-योजना अथवा कथोपकथन-तत्वगत यथार्थ का जो रूप वर्तमान हिन्दी कहानी में मिलता है वह भी कहानीकारों के यथार्थ से प्रभावित दृष्टिकोण का परिचय देता है। श्रीकान्त लिखित 'शव यात्रा', भीष्म साहनी लिखित 'इन्द्रजाल', भीमसेन त्यागी लिखित 'आत्महत्याएँ', कामतानाथ लिखित 'लाशें', रवीन्द्र कालिया लिखित 'कोजी कार्नर', प्रतापनारायण टंडन लिखित 'शून्य की पूर्ति' तथा सुरेन्द्र अरोड़ा लिखित 'बर्फ' आदि कहानियों से इस सम्बन्ध में जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं वे उपर्युक्त कथन की पुष्टि करते हैं।

वर्तमान हिन्दी कहानी में भाषा-तत्वगत यथार्थ का जो रूप दिखाई देता है वह इस क्षेत्र में लेखकों के नवीन दृष्टिकोण का सूचक है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, वर्तमान कहानी में जो रूप प्रयुक्त हुए हैं उनमें व्यावहारिकता सबसे अधिक मिलती है। आज की कहानी की भाषा में विविधता भी पिछले युगों की तुलना में अधिक मिलती है। आधुनिक समाज के विभिन्न वर्गों में जिस प्रकार की भाषा का व्यवहार होता है वही इन लेखकों ने अपनी कहानियों में प्रयुक्त किया है। शानी लिखित 'नंगे', डा॰ प्रतापनारायण लिखित 'मजबूरियाँ', मार्कण्डेय लिखित

'भूदान' तथा रमेश उपाध्याय लिखित 'गलत-गलत' आदि कहानियों से भाषा के जो उदाहरण पीछे प्रस्तुत किये गये हैं, उनसे इस तथ्य की पुष्टि होती है।

वर्तमान हिन्दी कहानी में शैली-तत्त्वगत यथार्थ का भी विशिष्ट रूप मिलता है। इस संबंध में जो उदाहरण हिमांशु जोशी लिखित 'एक समुद्र भी', शरत लिखित 'तूफान', डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'एक मानवीय सत्य', तथा ज्ञानप्रकाश लिखित 'सभ्यता' आदि कहानियों से प्रस्तुत किये गये हैं।

वातावरण-तत्त्वगत यथार्थ की दृष्टि से भी वर्तमान कहानी में अनेक विशेषताएँ दिखाई देती हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, आज का कहानीकार इस तत्त्व के क्षेत्र में पर्याप्त सजगता का परिचय देता है। आज के अनेक कहानीकार ग्रामीण और नागरिक जीवन की पृष्ठभूमि में वातावरण का स्वाभाविक यथार्थ और प्रभावशाली रूप प्रस्तुत करते हैं। मध्यवर्गीय जीवन की पृष्ठभूमि में सामाजिक वातावरण युद्ध की आशंका से युक्त राजनैतिक वातावरण, तथा पहाड़ी जीवन की पृष्ठभूमि में प्राकृतिक वातावरण के स्वाभाविक और विश्वसनीय रूपों का चित्रण वर्तमान कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में किया है।

उद्देश्य-तत्त्व के क्षेत्र में वर्तमान कहानीकार अपेक्षाकृत अधिक यथार्थपरक दृष्टिकोण का परिचय देता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, आज का कहानीकार किसी कल्पित अथवा आदर्श से प्रभावित उद्देश्य को स्थान न देकर समाज के यथार्थ के प्रति जागरूक है। पीछे गुरुबचन सिंह लिखित 'आधुनिक', रणधीर सिन्हा लिखित 'नीम बूटी और टामी की पूछ', डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'भविष्य के लिए', ज्ञानरंजन लिखित 'सभ्यता', गोपाल शेखरन लिखित 'मिठास' तथा मार्कण्डेय लिखित 'भूदान' आदि कहानियाँ आज के युग में व्याप्त स्वार्थपरता, अनाचार, शोषण, रूढ़िवादिता, मिथ्या आचरण, विकृत सभ्यता आदि के विरुद्ध आवाज उठाकर नवजागरण का आवाहन करती हैं।

वर्तमान हिन्दी कहानी में इस प्रकार से न केवल यथार्थ के प्रति बढ़ता हुआ आग्रह स्पष्ट दिखाई पड़ता है बल्कि उसका यथार्थ युग-जीवन का वह यथार्थ है जिसे आज का कहानीकार स्वयं भोग चुका है। वह यथार्थ के समग्र रूप को अपनी कहानी में चित्रित करता है भले ही उसका सम्बन्ध समाज के किसी वर्ग अथवा किसी पहलू से हो। नरेश मेहता लिखित 'वह मर्द थी', डा० धर्मवीर भारती लिखित 'यह मेरे लिए नहीं', कमलेश्वर लिखित 'ऊपर उठता हुआ मकान', मोहन राकेश लिखित 'जंगल', राजेन्द्र यादव लिखित 'मरने वालों का पार', मार्कण्डेय लिखित 'धुन', भीष्म साहनी लिखित 'चीफ की दावत', कृष्ण तोवती लिखित 'बादलों के घेरे', निर्मल वर्मा लिखित 'माया दर्पण' तथा अमरकान्त लिखित 'असमर्थ हिलता हाथ' आदि कहानियों में कहानीकारों ने स्वयं भोगे हुए यथार्थ का ही चित्रण किया है।

---

अध्याय ७

# उपसंहार

## हिन्दी कहानी में यथार्थवाद : सिंहावलोकन

इस प्रबन्ध के विगत अध्यायों में हिन्दी कहानी में यथार्थवाद का जो अध्ययन प्रस्तुत किया गया है उससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि भारतेन्दु युग से लेकर वर्तमान काल तक की कहानी धीरे-धीरे आदर्श और कल्पना से यथार्थ और व्यावहारिकता की ओर बढ़ती रही है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, यथार्थवाद एक व्यापक क्षेत्रीय विचारधारा है और उसका सम्बन्ध साहित्य की अनेक विधाओं से है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से यथार्थवाद आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विशेष रूप से दृष्टिगत होता है। हिन्दी में इसका आगमन पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप हुआ। हिन्दी के साहित्यकारों में प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', डा० श्यामसुन्दर दास, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री शिवदान सिंह चौहान, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी तथा डा० श्री कृष्णलाल आदि ने यथार्थवाद का विस्तार से विवेचन करते हुए आधुनिक साहित्य में उसके विवेचन को स्वीकार किया है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यथार्थवादी विचारधारा का आरम्भ प्राचीन यूनानी साहित्य में 'दर्शन के क्षेत्र में हुआ था। धीरे-धीरे इसे साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया और विश्वव्यापी मान्यता मिली। पाश्चात्य साहित्य में कार्लमार्क्स, काड्वेल, फ्लाबेयर जोला तथा मोपासा जैसे साहित्यकारों ने इसके विकास में योग दिया। इसकी परवर्ती विचारधाराओं के रूप में अतियथार्थवाद तथा प्रकृतवाद का जन्म हुआ। अतियथार्थवाद के अनुसार आज के युग में प्रचलित नैतिक मान्यताएँ अर्थहीन हो गयी हैं। हरबर्ट रीड तथा फ्रायड जैसे आलोचकों ने अतियथार्थवादी विचारधारा के विकास में योग दिया। अतियथार्थवाद की भाँति ही दादावाद और प्रकृतवाद भी यथार्थवाद की परवर्ती विचारधाराएँ हैं, जिनमें यथार्थवाद की पराकाष्ठा मिलती है और कभी-कभी इन्हें यथार्थवाद का विकृत रूप भी कहा जाता है।

यथार्थवाद और आदर्शवाद सामान्य रूप से दो परस्पर विरोधी मान्यताएँ मानी जाती हैं। यह दोनों ही प्राचीन विचारधाराएँ हैं। सामान्य रूप से यथार्थवाद का सम्बन्ध भौतिकता से और आदर्शवाद का सम्बन्ध आध्यात्मिकता से माना जाता

है। आदर्शवादी विचारक उसे एक ऐसा दृष्टिकोण मानता है जिसकी सहायता से वह जीवन और जगत का मूल्यांकन करता है। यथार्थ के मूल तत्वों के अतिरिक्त आदर्शवाद एक अन्य चेतन सत्ता मानता है जो शाश्वत है। साहित्य के क्षेत्र में आदर्शवाद भौतिकवादी दृष्टिकोण मनुष्य और पशु में समान रूप से विद्यमान रहता है। विवेक और चिन्तन की शक्ति के कारण मनुष्य अपने जीवन को साधारण पशु जीवन से अलग करके उसे एक नया अर्थ देता है। इस दृष्टि से साहित्य के क्षेत्र में आदर्शवाद जिन मूल्यों की स्थापना करता है वे न केवल जीवन की यथार्थता पर आधारित होते हैं वरन् उसी की ओर उन्मुख भी होते हैं।

साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद के जो प्रमुख रूप दृष्टिगत होते हैं उनमें ऐतिहासिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद मुख्य हैं। सामान्य रूप से यथार्थवाद और ऐतिहासिक यथार्थवाद में कोई मौलिक-भेद नहीं है। देश काल के परिवर्तन से ही ऐतिहासिक यथार्थवाद हो जाता है। ऐतिहासिक यथार्थवाद में भूतकाल की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण होता है। इस रूप में ऐतिहासिक यथार्थवाद के माध्यम से पाठक को अतीत के जीवन की सच्ची झाँकी दिखाई देती है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का विकास आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मनोविश्लेषणवाद के विकास के साथ ही हुआ है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद मनुष्य की वैयक्तिक चेतना का विश्लेषण करता है। वह उसके सामाजिक महत्व को अस्वीकार न करता हुआ भी उसके अचेतन तथा अर्धचेतन मन के रहस्यों का उद्घाटन करता है। उसके अनुसार व्यक्ति की अधिकांश अतृप्त कामनाएँ ही अनेक प्रकार की कुण्ठाओं का रूप धारण कर लेती हैं। आज के युग में साहित्य के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक का प्रभाव जितना बढ़ता जा रहा है उतना ही सूक्ष्म रूप में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद मनुष्य के अन्तर का विश्लेषण भी करता जाता है। यथार्थवाद का एक अन्य रूप समाजवादी यथार्थवाद है, जो साहित्य के प्रति उपयोगितावादी दृष्टिकोण रखता है। इसकी पृष्ठभूमि में पूँजीवाद के विनाश और समाजवाद के विकास का उद्देश्य निहित है। यह विचारधारा भी मार्क्सवादी जीवन दर्शन से प्रभावित है। यह विचारधारा यह मानती है कि साहित्य और समाज का मूल आधार आर्थिक है और संपूर्ण समाज का संगठन शोषक और शोषित वर्गों के संयोग से होता है। समाजवादी यथार्थ का चित्रण करने वाला साहित्य व्यक्ति को समाज का एक अनिवार्य व महत्वपूर्ण अंग मानता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में इस विचारधारा से प्रभावित जो रचनाएँ मिलती हैं उनमें मुख्य रूप से सामाजिक विषमताओं, कुण्ठाओं, हीनताओं और शोषण का यथातथ्य चित्रण किया जाता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में यथार्थवाद का एक अन्य रूप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के रूप में मिलता है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, यथार्थवाद के उस रूप को कहते हैं जो यथार्थपरक होते हुए भी किसी आदर्श

की प्रतिष्ठा करता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का आरम्भ प्रेमचन्द युग से होता है। स्वयं मुंशी प्रेमचन्द के साहित्य में यथार्थवाद का जो रूप दृष्टिगत होता है उसे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की संज्ञा दी गयी है। इसका कारण यह है कि प्रेमचन्द सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से साहित्य में यथार्थवाद के समर्थक थे परन्तु वे यथार्थ के उसी रूप का समर्थन करते थे जो पाठक को किसी आदर्श की ओर उन्मुख कर सके। इस रूप में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद वस्तुतः आदर्श और यथार्थ का समन्वय है। प्रेमचन्द यथार्थ को साहित्य की एक कसौटी मानते हैं परन्तु उनके विचार से आदर्श के अभाव में यथार्थ अर्थहीन हो जाता है। इसीलिए उन्होंने यथार्थवादी साहित्यकार के लिए आदर्श को भी अनिवार्य माना है। इस रूप में समाजोपयोगी यथार्थ ही आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहा जा सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के दूसरे अध्याय में पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में यथार्थवाद का अध्ययन किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं की भाँति ही कहानी का आविर्भाव भारतेन्दु युग से हुआ। यह परिवर्तनशीलता का युग था। इस युग में सांस्कृतिक क्षेत्र में नवीन चेतना जाग्रत हो रही थी। प्राचीन और परम्परागत संस्कृति के साथ ही एक नई संस्कृति भी जन्म ले रही थी जो अँग्रेजी संस्कृति से प्रभावित थी। सामाजिक क्षेत्र में भी पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। अन्धविश्वासों की समाप्ति हो रही थी। ईसाई मिशनरियों के प्रयत्नों से समाज के निम्न वर्गों में जागरण हो रहा था, शिक्षा का प्रचार हो रहा था और अज्ञान का विनाश हो रहा था। नारी समाज के क्षेत्र में भी जागरण हो रहा था और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे समान अधिकार प्राप्त हो रहे थे। आर्थिक क्षेत्र में औद्योगिकता की वृद्धि के साथ एक नई क्रान्ति दिखाई दे रही थी। राजनैतिक चेतना का विकास भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम के बाद तीव्र गति से हुआ था। सारे देश में राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय एकता की भावना बढ़ रही थी। साहित्य के क्षेत्र में प्रायः सभी विधाओं के अन्तर्गत इस परिवर्तन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कहानी के क्षेत्र में भी यथार्थ का बढ़ता हुआ आग्रह और समाज सुधार का दृष्टिकोण इसी परिवर्तनशीलता का परिचायक है।

पूर्व-प्रेमचन्द युग में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में मुख्य रूप से सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक और रहस्यात्मक कहानी की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति में यथार्थवाद का अपेक्षाकृत अधिक समावेश हुआ है। उनमें सामाजिक जीवन में व्याप्त मिथ्याडम्बर, रूढ़िवादिता, नैतिक खोखलेपन, धार्मिक अन्धविश्वास तथा सामाजिक कुरीतियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत मुख्यतः कल्पनाप्रधान रचनाएँ मिलती

हैं, जिनमें इतिहास के तथ्यों पर कम ध्यान दिया गया है और कल्पना तथा आदर्श की प्रधानता है। धार्मिक पौराणिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत मुख्यत: प्राचीन धार्मिक कथाओं के खड़ी बोली में अनुवाद प्रस्तुत किये गये हैं। रहस्यात्मक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत जो रचनाएँ मिलती हैं उनमें केवल शिकार सम्बन्धी रचनाओं में ही यथार्थता दृष्टिगत होती है।

पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में यथार्थवाद के सभी प्रमुख रूप न्यूनाधिक रूप में मिलते हैं। इनमें ऐतिहासिक यथार्थवाद का जो रूप मिलता है वह इतिहास के किसी युग विशेष पर आधारित नहीं है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखित 'शाहजहाँ', पार्वतीनन्दन लिखित 'कन्नौज सुन्दरी' आदि रचनाएं ऐतिहासिक तथ्यों पर कम और कल्पना पर अधिक आधारित हैं। इस काल की कहानियों में सामाजिक यथार्थवाद का समावेश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती कुछ जग बीती', गौरीदत्त लिखित 'देवरानी जेठानी की कहानी', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरिजादत्त बाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी', पार्वतीनन्दन लिखित 'मानवीय या दानवीय', मास्टर भगवानदास लिखित 'प्लेग की चुड़ैल', बंग महिला लिखित 'दुलाईवाली' तथा चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' में मिलता है। ये रचनाएँ समकालीन नारी समाज की शोषित अवस्था, अन्धविश्वास की भावना, सामाजिक कुरीतियाँ, वृद्ध विवाह की समस्या, युद्ध की विभीषिका, अशिक्षा, अज्ञान और आडम्बर आदि के विरुद्ध सुधारवादी दृष्टिकोण से युक्त हैं।

पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का जो रूप दिखाई देता है वह नाटकीयता से युक्त है। गिरिजादत्त बाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम', मास्टर भगवानदास लिखित 'प्लेग की चुड़ैल', चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था', 'सुखमय जीवन, तथा 'बुद्धू का कांटा' में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का सांकेतिक समावेश हुआ है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में सबसे अधिक समाविष्ट हुआ है। इसके संकेत इंशाअल्ला खाँ लिखित 'रानी केतकी की कहानी', किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' आदि रचनाओं में मिलते हैं। इन कहानियों में लेखकों ने विभिन्न परिस्थितियों में किसी न किसी आदर्श की स्थापना पर बल दिया है।

पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद का समावेश का उपकरणगत भी महत्व रखता है। कहानी के सर्वप्रथम तत्व कथावस्तुगत यथार्थ की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती कुछ जग बीती', निज़ामशाह लिखित 'सुअर का शिकार' तथा चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' आदि

के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिनमें वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन की कुरीतियों और विकृतियों से सम्बन्धित घटनाओं की आयोजना की गयी है। पात्र योजना तथा चरित्र-चित्रणगत यथार्थ की दृष्टि से भी पूर्व-प्रेमचन्द युग की कुछ रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती कुछ जग बीती', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', बंग महिला लिखित 'दुलाई वाली', गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इनमें प्रमुख पात्र अन्तर्द्वन्द्वात्मकता, प्रतिक्रियात्मकता तथा सामाजिक चेतना की दृष्टि से यथार्थता के पर्याप्त निकट कहे जा सकते हैं।

कथोपकथन अथवा संवाद-योजनागत यथार्थ की दृष्टि से भी इस काल की कुछ कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। यद्यपि अधिकांश लेखकों ने इस युग में नाटकीय, कृत्रिम और अस्वाभाविक संवादों का प्रयोग किया है परन्तु फिर भी बालमुकुन्द लिखित 'मेले का ऊँट', चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था', 'सुखमय जीवन' आदि में स्वाभाविक संवाद मिलते हैं। भाषा तत्त्व के क्षेत्र में भी इस काल की कहानी यथार्थ के निकट आती लगती है। अनेक कहानीकारों ने केवल भाषा के नमूने प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही कहानियाँ लिखीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती कुछ जग बीती' में नागरिक भाषा, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' में प्रादेशिक भाषा तथा बंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' में लोक भाषा का प्रयोग हुआ है।

शैली तत्त्वगत यथार्थ की दृष्टि से पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी साहित्य में जो रचनाएँ उल्लेखनीय हैं उनमें वर्णनात्मक शैली का ही स्वाभाविक रूप में प्रयोग हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती कुछ जग बीती' में आत्म-कथात्मक शैली तथा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी लिखित 'उसने कहा था' में स्वप्न शैली का स्वाभाविक रूप दृष्टिगत होता है। इस युग की कहानियों में ऐतिहासिक वातावरण का चित्रण कहीं-कहीं पर विश्वसनीय रूप में दिखाई देता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती कुछ जग बीती' में सामाजिक वातावरण, बालमुकुन्द गुप्त लिखित 'मेले के ऊँट' में महानगरों का वातावरण, केशवप्रसाद सिंह लिखित 'कश्मीर यात्रा' में प्राकृतिक वातावरण, बंग महिला लिखित 'कुम्भ में छोटी बहू' में तीर्थस्थलों का वातावरण तथा चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' में स्थानीय वातावरण का विश्वसनीय रूप मिलता है।

पूर्व-प्रेमचन्दयुगीन कहानी में उद्देश्य तत्त्व के क्षेत्र में लेखकों का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत यथार्थ और व्यावहारिक है। स्त्री शिक्षा प्रसार, अन्धविश्वास की समाप्ति, सामाजिक चेतना का जागरण, स्वावलम्बन तथा विभिन्न सामाजिक कुरीतियों के

निवारण के संकेत इस युग की अधिकांश कहानियों में मिलते हैं। इस प्रकार से यथार्थवाद का समुचित समावेश यद्यपि इस युग की कहानियों में नहीं हुआ है परन्तु फिर भी उसके आंशिक समावेश की दृष्टि से इस युग के कहानी साहित्य का महत्व स्पष्ट है।

प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद का विवेचन करते हुये इस प्रबन्ध के तीसरे अध्याय में यह संकेत किया गया है कि इस युग में समाज, धर्म, राजनीति, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। संस्कृति के क्षेत्र में हिन्दू और इस्लामी संस्कृतियों के साथ पाश्चात्य संस्कृति का भी विकास हो रहा था। संस्कृति का एक नया रूप भी जन्म ले रहा था जिसमें इन तीनों का समन्वय था। समाज के क्षेत्र में अनेक सुधारवादी आन्दोलन हो रहे थे और नारी चेतना का जागरण हो रहा था। राजनीति के क्षेत्र में भी स्त्रियाँ समान रूप से कार्य कर रही थी। युद्धकालीन वातावरण के कारण औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्रों में अनिश्चयता थी। पूंजीवादी शोषण की वृद्धि हो रही थी। राजनीति के क्षेत्र में सबसे अधिक हलचल थी और अखिल भारतीय कांग्रेस में भी विचारधाराओं और नीतियों का संघर्ष हो रहा था। साहित्य में भी विशेष क्रियाशीलता दिखाई दे रही थी और इस काल के प्रतिनिधि साहित्यकार समकालीन जीवन को प्रतिबिम्बित कर रहे थे।

प्रेमचन्द युग में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जो प्रमुख प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं उनमें सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक कहानियों की प्रवृत्तियाँ मुख्य हैं। सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुदर्शन, विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' तथा पांडेयबेचन शर्मा 'उग्र' आदि ने भारतीय समाज के समग्र स्वरूप का चित्रण यथार्थ रूप में किया है। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कहानियों की प्रवृत्ति के विकास में प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, सुदर्शन, उषादेवी मित्रा तथा वृन्दावन लाल वर्मा ने राजपूत काल, मुगल काल तथा ब्रिटिश काल से सम्बन्धित कहानियाँ लिखी हैं। पौराणिक, धार्मिक कहानियों की प्रवृत्ति के अन्तर्गत मुख्य रूप से प्रेमचन्द, पांडियबेचन शर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री, डा० वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी तथा गोविन्दवल्लभ पंत ने रचनाएँ प्रस्तुत करते हुये धार्मिक आडम्बर और अन्धविश्वासों का विरोध करते हुये मानवता और सेवा के धर्म का समर्थन किया है।

प्रेमचन्द युग में राष्ट्रीय और राजनीतिक कहानियों की प्रवृत्ति के अन्तर्गत लेखकों ने स्वतंत्रता संग्राम, राजनैतिक क्रान्ति, सत्याग्रह आन्दोलन, अहिंसावादी विचारधारा तथा स्वदेशी आन्दोलन आदि का चित्रण किया। प्रेमचन्द, पांडेयबेचन शर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', राहुल सांकृत्यायन तथा

राजा राधिका रमण प्रसाद ने इस प्रवृत्ति के विकास में योग दिया है। मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति इस युग में विशेष रूप से विकसित हुई है। मुंशी प्रेमचन्द ने मनोवैज्ञानिक कहानी को ही सर्वश्रेष्ठ कोटि की कहानी माना है। प्रेमचन्द के अतिरिक्त जयशंकर प्रसाद, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री तथा भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने अपनी रचनाओं में मनोविज्ञान को आधार बनाया है। इस युग की कहानी-प्रवृत्ति में इसी प्रवृत्ति का विकास आगे चलकर सबसे अधिक हुआ।

प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद के सभी प्रमुख रूप दृष्टिगत होते हैं। ऐतिहासिक यथार्थवाद की दृष्टि से इस युग की रचनाओं में प्रेमचन्द लिखित 'रानी सारन्धा', 'शतरंज के खिलाड़ी', जयशंकर प्रसाद लिखित 'पुरस्कार' तथा 'ममता', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'टीपू सुलतान' तथा 'हैदरअली', सुदर्शन लिखित 'फरऊन का प्रेम' तथा पांडेयबेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'पंजाब की महारानी' आदि कहानियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके विषय मुख्य रूप से मुगल तथा ब्रिटिश कालीन इतिहास पर आधारित हैं। इस युग की कहानी में सामाजिक यथार्थवाद का जो रूप दिखाई देता है वह पिछले युग की तुलना में अधिक प्रभावशाली है। मुंशी प्रेमचन्द लिखित 'सभ्यता का रहस्य' तथा 'लांछन', जयशंकर प्रसाद लिखित 'गुदड़ी के लाल' तथा मधुआ', उषादेवी मित्रा लिखित 'जीवन का एक दिन' आदि कहानियों में विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित यथार्थ का विस्तार से चित्रण हुआ है।

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के समावेश की दृष्टि से भी इस युग के अनेक कहानीकारों की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द स्वयं यह स्वीकार करते थे कि कहानी का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के समावेश की दृष्टि से प्रेमचन्द लिखित 'कफन', जयशंकर प्रसाद लिखित 'गुंडा', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'विधवा की होली', सुदर्शन लिखित 'प्रणय रात्रि', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'पत्थर के अंकुर', पांडेयबेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'चाँदनी' आदि कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का प्रभावशाली रूप प्रेमचन्द की रचनाओं में ही सबसे अधिक सफलतापूर्वक समाविष्ट हुआ है। उनकी लिखी हुई 'मंत्र' तथा 'नमक का दरोगा' जैसी कहानियाँ इसका प्रतिनिधि उदाहरण कही जा सकती हैं। प्रेमचन्द के अतिरिक्त सुदर्शन ने 'हार की जीत', जयशंकर प्रसाद ने 'पुरस्कार', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने 'ताई', चतुरसेन शास्त्री ने 'अम्बपालिका', राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह लिखित 'दरिद्र नारायण' तथा रायकृष्ण दास लिखित 'नर राक्षस' आदि कहानियों में भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समावेश हुआ है।

प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यथार्थवाद के उपकरणगत विवेचन के सम्बन्ध में इस तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक है कि कथावस्तु के क्षेत्र में लेखकों ने नाटकीयता की उपेक्षा कर स्वाभाविकता का परिचय दिया। प्रेमचन्द लिखित 'बड़े घर की बेटी',

पांडेयबेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'दोजख की आग', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'खूनी', जयशंकर प्रसाद लिखित 'चूड़ीवाली', तथा उषादेवी मित्रा लिखित 'अतृप्त वासना' जैसी कहानियों में कथावस्तु का आधार समकालीन, वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और वैवाहिक जीवन से संबन्धित यथार्थपरक घटनाएँ हैं। पात्र-योजना अथवा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी इस युग के कहानीकारों में यथार्थ का आग्रह स्पष्ट दिखाई देता है। प्रेमचन्द लिखित 'गृह दाह', जयशंकर प्रसाद लिखित 'गुंडा', सुदर्शन लिखित 'अठन्नी का चोर', यमुनादत्त वैष्णव लिखित 'दो रेखाएँ' तथा उषादेवी मित्रा लिखित 'रूप का मोह' जैसी कहानियों में जिन पात्रों की आयोजना की गयी है वे समकालीन समाज के जीते-जागते प्रतिनिधि हैं जिनकी विशेषताओं और दुर्बलताओं का यथातथ्य चित्रण कहानीकारों ने किया है।

कथोपकथन अथवा संवाद-योजनागत यथार्थ का सम्बन्ध कहानी के अन्य तत्वों से प्रत्यक्षतः होता है। सफल और स्वाभाविक कथोपकथन में पात्रों की मनःस्थिति उनकी सामाजिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि, उनके संस्कार और उनकी विचारधारा आदि का परिचय मिलता है। इस दृष्टिकोण से प्रेमचन्द लिखित 'बड़े घर की बेटी', सुदर्शन लिखित 'सन्यासी', डा० वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'वंश परम्परा', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'मास्टर साहब' तथा उषादेवी मित्रा लिखित 'चम्मच भर आँसू' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। भाषा-तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से भी इस युग के कहानीकारों में जागरूकता मिलती है। इस युग के सर्वप्रमुख कहानीकार प्रेमचन्द यह मानते थे कि भाषा साध्य न होकर साधन है। इसीलिये वे हिन्दी के सर्वांगपूर्ण रूप का समर्थन करते थे। प्रेमचन्द लिखित 'अमावस्या की रात्रि', सुदर्शन लिखित 'कवि', पांडेयबेचन शर्मा उग्र लिखित 'कुंड गोलख', डा० वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'सौन्दर्य प्रतियोगिता', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'कहानी खत्म हो गई' तथा उषादेवी मित्रा लिखित 'प्रथम छाया' आदि कहानियों में संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी प्रधान तथा समन्वित भाषा के व्यावहारिक रूप दृष्टिगत होते हैं।

प्रेमचन्दयुगीन कहानी में शैली-तत्वगत यथार्थ भी द्रष्टव्य है। पिछले युग की कहानी शैली में जो नाटकीयता मिलती थी उसका इस काल की कहानी में अभाव है। प्रेमचन्द लिखित 'शंखनाद', डा० वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'दबे पाँव', पांडेयबेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'नेता का स्थान', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'प्रतिशोध', श्रीमती उषादेवी मित्रा लिखित 'ललिता की डायरी' तथा सुदर्शन लिखित 'सच का सौदा' आदि कहानियों में वर्णनात्मक शैली, डायरी शैली, तथा मनोवैज्ञानिक शैली का स्वाभाविक रूप मिलता है। वातावरण की दृष्टि से इस युग की कहानियों में राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और प्राकृतिक वातावरण का यथार्थ रूप मिलता है जो समकालीन जीवन के विभिन्न पक्षों का सूचक है। प्रेमचन्द लिखित 'सवा सेर गेहूँ', जयशंकर प्रसाद लिखित 'दुखिया', सुदर्शन लिखित 'परिवर्तन', उषादेवी मित्रा

लिखित 'रहस्यमयी पांडेयबेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'दिल्ली की बात' तथा चतुरसेन शास्त्री लिखित 'कलकत्ते में एक रात' आदि कहानियाँ सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक और आंचलिक वातावरण यथार्थ की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्दयुगीन कहानी उद्देश्य-तत्व की दृष्टि से भी यथार्थ की ओर उन्मुख प्रतीत होती है। इस युग के प्रमुख कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि वर्तमान कहानी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ को अपना ध्येय समझती है। प्रेमचन्द युग के कहानीकारों ने रूढ़िवादिता का विरोध करते हुए आर्थिक विषमता को वर्ग-संघर्ष का मूल कारण बताया हैं। उन्होंने शोषण, आडम्बर, अज्ञान, अशिक्षा, साम्प्रदायिकता, अस्पृश्यता आदि का विरोध करते हुये मानवतावादी धर्म का संदेश दिया है। प्रेमचन्द लिखित 'डिग्री के रुपये', विशवम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'आशिक का हृदय', जयशंकर प्रसाद लिखित 'गुंडा', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'दो दाने', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'विधवा आश्रम' तथा उषादेवी मित्रा लिखित 'चातक' आदि कहानियाँ इस युग के लेखकों की कहानी के उद्देश्य के प्रति जागरूकता की परिचायक हैं। इस प्रकार से प्रेमचन्द युग की हिन्दी कहानी यथार्थ की ओर एक महत्वपूर्ण कदम उठाती है। उसमें महाजनी व्यवस्था, अन्धविश्वास, मिथ्याडम्बर, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, रूढ़िवादिता, अछूत समस्या, आर्थिक शोषण, नारी शोषण, स्त्री शिक्षा, संयुक्त परिवार की समस्या, पर्दा प्रथा, राजनैतिक क्रान्ति की समस्या, पाश्चात्य अनुकरण की समस्या, अशिक्षा अज्ञान तथा साम्प्रदायिकता के उन्मूलन की समस्या तथा विभिन्न कुंठाओं और विकृतियों का प्रभावशाली चित्रण करते हुये कहानीकारों ने राष्ट्रीय स्तर पर मानवतावादी दृष्टिकोण के विकास और नवीन चेतना के जागरण का संदेश दिया।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में यथार्थवाद का विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के चौथे अध्याय में किया गया है। इसकी काल-सीमा प्रेमचन्द युग की समाप्ति से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह काल-खंड इतिहास में विशेष महत्व रखता है। इस युग में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये किये जाने वाले आन्दोलनों में तीव्रता आयी तथा बंगाल का दुर्भिक्ष भी पड़ा। इस युग की सबसे प्रमुख घटना द्वितीय विश्वयुद्ध है। इस युग में परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक नये परिवर्तन हुये तथा सांस्कृति विषयक जनता की धारणा भी बदली। राष्ट्रीय आन्दोलनों का विकास होने पर जनता में नवीन चेतना जाग्रत हुई तथा देश की प्राचीन संस्कृति के प्रति आदर का भाव बढ़ा। सामाजिक क्षेत्र में संयुक्त परिवार की प्रथा टूटने लगी। वर्णाश्रम व्यवस्था भी नष्ट हो गयी। अछूतों के उद्धार के लिये महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अनेक आन्दोलन हुए। नारी शिक्षा का प्रचार हुआ तथा पर्दे की प्रथा का उन्मूलन हुआ। आर्थिक क्षेत्र में

स्थिति चिन्ताजनक रही और शोषण के विरुद्ध श्रमिक संगठन हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् राजनैतिक क्षेत्र में गांधी-वाद, समाजवाद, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद तथा साम्यवाद का पारस्परिक संघर्ष हुआ। साहित्य के क्षेत्र में भी राष्ट्रीय जागरण का यह युग प्रतिबिम्बित हुआ और हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं के क्षेत्र में विकास-शीलता लक्षित हुई।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र में सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों की कहानियों का विकास हुआ है। इनमें से सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति सर्वप्रमुख है। इस युग के अधिकांश कहानीकारों ने सामाजिक जीवन की विडम्बनाओं, रूढ़िवादिता, बेरोजगारी, भिक्षावृत्ति, सामाजिक नैतिकता के खोखलेपन आदि का चित्रण किया है। यशपाल लिखित 'सच की इज्जत', इलाचन्द्र जोशी लिखित 'परिणीता', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'मास्टर जी', उपेन्द्रनाथ अश्क लिखित 'खिलौने', मन्मथनाथ गुप्त लिखित 'सोख्ते का टुकड़ा', विष्णु प्रभाकर लिखित 'जिन्दगी के थपेड़े' आदि कहानियाँ इस प्रवृत्ति की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युग में ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत मुख्यतः राजपूत काल, मुगल काल तथा ब्रिटिश काल से सम्बन्धित कहानियां लिखी गयी हैं। यशपाल लिखित 'ओ भैरवी', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'रानी महामाया', विष्णु प्रभाकर लिखित 'हजरत उमर', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'जब मुगलों ने सल्तनत बख्श दी', तथा उपेन्द्रनाथ अश्क लिखित 'चैन का अभिलाषी' आदि कहानियाँ भारत के इतिहास के विभिन्न युगों से सम्बन्धित हैं। इनमें से अधिकांश लेखकों का दृष्टिकोण कटु व्यंग्य से युक्त है। धार्मिक पौराणिक प्रवृत्ति के क्षेत्र में भी लेखकों ने धर्म में व्याप्त आडम्बर-पूर्णता, और अन्धविश्वास का विरोध किया है। इलाचन्द्र जोशी लिखित 'कापालिक', यशपाल लिखित 'मन की पुकार', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'देवी देवता', मन्मथनाथ गुप्त लिखित 'पन्द्रह रुपये, बारह आने' तथा भगवतीचरण वर्मा लिखित 'प्रायश्चित' आदि रचनाओं में यह संकेत किया गया है कि धर्म के नाम पर होने वाले अधर्म और शोषण का कारण अशिक्षा अज्ञान ही है।

राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में योग देने वाले प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानीकारों ने मुख्य रूप से राजनैतिक चेतना के जागरण और एकता पर बल दिया है। इस दृष्टि से इलाचन्द्र जोशी लिखित 'बदला', यशपाल लिखित 'जन सेवक', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'हंसी', मन्मथनाथ गुप्त लिखित 'महायुद्ध की देन' आदि कहानियाँ इस प्रवृत्ति की प्रतिनिधि रचनाएं कही जा जा सकती हैं। मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत इस युग में मुख्य रूप से जीवन की असंगतियों, दमित इच्छाओं, कुंठाओं आदि का चित्रण किया गया है। इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र कुमार, यशपाल,

मन्मथनाथ गुप्त, तथा भगवतीचरण वर्मा आदि कहानीकारों ने यह संकेत किया है कि नैतिकता कितनी बनावटी और खोखली हो गयी है।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में ऐतिहासिक' यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद; मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समावेश मिलता है। इस युग की कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद का जो स्वरूप दिखाई पड़ता है वह इतिहास के सम्बन्ध में लेखकों के दृष्टिकोण का भी परिचायक है। जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, मन्मथनाथ गुप्त तथा उपेन्द्रनाथ अश्क आदि कहानीकारों ने इतिहास के विभिन्न युगों से सम्बन्धित अपनी रचनाओं में यह संकेत किया है कि बहुधा विदेशियों की कूटनीति और साम्राज्यवादी नीति का अभिशाप भारत को सहन करना पड़ा। यदि देश में एकता की भावना रही होती तो शताब्दियों तक उसे परतंत्र नहीं रहना पड़ता। इस युग में सामाजिक यथार्थवाद का जो रूप दिखाई देता है उसके अन्तर्गत लेखकों ने आज के अर्थप्रधान सामाजिक मूल्यों के प्रति कटु व्यंग्य की भावना व्यक्त की है। भगवतीचरण वर्मा की 'रुपया तुम्हें खा गया' शीर्षक में यही संकेत है। इलाचन्द्र जोशी ने 'मैं' शीर्षक कहानी में आधुनिक महानगरियों का सामाजिक जीवन चित्रित करते हुए यह बताया है कि आज के यांत्रिक और औद्योगिक क्रूरता के कारण पददलित होकर मनुष्य निर्धनता और अभाव से इतना ग्रस्त है कि वह पूर्णरूपेण लज्जाविहीन हो उठा है। यशपाल, जैनेन्द्र, 'अज्ञेय' वाचस्पति पाठक, विष्णु प्रभाकर तथा उपेन्द्रनाथ अश्क आदि की कहानियों में भी समकालीन सामाजिक जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये गये हैं।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का चित्रण करने की दृष्टि से इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार; मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कहानीकारों ने आज के जन-जीवन के सहज और सामान्य रूपों का आधार बनाकर विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित यथार्थ का प्रभावशाली चित्रण किया है। पुरानी और नई पीढ़ी के नीति सम्बन्धी दृष्टिकोण का खोखलापन बताते हुए इन लेखकों ने विभिन्न कुंठाओं और विकृतियों का चित्रण किया है। इन कहानीकारों की यह धारणा है कि आज के युग में अनेक भावनाएँ नैतिक नियमों के विरुद्ध होने के कारण धीरे-धीरे कुंठाओं का रूप धारण कर लेती है और उसके फलस्वरूप अनेक विडम्बनाएँ सामने आती हैं।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का जो रूप मिलता है उसकी पृष्ठभूमि में इस युग के लेखकों की यह धारणा है कि आधुनिक समाज में व्यावहारिक स्तर पर इतनी विरूपताएँ दिखाई देती हैं कि साधारण मनुष्य विभिन्न प्रकार के असन्तोष का शिकार हो जाता है। विभिन्न सामाजिक कुरीतियों, कुंठाओं,

साम्प्रदायिकता, अधर्म और अन्याय के उन्मूलन पर बल देते हुए इस युग के कहानीकारों ने आदर्शपरक निदान प्रस्तुत किये। इन कहानीकारों की यह भी धारणा है कि आज के समाज में जो कटु यथार्थ दिखाई देता है, उसके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याएं और कुंठाएँ सामने आती हैं। उनके निराकरण के लिये आज का कहानीकार आदर्शपरक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करता है जिसकी पृष्ठभूमि में गांधीवाद जैसी आदर्शपरक विचारधाराएँ भी हैं।

प्रेमचन्दोत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में विभिन्न तत्वों के अन्तर्गत यथार्थवाद का समावेश मिलता है। कथावस्तु तत्व के अन्तर्गत इस काल के प्रतिनिधि कहानीकारों ने यथार्थ सूत्रों का नियोजन किया है। इस काल की अधिकांश कहानियों की कथावस्तु रूढ़िवादिता, अशिक्षा, अन्धविश्वास, आडम्बर, स्त्री शिक्षा, तथा सामाजिक विषमता आदि से सम्बन्धित है। इलाचन्द्र जोशी लिखित 'खंडहर की आत्माएँ', यशपाल लिखित 'फलित ज्योतिष', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'रुकिया बुढ़िया', 'अज्ञेय' लिखित 'रोज' मन्मथनाथ गुप्त लिखित 'राजनीति', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखित 'याद' आदि कहानियों में समाज के यथार्थ पहलुओं से सम्बन्धित कथावस्तु प्रस्तुत है। इस युग की कहानी के पात्र भी समकालीन समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्ग का सही प्रतिनिधित्व करते हैं। यह पात्र-कल्पना की उपज नहीं है। इसीलिये इनकी प्रतिक्रियाएं स्वाभाविक हैं। यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्रकुमार, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', वाचस्पति पाठक, मन्मथनाथ पाठक, मन्मथनाथ गुप्त तथा 'अज्ञेय' ने ऐसे चरित्रों की योजना की है जो आधुनिक समाज के प्रतिनिधि पात्र कहे जा सकते हैं। इनकी मनोवृत्ति, भावनाएं और कुंठाएं इन्हीं वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

कथोपकथन अथवा संवादयोजनागत यथार्थ का जो रूप प्रेमचन्दोत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में मिलता है उसमें बनावटीपन के स्थान पर स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता दिखाई देती है। भगवतीचरण वर्मा लिखित 'वह फिर नहीं आई', इलाचन्द्र जोशी लिखित 'क्रान्तिकारिणी महिला', यशपाल लिखित 'धर्म रक्षा', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'पाजेब', वाचस्पति पाठक लिखित 'पुतली', कमलादेवी चौधरी लिखित 'भिखमंगे की बेटी', मन्मथनाथ गुप्त लिखित 'देशभक्त का अन्त', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'हारित' तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह लिखित 'गाँधी टोपी' आदि कहानियों में बनावटीपन, नाटकीयता, कृत्रिम भावना, चमत्कारिकता आदि के स्थान पर मनोवैज्ञानिकता और यथार्थता मिलती है। इसी प्रकार से भाषा के क्षेत्र में भी इस युग के लेखकों का दृष्टिकोण यथार्थपरक होता गया है। आज के समाज में भाषा के जो रूप प्रयोग में लाये जाते हैं उनमें हिन्दी, अंग्रेजी तथा उर्दू का मिश्रण है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क तथा यशपाल आदि लेखकों ने जनभाषा और लोक भाषा के साथ-साथ प्रादेशिक और आंचलिक भाषा का भी प्रयोग किया है।

प्रेमचन्दोत्तर युग की हिन्दी कहानी के शैली-तत्व के अन्तर्गत भी यथार्थ का आग्रह स्पष्ट है। भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, तथा मन्मथनाथ गुप्त आदि ने कहीं-कहीं पर जिस प्रकार की शैली का प्रयोग किया है वह यथार्थ से आगे बढ़ कर अतियथार्थवादी और प्रकृतिवादी भी हो गयी है। वातावरण के क्षेत्र में इस युग के कहानीकारों ने द्वितीय विश्वयुद्ध कालीन भारत का समग्र चित्रण किया है। राजनैतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक और आंचलिक वातावरण के विश्वसनीय चित्र इस युग में दिखाई देते हैं। उद्देश्य-तत्वगत यथार्थ के सम्बन्ध में यहाँ पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इस युग के कहानीकारों ने केवल मनोरंजन के उद्देश्य से कहानी-रचना न करके नवीन समाज का आवाहन किया है। भगवतीचरण वर्मा ने नारी में नव चेतना के जागरण की ओर संकेत करते हुए यह बताया है कि उसका शोषण संस्कारों के कारण भी होता है। यशपाल की धारणा है कि आज के समाज में खोखली नैतिकता व्याप्त हो गयी है। जैनेन्द्र कुमार ने अपनी कहानियों में जीवन में कर्मशीलता पर बल दिया है। उनके विचार से आधुनिक जीवन में इतनी विरूपताएं हैं कि किसी न किसी क्षेत्र में व्यक्ति की कोई न कोई इच्छा अधूरी अवश्य रह जाती है। इसलिए संतोष धारण करना चाहिए और अपनी अपूर्ण इच्छाओं को वश में रखना चाहिए जिससे उनके अभाव की पीड़ा न सता सके। विष्णु प्रभाकर और उपेन्द्रनाथ अश्क ने समाज की कुरीतियों और रूढ़ियों का विरोध किया। इस प्रकार से प्रेमचन्दोत्तरयुगीन कहानी में सांस्कृतिक क्षेत्रीय परिवर्तन, सामाजिक परिवर्तन, रूढ़िवादिता, अन्तर्जातीय विवाह, बेरोजगारी, भिक्षा वृत्ति, धार्मिक आडम्बर, नैतिक खोखलापन, अछूत समस्या, नारी शिक्षा, शोषण, युद्ध की विभीषिका तथा मनोवैज्ञानिक कुंठा आदि का जिन रूपों में चित्रण हुआ है वह युग-जीवन के यथार्थ के प्रति कहानीकारों की जागरूकता का परिचय देती है।

स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी कहानी की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का विकास हुआ। इस युग की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना देश की स्वतन्त्रता और देश का विभाजन है। इस युग के कहानीकारों ने बड़ी संख्या में इसी से सम्बन्धित रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इस युग में भारत की राष्ट्रीय संस्कृति का स्वरूप निर्धारित हुआ। समाज में सभी प्रदेशों की जातियों, धर्मों और वर्गों के लोगों को समान अधिकार दिये गये। भारत विभाजन की घटना ने समाज के स्वरूप, पारिवारिक व्यवस्था, सामाजिक संगठन और सामाजिक मर्यादा को व्यापक रूप से प्रभावित किया। रियासतों और जमींदारी की समाप्ति के कारण राजा महाराजा, नवाब, ताल्लुकेदार और जमींदार जनता के शोषक न रहकर उसी का अंग बन गए। आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए सहकारी आन्दोलन हुए। राजनैतिक क्षेत्र में भी अधिक जागरूकता लक्षित होने लगी।

साहित्य के क्षेत्र में भी जागरूक लेखकों ने युग-जीवन के यथार्थ को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया।

स्वातन्त्र्योत्तर युग में भी पूर्व युगों की भाँति सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति प्रमुख रूप से मिलती है। इस युग के कहानीकारों ने भारत की स्वतन्त्रता, भारत का विभाजन, रूढ़िवादिता की समस्या, भिक्षा वृत्ति की समस्या, मध्यवर्गीय खोखली नैतिकता की समस्या, शरणार्थी समस्या तथा नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है। कुछ लेखकों ने किसी विशेष प्रदेश, ग्राम अथवा अंचल को आधार बनाकर वहाँ के सामाजिक जीवन का विस्तृत चित्रण किया है। ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत अमृतलाल नागर, कमलेश्वर तथा आनन्दप्रकाश जैन आदि ने मुगल और ब्रिटिश काल से सम्बन्धित रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। धार्मिक पौराणिक कहानी की भी प्रवृत्ति के अन्तर्गत विभिन्न लेखकों ने धार्मिक आडम्बरों का विरोध करके यह संकेत किया है कि पहले धर्म आत्मिक शुद्धि, सदाचार और आत्मोत्थान का माध्यम माना जाता था जबकि आज वह केवल ढोंग बनकर रह गया है। मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, मन्नू भंडारी तथा रमेश बक्षी आदि कहानीकारों ने इस विषय से सम्बन्धित कहानियाँ लिखी हैं।

राजनैतिक और राष्ट्रीय भावना प्रधान कहानी की प्रवृत्ति का जो विकास स्वातन्त्र्योत्तर युग में हुआ है उसके अन्तर्गत विभिन्न लेखकों ने स्वतन्त्रता, क्रान्ति, आन्दोलन, युद्ध विराम तथा भारत विभाजन की समस्याएँ चित्रित कीं। मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति भी इस युग में विशेष रूप से विकसित हुई है। शशि तिवारी, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कुलभूषण तथा कमल जोशी आदि कहानीकारों ने जन-जीवन के परिवर्तनशील रूप का चित्रण करते हुए सामाजिक पृष्ठभूमि में मानव-मन की विभिन्न कुण्ठाओं का सूक्ष्म रूप में विश्लेषण करते हुए बताया है कि आज के जीवन में रोजी-रोटी की समस्या इतने कठिन रूप में उपस्थित है कि सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी है और अनेक विरोधाभास तथा विडम्बनाएँ सामने आती हैं।

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समुचित रूप से विकास हुआ है। अमृतलाल नागर, स्वरूपकुमारी बख्शी तथा राजेन्द्र यादव आदि लेखकों ने ऐतिहासिक सन्दर्भ में व्यंग्यात्मक सन्दर्भ प्रस्तुत किया है। सामाजिक यथार्थवाद के अन्तर्गत विभिन्न लेखकों ने ग्रामीण और नागरिक समाज के परिवर्तनशील रूपों और कुण्ठाग्रस्त जीवन का चित्रण किया। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के अन्तर्गत राजेन्द्र अवस्थी, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, कमल जोशी, अमृतराय, मन्नू भंडारी आदि ने यह संकेत किया है कि आज के युग में आडम्बरपूर्ण और रूढ़िवादी

नैतिक बन्धनों के कारण मनुष्य का जीवन कुण्ठाग्रस्त हो गया है और इसके फल-स्वरूप अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ और विडम्बनाएँ सामने आती हैं। स्वातन्त्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का जो रूप दिखाई देता है उसका लेखकों ने आधुनिक जीवन की यथार्थ समस्याओं के निदान स्वरूप आदर्शपरक संकेत प्रस्तुत किये हैं। मन्नू भंडारी ने इस सम्बन्ध में यह संकेत किया है कि आज की स्त्री के लिए शिक्षा व स्वावलम्बन बहुत आवश्यक है। जब तक नारी अपने पैरों पर खड़ी नहीं होगी तब तक वह शोषित और दलित बनी रहेगी। कमल जोशी ने दूसरों पर आश्रित व्यक्तियों को यह संदेश दिया है कि स्वावलम्बन ही सुख की कुंजी है। कमलेश्वर ने भी श्रम की महत्ता बताई है। स्वरूपकुमारी बख्शी ने निम्न वर्गों की ऊँची नैतिकता का आदर्श रूप में चित्रण किया है। इन लेखकों की रचनाओं में आदर्शोन्मुख रचनाओं का प्रतिनिधि रूप दृष्टिगोचर होता है।

यथार्थवाद के उपकरणगत विवेचन की दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन हिन्दी कहानी पिछले युग की तुलना में कहीं-कहीं अतियथार्थवादी और प्रकृतवादी भी हो गयी है। कथावस्तुगत यथार्थ की दृष्टि से आज का कहानीकार समाज, धर्म, नीति, संस्कृति, राजनीति आदि के किसी भी पहलू से सम्बन्धित यथार्थ समस्या प्रस्तुत करता है। मोहन राकेश लिखित 'जानवर और जानवर', मन्नू भंडारी लिखित 'चाँद चलता रहा', राजकमल चौधरी लिखित 'स्टिल लाइफ', कमलेश्वर लिखित 'उसकी माँ', श्रीकान्त वर्मा लिखित 'दूसरे के पैर' जैसी कहानियों में छोटी-छोटी घटनाओं को कथावस्तु का आधार बनाया गया है। पात्रगत यथार्थ के क्षेत्र में इस युग के कहानीकारों ने उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के वास्तविक पात्रों का चित्रण करते हुए उनकी विशेषताओं, हीनताओं और कुण्ठाओं को उभार कर सामने रखा है। आज के समाज में मध्य और निम्न वर्ग अपने संस्कारों के कारण सबसे अधिक शोषित है। निराशा, कुण्ठा, रोगग्रस्तता और आर्थिक अभाव का जितना दयनीय रूप इन वर्गों में दिखाई देता है उतना दूसरी जगह नहीं। नारी पात्रों की दृष्टि से इस युग का कहानीकार आदर्श और भावुकता को छोड़ यथार्थ जीवन से पात्रों का चित्रण करता है। इन स्त्री पात्रों को जीवन का सच्चा प्रतिनिधि कहा जा सकता है, क्योंकि उनके मन में हमेशा खुशियाँ ही नहीं फूटतीं बल्कि गहरी उदासी और दुःख भी सताता है। अपने इस रूप में वे पाठक को अधिक यथार्थ, विश्वसनीय और स्वाभाविक प्रतीत होती हैं।

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में कथोपकथन-तत्वगत जो रूप दिखाई देता है वह नाटकीयता और बनावटीपन से रहित है तथा उसमें यथार्थ का आग्रह स्पष्ट है। अमृतलाल नागर लिखित 'नवाबी मसनद', निर्मल वर्मा लिखित 'जलती झाड़ी', फणीश्वरनाथ रेणु लिखित 'नित्य लीला', उषा प्रियंवदा लिखित 'वापसी',

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना लिखित 'तोता' तथा कमलेश्वर लिखित 'नीली झील' आदि कहानियाँ स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक, विश्वसनीय और यथार्थपरक कथोपकथन से युक्त प्रतिनिधि रचनाएँ कही जा सकती हैं। भाषागत यथार्थ की दृष्टि से भी इस युग की कहानियों में नाटकीयता, आलंकारिकता और बनावटीपन के स्थान पर स्वाभाविकता, सरलता और यथार्थता मिलती है। इस युग के कहानीकारों ने ग्रामीण और नागरिक पात्रों के माध्यम से जो भाषा प्रयुक्त की है वह व्यावहारिक और प्रचलित है। कहीं-कहीं पर लोक भाषा का भी प्रयोग इस युग के लेखकों ने किया है। स्वातन्त्र्योत्तर-युगीन लेखकों ने अपनी कहानियों में जिस शैली का प्रयोग किया है वह अनेक स्थलों पर यथार्थ से आगे बढ़कर अतियथार्थवादी और प्रकृतवादी हो गयी है। फणीश्वरनाथ रेणु लिखित 'लाल पान की बेगम', अमृतलाल नागर लिखित 'कालेज के लड़के', मोहन राकेश लिखित 'मलवे का मालिक', अमृतराय लिखित 'कठघरे', उषा प्रियंवदा लिखित 'मोह बन्ध' तथा कमलेश्वर लिखित 'नीली झील' आदि कहानियों में इस युग की रचना-शैली के प्रतिनिधि रूप मिलते हैं। इनमें परम्परागत कहानी-शैलियों का विकास तो हुआ ही है साथ ही स्थानीय और प्रादेशिक शैलियों से युक्त आंचलिक शैली भी विकसित हुई है। वातावरण-तत्वगत विकास की दृष्टि से इस युग की रचनाओं ने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आंचलिक वातावरण का चित्रण किया है। आज के युग में भारतीय समाज में जो परिवर्तन राजनैतिक क्रान्ति, स्वतन्त्रता, विभाजन, औद्योगिक विकास, विश्व युद्ध तथा वैज्ञानिक उन्नति के फलस्वरूप हुए हैं उनका यथार्थपरक चित्रण इस युग के प्रमुख अनेक कहानीकारों की रचनाओं में हुआ है।

स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन हिन्दी कहानी में उद्देश्य-तत्वगत यथार्थ की दृष्टि से यह संकेत करना अनुचित न होगा कि इस युग के लेखकों ने जीवन के प्रायः सभी पक्षों का यथार्थ चित्रण करते हुए उसके स्वरूप, उसके स्वस्थ विकास पर बल दिया है। उन्होंने आज के जीवन में व्याप्त कुण्ठाओं और विरूपताओं के उन्मूलन का प्रयत्न करते हुए मानवतावादी भावना के विकास का संदेश दिया है। आज के युग में समाज में जो व्यापक चेतना जाग्रत हो रही है। इस प्रकार से स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में यथार्थवाद का प्रौढ़ रूप समाविष्ट हुआ है।

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अनेक नवीन आन्दोलन हुए। इसके सन्दर्भ में यथार्थवाद का अध्ययन इस शोध प्रबन्ध के छठे अध्याय में किया गया है। इनमें नई कहानी का आन्दोलन, सचेतन कहानी का आन्दोलन तथा अकहानी का आन्दोलन मुख्य हैं। नई कहानी में मुख्य रूप से आधुनिक जीवन के यथार्थ चित्रण का आग्रह मिलता है। सचेतन कहानी में भी सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति और समकालीन जीवन के यथार्थ चित्रण पर बल दिया गया

है। अकहानी का आन्दोलन मुख्य रूप से व्यावसायिक कहानी के विरुद्ध साहित्यिक कहानी की प्रतिष्ठा के हेतु आरम्भ हुआ है। सातवें दशक के प्रमुख कहानीकारों में योगेश गुप्त, सोमावीरा, जगदीश चतुर्वेदी, मार्कन्डेय, शेखर जोशी, डा० प्रतापनारायण टंडन, रमेश बक्षी, गंगा प्रसाद विमल, दूधनाथ सिंह, महेन्द्र भल्ला, भीष्म साहनी तथा मनहर चौहान आदि हैं। इन कहानीकारों की रचनाओं में परम्परागत कहानी के साथ ही नई कहानी, सचेतन अकहानी तथा कहानी के विभिन्न रूप भी दृष्टिगत होते हैं।

वर्तमानयुगीन कहानी में सामाजिकता की जो प्रवृत्ति मिलती है उसका आधार आज के समाज का पतनोन्मुख स्वरूप है। आज की सभ्यता के बनावटीपन को कटु व्यंग्यात्मकता के साथ वह अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो अनिश्चयता व भय विद्यमान है उससे नवयुवक वर्ग किसी भी क्षेत्र में रचनात्मक कार्य नहीं कर पाता है। उसे प्रत्येक स्थिति विषम लगती है क्योंकि वह उसमें अपने लिये कहीं पर कोई स्थान नहीं बना पाता है। आज के समाज में कृत्रिम सभ्यता और शिष्टाचार का जो रूप मिलता है उसमें उसे मानवीयता का अभाव दिखाई देता है। इसी पृष्ठभूमि में नये कहानीकार ने विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है। धार्मिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत नये कहानीकार ने मुख्यतः वैज्ञानिक और तर्कपरक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। भाग्यवाद, अन्धविश्वास, मिथ्याडम्बर, आत्मा परमात्मा, मूर्ति पूजा आदि में उसकी आस्था नहीं है। वह अन्धभक्ति का कट्टर विरोधी है। राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति के क्षेत्र में देश की स्वतंत्रता, देश का विभाजन, शरणार्थी समस्या, जमींदारी प्रथा, सहकारी आन्दोलन तथा औद्योगिक राष्ट्रीयकरण आदि को विषय वस्तु का आधार बनाया गया है। आज राजनीति के क्षेत्र में जो चुनाव प्रणाली, नेतागीरी, घूंसखोरी, साम्प्रदायिकता और अनैतिकता दिखाई देती है, उससे भ्रष्टाचार की ही वृद्धि हुई है। मनोवैनिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत नये कहानीकार ने यह संकेत किया है कि आज जीवन के सभी पहलुओं के क्षेत्र में इतनी जटिलता व विषमता मिलती है कि सहज और सरल हृदय वाला व्यक्ति गहरी मानसिक उथल-पुथल और अन्तर्द्वन्द का शिकार हो जाता है। वह भी यह मानता है कि आर्थिक अभाव भी अनेक कुंठाओं और विषमताओं को जन्म देता है।

वर्तमान हिन्दी कहानी में ऐतिहासिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समावेश हुआ है। वीरेन्द्र मेहदीरत्ता लिखित 'उंगली का इशारा' तथा राजेन्द्र किशोर लिखित 'एक खत' जैसी कहानियों में यह संकेत किया गया है कि हमें प्राचीन काल के इतिहास से कल्पनात्मक आदर्श की शिक्षा लेने के स्थान पर निकट अतीत के इतिहास से चेतना ग्रहण करनी

चाहिये। सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से योगेश गुप्त लिखित 'बड़े शहर के ताबूत', गोविन्द मिश्र लिखित 'घाव', अंगराज लिखित 'ब्याह दोस्त और दुनियां', रवीन्द्र कालिया लिखित ,कोजी कार्नर' तथा रमेश उपाध्याय लिखित 'गलत-गलत' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। मनोवैज्ञानिक यथार्थ के अन्तर्गत विभिन्न कुंठाओं, विरूपताओं, तनाव, असंतोष और उच्छृङ्खलता का चित्रण किया है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के अन्तर्गत वर्णव्यवस्था, जाति प्रथा, छुआछूत, अनैतिकता और शोषण के विरुद्ध आवाज उठायी गयी है।

वर्तमान हिन्दी कहानी में कथावस्तु का आधार आज के जीवन में बढ़ती हुई भौतिकता, अर्थहीन रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास, आडंबरप्रियता, आर्थिक हीनता, बेरोजगारी, आदि से सम्बन्धित सूत्र हैं। पात्रगत यथार्थ के अन्तर्गत लेखकों ने जिन चरित्रों की आयोजना की है, वे झूठे संतोष में नहीं जीते हैं बल्कि उनकी जिन्दगी में अतृप्त इच्छाएं, मानसिक कुंठाएं, आर्थिक अभाव, शोषण, हताशा तथा निराशा आदि भरी हुई हैं। संवादगत यथार्थ के अन्तर्गत श्रीकान्त लिखित 'शव यात्रा', भीष्म साहनी लिखित 'इन्द्रजाल', भीमसेन त्यागी लिखित 'आत्म-हत्याएँ' तथा कामतानाथ लिखित रचनाएं उल्लेखनीय हैं। इनमें भाषागत यथार्थ का आग्रह भी स्पष्ट है। शैली के क्षेत्र में तो यह आग्रह बढ़कर अतियथार्थवादी और प्रकृतवादी भी हो गया है। वातावरण के क्षेत्र में सामाजिक, राजनैतिक, ग्रामीण, आंचलिक और प्राकृतिक वातावरण के विश्वसनीय रूप मिलते हैं। उद्देश्य-तत्व के क्षेत्र में आज का कहानीकार किसी कल्पित अथवा आदर्श से प्रभावित उद्देश्य को स्थान नहीं देता बल्कि आज के युग में व्याप्त स्वार्थपरता, अनाचार, शोषण, रूढ़िवादिता, मिथ्या आचरण और विकृत सभ्यता के विरुद्ध आवाज उठाकर नवजागरण का आवाहन करता है। इस प्रकार से हिन्दी कहानी के विविध विकास युगों में कहानीकारों का आग्रह आदर्श की ओर से यथार्थ की ओर निरन्तर उन्मुख होता जा रहा है। दूसरे शब्दों में, हिन्दी कहानी निरन्तर कल्पनामूलकता से लेकर यथार्थपरकता की ओर बढ़ती गयी है। आधुनिक युग की एक प्रतिनिधि विचारधारा के रूप में उसमें यथार्थवाद का समुचित विकास हुआ है और यथार्थवादी कहानी के रूप में उसकी नई उपलब्धियाँ सामने आयी हैं। ये उपलब्धियाँ जहाँ एक ओर हिन्दी कहानीकारों की जागरूकता और आत्मविश्वास की परिचायक हैं, वहाँ दूसरी ओर हिन्दी कहानी के भावी स्वरूप के प्रति पाठक को आशावान भी बनाती है।
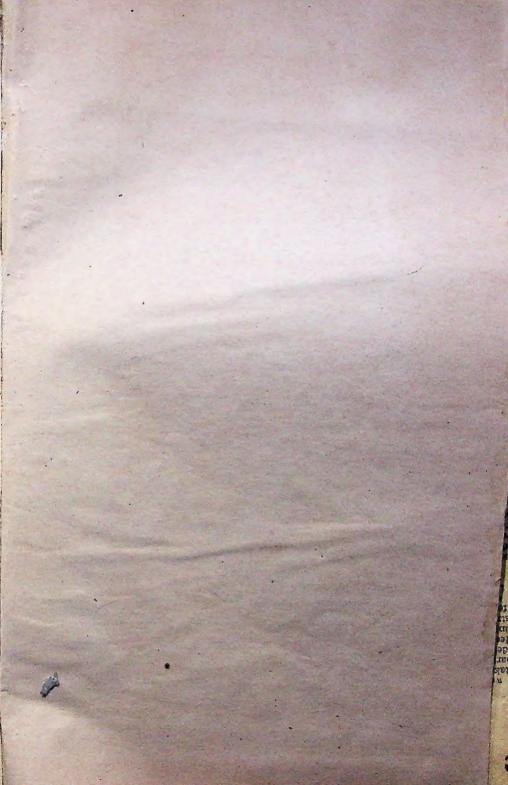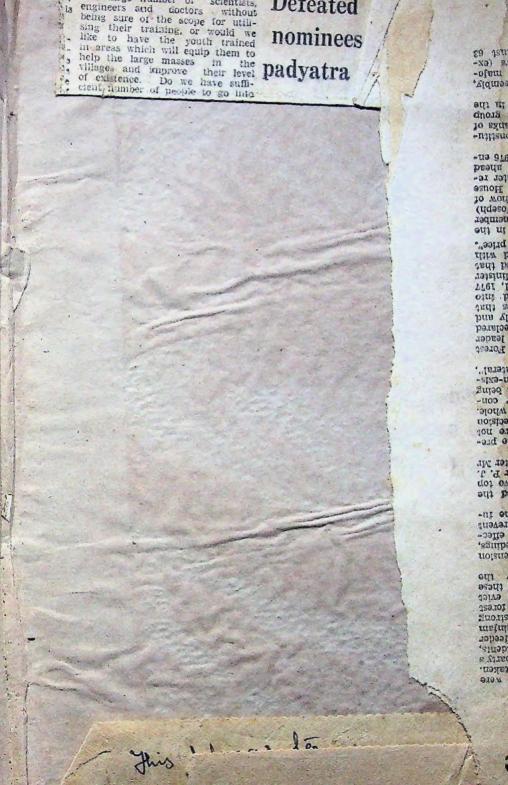
---

## ... reaches flash ...

Express News Service

TRIVANDRUM, July 17.

The simmering differences in the Ruling Front over the issue of evicting post-1976 forest encroachers reached flash point on Sunday with the Kerala Congress (Joseph), one of the constituents of the front, demanding suspension of all eviction proceedings

## ... of labs ... ministries

...ess News Service

HYDERABAD, July 17.

...e tagging of some of the CSIR ...ratories to "user ministries" ...s on Saturday decried by Dr H. N. Sethna, principal secretary to the Government of India, department of Atomic Energy and Chairman, Atomic Energy Commission.

Delivering the convocation address at the Osmania University here on the theme "Accountability and Scientific Research", Dr Sethna said tagging experiment had not yielded expected results but had only resulted in strengthening bureaucratic control over science administration.

Dr Sethna recalled Prime Minister's remark at a recent conference of directors of CSIR laboratories that if necessary some of the laboratories have to be closed down.

He pointed out that programmes of research and development have not always been oriented towards fulfilling the objective with which the R and D. organisations were set up. The anxiety of the scientists to get recognition by publication of a large number of papers in foreign journals had dominated the formulation of programmes in the laboratories. There has been no serious concern for the eventual application of the R and D programmes, he added.

The scientists tended to ignore the very large areas where plodding development work have led to improvements in product quality in industry, it being "unglamourous but result oriented".

Dr Sethna said it is necessary that the scientists engaged in research should assess themselves in the context of their contribution to the growth of society around them. It is not always the correct approach that scientific work be reviewed only by scientists without involvement of other lay leaders of society, he added.

Dr Sethna also called for an in-depth review of the education system, stressing that it should be in tune with the need of the society. While scientific education is given importance with advancement in science and technology being synonymous with advancement of society, he said the term

# UP CM asks officers to ensure kharif sowing

Express News Service

LUCKNOW, July 17.

With the monsoon playing truant the Chief Minister, Mr Shripati Misra, directed all concerned officers to make efforts to ensure paddy transplantation and kharif sowing in time by providing adequate irrigation facilities through canals and tube wells.

At an emergent meeting of secretaries and other senior officers of the agriculture, irrigation, energy and planning departments the Chief Minister asked them to ensure at least ten-hour uninterrupted daily power supply to tube wells in the rural areas. All the canals should be run to their full capacity, he said.

The Chief Minister said that senior officers of the rank of superintending engineers of the state electricity board and irrigation department should be made responsible for proper power supply and the regular tube well operation in their respective areas.

The Chief Minister also asked them to make advance preparations to meet the flood situation as and when it developed in the state. Floods too could not be ruled out at this stage, he warned.

The Chief Minister said that vulnerable areas must be identified and adequate measures should be taken for protection against floods besides ensuring proper arrangements for evacua...